हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास

डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल

हिन्दी कहानियों
की
शिल्प-विधि का विकास

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल
एम० ए०, डी० फिल्०

साहित्य भवन [प्रा] लिमिटेड
इलाहाबाद-३

© —लेखक—

पंचम ८
चतुर्थ, १९७४ ई०

साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड
इलाहाबाद–२११००३

कैक्सटन प्रेस,
बाई का बाग,
इलाहाबाद–३

बाईस रुपये

माता-पिता
और
आरती
के
सन्तोष को···

परिचय

हिन्दी कहानी-साहित्य अन्य साहित्यांगों की अपेक्षा अधिक गतिशील है। मासिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं के नियमित प्रकाशन ने इस साहित्य के विकास में बहुत अधिक योग दिया है। फलस्वरूप कहानी-साहित्य में सर्वाधिक प्रयोग हुए हैं और कहानी किसी निर्झरिणी की गतिशीलता लेकर विविध दिशाओं में प्रवाहित हुई है।

इस वेग में मर्यादा रहनी चाहिए। बरसात में किसी नदी के किनारे कमजोर हों तो गाँव और नगर में पानी भर जाता है। इसलिए वेग को विस्तार देने की आवश्यकता है। प्रवाह में गंभीरता आनी चाहिए। मनोरंजन की लहरें उठाने वाला कहानी-साहित्य, तट को तोड़कर बहने वाला साहित्य नहीं है। उसमें जीवन की गहराई है—जीवन का सत्य है। दिग्वधू की घनश्यामल केशराशि में सजा हुआ इन्द्रधनुष बालकों का कुतूहल ही नहीं है, 'वह प्रकृति का सत्य भी है। कितनी प्रकाश-किरणों ने जीवन की बूँदों से हृदय में प्रवेश कर इस सौन्दर्य-विधि में अपना आत्म-समर्पण किया है!

कहानी के इस सत्य को समझने की आवश्यकता है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल स्वयं एक प्रसिद्ध कहानी-लेखक और उपन्यासकार हैं। इन्होंने सफलता के साथ अपना खोज-कार्य किया, जिस पर इन्हें डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त हुई और इस दिशा में इनका कार्य श्रेष्ठ समझा गया। मुझे प्रसन्नता है कि इनका यह कार्य साहित्य-जगत् में इतना प्रतिष्ठित हुआ है कि इस ग्रंथ से मैं आशा करता हूँ कि साहित्य-जगत् का उत्तरोत्तर हित होगा और विद्वान लेखक का भावी पथ अधिक प्रशस्त बनेगा।

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

डॉ० रामकुमार वर्मा

प्रथम संस्करण की भूमिका

★

व्यापकता और प्रसार की दृष्टि से कहानी-कला का स्थान आधुनिक हिन्दी साहित्य के समस्त प्रकारों में सर्वोपरि है। इस कला को वर्तमान युग की प्रतिनिधि धारा कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं। कहानी अपने साधारण रूप अर्थात् कथा, लघुकथा, आख्यायिका और आख्यानक आदि रूपों में प्राचीन भारतीय साहित्य का शृंगार है। इसकी परम्परा वैदिक साहित्य से आरंभ होकर बौद्ध जातक, जैन कथाओं, संस्कृत कथा-साहित्य, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के चारण-काल और मध्य-युग तक आती है। कहानी के इस भारतीय स्रोत ने कदाचित् किसी समय समूचे संसार को प्रेरणा दी है।

हिन्दी कहानी-कला अपने विशिष्ट रूप में उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से आरम्भ होती है और आधुनिक हिन्दी कहानी का उत्थान वास्तव में बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हुआ। इस तरह हिन्दी कहानी-शिल्पविधि के विकास और उद्गम-सूत्र का अध्ययन अत्यन्त व्यापक है और यह सूक्ष्म अन्वेषक दृष्टि की अपेक्षा करता है। अध्ययन की पृष्ठ-भूमि में प्राचीन भारतीय कथा-परम्परा का वैज्ञानिक विवेचन अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि उसी के उपरान्त हिन्दी कहानी की शिल्पविधि के आविर्भाव, विकास आदि युगों के स्वतंत्र अध्ययन की स्थिति आती है।

उक्त दृष्टिकोण से आज तक हिन्दी कहानी-कला पर हिन्दी जगत् में कोई खोजपूर्ण आलोचना-ग्रंथ नहीं है। अब तक इस दिशा में यथासंभव जितनी आलोचनाएँ हुई हैं; वे दो कोटियों में आती हैं—प्रथम, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास' के अध्ययन-क्रम में—इस क्षेत्र में डॉ० श्रीकृष्णलाल का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' निबन्ध (ग्रंथ) उल्लेखनीय है, दूसरी कोटि में अनेक कहानी-संग्रहों की भूमिकाएँ आती हैं। इन दो कोटियों के उपरांत, किसी एक विशिष्ट कहानीकार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लेकर उस पर एक स्वतंत्र आलोचना-ग्रंथ लिखने की शैली आती है। इस दिशा में डॉ० सत्येन्द्र-लिखित 'प्रेमचन्द : उनकी कहानी-कला' एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

प्रस्तुत ग्रंथ प्रयाग विश्वविद्यालय-द्वारा स्वीकृत डी० फिल्० थीसिस—'इवोल्यूशन ऑव् द टेक्नीक ऑव् हिन्दी शार्ट स्टोरीज एंड इट्स सोर्सेज' (हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास और उद्गम-सूत्र) के रूप में लिखा गया था। पुस्तक का रूप देने में कई स्थान पर काट-छाँट हुई है। उपलब्ध-सामग्री का यथावश्यक वैज्ञानिक

प्रयोग और उसकी परख में सर्वथा मौलिक दृष्टिकोण रखने का प्रयत्न किया गया है। विषय-विस्तार और उसकी सीमा में अध्ययन की वे सारी मान्यताएँ उपस्थित की गयी हैं, जिनका संकेत ऊपर किया गया है।

खोज का क्रम-सूत्र, कहानी-कला की प्राचीन तथा हिन्दी कहानी-साहित्य की प्रारम्भिक दिशाओं से लेकर इसकी आधुनिकतम प्रवृत्तियों के आकलन तक आया है। विकास-क्रमों की समुचित पीठिका और उनकी मूल-प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक अध्ययन, प्रस्तुत ग्रंथ की मूल विशेषता है। यही कारण है कि हिन्दी कहानी-साहित्य के अनेक महत्वपूर्ण कहानीकारों को अध्ययन-सीमा में न बांध पाना अपनी सहज विवशता हो गयी है। इसमें उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रति किसी तरह की अवज्ञा नहीं है। यहाँ कहानीकारों के नाम गिनाना अभीष्ट न था, वरन् हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के वैज्ञानिक विकास-क्रम और उनकी प्रवृत्तियों का विवेचन हमारा लक्ष्य था।

'थीसिस' के प्रस्तुत विषय को श्रद्धेय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्० (पेरिस); अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय ने विशेष कृपा करके मुझे दिया, मैं इसके लिए उनका सदैव आभारी हूँ। थीसिस का पांडित्यपूर्ण निर्देशन गुरुवर डॉ० रामकुमार वर्मा एम० ए०, पी-एच० डी० ने किया है। अपने व्यस्त क्षणों में उन्होंने जितनी तत्परता, असीम स्नेह और बहुमूल्य परामर्शों से मुझे विषय के वैज्ञानिक अध्ययन में उत्साहित किया है, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ एवं ऋणी हूँ। अध्ययन-क्रम में हिन्दी के प्रायः समस्त आधुनिक कहानीकार विशेषकर अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी ने अपने परामर्शों और अनेक सूचनाओं से मेरी सहायता की है।

३, प्रयाग आश्रम
इलाहाबाद
गाँधी जयंती, १९५३

लक्ष्मीनारायण लाल

द्वितीय संस्करण की भूमिका

★

गत दशक में हिन्दी कहानियों के रूप और धरातल में अपूर्व विकास हुआ है। इस शोध-ग्रंथ को समाप्त करते समय, आज से प्रायः सात वर्ष पूर्व, उस समय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों और कतिपय प्रतिनिधि कहानीकारों के कहानी-कला विषयक मानदंडों से यह लग रहा था कि आगे कहानी के रूपविधान और शिल्पविधान में सरलता के स्थान पर कला का क्लिष्ट आग्रह आने वाला है। लग रहा था कि कहानी का स्वर और व्यक्तित्व उत्तरोत्तर बौद्धिक होगा। उस समय पश्चिम के कलाप्रयोग और वहाँ की अन्यान्य कहानियों के प्रभाव से हिन्दी कहानियों के रूप से बहुत संतोष की आशा नहीं बँध रही थी। जिस प्रकार से कहानियों में कथा-तत्व का ह्रास हो रहा था, उसका पूर्णचित्र इस संस्करण के परिशिष्ट (क) में दिया जा रहा है। उससे उक्त सत्य सर्वथा स्पष्ट हो जायगा।

पर उन्हीं वर्षों की संक्रान्ति-अवस्था से जिस रूप और धरातल से हिन्दी कहानी ने एक नया मोड़ लिया है, उससे तद्‌विषयक सभी निराशा धुल गयी। गत पाँच-छः वर्षों में जिन नये कहानीकारों की रचनायें हिन्दी कहानी-साहित्य को मिलीं और उनसे कहानी को जो नयी दिशा, और गति प्राप्त हुई, वह अपने आप में बहुत ही मूल्यवान, उपलब्धिपूर्ण और आशाजनक है। इसका स्वर विशुद्ध भारतीय है, जिसका अपना ऐतिहासिक दाय है, जो परम्परा-पुष्ट, नयी रूढ़ियों की रूढ़ि है। इसका विस्तृत आकलन निश्चय ही आगे किया जा सकेगा, पर परिशिष्ट (ख) में नयी कहानियों की एक तात्विक समीक्षा जोड़कर इस शोधग्रंथ को, जिसमें इसकी समसामयिकता भी आयी है, इसे मैंने अति आधुनिक करने का प्रयत्न किया है।

१७, तुलाराम बाग
इलाहाबाद
१० जनवरी १९६१

लक्ष्मीनारायण लाल

तृतीय संस्करण की भूमिका

★

कहानी-लेखन और आकलन, इन दोनों क्षेत्रों में इधर वह शोरशराबा नहीं रहा, जिसके कारण पिछले दशक में कहानी का वह सहज व्यक्तित्व सामने नहीं आ सका, जिसकी समुचित अपेक्षा थी। आज इस क्षेत्र का वातावरण काफी शान्त है, पर गंभीर आज भी नहीं कहा जा सकता। फिर भी सम्प्रति कहानी के उत्तरोत्तर विकसित व्यक्तित्व को समझने और प्रकट करने की स्थिति पहले से निश्चय ही बहुत अच्छी है।

कहानी, नयी कहानी, अकहानी, साठोत्तर कहानी, इसी तरह आगे न जाने कितने कितने विशेषणों संज्ञाओं में यह कहानी बढ़ती जायेगी। विशेषण और संज्ञायें—बल्कि विज्ञापन खत्म हो जायेंगे, समय उन्हें भुला देगा, रह जायेंगी केवल वास्तविक कहानियाँ। इसीलिये कहानी के विकास का अध्ययन जीवन के और इसकी कला के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही देखा जा सकता है।

मेरी इस पुस्तक के माध्यम से विद्वानों, विश्वविद्यालयों के छात्रों, अध्येताओं ने इस कलागत दृष्टिकोण को अपनाया है और इसे अपना समर्थन दिया है, यह मेरे लिये बड़ी प्रसन्नता की बात है। अपनी इस भूमिका से मैं समूचे हिन्दी जगत को इसके लिये धन्यवाद देता हूँ।

नयी दिल्ली—८ लक्ष्मीनारायण लाल

१६-११-६७

चतुर्थ संस्करण की भूमिका

★

'हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास' के चतुर्थ संस्करण को देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

इस नवीनतम संस्करण में मैंने परिशिष्ट रूप में स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी कहानियाँ, पृष्ठभूमि, नई कहानी, साठोत्तरी कहानियाँ आदि कथा-साहित्य सम्बन्धी नवीनतम विधाओं का भी समावेश कर दिया है। इससे पाठकों को सभी नए-नए विषयों से भी परिचय हो सकेगा।

मैं अपने पाठकों और विशेषकर कथा-साहित्य के विद्यार्थियों को बारम्बार धन्यवाद देता हूँ।

नई दिल्ली—८ लक्ष्मीनारायण लाल

२५-११-७३

विषय-प्रवेश
सामग्री,
पूर्व-परिचय
भारत
काव्य तथा पौरा
समीक्षा, संस्कृत
सरित्सागर, कथास
सप्तति, सिंहासन
कथा का स्वरूप,
कथा-तत्व, चारण
आख्यानक काव्य,
वैष्णवन की वार्ता
लोकन।
आविर्भाव-युग
हिन्दी
कथाएँ, प्रेमसागर,
भारतेन्दु-युग में क
हरिश्चन्द्र मैगजीन
हिन्दी कहानी का
समय, कथानक-शै
प्रकाशन।
विकास-युग
प्रवृत्ति
गुलेरी : कथानक,
और अनुभूति, सम
प्रेमचन्द
प्रेमचन्द
सामाजिक, व्यक्ति
संधिकाल, ऐतिहा
प्रेमचन्द की कहा

विषय-सूची

विषय-प्रवेश

सामग्री, अध्ययन का दृष्टिकोण, विषय-विस्तार। पृ० १-५

पूर्व-परिचय

भारत का प्राचीन कथा-साहित्य, उपनिषदों की कथाएँ, आख्यानक काव्य तथा पौराणिक कथाओं का जन्म, दन्तकथाओं का आरम्भ, जातक-समीक्षा, संस्कृत का परवर्ती कथा-साहित्य, बृहत् कथा-श्लोक, कथा-सरित्सागर, कथासरित्सागर में कथा का रूप, बैताल पंचविंशतिका, शुक-सप्तति, सिंहासन द्वात्रिंशिका, समीक्षा, नीति-सम्बन्धी कथासंग्रह, पंचतन्त्र में कथा का स्वरूप, हितोपदेश और उसकी कथाएँ, प्राकृत और अपभ्रंश में कथा-तत्व, चारण-साहित्य में कथा-तत्व, लोक-गाथाएँ, मध्यकालीन हिन्दी आख्यानक काव्य, कथा-शिल्प, वार्ता, साहित्य की धार्मिक कथाएँ, चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, शिल्पविधि, सिंहाव-लोकन। पृ० ६-२८

आविर्भाव-युग

हिन्दी खड़ीबोली में कथाओं का आरम्भ, भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी कथाएँ, प्रेमसागर, नासिकेतोपाख्यान, रानी केतकी की कहानी, व्यवधान, भारतेन्दु-युग में कथा-विकास, प्रेरणाएँ, उपन्यास, हिन्दी कहानी की उत्पत्ति, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्रिका, हिन्दी प्रदीप, सरस्वती का प्रकाशन, हिन्दी कहानी का आरम्भ, प्रारम्भिक प्रयत्न और प्रयोग, ग्यारह वर्ष का समय, कथानक-शैली, विकास-युग, इन्दु का प्रकाशन, हिन्दी गल्पमाला का प्रकाशन। पृ० २९-५९

विकास-युग

प्रवृत्तियाँ, भावगत प्रवृत्तियाँ, शिल्पगत प्रवृत्तियाँ, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : कथानक, चरित्र, शैली, भाषा और वर्णन-शैली, कथोपकथन, लक्ष्य और अनुभूति, समीक्षा। पृ० ६०-७९

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द की कहानियों की रचना-परिस्थितियाँ—राजनीतिक, सामाजिक, व्यक्तिगत, प्रेमचन्द का अवतरण—उर्दू में, उर्दू और हिन्दी का संधिकाल, ऐतिहासिक विशेषता : प्रथम काल, द्वितीय काल; तृतीय काल, प्रेमचन्द की कहानियों की शिल्पविधि।

(१) आरम्भिक काल (१६१७-२० ई०)—कथानक, लम्बे कथानक, इतिवृत्तात्मकता, सहायक कथानक, कथानक-निर्माण में विभिन्न ढंग, चरित्र : स्त्री-पुरुष-चरित्र की अपेक्षा आचरण, शैली (आरम्भ), भूमिका-सहित पात्रों के पूर्व-परिचय, भूमिका-युक्त पूर्व परिस्थिति का चित्रण, कहानी के सभी तत्वों का समावेश (विकास), मुख्य घटना की तैयारी, मुख्य घटना-निष्पत्ति, घातप्रतिघात (चरमसीमा), उपसंहार, शैली का सामान्य पक्ष, कथोपकथन, लक्ष्य और अनुभूति।

(२) विकास-काल (१६२०-३० ई०)—कथानक, कथानक-निर्माण में विभिन्न ढंग, चरित्र : स्त्री-पुरुष-आचरण की अपेक्षा चरित्र-चित्रण की ओर, शैली (आरम्भ-विकास-चरमसीमा), शैली का सामान्य पक्ष, कथोपकथन, लक्ष्य और अनुभूति।

(३) उत्कर्ष-काल (१६३०-३६ ई०)—कथानक, एक पक्ष और प्रसंग के कथानक, मनोवैज्ञानिक अनुभूति के कथानक, कथानक-निर्माण के विभिन्न ढंग; चरित्र : स्त्री-पुरुष-चरित्र-चित्रण और मनोवैज्ञानिक अनुभूति, शैली; चरमसीमा, कथोपकथन, लक्ष्य और अनुभूति; प्रेमचन्द की कहानियों पर एक विहंगम दृष्टि : भाव-पक्ष, भाषा-पक्ष, प्रेमचन्द और आदर्शवाद।

(४) उपसंहार—प्रेमचन्द-संस्थान के कहानीकार—विश्वम्भरनाथ जिज्जा, जी० पी० श्रीवास्तव, राजा राधिकारमण सिंह, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', ज्वालादत्त शर्मा, गोविन्दवल्लभ पंत, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, अन्य कहानीकार। पृ० ८०-१५६

जयशंकर 'प्रसाद'

प्रसाद के साहित्यिक संस्कार, साहित्यिक परिस्थितियाँ, प्रसाद की समन्वयात्मक भावना, कहानियों की शिल्पविधि का अध्ययन।

प्रथम काल (१६११-१६२२ ई०)—कथानक, चरित्र : स्त्री-पुरुष, शैली (आरम्भ, विकास, चरमसीमा) शैली का सामान्य पक्ष, कथोपकथन, लक्ष्य और अनुभूति, समीक्षा।

द्वितीय काल (१६२२-२६ ई०)—कथानक, चरित्र : स्त्री-पुरुष, शैली (आरम्भ, विकास, चरमसीमा), शैली का सामान्य पक्ष, कथोपकथन, लक्ष्य और अनुभूति, समीक्षा।

तृतीय काल (१६२६-३७ ई०)—कथानक, चरित्र : स्त्री-

पुरुष, शैली (आरम्भ, विकास, चरमसीमा), शैली का सामान्य पक्ष, लक्ष्य और अनुभूति, समीक्षा।

प्रसाद का आदर्शवाद, प्रसाद की भाषा, प्रसाद की मौलिकता, प्रसाद-संस्थान के कहानीकार : चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्ण दास, बेचन शर्मा 'उग्र', वाचस्पति पाठक, विनोदशंकर व्यास, अन्य कहानीकार। पृ० १५७-२०७

संक्रान्ति-युग

कहानी-कला में युगीन प्रवृत्तियाँ, वर्णन, मनोविज्ञान, यौनवाद, साम्यवाद; युगीन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कहानीकार और उनकी विशिष्ट शैली : जैनेन्द्र कुमार (दार्शनिक धरातल), कथानक, चरित्र : ऐतिहासिक चरित्र, पौराणिक चरित्र, चरित्र, शैली, लक्ष्य और अनुभूति, जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियाँ : कथानक, चरित्र, विशिष्ट चरित्र, प्रतिनिधि चरित्र, आत्मविश्लेषण, मानसिक ऊहापोह, अवचेतन विज्ञप्ति, संकेतों और कार्यों द्वारा चरित्र-विश्लेषण, शैली, लक्ष्य और अनुभूति।

सियारामशरण गुप्त, 'अज्ञेय' : कथानक, चरित्र, अहं रूप विद्रोहात्मक रूप, विश्लेषणात्मक रूप, शैली, ऐतिहासिक शैली, आत्मकथात्मक शैली, नाटकीय शैली, पत्रात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली, मिश्रित शैली, शैली का सामान्य पक्ष, लक्ष्य और अनुभूति।

इलाचन्द्र जोशी : कथानक, चरित्र, मनोविश्लेषण, आत्म-विश्लेषण, निरपेक्ष विश्लेषण, शैली, आत्मकथात्मक, ऐतिहासिक, शैली का सामान्य पक्ष, लक्ष्य और अनुभूति।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' : साहित्यिक परिस्थिति, उर्दू से हिन्दी में आगमन, कथानक, चरित्र, साधारण चरित्र, प्रतिनिधि चरित्र, शैली, ऐतिहासिक शैली, प्रतीकात्मक शैली, शैली का सामान्य पक्ष, लक्ष्य और अनुभूति; भगवतीचरण वर्मा, 'निराला', यशपाल : कथानक, चरित्र, शैली; लक्ष्य और अनुभूति, 'पहाड़ी', कहानी-शिल्पविधि में प्रयोगशीलता—रेखाचित्र, सूचनिका, प्रवृत्तियों और कहानीकारों की विशिष्ट शैली के आधार पर शिल्पविधि का विकास।

२०८-२६०

उद्गम और विकास-सूत्र

विविध युगों में कहानी-कला की प्रेरणाएँ : आविर्भाव-युग—संस्कृत नाटकों की कथावस्तु, शेक्सपियर के नाटकों की कथावस्तु, उर्दू किस्सा और अफसाने, लोककहानियाँ, प्रारम्भिक बङ्गला कहानियाँ; विकास-युग—पश्चिमी

कहानी-साहित्य का संपर्क; संक्रांति-युग—रूसी कहानी-धारा, फ्रांसीसी कहानी-धारा अमेरिकन कहानी-धारा, अंग्रेजी कहानी-धारा, बङ्गला कहानियाँ।

कहानी-कला की समीक्षा पृ० २६१-२८२

कहानी-कला का विकासोन्मुख रूप, कहानी के तत्व—कथावस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, वर्णन द्वारा, संकेत द्वारा, कथोपकथन द्वारा, घटना-कार्य-व्यापार द्वारा, चरित्र-विश्लेषण : मानसिक ऊहापोह, कथोपकथन, स्थिति अथवा वातावरण, शैली : भाषा-शैली, रूपविधान शैली, ऐतिहासिक शैली, आत्मचरित्र शैली, पत्रात्मक शैली, डायरी शैली, नाटकीय शैली, एकांकी नाटक शैली, मिश्रित शैली; उद्देश्य। कहानियों का वर्गीकरण : कथानक-प्रधान कहानी, चरित्र-प्रधान कहानी, वातावरण-प्रधान कहानी, विविधि कहानियाँ।

उपसंहार पृ० २८३-३१३

(क) कहानी-कला और साहित्य के अन्य प्रकार—कहानी और उपन्यास, कहानी और एकांकी नाटक, कहानी और निबन्ध, कहानी और गद्य-गीत तथा रेखाचित्र, कहानी और गीत, कहानी और खंडकाव्य।

(ख) कहानी के शिल्प-विकास की मान्यता।

परिशिष्ट (१) पृ० ३१४-३२०

कहानी-शिल्प में कथानक का ह्रास पृ० ३२१-३३१

परिशिष्ट (२)

स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी कहानियाँ :
पृष्ठ भूमि, नयी कहानी,
साठोत्तरी कहानियाँ

पृ० ३३२-३४५

धारा, फ्रांसीसी कहानी-
बङ्गला कहानियाँ।
पृ० २६१-२८२

के तत्व—कथावस्तु,
पकथन द्वारा, घटना-
, कथोपकथन, स्थिति
ी, ऐतिहासिक शैली,
शैली, एकांकी नाटक
थानक-प्रधान कहानी,
कहानियाँ।
पृ० २८३-३१३

—कहानी और उप-
कहानी और गद्य-
काव्य।
पृ० ३१४-३२०
पृ० ३२१-३३१

पृ० ३३२-३४५

हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास

★

विषय-प्रवेश

जब भाव और अनुभूति की प्रेरणा मनुष्य के मन और मस्तिष्क में घनीभूत होती है, तब वह उसकी अभिव्यक्ति में सलंग्न होता है। अभिव्यक्ति के लिए वह कभी वाणी का सहारा लेता है, कभी आकृति का, लेकिन वह अपने भाव-प्रकाश में अधिक से अधिक रोचकता, आकर्षण और प्रभविष्णुता के लिए अन्याय रूप-विधानों की योजना करता है। यही रूप-विधान-योजना की प्रवृत्ति कहानी-कला को जन्म देती है और उसके विभिन्न रूप कहानी की शिल्पविधि के प्रेरक होते हैं।

सामग्री

कथा-कहानी कहने की प्रवृत्ति उतनी ही पुरानी है, जितनी कि मानवता। जीवन में क्रमशः जितने विकास, जितने परिवर्तन आते गये हैं, उतने ही परिवर्तन और विकास कथा-कहानी की शिल्पविधि में भी देखे जा सकते हैं। इस प्रकार जीवन के समस्त आनन्द, समस्त अन्तर्द्वन्द्व और समस्त रस कहानी के विस्तृत क्षेत्र में समाविष्ट होते हैं। लेकिन बौद्धिक और नैसर्गिक विकास के अनुरूप इसके रूप-विधान और शिल्प-विधान में भी परिवर्तन होते जाते हैं, यह सत्य पूर्णतः निर्विरोध है। इसके उदाहरण में ऋग्वेद से चल कर धर्मसूत्रों, बौद्ध जातकों, जैन कथाओं, पौराणिक आख्यानों तथा संस्कृत के लोकप्रसिद्ध कथा सरित्सागर से लेकर पंचतंत्र, हितोपदेश, प्राकृत-अपभ्रंश की कथाओं तक हम आते हैं और सर्वत्र हमें कथा-कहानी के रूप और विधानों में परिवर्तन और विकास मिलता है। हिन्दी कहानी के जन्म से चल कर, दूसरी ओर इसके आविर्भाव, विकास और संक्राति युगों में हमें शिल्प-विधान के इतने रूप, इतने आकार मिलते हैं कि हमें आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। एक ही भाव, एक ही अनुभूति को विभिन्न कहानीकार क्यों इतने विभिन्न रूप-विधानो में रख कर संवारता है? एक तो जिस दृष्टि-बिन्दु में वह संसार को समेटना चाहता है उसके अनुसार जीवनगत सत्य अपना आकार प्राप्त करता है, और दूसरे, उसकी कला की अभिव्यंजना इस प्रकार होती है कि वह अपने लिये एक अलग कोटि का निर्माण कर लेती है। परिणाम यह होता है कि प्रत्येक कलाकार के विशिष्ट भाव-प्रकाश से अधिक से अधिक श्रोता और पाठकों का मन आकृष्ट होता है, और उन्हें अन्यान्य मौलिक शिल्प-विधानों की विविधता प्राप्त होती है। कलाकार भी सदैव अपनी भावाभिव्यक्ति के लिये कुछ ऐसे माध्यमों, विधानों और तंत्रों की

खोज में लगा रहता है, जो एक ओर अभिनव हों, दूसरी ओर उनमें इतनी शक्ति हो कि वे कहानी-कला की परम्परा में नयी रूढ़ियाँ उपस्थित कर सकें।

दृष्टिकोण

विचारणीय यह है कि जिस शिल्पविधि का उल्लेख ऊपर किया गया है, उसकी परिभाषा क्या हो सकती है ? शिल्पविधि का बोध अंग्रेजी के 'टेकनीक' शब्द से किया जाता है। टेकनीक का अर्थ है, ढंग, विधान, तरीका, जिसके माध्यम से किसी लक्ष्य की पूर्ति की गयी हो। यह लक्ष्य भौतिक जीवन में किसी वस्तु अथवा मनोवांछित तत्व की प्राप्ति से संबन्ध रखता है और कला के क्षेत्र में इस लक्ष्य से अभिप्राय है—सम्पूर्ण भावाभिव्यक्ति का प्रकार। कला के विभिन्न तत्वों अथवा उपकरणों की योजना का वह विधान, वह ढंग जिससे कलाकार की अनुभूति अमूर्त्त से मूर्त्त हो जाय।

प्रत्येक कला की सृष्टि और प्रेरणा दोनों रूपों में अनुभूति और लक्ष्य ही मुख्य तत्व हैं। चित्रकार की सृष्टि में निःसन्देह एक अनुभूति होती है, जिसे वह अपनी रेखाओं और विभिन्न रंगों के आनुपातिक संयोग से अभिव्यक्त करता है, अमूर्त्त अनुभूति को मूर्त्त करता है। जैसे, कोई कलाकार अकाल की पीड़ा की अनुभूति को चित्रात्मक अभिव्यक्ति देना चाहता है। इसके लिए प्रथमतः उसे एक ऐसी संवेदना को आधार-शिला बनानी होगी, जिसकी पृष्ठभूमि पर वह अपनी अनुभूति व्यक्त करेगा, अतएव इस तत्व में कथा-वस्तु के बीज अंकुरित हुए, फिर उसे भावों को वहन करने के लिए कुछ पात्रों की अवतारणा करनी पड़ेगी, जैसे अकाल-पीड़ित मानव, जीव-जन्तु आदि। इनके माध्यम से वह अनुभूति को सजीव अभिव्यक्ति देगा अतएव यह तत्व चरित्र-अवतारणा की ओर निर्देश करता है। इसके उपरान्त चित्रकार का यह प्रयत्न होगा कि वह किन-किन रंगों, परिपार्श्वों के सहारे, पात्रों को कहाँ-कहाँ रखे, किन-किन स्थितियों की व्यंजना करे जिससे अकाल के भाव घनीभूत हो जायँ, फलतः उसका यह प्रयत्न उसकी शैली हुई, जिसके सहारे उसने अपने चित्र को पूर्ण किया। इस सम्यक् चित्र से उसके लक्ष्य की पूर्ति हुई और जिस प्रक्रिया से उसका चित्र प्रस्तुत हुआ, वही उस चित्र की शिल्पविधि अथवा टेकनीक हुई। शिल्पविधि के इस मोटे रूपक से यह प्रकट है कि किसी भाव को एक निश्चित रूप देने के लिये जो विधान प्रस्तुत किये जाते हैं, वही उस कला की शिल्पविधि है।

कहानी में यह व्याख्या अनुभूति और लक्ष्य, इन दोनों रूपों में अत्यन्त स्पष्ट है। कहानी की रचना में जिस तरह अनुभूति उसके तत्वों में ढलती जाती है, वही उसकी टेकनीक है। दूसरी ओर एक निश्चित लक्ष्य अथवा एकान्त प्रभाव की पूर्ति के लिये कहानी की रचना में जो एक विधानात्मक प्रक्रिया उपस्थित करनी पड़ती है, वही उसकी

शिल्पविधि है। इस तरह सृजन
एक ओर, कहानी अनुभूति की
प्रेरणा से, और सम्यक् दृष्टि से
रचना में विद्यमान रहती है क्यों
अनुरूप एक लक्ष्य की कल्पना
मूलभाव का सहारा लेना पड़ता
भूति को लेकर जैसे, कोई कहा
अनुरूप एक कथावस्तु लेनी हो
का चरित्र-विश्लेषण, व्यक्तित्व-
होगा।

कथावस्तु और चरित्र
और यहाँ से कहानी में शैलीग
अथवा निर्माणशैली के प्रश्न ख
अन्य पुरुष) लिखी जाय, फिर
सहारे या किसी अन्य माध्यम
वस्तुतः रूप-विधान के ये सभी
साथ कहानी-निर्माण में शैली
वरण-निर्माण, गद्यशैली और
में कहानी अपने व्यावहारिक
होता है, चरित्र अपने मूर्त रू
व्यापारों में रत हो जाते हैं,
घटनाओं, मानवीय व्यापारों
प्रेमानुभूति का केन्द्रीय भाव
अंत पर अपने सम्पूर्ण प्रभाव

अनुभूति के धरातल
व्यंजना के रूप में आता है,
अपने सम्पूर्ण प्रभाव में ऐसी
की प्रेरणा से लिखी हुई क
अवतारणा में यथार्थ का सं

[1] The short sto
London 1949.

शिल्पविधि है। इस तरह सृजन की दृष्टि से कहानी की प्रेरणा दो पक्षों से आती है। एक ओर, कहानी अनुभूति की प्रेरणा से अपनी सृष्टि कराती है, दूसरी ओर लक्ष्य की प्रेरणा से, और सम्यक् दृष्टि से दोनों की प्रेरणा किसी न किसी अनुपात में कहानी की रचना में विद्यमान रहती है क्योंकि कहानी में अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए उसके अनुरूप एक लक्ष्य की कल्पना करनी पड़ती है, और लक्ष्य के स्पष्टीकरण के लिए एक मूलभाव का सहारा लेना पड़ता है।[1] उदाहरणस्वरूप, किसी तरुणी विधवा में प्रेमानुभूति को लेकर जैसे, कोई कहानी लिखनी हो, इसके लिये कहानीकार को प्रथमतः उसके अनुरूप एक कथावस्तु लेनी होगी, फिर चरित्र लेने होंगे, चरित्रों के प्रकाश में विधवा का चरित्र-विश्लेषण, व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा और उसका मानसिक ऊहापोह उपस्थित करना होगा।

कथावस्तु और चरित्र की कल्पना के उपरान्त कहानी का रूप आरम्भ होगा और यहाँ से कहानी में शैलीगत समस्या आयेगी। शैली के अन्तर्गत कहानी की रूपशैली अथवा निर्माणशैली के प्रश्न खड़े होंगे अर्थात् कहानी किस पुरुष में (उत्तम, मध्यम अथवा अन्य पुरुष) लिखी जाय, फिर ऐतिहासिकता के सहारे से लिखी जाय, या चिन्तन के सहारे या किसी अन्य माध्यम से इसका आरंभ हो, और इसकी चरम सीमा कैसी हो? वस्तुतः रूप-विधान के ये सभी प्रश्न, शैली के व्यापक पक्ष में आते हैं। इसके साथ ही साथ कहानी-निर्माण में शैली का सामान्य पक्ष भी आता है, जैसे वर्णन, चित्रण, वातावरण-निर्माण, गद्यशैली और कथोपकथन आदि। शैली के इन्हीं दोनों पक्षों के प्रकाश में कहानी अपने व्यावहारिक रूप में सामने आती है। देश-काल-परिस्थिति का निर्माण होता है, चरित्र अपने मूर्त रूप में सामने आते हैं, अपनी सजीवता के साथ मानव-कार्य-व्यापारों में रत हो जाते हैं, घटनाएँ उपस्थित करते हैं। मुख्य भाव, मुख्य अनुभूति, घटनाओं, मानवीय व्यापारों के सहारे उत्तरोत्तर स्पष्ट होती जाती है। विधवा के प्रति प्रेमानुभूति का केन्द्रीय भाव बिल्कुल स्पष्ट होकर कहानी की चरम सीमा, निष्पत्ति या अंत पर अपने सम्पूर्ण प्रभाव को प्राप्त हो जायगा।

अनुभूति के धरातल अथवा प्रेरणा से लिखी हुई कहानी में लक्ष्य केवल सुप्त व्यंजना के रूप में आता है, अतएव इसकी सोद्देश्यता भी अस्पष्ट ही रह जायगी। लेकिन अपने सम्पूर्ण प्रभाव में ऐसी कहानी बहुत ही सशक्त होगी। योजना की दृष्टि से अनुभूति की प्रेरणा से लिखी हुई कहानियों में अपेक्षाकृत, कहानी की संवेदना, और चरित्र-अवतारणा में यथार्थ का संबल बहुत रहता है, यही कारण है कि ऐसी कहानियों में

[1] The short story, by Scan'o Faoaaio, page 173 St. James, London 1919.

एकान्त प्रभाव आश्चर्यजनक ढंग से होता है। दूसरी ओर, जब किसी लक्ष्य, सिद्धान्त अथवा किसी तत्व की प्रतिष्ठा की प्रेरणा से कहानी लिखनी हो, अर्थात् जब यह सिद्ध करने के लिए कहानी की रचना करनी हो कि विधवा-विवाह होना चाहिए, वर्गसंघर्ष शाश्वत है, आर्थिक पहलू व्यक्ति का प्रधान पहलू है, मनुष्य का अवचेतन जगत् ही सब कुछ है, चेतन जगत् उसकी अभिव्यक्ति मात्र है, या वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में नारी सबसे अधिक शोषित है, फिर इनकी अभिव्यक्ति के लिए रचना के अनुसार, प्रथमतः उचित और स्वाभाविक कथा-वस्तु की कल्पना करनी होगी। उसके अनुरूप विभिन्न पात्र जुटाने होंगे, और शैली के अन्तर्गत वे सब प्रश्न सुलझाने होंगे जो ऊपर अनुभूतिपरक कहानी की दिशा में आए हैं। केवल निष्पत्ति, अंत या चरम सीमा पर लक्ष्यात्मक कहानी इससे कुछ भिन्न हो जायगी। वस्तुतः वहाँ उसकी सोद्देश्यता, एक-लक्ष्यता पूर्ण स्पष्ट हो जायगी, लगेगा कि कहानी का कार्य संपूर्ण हो गया और उसका अभिप्राय सिद्ध हो गया। लेकिन अनुभूति से प्रेरित कहानी में अपेक्षाकृत इससे कुछ विरोधी तत्व मिलेंगे।

इस तरह कहानी-शिल्पविधि में लक्ष्य और अनुभूति सबसे मुख्य तत्व हैं। इन्हीं के प्रकाश से कहानी के विधान में कथावस्तु की योजना, चरित्र-अवतारणा और शैली का निर्माण होता है।

शिल्पविधि में कहानी के भावपक्ष का क्या स्थान है, यह भी एक प्रश्न है। वस्तुतः विधान के अध्ययन में भावपक्ष का कोई निरपेक्ष स्थान नहीं निर्धारित किया जा सकता। इसका यथासंभव संबंध अनुभूति और लक्ष्य तत्व से है। इसकी ही सीमा में कहानी के भावपक्ष की ओर प्रकाश डाला जा सकता है, वैसे शिल्पविधि के अध्ययन क्षेत्र में कहानी का कलापक्ष ही मुख्य रूप से आता है।

विषय-विस्तार

स्थूल रूप से हमारे आलोच्य-विषय का काल बीसवीं शताब्दी से आरंभ होता है, क्योंकि पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि से तभी से हिन्दी कहानियाँ अपने वैज्ञानिक रूप में विकसित हुईं। लेकिन अध्ययन की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी से पूर्व की ओर चलकर हमें समूचे हिन्दी-काल की साहित्यिक संपत्ति में कथा-स्तर से अन्वेषण करना चाहिए और उन समस्त तत्वों को ढूंढ़ लेना आवश्यक है जो इसकी दिशा में हैं। हिन्दी-साहित्य से भी पूर्व हमें वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में कथा आख्यायिका, गाथा आदि रूपों में पूर्ण परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। व्यापक रूप में हमें अपने यहाँ की उस महती परंपरा से पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना है जो कथा-कहानी, आख्यायिका, आख्यान और उपाख्यान तथा किस्सा, दास्तान आदि की साहित्यिक विधाओं तथा रूपों

में बहुत प्राचीनकाल से हिन्दी
कहानी की वैज्ञानिक शिल्पवि
कि कथा, आख्यायिका, दास्त
परिपूर्ण है, उतना संसार क
पूर्व संपत्ति है, उसका ज्ञान ह
परोक्ष रूप से निश्चय ही हि

इसके उपरान्त कहा
है और प्रेरणास्वरूप हमें उ
जहाँ इसके जन्म के बीज बो
उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध-
पत्रिकाओं[1] का अध्ययन हम
के प्रारंभ का युग, हिन्दी कह
(१९०० ई०) और 'हिन्दी
अपेक्षा है। इसके उपरान्त
जाती है। तत्पश्चात् हमें इ
उपस्थित करना है, जिसमें
हुई हैं। इस दिशा में केवल
और उन्हीं के धरातल पर

आलोच्य-विषय में
उन अनेक उद्गम-स्थलों की
प्रयत्न किया गया है। साथ
समीक्षा प्रस्तुत की गई है,
के रूप में कार्य कर रही थ
मुख्यता दी गयी है, क्योंकि
रही है। इसके साथ ही सा
भी यथा संभव प्रयत्न किया
है, जो वर्तमान कहानी-कल

[1] हरिश्चन्द्र मैगज
प्रदीप १८७७ ई०।

में बहुत प्राचीनकाल से हिन्दी-प्रान्त में उपस्थित थीं । यद्यपि यह निश्चित है कि हिन्दी कहानी की वैज्ञानिक शिल्पविधि पश्चिम के संपर्क की देन है । लेकिन यह भी निश्चित है कि कथा, आख्यायिका, दास्तान और किस्से के विधान से जितना हमारा प्राचीन साहित्य परिपूर्ण है, उतना संसार का कोई साहित्य नहीं । अतएव इस दिशा में जितनी हमारी पूर्व संपत्ति है, उसका ज्ञान हमारे अध्ययन की प्राथमिक विशेषता है । क्योंकि इसने परोक्ष रूप से निश्चय ही हिन्दी कथा-साहित्य को प्रभावित किया है ।

इसके उपरान्त कहानी के आविर्भाव के स्वतन्त्र अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है और प्रेरणास्वरूप हमें उसकी उत्पत्ति की उस व्यापक पृष्ठभूमि को भी देखना है जहाँ इसके जन्म के बीज बोए गए हैं । इस संबंध में समूची उन्नीसवीं शताब्दी, विशेषकर उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध—हरिश्चन्द्र-युग की प्रेरणा और उस काल की मुख्य पत्र, पत्रिकाओं[1] का अध्ययन हमारे लिए सबसे अधिक आवश्यक है । फिर बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ का युग, हिन्दी कहानियों के आरंभ, प्रयोग और विस्तार के मेरुदण्ड 'सरस्वती' (१९०० ई०) और 'हिन्दी गल्पमाला' (१९१८) आदि मासिक पत्रों के अध्ययन की अपेक्षा है । इसके उपरान्त ही हिन्दी कहानियों की निश्चित शिल्पविधि हमारे सामने आ जाती है । तत्पश्चात् हमें इसके विकास और उत्कर्ष के उस व्यापक क्षेत्र का अध्ययन उपस्थित करना है, जिसमें हिन्दी कहानियाँ अपनी मुख्य प्रवृत्तियों में बँटकर विकसित हुई हैं । इस दिशा में केवल प्रवृत्तियों और शिल्प-विधानात्मक धाराओं को ही लेकर और उन्हीं के धरातल पर अध्ययन करना, आलोच्य-विषय के अनुकूल होगा ।

आलोच्य-विषय में उद्गम-सूत्र के अध्ययन की भी विशेषता है । इस दिशा में उन अनेक उद्गम-स्थलों की खोज करके, उनके प्रभाव और प्रेरणाओं को देखने का प्रयत्न किया गया है । साथ ही साथ उन समस्त शक्तियों और विभिन्न प्रेरणाओं की समीक्षा प्रस्तुत की गई है, जो कहानी-शिल्प-विधि के उद्गम और विकास में प्राणशक्ति के रूप में कार्य कर रही थीं । आलोच्य-विषय के अध्ययन में प्रवृत्तियों की ओर भी मुख्यता दी गयी है, क्योंकि शिल्प-विधान के विकास में उनकी प्रेरणा सबसे अधिक रही है । इसके साथ ही साथ कहानी के कलापक्ष, तत्वों और रूपों के अध्ययन का भी यथा संभव प्रयत्न किया गया है तथा उन नवीन प्रयोगों पर भी प्रकाश डाला गया है, जो वर्तमान कहानी-कला-क्षेत्र में अवतरित हो रहे हैं ।

•

[1] हरिश्चन्द्र मैगजीन १८७३ ई०, श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका १८७४ ई०, हिंदी प्रदीप १८७७ ई० ।

पूर्व परिचय

असंख्य वर्षों की साधना से अनेक युगों में विकसित भारतीय साहित्य की अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त इसकी कथा-प्रवृत्ति तथा इस कला की विशेषता अनुपम है। वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि साहित्यिक युगों में कथा की कला क्रमशः अपने बीज रूप से विकसित होती हुई चरम सीमा पर फलवती हुई है। यही कारण है कि आज भी भारतीय साहित्य के प्रतिनिधि और आधुनिकतम रूप हिन्दी साहित्य में कहानी-कला की उत्पत्ति और विकास के अध्ययन के साथ हमारी दृष्टि भारत के उस प्राचीन कथा-साहित्य की ओर जाती है। यद्यपि यह सत्य है कि हिन्दी-कहानियाँ आधुनिक युग की देन हैं, तथापि हमारा यह देख लेना कि इस दिशा में भारत के प्राचीन साहित्य की क्या स्थिति रही है, हमारे अध्ययन का यह एक विनम्र दृष्टिकोण है। भारत का प्राचीन साहित्य अपने विभिन्न युगों और भाषाओं में अभिव्यक्ति पाता हुआ कथा की कला में अपनी स्वतंत्र विशेषताएँ रखता है। आलोच्य विषय की समीक्षा करने के पूर्व, भारत के प्राचीन कथा-साहित्य की विभिन्न कलात्मक विशेषताओं—जैसे, आख्यायिका, आख्यानक, जातक, पौराणिक और दन्त-कथाओं, वार्ताओं के रूपों को देखना हमारे लिए परम आवश्यक है। कथा की ये विधाएँ और रचना प्रकार भारत की अपनी साहित्यिक संपत्ति हैं, और इन्हीं स्रोतों से उस समय संसार की अन्य भाषाओं को भी शक्ति मिली है।

भारत का प्राचीन कथा-साहित्य

भारत का प्राचीन कथा-साहित्य वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि भाषा-युगों में मिलता है। इन समस्त भाषा-युगों में कथा की कला अपनी अलग-अलग विशेषताओं के साथ प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकी है। फलतः आलोचकों ने प्राचीन कथा-साहित्य का आरंभ वैदिक संस्कृत अर्थात् ऋग्वेद से जोड़ा है। लेकिन ऋग्वेद में हमें कथाएँ नहीं मिलतीं, वरन् कथाओं के बीज मिलते हैं। इन कथा-बीजों में मूल रूप से यज्ञ-धूम्र की सुगन्धि और मन्त्रों का सुन्दर सङ्गीत मिलता है। इनमें कहीं भी कथा का वह रूप नहीं मिलता, जिसे हम ब्राह्मण और उपनिषदों में पाते हैं। ऋग्वेद विभिन्न दैवी शक्तियों की आराधना, पूजा, प्रशंसा में कहे गए असंख्य मन्त्रों का भंडार है।

इन मन्त्रों के बीच-बीच में
के परस्पर कथोपकथन जुड़े
साहित्य के अनेक अंगों और
हैं। इनके अतिरिक्त सामान्
अनेक छोटे-छोटे मनोरंजक
'अपाला की कथा' का संके
है। उस निःसहाय अबला

उपनिषदों की कथा

उपनिषदों में सुख
लेकिन ये कथाएँ कथा-सा
प्रतिपाद्य तत्वों को लेकर
'बाइबिल' में ईसाई-धर्म
अविश्वास के धरातल पर
के उदाहरण सर्वत्र मिलते

(१) केनोपनिषद्
(२) कठोपनिषद्
(३) छान्दोग्य उ

(४) बृहदारण्यक
(५) छान्दोग्य
(६) तैत्तिरीय
(७) प्रश्नोपनि

(८) मुण्डकोपनि

वस्तुतः उक्त क
का रूप पूर्णतः वर्णनात
के बाद का जीवन, पूर्व
अमूर्त विषयों को मान
साध्यम बनाया गया है
तथा अन्य स्थितियाँ
इन कथाओं के पात्र

इन मन्त्रों के बीच-बीच में कुछ ऐसे सूक्त अवश्य मिल जाते हैं, जिनमें दो या तीन पात्रों के परस्पर कथोपकथन जुड़े होते हैं। ऐसे सूक्तों को 'संवाद सूक्त' कहते हैं। भारतीय साहित्य के अनेक अंगों और रूपों का उद्गम, आलोचकगण इन्हीं संवाद-सूक्तों से जोड़ते हैं। इनके अतिरिक्त सामान्य स्तुति-परक सूक्तों में भी भिन्न-भिन्न देवताओं के विषय में अनेक छोटे-छोटे मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद आख्यानों के संकेत मिलते हैं—जैसे प्रसिद्ध 'अपाला की कथा' का संकेत—एक रोगी, दुखी युवती अपने पति से त्याग दी जाती है। उस निःसहाय अबला की सहायता इन्द्र करते हैं।

उपनिषदों की कथाएँ

उपनिषदों में सुख-शान्तिदायिनी सूक्तियों के बीच-बीच में कथाएं आने लगती हैं। लेकिन ये कथाएं कथा-साहित्य की दृष्टि से नहीं आई हैं, वरन् उपनिषदों के भिन्न-भिन्न प्रतिपाद्य तत्वों को लेकर उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं—ठीक उसी तरह, जैसे 'बाइबिल' में ईसाई-धर्म की महान सत्ता और ईश्वर की अनन्त शक्ति में विश्वास और अविश्वास के धरातल पर अनेक कथाएं मिलती हैं। उपनिषदों की कथाओं में उक्त विषय के उदाहरण सर्वत्र मिलते हैं, जैसे :

(१) केनोपनिषद् में : देवताओं की शक्ति-परीक्षा की कथा।
(२) कठोपनिषद् में : नचिकेता के साहस की कथा।
(३) छान्दोग्य उपनिषद् में : सत्यकाम की गो-सेवा, उषस्ति की कठिनाई, महात्मा रैक्व और राजा जनश्रुति आदि की कथाएं।
(४) वृहदारण्यक में : गार्गी और याज्ञवल्क्य की कथा।
(५) छान्दोग्य में : श्वेतकेतु और उद्दालक की कथा।
(६) तैत्तिरीय में : अश्विनीकुमार और उनके गुरु दध्यंग की कथा।
(७) प्रश्नोपनिषद् में : कबन्धी, वैदर्भि, कौशल्य, सत्यकाम, गार्ग्य और सुकेशा की कथाएँ।
(८) मुण्डकोपनिषद् में : महाशाल्य, शौनक और अंगिरा की कथा।

वस्तुतः उक्त कथाओं का सम्बन्ध हमारे आत्मिक जीवन से है, तथा इन कथाओं का रूप पूर्णतः वर्णनात्मक और कथात्मक है, जिनके माध्यम से अध्यात्मवाद, यज्ञ, मृत्यु के बाद का जीवन, पूर्वजन्म, मोक्ष, आनन्द आदि विषय प्रतिपादित किये गये हैं। इन अमूर्त विषयों को मानव के हृदय में प्रतिष्ठित करने के लिये यहाँ कथाओं को ही उनका माध्यम बनाया गया है। अतः इन कथाओं में जहाँ तत्कालीन समाज के परिप्रेक्ष्य में दर्शन तथा अन्य स्थितियाँ व्यंजित हुई हैं, वहाँ उनमें एक अलौकिक पवित्रता भी मिलती है। इन कथाओं के पात्र प्रायः ऋषि, ब्रह्मचारी, राजा तथा पुरोहित ही के रूप में मिलते

हैं और इन कथाओं का मूल विषय भी आत्मा-परमात्मा के धरातल से चला है। ये कथाएँ आदर्श और शिक्षाप्रद हैं। प्रत्येक कथा में कथानक का विकास गहन तत्वों के प्रवचन के बीच तथा प्रायः समस्त कथाओं का आरंभ प्रश्न और जिज्ञासा से हुआ है। यही कारण है कि उपनिषद् की मुख्यतः उक्त कथाएँ अत्यन्त मनोरंजक हैं।

आख्यानक काव्य तथा पौराणिक कथाओं का जन्म

संहिता, ब्राह्मण-ग्रन्थ और उपनिषदों के कथा-तत्व के संयोग से आगे अनेक कथाएँ प्रचलित हुईं और उनका विकास लोक-भावना में इतना हुआ कि तत्कालीन मनीषियों को कथाओं के महासंग्रह प्रस्तुत करने पड़े, लेकिन उस समय तक आते-आते धर्म, लोक-भावना और साहित्यिक रुचि तीनों एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करने लगी थीं। अतएव उस काल के साहित्यिक मनीषियों को एक महान् और व्यापक कथा ढूँढ़नी पड़ी, लेकिन तब तक की सामग्री के अन्तस्तल में ढूँढ़ने से उन्हें जो राम, कृष्ण की कथा मिली होगी, वह बहुत छोटी रही होगी। अतः वाल्मीकि और वेदव्यास को कुछ मूल-कथा और बहुत कुछ कल्पना के संयोग से एक आख्यान बनाना पड़ा होगा, जो अपने रूप में समस्त पूर्ववर्ती कथाओं से महान् और व्यापक सिद्ध हुआ होगा और ऐसे ही आख्यान के मेरुदण्ड पर उन मनीषियों ने क्रमशः रामायण और महाभारत के आख्यानक[1] काव्यों की सृष्टि की होगी तथा इनमें अन्यान्य कथाओं की सुन्दर लड़ी गूँथ कर उन काव्यों को महाकाव्य बनाना पड़ा होगा। वस्तुतः भारतीय साहित्य में यह कला-सृष्टि उन आदि कलाकारों की मौलिक और अपूर्व सृष्टि सिद्ध हुई होगी। लेकिन इन आख्यानक काव्यों के पूर्व ही उपनिषदों की कथाओं की मूल आत्मा जिज्ञासा और प्रश्नोत्तर की भावना पर आधारित थी। फलतः इन आदि महाकाव्यों में भी जिज्ञासा और धार्मिक पिपासा की शान्ति के लिये मनीषियों ने कितने प्रश्नोत्तरों को प्रस्तुत किया होगा। वाल्मीकि रामायण में सरयू नदी की उत्पत्ति की कथा इसका उदाहरण है तथा महाभारत में विभिन्न पात्रों के सम्वाद, प्रश्न तथा समस्त गीता के प्रवचन इसके साक्षी हैं।

काल की दृष्टि से रामायण और महाभारत का समय बौद्ध जातक कथाओं से बहुत पहले पड़ता है। रामायण की रचना बुद्ध के जन्म से पहले ही हुई; अर्थात् रामायण को ५०० ई० पू० से पहले की रचना मानना न्यायसंगत है।[2] महाभारत भी

१. पाँचवीं शताब्दी में आचार्य बुद्धघोष महाभारत और रामायण को कहते है—'आक्खानं ति भारत रामायणादि' (दी० नि० अ० १-८४)।

२. 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' बलदेव उपाध्याय, गौरीशंकर उपाध्याय, पृष्ठ ४५।

बुद्ध के पहले की रचना है, परन्तु व
तरह से रामायण और महाभारत के
का आरम्भ जातक कथाओं से बहुत

रामायण में मूल-कथा के
ढंग से गुँथी हुई है। वाल्मीकि ने र
शाश्वत और चिरन्तन बनाया कि इ
में व्याप्त हैं। यहाँ नाटकीय परिस्थि
ने परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य के

आख्यान और पौराणिक क
संस्कृत कथा-साहित्य में अपूर्व है।
विशेषता यह है कि इनमें इतिहास,
हुआ है कि ये कथाएँ स्वभावतः पौ
नाट्य-साहित्य की उपजीव्य बनी हैं
कवियों, लेखकों ने काव्य, नाटक,
है। दूसरी ओर महाभारत की ये
के साथ जुड़ी हुई हैं कि इनके साम्
रूप में समा गया है। यही कारण
है, वहाँ दूसरी ओर पुराण भी।
है'''''पुराणमाख्यानम्'। पुराणों
के ही आधार पर निश्चित हुई है,
सृष्टि हुई है—जैसे इसके आदि प
और 'रामोपाख्यान', 'शिविउपाख्

इस तरह से आख्यानकों
आने वाले तमाम पुराणों में विक
अपनी पूर्णता तक पहुँच गयीं।
राजाओं, व्रत, पर्व, महोत्सव आ
कला-पक्ष की दृष्टि से पुराण के

१. 'संस्कृत साहित्य का
पृष्ठ ५७।

२. मत्स्य, विष्णु तथा
हुए लिखा है''''''''सर्गश्च प्रति
वंशानुचरित

बुद्ध के पहले की रचना है, परन्तु वर्तमान रूप उसे बुद्ध के पीछे प्राप्त हुआ है।[1] इस तरह से रामायण और महाभारत के माध्यम से आख्यानकों और पौराणिक कथाओं का आरम्भ जातक कथाओं से बहुत पहले हो चुका था।

रामायण में मूल-कथा के साथ विभिन्न अंतर्कथाएँ प्रासंगिक और अप्रासंगिक ढंग से गुँथी हुई हैं। वाल्मीकि ने राम-कथा को अपनी काव्यात्मक सृष्टि द्वारा इतना शाश्वत और चिरन्तन बनाया कि इससे कथातत्व और मानव-तत्व, दोनों लोक-भावना में व्याप्त हैं। यहाँ नाटकीय परिस्थितियों का सृजन तथा सजीव पात्रों की अवतारणा ने परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य के लिये एक नवीन युग का मार्ग प्रशस्त किया।

आख्यान और पौराणिक कथाओं की दृष्टि से महाभारत का स्थान प्राचीन संस्कृत कथा-साहित्य में अपूर्व है। कथा-तत्व की दिशा में इसकी कथाओं की परम विशेषता यह है कि इनमें इतिहास, धर्म और कल्पना तीनों का इतना सुन्दर समन्वय हुआ है कि ये कथाएँ स्वभावतः पौराणिक कथाओं के रूप में समूचे परवर्ती संस्कृत नाट्य-साहित्य की उपजीव्य बनी हैं। इसके उपाख्यानों के ही अवलम्बन से आगे के संस्कृत कवियों, लेखकों ने काव्य, नाटक, चम्पू और कथा-आख्यायिकाओं आदि की सृष्टि की है। दूसरी ओर महाभारत की ये असंख्य कथाएँ मूल आख्यान से इतनी कलात्मकता के साथ जुड़ी हुई हैं कि इनके सामूहिक कथा-तत्व में हमारा समग्र जीवन अपने विस्तृत रूप में समा गया है। यही कारण है कि महाभारत जहाँ एक ओर आख्यानक काव्य है, वहाँ दूसरी ओर पुराण भी। संस्कृत में पुराण शब्द का अर्थ पुराना आख्यान है....'पुराणमाख्यानम्'। पुराणों के सम्बन्ध में यह धारणा, वस्तुतः महाभारत पुराण के ही आधार पर निश्चित हुई है, क्योंकि महाभारत में प्रायः समस्त प्रसिद्ध आख्यानों की सृष्टि हुई है—जैसे इसके आदि पर्व में 'शकुन्तलोपाख्यान', वनपर्व में 'मत्स्योपाख्यान' और 'रामोपाख्यान', 'शिविउपाख्यान' 'सावित्री उपाख्यान' और 'नलोपाख्यान।'

इस तरह से आख्यानकों और पौराणिक कथाओं का प्रारंभ यहीं से होकर आगे आने वाले तमाम पुराणों में विकसित होकर ये कथाएँ प्राचीन भारतीय साहित्य में अपनी पूर्णता तक पहुँच गयीं। ये पौराणिक कथाएँ विभिन्न अवतारों, सूर्य-चन्द्र वंशी राजाओं, व्रत, पर्व, महोत्सव आदि की कथाओं के आधार पर प्रस्तुत हुईं। भाव और कला-पक्ष की दृष्टि से पुराण के पाँच लक्षण[2] भी इन कथाओं में सर्वत्र विद्यमान हैं।

---

१. 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' बलदेव उपाध्याय, गौरीशंकर उपाध्याय, पृष्ठ ५७।

२. मत्स्य, विष्णु तथा ब्राह्मांड आदि महापुराणों में पुराण का लक्षण बतलाते हुए लिखा है.........'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्॥

दन्त-कथाओं का आरम्भ

पौराणिक कथाओं के विस्तार तथा प्रसार से जन-मस्तिष्क शीघ्र ही पूर्ण रूप से सुसम्बद्ध हो गया होगा, क्योंकि कथा कहने-सुनने की प्रवृत्ति ने लोक-रुचि को पौराणिक कथाओं के कहने-सुनने की ओर प्रेरित किया होगा। इस तरह धीरे-धीरे इन पौराणिक कथाओं का अधिकांश रूप मौखिक हो गया होगा, फलतः इसका प्रभाव दो रूपों में पड़ा—ये पौराणिक कथाएँ लोक-रुचि, लोक-संवेदना की सीमाओं में बाँधी गई होंगी और दूसरी ओर इन कथाओं के सादृश्य पर अन्य स्वतन्त्र कथाओं की अवतारणा होने लगी होगी। यही कारण है कि दन्त-कथाओं के इन दोनों रूपों ने परवर्ती कथा-साहित्य को पूर्ण रूप से प्रभावित किया है, क्योंकि उनकी अवतारणा पौराणिक कथाओं के सादृश्य और साम्य पर असीम ढंग से हुई।

इस प्रभाव का उदाहरण हमें समस्त परवर्ती संस्कृत कथा-ग्रन्थों में मिलता है, जहाँ पशु-पक्षी, देव-दानव, नदी-पहाड़, सरोवर, पेड़-पौधे आदि समस्त चर-अचर सजीव चरित्र के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। वस्तुतः दन्त-कथाओं की इस शैली का पूर्ण प्रभाव हमें सर्वप्रथम बौद्ध-जातक कथाओं में मिलता है।

जातक

काल-क्रमानुसार जातक कथाओं का स्थान परवर्ती संस्कृत कथाओं के पहले आता है। निश्चय ही ये कथाएँ ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी से भी पहले से लेकर ईसा के बाद प्रथम या द्वितीय शताब्दी तक ही रची गयी होंगी।[1]

जातक शब्द का अभिप्राय है, जन्म सम्बन्धी। विकासवाद के अनुसार एक फूल को विकसित होने के लिए, उस पुष्प की जाति विशेष के अस्तित्व में आने में लाखों वर्ष लग जाते हैं। तब क्या कोई भी प्राणी साठ-सत्तर या अधिक से अधिक सौ वर्षों तक के जीवन में बुद्ध बन सकता है? उसे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक जन्म धारण करने होंगे। गौतम बुद्ध को भी धारण करने पड़े। बुद्ध होने से पूर्व अपने सब पिछले जन्मों तथा अन्तिम जन्म में उनकी संज्ञा बोधिसत्व रही। 'बोधि' का अर्थ है बुद्धत्व और 'सत्व' का अर्थ प्राणी—बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी।[2] इस तरह जातक में बोधिसत्व के पाँच सौ सैंतालीस जन्मों का उल्लेख है और उनकी कथाएँ भी हैं। ये कथाएँ अपनी शिल्प-विधि के रूप में चार भागों में विभक्त हैं :

१. जातक प्रथम, भूमिका, पृष्ठ २४

२. जातक प्रथम खण्ड, भूमिका, पृष्ठ १२ भदन्त आनन्द कौशल्यायन

(१) पच्चुपन्नव

(२) अतीतवत्

(३) अत्थ वण्

(४) समोधान

उक्त भागों को

देख सकते हैं, उदाहरण

में बिहार करते समय

१. वर्तमान कथ

वह कटुभाषी

पूछा—"भिक्षु ! क्या

"भगवान !

बुद्ध ने कहा-

ग्रहण किया।" कह

२. अतीत कथा

पूर्व समय में

योनि में पैदा हो, मृग

हरिणपुत्र दिखाकर

यह कह (उसे मृग-पु

वह कहे हुए समय प

का उल्लंघन कर,

माता ने भाई से अ

बोधिसत्व ने, (उस

सीखी। कहकर अब

३. गाथा की व

अटठ खुरं,

है। मिग-सब (मृगो

तिवंक जिसके ऐसे

(१) पच्चुपन्नवत्थु कथा : वर्तमान कथा
(२) अतीतवत्थु : पुनर्जन्म की कथा या अतीत कथा
(३) अत्थ वरणाना : गाथाओं की व्याख्या
(४) समोधान : अन्त में आने वाला भाग जिसमें बुद्ध बताते हैं कि पात्रों में कौन क्या था, वे स्वयं उस समय किस योनि में पैदा हुए थे।

उक्त भागों को हम पाँच सौ सैंतालीस जातक कथाओं में से किसी भी कथा में देख सकते हैं, उदाहरणार्थ खरीदिय जातक को ले सकते हैं। यह गाथा बुद्ध ने जेतवन में बिहार करते समय, एक कटुभाषी भिक्षु के संबन्ध में कही थी।

१. वर्तमान कथा

वह कटुभाषी भिक्षु (किसी का) उपदेश न ग्रहण करता था। बुद्ध ने उससे पूछा—"भिक्षु ! क्या तू सचमुच कटुभाषी है, किसी का उपदेश ग्रहण नहीं करता ?"

"भगवान ! यह बात सच है।"

बुद्ध ने कहा—"पहले भी तू ने कटुभाषिता के कारण पंडितों का उपदेश नहीं ग्रहण किया।" कह अतीत की कथा सुनाई।

२. अतीत कथा

पूर्व समय में, वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व मृग की योनि में पैदा हो, मृगगण के साथ जंगल में रहते थे। (एक दिन) उनकी बहन ने उन्हें हरिणपुत्र दिखाकर कहा, "भाई ! यह तुम्हारा भांजा है इसे मृगमाया सिखाओ।" यह कह (उसे मृग-पुत्र) सौंपा। उसने भांजे को कहा—अमुक समय पर आकर सीखना। वह कहे हुए समय पर न आया। जैसे एक दिन उसी प्रकार सात दिनों तक, सात उपदेशों का उल्लंघन कर, वह मृगमाया को बिना सीखे ही चरता हुआ पाश में बँध गया। माता ने भाई से आकर पूछा—"क्यों भाई ! तूने भांजे को मृगमाया सिखा दी ?" बोधिसत्व ने, (उस बात) न मानने वाले का सोच मत कर। तेरे पुत्र ने मृगमाया नहीं सीखी। कहकर अब भी उसे सिखाने का अनिच्छुक ही हो गाथा कही।

अटठ खुरं खरादिये मिगं वंकातिवङ्किन।
सत्तहि कलाहति वंकत न तं आवेदिनुस्सहे।

३. गाथा की व्याख्या

अटठ खुरं, एक-एक पाँव में दो-दो खर खरीदिये। इस नाम से संबोधन करता है। मिग-सब (मृगों) के लिए एक शब्द है। वंकातिवंकिन-आरंभ में टेढ़े, इस प्रकार वंकातिवंक जिसके ऐसे सींग हों, वह वंकातिवंक, (उस तं) वंकातिवंकी को। सत्तहि कलाहति

वंकत का अर्थ है उपदेश के सात समयों पर उपदेश का उल्लंघन करने वाला। न तं आवेदिनुस्पहे का अर्थ है, इस प्रकार के कटुभाषी मृग को उपदेश देने की मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। ऐसे को उपदेश देने का मुझे विचार तक नहीं होता। यही स्पष्ट किया है।

४. समोधान

गो शिकारी, उस पाश में बंधे हुए कटुभाषी मृग को मारकर मांस लेकर चला गया।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु ! तू केवल अब भी कटुभाषी नहीं है, पहले भी कटुभाषी ही रहा है।'—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय का भांजा मृग (अनका) कटुभाषी भिक्षु था। बहन (अबकी) उत्पल-वर्णा (भिक्षुणी) थी। लेकिन उपदेश देने वाला मृग तो मैं ही था।'[1]

इन जातक कथाओं से तीन बातें मूलतः स्पष्ट हैं। ये कथाएँ बौद्ध-धर्म के प्रकाश और प्रचारार्थ लिखी गयी हैं। इनमें पिछली पौराणिक कथाओं और आख्यानों की अपेक्षा अधिक कलात्मकता आयी है। ये कथाएँ सीधे वर्णनात्मक या कथात्मक न होकर वर्तमान कथा, अतीत कथा, गाथा की व्याख्या और समोधान क्रमों की सुन्दर शृंखला हैं, तथा फिर भी इनमें कथा का तारतम्य सुरक्षित है और इनका लक्ष्य भी पूर्ण सफलता से स्पष्ट है। एक बात से एक स्वतंत्र कथा का जन्म, और उस कथा का जन्म होने की कला संभवतः इन्हीं जातक कथाओं से आरम्भ हुई तथा इस कला की चरमसीमा हमें आगे चलकर संस्कृत के सुप्रसिद्ध कथा-संग्रह 'कथासरित्सागर' और 'पंचतंत्र' में मिलती है।

कुछ विद्वानों ने प्रायः जातक कथाओं और रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराण के समान या एक दूसरे से मिलती-जुलती कथाओं तथा आख्यानकों को लेकर, यह समस्या खड़ी की है कि अमुक कथा जातक की मूल देन है, अमुक आख्यान तथा अमुक गाथा रामायण-महाभारत अथवा अमुक पुराण की देन है। वस्तुतः बात यह है कि बौद्ध और अबौद्ध दोनों कथा-साहित्य एक ही परम्परा के ऋणी हैं और यह परंपरा साहित्य के कथा-बीज, उपनिषद्, आख्यानक महाकाव्य का कथा-प्रसार तथा दंत-कथाओं का स्वतन्त्र निर्माण और सबका आपस में सम्मिश्रण है।

फिर भी जहाँ तक प्राचीन कथा-तत्व में कलात्मकता के विकास का प्रश्न है, जातक कथाओं ने इसमें अपूर्व बल दिया है। जातक कथाओं में जितनी वर्तमान कथाएँ आती हैं, उनमें प्रायः ऐतिहासिक तत्व मिलते हैं। इस तरह यथार्थ कल्पना और व्याख्या-तत्व का एक साथ तादात्म्य, कथा की दिशा में जातक कथाओं की पहली कलात्मक देन है। प्रायः समस्त जातक कथाओं में अतीत कथा का आरंभ इस वाक्य "पूर्व काल में

---

१. जातक प्रथम खण्ड, पृष्ठ २०७, २०८, २०६
भदन्त आनन्द कौशल्यायन।

वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करते थे" से होता है। वस्तुतः यह कथा आरंभ करने की एक कलात्मक टेक थी। लगता है कि आगे चलकर इसी के कलात्मक सादृश्य पर उर्दू और अंग्रेजी की प्राचीन कहानियाँ और अफसाने यों आरंभ किये गये हैं : "एक दफा का जिक्र है कि" और "वंस अपान ए टाइम"।

ये जातक कथाएँ बहुत ही व्यापक और मानवतत्व के समीप हैं। इनमें राजा, सेठ साहूकार से लेकर दरिद्र, चोर, चांडाल, अपराधी आदि चर तथा नदी, पहाड़, पेड़-पौधे आदि अचर तथा सब प्रकार के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी आदि सजीव पात्रों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, और इन सबके माध्यम में हमारे जीवन के व्यापक रूपों को बांधने का प्रयत्न किया गया है। यही कारण है कि पिछले वर्षों के इतिहास में ये कथाएँ मानव-समाज पर अनेक रूप से अपनी छाप छोड़ने में समर्थ हुई हैं तथा इनका समान प्रभाव परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य के निर्माण और दन्त-कथाओं पर इतना पड़ा कि जातक कथाएँ कभी भुलाई नहीं जा सकतीं।

संस्कृत का परवर्ती कथा-साहित्य

संस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य में 'वृहत्कथा' का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्राचीन संस्कृत कथा-साहित्य में यह अति प्राचीन और सुमान्य कथा-संग्रह माना गया है। पता लगता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में आन्ध्र राजाओं के समय गुणाढ्य नाम के किसी पण्डित ने पैशाची भाषा में इस कथा-ग्रन्थ को लिखा था। इसका समय ईसा की छठी शताब्दी से पूर्व ही माना जाता है। लेकिन वर्तमान समय में यह ग्रन्थ एकदम अप्राप्य है, केवल इसका वैज्ञानिक प्रमाण हमें वाण के 'हर्ष-चरित्' दण्डी के 'काव्यादर्श', क्षेमेन्द्र की 'वृहत्कथा मंजरी' और सोमदेव के 'कथासरित्सागर' में मिलता है। कुछ विद्वानों का तो कहना है कि क्षेमेन्द्र की 'वृहत्कथा मंजरी', सोमदेव का 'कथासरित्सागर' और बुद्ध स्वामी का 'वृहत्कथा श्लोकसंग्रह' वृहत्कथा के ही आधार पर लिखे गए कथा ग्रन्थ हैं। जब तक 'वृहत्कथा' अप्राप्य है इस समस्या पर कोई समुचित प्रकाश डालना कठिन है।

इस भाँति परवर्ती संस्कृत-कथा-साहित्य के अन्तर्गत 'वृहत्कथा श्लोकसंग्रह', 'कथा-सरित्सागर', 'वैताल पंचविंशतिका', 'शुकसप्तति', 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'पंच-तन्त्र' और 'हितोपदेश' ही मुख्य कथा-ग्रन्थ हैं। वैसे लोग परवर्ती संस्कृत-कथा-साहित्य में वाण की 'कादंबरी', वसुबन्धु की 'वासवदत्ता' और दंडी का 'दस कुमार चरित्र' भी लेते हैं। परन्तु ये काव्य-ग्रन्थ कथा और उपन्यास की अपेक्षा गद्य काव्य अधिक और कथा कम है। वैसे यह तो व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात है कि दण्डी ने गद्य-काव्य को ही कथा कहा है। वैज्ञानिक दृष्टि से ये काव्य-ग्रन्थ हमारे आलोच्य ग्रन्थों में नहीं आ सकते। वैसे ये ग्रन्थ कभी भुलाये नहीं जा सकते। वाण का 'हर्षचरित्' तो निश्चित

रूप से कथा-ग्रन्थ के बहुत ही समीप है । इसके कथा-तत्व में यथार्थ और कल्पना का कलात्मक संयोग हुआ है, लेकिन कादंबरी की श्लिष्ट और सामासिक पदावली की शैली के कारण कथात्मकता नष्ट हो गई है और भाषा-चमत्कार उभर आया है ।

बृहत्कथाश्लोक

यह ग्रन्थ बुद्ध स्वामी द्वारा प्रस्तुत हुआ है । इसकी कुछ कथाएँ 'पंचतंत्र', और 'वैताल पंचविंशतिका' से मिलती-जुलती हैं । लगता है कि ये समान कथाएँ एक ही स्रोत दन्त-कथा के फलस्वरूप प्रस्तुत हुई हैं । इसकी समस्त कथाएँ श्लोकों के माध्यम से आई हैं, फिर भी इन कथाओं में कथा-तत्व पर्याप्त मात्रा में है । इसका समय आठवीं या नवीं शताब्दी माना जाता है ।

कथासरित्सागर

कथासरित्सागर का स्थान परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य में अद्वितीय है । इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी है । इस विशाल कथा-ग्रन्थ में असंख्य कथाएँ संग्रहित हैं तथा सारी कथाएँ विभिन्न 'लवंकों में विभाजित होकर अन्यान्य तरंगों के माध्यम से आई हैं । प्रत्येक 'लवंक' क्रमशः कथा की संवेदनाओं के अनुकूल आए हैं, जैसे—(१) कथा-पीठ, (२) कथामुख, (३) लावणक, (४) नर वाहन-दत्तोत्पत्ति, (५) चतुर्दारिका, (६) मदनमचुका, (७) रत्नप्रभा, (८) सूर्यप्रभा, (९) अलंकारवती, (१०) शक्तिपाशा, (११) वैला, (१२) शशांकवती, (१३) मदिरावती, (१४) पंच, (१५) महाभिषेक, (१६) सुरतमंजरी, (१७) पद्मावती और (१८) विशमशील लवंक । कथापीठ लवंक की यह संज्ञा इसलिए दी गयी है कि वस्तुतः यह सम्पूर्ण 'कथासरित्सागर' की पृष्ठभूमि है, धरातल है, जिस पर असंख्य कथाएँ प्रतिष्ठित हुई हैं । हिमालय के उत्तरवर्ती कैलाश शिखर पर अपनी प्रिया पार्वती के साथ शिव जी रहते हैं । एक बार शिव जी पार्वती जी से प्रसन्न हुए और उनसे पूछा—प्रिये ! क्या चाहती हो ? पार्वती जी ने उत्तर दिया—स्वामिन कोई नयी कथा सुनाइए । शंकर जी ने अपने और पार्वती जी के विवाह की कथा कह सुनाई, लेकिन इस कथा से पार्वती जी को सन्तोष न हुआ । तब शिव जी ने अपूर्व और मनोहर कथा कहने की प्रतिज्ञा कर पार्वती का रोष शान्त किया । पार्वती जी ने बन्दी को दरवाजे पर बिठा दिया और कह दिया कि भीतर किसी को न आने देना । फिर शिव जी पार्वती जी से विद्याधरों की कथा सुनाने लगे । लेकिन जब शिव जी कथा कहने लगे, तब उनका बड़ा प्यारा गण—'पुष्पदन्त' आया और बन्दी के रोकने पर भी वह न रुका और अपने योगबल से वह भीतर चला गया तथा जो कथा शिव जी ने सात विद्याधरों की कही—सब उसने सुन ली और घर आकर निज स्त्री 'जया' को भी ज्यों की त्यों सुना दी । जया ने पार्वती जी से सब कथाओं को कह दिया

इस पर पार्वती जी बहुत कुपित हुईं और उन्होंने शंकर जी से कहा कि आपने कैसी पुरानी कथाएँ कहीं, उन सबको तो जया जानती थी। महादेव ने सब रहस्य बता दिया और पार्वती जी ने क्रोधित होकर पुष्पदंत को शाप दिया—'नीच! जा तू मनुष्य-रूप में जन्म ले।'

रुद्राणी चंडिका का ऐसा शाप सुनकर माल्यवान गण पुष्पदंत का पक्षपात करने लगा। इस पर कोपवती उमा ने उसे भी शाप दे दिया। फिर वे दोनों जया-सहित भवानी के चरणों पर गिर पड़े। तब भवानी ने शांत होकर कहा—सुनो, कुबेर जी के शाप से सुप्रतीक नामक एक यक्ष पिशाच हो गया है और विंध्याचल के जंगलों में रहता है। उसका नाम 'काणभूति' है। उसे देखकर पुष्पदंत को अपने इस जन्म की कथा याद आ जायगी और जब वह काणभूति को अपनी कथा सुनायेगा, तो शाप से उसकी मुक्ति हो जायगी। फिर काणभूति से इस कथा को माल्यवान सुनेगा, तब काणभूति की मुक्ति हो जायगी और जब माल्यवान इस कथा को लोक में प्रकाशित करेगा, तब शाप से मुक्त होगा। यह कहकर पार्वती जी चुप हो गयीं और वे दोनों न जाने कहाँ लुप्त हो गए।

योंही कुछ दिनों के बाद पार्वती जी ने दया करके शंकर जी से पूछा कि नाथ यह बताइये कि वे दोनों शापित व्यक्ति अब इस समय कहाँ होंगे। तब शंकर जी ने बताया कि कौशाम्बी महानगरी में पुष्पदंत तो वररुचि नाम से जन्मा है और माल्यवान सुप्रतिष्ठ नामक नगर में गुणाढ्य नाम से प्रसिद्ध है।

इधर मृत्युलोक में वस्तुतः पुष्पदंत मनुष्य रूप में वररुचि अथवा कात्यायन नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह विन्ध्याचल में 'काणभूति' नामक पिशाच से भेंट करता है और शाप के अनुसार कात्यायन को अपने पूर्व जन्म की बातें स्पष्ट हो जाती हैं और यह कह उठा—मैं पुष्पदंत हूँ। मैं तुझे महाकथा सुनाऊँगा। यह कहकर कात्यायन ने सात लाख श्लोकों वाली महाकथा काणभूति को सुनायी।

कथासरित्सागर में कथा का रूप

'कथासरित्सागर'[1] की कथाओं को पढ़ने से स्पष्ट है कि ये अपने कलात्मक रूप में पुराणों की कथाओं की भाँति हैं—अर्थात् एक श्रोता है और वक्ता-कथाकार, जो एक मूलभूत कथा आरम्भ करता है तथा उसी मूलभूत कथा से धीरे-धीरे अन्यान्य कथाएं स्वतः निकलती रहती हैं और प्रत्येक कथा अपने वास्तविक मूल्य में स्वतंत्र और पूर्ण-सी प्रतीत होती है। वस्तुतः कथा की यह शैली मूलतः पौराणिक कथा-शैली और जातक तथा जैन कथाओं की शैलियों की मिश्रित शैली है।

१. भाषा कथासरित्सागर, प्रथम, द्वितीय भाग; बाबू रामकृष्ण द्वारा संपादित। भारत जीवन प्रेस, काशी, १९०५ ई०।

वस्तुतः श्रोता और वक्ता की दृष्टि से इसका मूल सम्बन्ध शंकर और पार्वती से है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से 'कथासरित्सागर' की सारी कथाएँ वररुचि द्वारा कही गयी हैं और विन्ध्याचल के जङ्गल में काणभूति ने सुनी हैं। वररुचि अपने जन्म से स्वयं अपनी कथा आरम्भ करता है, लेकिन यहाँ दो विशेषताएँ आती हैं। यद्यपि 'कथासरित्सार' की समस्त कथाओं की संवेदनाएँ वररुचि के जीवन के धरातल से चलती हैं फिर भी कथा रूप में संवेदना इतनी विशाल और व्यापक हो जाती है कि वररुचि के समय का भारत, उसकी समस्त तत्कालीन परिस्थितियाँ जैसे इसमें पिरो उठी हैं। फलतः कथासरित्सागर असंख्य स्वतंत्र और पूर्ण कथाओं से परिपूर्ण हो उठा है। जहाँ किसी भी तरंग में वररुचि अपना वृतान्त कहते-कहते यह कहने लगता है कि—हे काणभूति, योंही व्याड़ी और इंद्रदत्त के साथ उपाध्याय जी के स्थान पर रह कर मैंने समस्त विद्या प्राप्त की और युवा हुआ। एक समय की बात है कि हम लोग उस नगर में इन्द्रोत्सव देखने गये और वहाँ एक कन्या परमसुन्दरी ऐसी दीख पड़ी कि उसे कामदेव का साक्षात् अस्त्र ही कहना चाहिए। उसे देखते ही मैंने इंद्रदत्त से पूछा कि मित्र ! यह कौन है ? बस, इसके उत्तर में इंद्रदत्त एक स्वतंत्र कथा कहने लगता है और दोनों के प्रश्नोत्तर से इस तरह असंख्य कथाएँ निकलती-बनती रहती हैं। कभी राजा, मंत्री, पुरोहित की व्यक्तिगत कथा, कभी शासन और समाज की कथा और कभी ऐतिहासिक और पौराणिक चरित्र जैसे राजा वत्सराज, नरवाहनदत्त, राजा सूर्यप्रभ और विक्रमादित्य और इन्द्र, कुबेर, मयदानव और महासुर आदि की कथाएँ आती रहती हैं तथा सर्वत्र इन कथाओं में कथा की मूल संवेदना बहुत ही स्थूल बाह्य परिस्थितियों के धरातल पर चलती रहती हैं, फलतः समस्त कथाओं का रूप एक ही जैसा है—अर्थात् एक कथा के तारतम्य और सूत्र में अन्यान्य कथाएं पुष्प की पंखड़ियों की भाँति विकसित होती जाती हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन पौराणिक दन्त-कथाएँ, अधिक से अधिक रूप में इसकी कथाओं में संगृहीत हो गयी हैं और यह कथाओं का सागर हो गया है।

वैताल पंचविंशतिका

यह पच्चीस कथाओं का संग्रह है इन कथाओं का वक्ता शव में बसा हुआ एक वैताल था जो अपने श्रोता राजा विक्रमादित्य को अपने हठ से तंग करता था और अन्त में वह एक रहस्य का उद्घाटन करता है जिससे राजा का बहुत कल्याण होता है। कोई ठग राजा विक्रमादित्य को ठगने की चाल से उन्हें आदेश देता है कि वे अमुक वृक्ष से अमुक लटकती हुई लाश को अगर उसके पास लाएँ, तो वह राजा के लिए महान हितकर सिद्ध होगा। जब राजा उस लाश को उतार कर ले चले, तो रास्ते में उस लाश में प्रतिष्ठित वैताल ने उनसे प्रतिज्ञा करा ली कि वे रास्ते-भर चुप रहेंगे और अगर वे बोले तो वह फिर उसी पेड़ से जा लटकेगा। राजा ने प्रतिज्ञा कर ली और

वैताल राजा को एक कथा
सामने रख दी। राजा ने उ
लगा। इस भाँति उस वैताल
कथा को कहकर उसने राजा
पाखण्डी महात्मा का रहस्यो

शुक सप्तति

इस कथा-ग्रन्थ में कु
(श्रोता) से ये सब कथाएँ क
कथाएँ ली हैं, जो दुष्टा और
को छलती रहती हैं। लेकिन
मानना नहीं है, वरन् उन्हें अ
शुक सप्तति की कथ
है और अपने शुक को घर क
था। उसने देखा कि वणिक
उस स्त्री को सत्पथ पर लाने
और अंतिम कथा की रात्रि

सिंहासन द्वात्रिंशिका

इस कथा संग्रह में वि
हुई कथाएँ हैं, जिन्हें राजा भ
वस्तुतः राजा विक्रमादित्य क
मृत्यु के उपरान्त पृथ्वी में ग
और उसका सदुपयोग करना
सिंहासन से एक युवती निक
विक्रमादित्य की प्रशंसा, महा
संग्रह में कुल बत्तीस पुतलियों

समीक्षा

उपर्युक्त चारों कथा-
और 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' प
प्रभाव जहाँ एक ओर जन-म
अपभ्रंश कथा-धारा पर भी
जन-मस्तिष्क में पैठ
में प्रचलित हुई तथा जन-समु

वैताल राजा को एक कथा सुनाने लगा और उससे उत्पन्न एक समस्या उसने राजा के सामने रख दी। राजा ने उसका उत्तर दे दिया फलतः वैताल फिर उसी डाल से जा लगा। इस भाँति उस वैताल ने राजा से कुल चौबीस स्वतन्त्र कथाएँ कहीं और पचीसवीं कथा को कहकर उसने राजा के सामने कोई समस्या नहीं रखी, बल्कि उसने उस पाखण्डी महात्मा का रहस्योद्घाटन कर दिया।

शुक सप्तति

इस कथा-ग्रन्थ में कुल सत्तर कथाएँ हैं। एक तोते (वक्ता) ने अपनी स्त्री मैना (श्रोता) से ये सब कथाएँ कही हैं। इसमें अधिकांश रूप में तोते ने उन स्त्रियों की कथाएँ ली हैं, जो दुष्टा और कुलटा हैं तथा जो अपने प्रपंचों और छद्मभेषों से पुरुषों को छलती रहती हैं। लेकिन इन कथाओं का ध्येय स्त्री-वर्ग को नीचा दिखाना या द्वेष मानना नहीं है, वरन् उन्हें अधर्म-पथ से सत्पथ पर लाना है।

शुक सप्तति की कथाओं का धरातल यों है—एक वणिक मदनसेन परदेश जाता है और अपने शुक को घर की पूरी जिम्मेदारी दे जाता है। वह शुक वस्तुतः एक गंधर्व था। उसने देखा कि वणिक की पत्नी अपने पतिव्रत धर्म से गिरना चाहती है, तोता उस स्त्री को सत्पथ पर लाने के लिए सत्तर रातों तक सत्तर कथाएँ कह सुनाता है और अंतिम कथा की रात्रि को मदन स्वयं आ जाता है।

सिंहासन द्वात्रिंशिका

इस कथा संग्रह में विक्रमादित्य के सिंहासन में लगी बत्तीस पुतलियों द्वारा कही हुई कथाएँ हैं, जिन्हें राजा भोज सुनते हैं और उस दैवी सिंहासन पर नहीं बैठ पाते। वस्तुतः राजा विक्रमादित्य का सिंहासन इन्द्र द्वारा दिया गया था जो विक्रमादित्य की मृत्यु के उपरान्त पृथ्वी में गड़ गया था। कालान्तर उसे राजा भोज ने पुनः प्राप्त किया और उसका सदुपयोग करना चाहा, लेकिन जब राजा उस पर बैठने को होते, हर बार सिंहासन से एक युवती निकलकर उन्हें सिंहासन पर बैठने से रोकती और राजा विक्रमादित्य की प्रशंसा ,महानता, शौर्य आदि की कथाएं सुनाती। इस तरह इस कथा-संग्रह में कुल बत्तीस पुतलियों द्वारा सुनाई हुई बत्तीस कथाएँ हैं।

समीक्षा

उपर्युक्त चारों कथा-संग्रह 'कथासरित्सागर' 'वैताल पंचविंशतिका' 'शुक सप्तति' और 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य के विशिष्ट स्तम्भ हैं। इनका प्रभाव जहाँ एक ओर जन-मस्तिष्क की कथा-प्रवृत्ति पर पड़ा, दूसरी ओर प्राकृत और अपभ्रंश कथा-धारा पर भी पड़ा।

जन-मस्तिष्क में पैठकर इन संग्रहों की कथाएँ आगे चलकर दन्त-कथाओं के रूप में प्रचलित हुई तथा जन-समुदाय में इनके आधार पर अनेक कथाएँ गढ़ी गयीं। वस्तुतः

२

आगे चलकर हिन्दी-प्रदेश में जितनी भी दन्त-कथाएँ और लोक-कथाएँ प्रचलित हुईं, उन सबके आदिस्रोत यही उक्त कथा-संग्रह हैं, जो अपने विभिन्न विकसित रूप में क्रमशः 'कथासरित्सागर' से 'कथासागर', 'वैताल पंचविंशतिका' से 'वैताल पचीसी', 'शुक सप्तति' से 'तोता-मैना किस्सा' और 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' से 'सिंहासन बत्तीसी' की कथाओं के रूप में आईं।

नीति-सम्बन्धी कथा-संग्रह

समूचे परवर्ती संस्कृत-कथा-साहित्य में दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं, एक मनोरंजन-प्रधान, दूसरी शिक्षा और नीति-प्रधान। संस्कृत कथा-साहित्य में पहले प्रकार की कथाएँ बहुत ही सीमित और मानव-सापेक्ष्य हैं, लेकिन दूसरी प्रकार की कथाएँ संस्कृत कथा-साहित्य में असीम हैं। इसमें चर-अचर, पशु-पक्षी सबको कथा साधन बनाया गया है—जैसे 'शुक सप्तति', 'पंचतन्त्र', 'हितोपदेश' आदि की कथाएँ।

'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' क्रमशः तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के आसपास की रचनाएँ हैं, लेकिन कथा की दृष्टि से ये दोनों नीति-सम्बन्धी कथा-संग्रह हैं। ये दोनों कथा-संग्रह-साहित्य की दो अमूल्य निधियाँ हैं। इन दोनों की तुलना पूर्वकथित कथा-ग्रंथ जैसे कथा 'सरित्सागर' आदि से नहीं की जा सकती क्योंकि उनका प्रयोजन पाठकों को विशुद्ध मनोरंजन देना है जब कि कथा-ग्रन्थों का उद्देश्य मूलतः धर्म और राजनीति की शिक्षा देना है। इनका उद्देश्य नीति का स्पष्टीकरण है। इनके पात्र मूलतः पशु-पक्षी हैं और सभी मानव-संवेदनाओं से युक्त हैं।

पंचतंत्र में कथा का स्वरूप

समूचा पंचतंत्र[१] पाँच विभिन्न तंत्रों, जैसे १. मित्र-भेद २. मित्र-संप्राप्ति ३. काकोलूकीय ४. लब्ध प्रणासे और ५. अपरीक्षित कारके में संकलित है। ये प्रत्येक तंत्र अपने में स्वतंत्र हैं और प्रत्येक तंत्र के अपने उपदेश और अपनी नीति हैं। यह समूची नीति, धर्मोपदेश और कूटनीति विभिन्न कथाओं के माध्यम से आई है तथा प्रत्येक तंत्र में अधिक से अधिक बीस कथाएँ तक आई हैं। जैसे मित्रभेद तंत्र में मूर्ख बानर कथा, शृगाल-दुन्दुभि कथा, दन्तिल कथा, देवशर्म परिव्राजक कथा, वकलीर कथा, धर्म-बुद्धि पापबुद्धि कथा, वानरचत्क दम्पति कथा आदि कुल बाइस कथाएँ आई हैं।

ये कथाएँ जिस रूप में कही गयी हैं, कला की दृष्टि से उनमें जो विशेषताएँ आई हैं, वे सर्वत्र स्पष्ट हैं। प्रायः सभी तंत्रों की मुख्य संवेदनाएँ नीति-संबंधी हैं और

१. विष्णु शर्मा का 'पंचतंत्र', सम्पादक—मन्नालाल अभिमन्यु और पंडित सीताराम झा, प्रकाशक—खेलाड़ी लाल ऐंड संस, कचौड़ी गली, बनारस सिटी, सन् १९३१ ई०।

इन संवेदनाओं की अभिव्यक्ति
अनेक हैं। सब कथाओं के कथा
ये कथाएँ अपनी शिल्पविधि के
अर्थात कथा में कथाओं का जुड़
विकास होना इसकी शैलीगत
में महिलारोप्य नामक एक नगर
वन, पहाड़ और वृक्षादि हैं।

उक्त बातों के उदाहरण
प्रथम तंत्र का आरम्भ, मध्य
क्या महत्व है ? राजा किसे अ
के सम्बन्ध में राजा की क्या नी
से कही गयी हैं तथा इनके कथ
तंत्र की कथा यों आरम्भ होती
वहाँ एक धनवान बनिया रहत
जिसमें संजीवक और नन्दक न
बैल जमुना की तलहटी के दल
रास्ते चला गया। भाग्यवश बै
लगा। एक समय पिंगलक नाम
वहाँ बैल को गर्जते हुए सुनकर
नाम के दो सियार मित्र थे। द
लगे कि उनका राजा सिंह कहा
पुरुष बिना काम के काम करत
प्रकार काँटे को निकाल कर मू
लगता है। इस भाँति करटक,
कहते हैं। ये कथाएँ मानव-जी
माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से मा
कथाएँ उपदेशात्मक शैली में क
है। वस्तुतः पंचतंत्र की कथाएँ
इनका ध्येय इन कथाओं के सा
को नीति-कुशल और व्यावहा
सफल हैं।

इन संवेदनाओं की अभिव्यक्ति जिन कथाओं से हुई है, वे कथाएँ छोटी-छोटी और अनेक हैं। सब कथाओं के कथाकार पशु-पक्षी हैं और कथाओं के पात्र जड़-चेतन हैं। ये कथाएं अपनी शिल्पविधि के रूप में, कथा-सरित्सागर की कथाओं की ही भाँति हैं अर्थात कथा में कथाओं का जुड़ते जाना और एक कथा से दूसरी कथा की उत्पत्ति और विकास होना इसकी शैलीगत विशेषता है। सब कथाओं का मुख्य देश—दक्षिण प्रान्त में महिलारोप्य नामक एक नगर और तंत्रों की उपकथाओं के देश उसी के समीपवर्ती वन, पहाड़ और वृक्षादि हैं।

उक्त बातों के उदाहरण में हम किसी भी तंत्र को ले सकते हैं, जैसे मित्रभेद प्रथम तंत्र का आरम्भ, मध्य और अंत केवल इसी नीति से भरा पड़ा है कि धन का क्या महत्व है ? राजा किसे अपना मित्र बनाता है ? कौन मित्र कैसा होता है ? मित्रों के सम्बन्ध में राजा की क्या नीति होनी चाहिए ? ये नीतियाँ विभिन्न कथाओं के माध्यम से कही गयी हैं तथा इनके कथाकार हैं 'करटक' और 'दमनक' नामक दो सियार। तंत्र की कथा यों आरम्भ होती है—दक्षिण देश में महिलारोप्य नाम का एक नगर था। वहाँ एक धनवान बनिया रहता था। वह धनोपार्जन के लिए अपनी गाड़ी पर बैठ कर जिसमें संजीवक और नन्दक नामक बैल जुते थे, रवाना हुआ। रास्ते में संजीवक नामक बैल जमुना की तलहटी के दलदल में फँस गया और बनिया उसे वहीं छोड़ कर अपने रास्ते चला गया। भाग्यवश बैल स्वस्थ होकर निकल आया और वहीं जंगल में रहने लगा। एक समय पिंगलक नामक एक शेर उसी जगह जमुना में पानी पीने आया और वहाँ बैल को गर्जते हुए सुनकर, शेर वहीं डर से बैठ गया। सिंह के करटक और दमनक नाम के दो सियार मित्र थे। दोनों अधिक विलंब होने के कारण आपस में चिन्ता करने लगे कि उनका राजा सिंह कहाँ रह गया। इस पर करटक कहता है कि हे मित्र ! जो पुरुष बिना काम के काम करता है वह उसी प्रकार नष्टावस्था को प्राप्त होता है, जिस प्रकार काँटे को निकाल कर मूर्ख बानर। इस तरह करटक मूर्ख बानर की कथा कहने लगता है। इस भाँति करटक, दमनक और पिंगलक आपस में इस तंत्र की तमाम कथाएँ कहते हैं। ये कथाएँ मानव-जीवन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित न होकर पशुपक्षियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से मानव-जीवन की नीति-दिशा में प्रकाश डालती हैं। सब कथाएँ उपदेशात्मक शैली में कही गयी हैं, यद्यपि कथाओं का रूप पूर्णतः वर्णनात्मक है। वस्तुतः पंचतंत्र की कथाएँ कथा-तत्व को ध्यान में रख कर नहीं लिखी गयी हैं, बल्कि इनका ध्येय इन कथाओं के साधन-मात्र से अमरशक्ति राजा के दुष्ट मूर्ख राजकुमारों को नीति-कुशल और व्यावहारिक बनाना था। इस दिशा में पंचतंत्र की कथाएँ पूर्णतः सफल हैं।

हितोपदेश और उसकी कथाएँ

पंचतंत्र की ही भाँति हितोपदेश भी नीति-ग्रन्थ है तथा जिस उद्देश्य को लेकर पंचतंत्र की कथाएँ आई हैं, उसी उद्देश्य से हितोपदेश की कथाएँ आई हैं। पाटलीपुत्र के राजा सुदर्शन के समस्त पुत्र पराङ्मुख, कुमार्गी और शास्त्र के पठन-पाठन से विरक्त थे। राजा के ऐसे ही पुत्रों को शिक्षा देने के लिए हितोपदेशकार विष्णुशर्मा ने इन कथाओं तथा अन्यान्य उपकथाओं और अन्तर्कथाओं में समस्त शिक्षाओं और हितोपदेशों को पिरोया है। इससे यह सिद्ध है कि हितोपदेश पंचतन्त्र की भाँति नीति-ग्रन्थ है। इसकी आत्मा शिक्षा और उपदेश है और इसके रूप का निर्माण छोटी-छोटी कथाओं, अन्तर्कथाओं और उपकथाओं द्वारा हुआ है। इसमें कुल (१) मित्रलाभ (२) सुहृद्भेद (३) विग्रह और (४) सन्धि चार प्रकरण हैं तथा इन चारों प्रकरणों में कुल मिलाकर अड़तीस कथाएँ हैं और इन कथा-रूपी लताओं में न जाने कितनी शिक्षाएँ, उपदेश आदि रूपी फल-फूल और पत्तियाँ चुनी हुई हैं।

प्रत्येक प्रकरण का अपना एक साध्य-बिन्दु है। इसी के प्रकाश में उस प्रकरण की सारी शिक्षाएँ आती हैं और उस शिक्षा के ही अनुरूप उस प्रकरण की कथाएँ भी आई हैं। जैसे मित्रलाभ प्रकरण का साध्य-बिन्दु है—उचित मित्रों से कितने लाभ हैं। बस इसी के प्रकाश में मूल कथा आरम्भ होती है। कबूतरों और एक बहेलिये की कथा—बहेलिया कबूतरों को फँसाने के लिये जाल फैलाता है और उस पर चावल बिछाता है। इसे देखकर कबूतरों का सरदार उन्हें (१) बाघ और लालची व्यक्ति की कथा सुनाकर सावधान करता है, और मूल कथा फिर आगे बढ़ती है। सब कबूतर अपने सरदार की आज्ञा से जाल-सहित उड़े तथा उड़ते-उड़ते एक चूहे के पास जाते हैं। वहाँ चूहा सबको बन्धन-मुक्त कर देता है। चूहे की यह महानता देखकर एक कौए ने उससे मित्रता जोड़ने के लिए प्रार्थना की। इस पर चूहे ने (२) सियार और मृग की कथा तथा (३) एक बिलाव और गृद्ध की कथा सुनाकर उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि भक्ष्य और भक्षक की मित्रता कभी नहीं होती। फिर वह चूहा उस निर्जन वन में क्यों रहता था, उसने यह स्पष्ट करने में (४) एक संन्यासी और अपनी कथा कह सुनाई। (५) लीलावती तथा बूढ़े की कथा तथा (६) लालची सियार की कथा कह सुनायी। इसके उपरान्त मूलकथा का सूत्र फिर आगे चलता है। जिस समय चूहा कौए को ये कथाएँ सुना रहा था, एक डरा हुआ मृग उसकी शरण में आया, लेकिन चूहा मृग को (७) एक बनिये और उसकी पत्नी की बेइज्जती की कथा तथा (८) हाथी और सियार की कथा सुनाकर उससे कहता है कि उन्हें वह स्थान शीघ्र ही छोड़ देना चाहिए। उन लोगों ने वही किया। फिर भी बहेलिया उनका पीछा करता ही रहा, परन्तु मित्रों के लाभ से उनका कुछ भी न बिगड़ सका।

उक्त कथाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि एक मूल कथा समूचे प्रकरण में आदि से अन्त तक चलती है। इसकी एक निश्चित शिक्षा होती है। इसी शिक्षा के उदाहरण में तथा इसकी परिपुष्टि में अन्य उपकथाएँ और अन्तर्कथाएँ आती हैं। समस्त कथाओं के पात्र प्रायः पशु-पक्षी हैं तथा समस्त देव-अदेव पात्र उपदेश और शिक्षाप्रद कथाएँ कहते रहते हैं।

फलतः पंचतन्त्र और हितोपदेश की कथाएँ विशुद्ध रूप से नीति-कथाएँ हैं। इनका मुख्य लक्ष्य शिक्षा है और कथा-तत्व इनके साधन मात्र हैं। फिर भी परवर्ती संस्कृत-कथा-साहित्य में ये दोनों नीति-ग्रन्थ सदा अमर रहेंगे।

प्राकृत और अपभ्रंश में कथा-तत्व

संस्कृत की भाँति प्राकृत में भी हमें कितने मुक्तक और प्रबन्ध-काव्य मिलते हैं। लेकिन स्मरणीय यह है कि यहाँ इन मुक्तक और प्रबंध-काव्यों में आख्यान या आख्यानक काव्य के तत्व बहुत ही कम मिलते हैं। परन्तु महाराष्ट्री प्राकृत में 'कौतूहल' द्वारा रचित 'लीलावती कथा' का स्थान आख्यानक काव्यों में बहुत उच्च है। इसकी कथा भी मनोरंजक है। गोदावरी तट पर प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन और सिंहल के राजा शिलामेघ की पुत्री लीलावती के प्रेम और विवाह का चित्रण कवि ने गाथाबद्ध रचना में किया है। यह गाथाबद्ध रचना प्राकृत की सबसे बड़ी देन है। फलतः संस्कृत कथा-शैली से प्राकृत में गाथा का यह विकास स्मरणीय रहेगा। इस कथा को कवि ने दिव्य-मानुषी कथा कहा है और इसमें वस्तुतः देवता और मनुष्य परस्पर दोनों वर्गों के पात्र मिलते हैं। संपूर्ण कथा अलंकृत काव्यमय शैली में प्रस्तुत की गयी है तथा इस पर प्रबंध शैली का प्रत्यक्ष प्रभाव है। इसके अतिरिक्त मुख्य कथा के अन्तर्गत और कथाएँ भी आयी हैं और इसको सुसम्बद्ध करने तथा कथा को एकसूत्रता देने में स्पष्ट रूप से कवि पर 'कथासरित्सागर' और 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' की कथा-शैली का प्रभाव लक्षित है।

अपभ्रंश में साहित्य और कला की दृष्टि से जैन अपभ्रंश का स्थान सर्वोपरि है। इसमें मुक्तक काव्य और कथाएँ अधिकांश रूप में मिलती हैं। आख्यानक काव्य की दृष्टि से इसमें प्रेम-कथा 'पउमसिरी चरिउ'—'पद्मश्री चरित्र' धारिल कवि की एकमात्र कृति मिलती है। इसमें पद्मश्री के पूर्व-जन्मों की कथाएँ हैं। एक जन्म में वह वसन्तपुर नगर के सेठ धनसेन की पुत्री धनश्री थी। धनदत्त और धनावह उसके भाई थे। एकाएक धनश्री विधवा हो जाती है, और अपने भाई की शरण में धार्मिकता का जीवन व्यतीत करती है। लेकिन उसके बड़े भाई की स्त्री यशोमति उस पर व्यंग करती है और कुछ ही दिनों बाद तप करती हुई धनश्री स्वर्गवास करती है। दूसरे जन्म में इसका जन्म हस्तिनापुर में होता है और इसका नाम पद्मश्री रखा जाता है। उधर धनदत्त और धनावह का पुनर्जन्म अयोध्या में होता है और इनका नाम क्रमशः समुद्रदत्त तथा वृषभ-

दत्त रखा जाता है। तरुण होने पर संयोगवश धनश्री और समुद्रदत्त से प्रेम होता है। लेकिन पूर्व जन्म के कर्मानुसार दोनों में भेद उत्पन्न होता है। फलतः समुद्रदत्त पद्मश्री को छोड़ कर कान्तिमती से विवाह करता है। पद्मश्री भ्रमण करती हुई अयोध्या पहुँचती है और पुनः कान्तिमती से अपमानित होती है। अन्त में तपस्या करती हुई पद्मश्री मोक्ष प्राप्त करती है।

इसके अतिरिक्त श्रीचन्द के एक कथा-कोष का भी पता मिलता है। इसमें विद्वानों का कहना है कि मनुष्य, देव, पशु-पक्षी आदि पात्रों के माध्यम से अनेक उपदेशात्मक कथाएँ हैं। इस पर भी प्रत्यक्ष रूप से जातक और पंचतन्त्र का प्रभाव स्पष्ट है।

जैन अपभ्रंश साहित्य में महाभारत की कथा से सम्बन्धित अनेक कृतियाँ मिलती हैं। इसमें यशकीर्ति का 'हरिवंश पुराण' सबसे महत्वपूर्ण है।

सारांशतः प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में कथा का रूप मूलतः काव्यात्मक रहा है, जिसमें प्रबन्ध और मुक्तक के रूप विशेष ढंग से मिलते हैं। जैसे, प्राकृत प्रबन्ध-काव्य के अन्तर्गत 'सेतुबन्ध' साहित्यिक महाकाव्य है। 'महावीर चरितादि' जैन धार्मिक प्रबन्धात्मक रचनाएँ हैं, तथा बसुदेव हिन्डी और समराहच्चकहा गद्य-पद्य-मिश्रित कथा-कृतियाँ हैं। मुक्तक के अन्तर्गत 'गाथा सप्तशती' और 'वज्जलग्ग' स्मरणीय हैं। अपभ्रंश प्रबन्धात्मक काव्य में 'पउमसिरीचरिउ' के अतिरिक्त 'भविसयत्त कहा' और विशुद्ध खण्ड-काव्य के अन्तर्गत 'संदेसरासक' और व्रतादि से सम्बन्धित अनेक पद्यबद्ध छोटी-छोटी कथाएँ मिलती हैं।

इन सबका प्रभाव परवर्ती साहित्य के कथा-तत्व पर कितना पड़ा, इसके उत्तर में हम मध्यकालीन हिन्दी आख्यान काव्य को रख सकते हैं तथा प्राकृत अपभ्रंश के कथा-तत्व को हम इन मध्यकालीन आख्यानक काव्य के कथा-तत्व में ढूँढ सकते हैं। लेकिन हिन्दी के आदि युग चारणकाल अथवा वीरगाथा-काल में इसका क्या प्रभाव पड़ा, यह चिन्त्य है। वस्तुतः हिन्दी-साहित्य के आदि-काल में भी कथा-तत्व और कथा-प्रवृत्ति दोनों अपने सुन्दर रूप में हमें मिलती हैं। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने इस काल को प्रेम-गाथा और लोक-गाथा-काल कहा है।

चारण-साहित्य में कथा-तत्व

समूचे चारण-साहित्य में दो शैलियाँ मिलती हैं : प्रथम, प्रबन्धात्मक शैली और द्वितीय, गीतात्मक शैली। पिछले पृष्ठों में हमने देखा है कि प्राकृत और अपभ्रंश में प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक-काव्य दोनों वहाँ मिले हैं। उस काल में भी अपेक्षाकृत प्रबन्ध काव्य साहित्य के अन्तर्गत था और मुक्तक काव्य जनता की वस्तु थी तथा इसी को गेय बना कर और इसमें अन्यान्य दन्त-कथाओं को जोड़ कर इसे अपने मनोरंजन में लाते

थे। दूसरी ओर इसी को जैन धर्मावलम्बी, नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय वाले अपनी धार्मिकता के प्रचार में सदुपयोग करते थे।

विषय की दृष्टि से चारण-साहित्य मुख्यत: चार विषयों में विभाजित हैं। ये विषय हैं—इतिहास, बात, प्रसंग और दास्तान। इनकी परिभाषा चारणों ने यों दी है—

—'जिण खिसा में दराजी रहै खिसो इतिहास कहावै।

—'जिण खिसा में कम दराजी सो खिसो बात कहावै।'

—'इतिहास रो अवयव प्रसंग कहावै।'

—'जिण बात में एक प्रसंग हीज चमत्कारिक होय तिनका बात दास्तान कहावै।'

इस प्रकार चारण-साहित्य में पद्य को कविता और गद्य को वार्ता कहा गया है। इसी वार्ता को ही 'वचन का' बात और ख्यात कहा गया है। बात वस्तुत: किस्से और कथा के रूप में आया है और ख्यात इतिहास के रूप में।

कविता के अन्तर्गत 'बीसलदेव रासो' 'पृथ्वीराज रासो' आते हैं। प्राय: इन सब कथात्मक काव्यों में विभिन्न कथाओं की अवतारणा हुई है और उन्हीं के धरातल पर इनके काव्यात्मक स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई है। यहाँ इन कथाओं में प्राय: एक ही मूलभूत संवेदना है—कि कोई राजा किसी रानी से प्रेम करता है, उससे विवाह होता है, विरह की स्थिति आती है, संयोग होता है, अथवा किसी राजा को अपने तमाम विवाहों में अनेक युद्ध करने पड़ते हैं।

कथा के इन रूपों में लौकिक भावना अधिक है। यही कारण है कि इनमें से कुछ कथाओं का प्रचलन हमारी लोक-भावना में अधिक है और इनका रूप मुख्यत: दन्त-कथात्मक हो गया है। फलत: चारण-काल (ग्यारहवीं शताब्दी से आरम्भ) से आगे ही दन्त-कथाओं और कथात्मक लोकरुचि ने अनेक लोक-गाथाओं की सृष्टि की है। डॉ० रामकुमार वर्मा[२] ने, चारण काल के उपरान्त ही इस सृष्टि-काल को स्वतन्त्र लोक-गाथा-काल माना है।

लोक-गाथाएँ

वस्तुत: अपभ्रंश में ही और उसके साथ ही साथ सिद्ध-नाथ सम्प्रदाय वाले जन-भावना में वैराग्य अथवा धार्मिकता के अन्य स्वरूपों को प्रतिष्ठित करने के लिए अनेक इतिवृत्तात्मक सृष्टि करते थे। ये सब इतिवृत्ति संसार के भौतिक प्रेम के धरातल पर

---

1. A descriptive catalogue of Bardic and Historical Manuscripts, Section 1, Prose Chronicals Part 1, by Dr. L. P. Tessitory, Page 6.

२. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन····डॉ० रामकुमार वर्मा, तीसरा प्रकरण पृष्ठ, १३४, १६७; साहित्य भवन, ५ फनेस रोड, लाहौर।

खड़े किये जाते थे और अन्त में इनके द्वारा इस भौतिक संसार की निस्सारता सिद्ध की जाती थी। दूसरी ओर प्राकृत, अपभ्रंश और बाद को चारण-साहित्य के कथात्मक काव्य धीरे-धीरे अपने परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप में घुल-मिल रहे थे।

इन लोक-गाथाओं में गीतात्मकता इनकी प्रमुख विशेषता है। इसके अतिरिक्त इनमें जातीय सांस्कृतिक परम्परा, प्राकृतिक सौंदर्य, जीवन की सरलता और सरसता, अलौकिक प्रभाव तथा मानव और अमानव का सम्बन्ध इनकी अनेक विशेषताएँ हैं। भाव-पक्ष की दृष्टि से इनमें सर्वत्र व्यक्तिगत और पारस्परिक परिस्थितियाँ भी समान रूप में वर्तमान रहती हैं; जैसे, नायक और नायिका में पूर्वानुराग, वियोग और बारहमासा चित्रण आदि। समस्त लोकगाथाएँ अपने तीन रूपों में मिलती हैं। पहला रूप पद्यात्मक, दूसरा गद्यात्मक और तीसरा मिश्रित है।'

पद्यात्मक रूप में सबसे प्रसिद्ध लोक-गाथाएँ 'ढोलामारूरा दुहा'[१] और 'माधवानल कामकंदला'[२] है। इनके अतिरिक्त 'हीर-राँझा', 'कुतुब सतक', 'सिंहासन बत्तीसी'[३] 'पंच सहेलीरादूहा'[४] 'मैनासत'[५] 'चन्दन मलियागिरी री बात', 'क्रिया विनोद'[६] भी सुन्दर पद्यात्मक लोकगाथाएँ हैं।

गद्यात्मक रूप से 'बैताल पचीसी', 'सिंहासन बत्तीसी' की कथा 'बगले हंसिणी की कथा', और 'फुटकर बातां री संग्रह' हैं। 'फुटकर बातां री संग्रह' में डा० एल० पी० टैसीटरी ने अनेक कथाओं का संग्रह किया है, जैसे 'मांई कर रह्यो है तै री बात', 'कुतुब दी साहिजादै री बात', 'मौमल री बात', देवों नायक देरी बात', 'बुद्धिमल कथा दो कहाणियाँ, मौमल री बात', 'सुपियार देरी बात', आठ कहाणियाँ, 'पाँच कहाणियाँ', 'वीझरे अहीर री बात', 'अमादै भटियाणी री बात', 'पलक दरियाव री कथा'। इन सबके कथाकार अलग-अलग चारण हैं।

मिश्रित रूप में 'मदन सतक', 'चंदकुंवर री बात', 'बीजा सोरठा री बात' और 'सदावृछ सावलिगा री बात' इनके सुन्दर उदाहरण हैं।

वस्तुतः इन सबके निर्माण और सृष्टि में संस्कृत के परवर्ती कथा साहित्य, दन्त-

---

१. ढोलामारूरा दूहा—काशी ना० प्रचा० सभा से प्रकाशित १९९१ वि०।

२. सम्पादक, एम० आर० मजूमदार : ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट बड़ौदा।

३. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (प्रथम भाग) पृष्ठ १५२, १५३ : पं० मोतीलाल मैनारिया, हिन्दी विद्यापीठ, उदयपुर १९४२।

४. वही, पृष्ठ ५०।

५. बार्डिक एण्ड हिस्टा० सर्वे आव् राजपूताना, सेक्शन २, पार्ट १, पृष्ठ ४२।

६. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (प्रथम भाग)—पंडित मोती लाल मैनारिया, हिन्दी विद्यापीठ, उदयपुर, १९४२ ई०, पृष्ठ ३९।

कथाओं, इतिहास और कल्पना का
स्पष्ट है कि जहाँ कोई लोक-गाथा
वृत्ति में सँवारी गयी है, वहाँ अन्
के आधार पर अवतरित हुई है।
पर प्रत्यक्ष रूप से प्राकृत, अपभ्रं
जैसे—'ढोलामारू', 'हीर-राँझा'
इस तरह इन लोक-गाथ
का अपने रूपों में इतनी सुन्दरत
कथा-शैलियों का समावेश है, दू
और समाज सबसे तादात्म्य स्था
हुआ ? इसका सीधा-सा उत्तर
में स्थान कर लेता है और जन-रु
वीरता की प्रेरणा उनमें अनाय
उपर्युक्त गाथाओं में
काम-कंदला' इन सबका धरात
में इतना है कि इनके विभिन्न रू
अन्य जनपदीय बोलियों में मि
साहित्य का विकास-काल है औ
कथाएँ आज भी विकसित होती
गाथाओं का आरंभ जैन कवि
में इनका पूर्ण उत्कर्ष हुआ अ

मध्यकालीन हिन्दी अ

मध्यकालीन हिन्दी-
और अपभ्रंश में आए हुए प्रब
हैं। हिन्दी के चारण-काल
में वह प्रेम विशुद्ध लौकिक
प्रेम-कथाएँ प्रतिष्ठित हुईं।
कल्पित—अथवा मिश्रित
से हिन्दी में जो आख्यानक
से सिद्ध हुए। ये मध्यकाल

१. हिन्दी साहि
वर्मा, साहित्य भवन, लाह

कथाओं, इतिहास और कल्पना का सामूहिक हाथ है । इन लोक-गाथाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि जहाँ कोई लोक-गाथा कुछ काल्पनिक प्रेम चरित्रों को लेकर उनकी इतिवृत्ति में सँवारी गयी है, वहाँ अन्य लोक-गाथाएँ कुछ ऐतिहासिक या सामाजिक घटनाओं के आधार पर अवतरित हुई हैं । इनके अतिरिक्त कुछ कथाएँ ऐसी भी आती हैं, जिन पर प्रत्यक्ष रूप से प्राकृत, अपभ्रंश और चारण काल के कथात्मक काव्य की छाप है, जैसे—'ढोलामारू', 'हीर-राँझा' ।

इस तरह इन लोक-गाथाओं ने अपने समस्त पूर्ववर्ती कथा-साहित्य के प्रकारों का अपने रूपों में इतनी सुन्दरता से समन्वय किया है कि उनमें जहाँ एक ओर विभिन्न कथा-शैलियों का समावेश है, दूसरी ओर उनमें उपदेश, नीति, शिक्षा, इतिहास, व्यक्ति और समाज सबसे तादात्म्य स्थापित हुआ है । ऐसा एक स्थान पर सब कुछ कैसे सम्भव हुआ ? इसका सीधा-सा उत्तर है कि साहित्य का कथा पक्ष बहुत सरलता से जन-रुचि में स्थान कर लेता है और जन-रुचि की दंत-कथात्मक, मनोरंजनात्मक शक्ति तथा प्रेम और वीरता की प्रेरणा उनमें अनायास ही कितनी लोक-गाथाओं की सृष्टि करती रहती है ।

उपर्युक्त गाथाओं में जितनी प्रमुख गाथाएँ है—जैसे 'ढोलामारू' और 'माधवानल काम-कंदला' इन सबका धरातल मुख्यतः प्रेम है । इन प्रेम-गाथाओं का स्थान जन-भावना में इतना है कि इनके विभिन्न रूप अथवा इनके सादृश्य पर बनी और भी प्रेम-गाथाएँ हमें अन्य जनपदीय बोलियों में मिलती हैं । फलतः यही लोक-गाथा काल हमारे जनपदीय साहित्य का विकास-काल है और इसी साहित्य के प्रभाव से हमारी ग्राम-कथाएँ, प्रेम-कथाएँ आज भी विकसित होती रहती है, लेकिन विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से इन लोक-गाथाओं का आरंभ जैन कवियों की वैराग्यपरक रचनाओं में हुआ, लौकिक-प्रेम-गाथाओं में इनका पूर्ण उत्कर्ष हुआ और प्रेमाख्यानक काव्यों में इनका पर्यवसान हुआ ।[1]

मध्यकालीन हिन्दी आख्यानक काव्य

मध्यकालीन हिन्दी-काव्य में प्रेमाख्यानक काव्य सबसे अधिक मिलते हैं । प्राकृत और अपभ्रंश में आए हुए प्रबन्ध काव्य या आख्यान काव्य विशुद्ध प्रेम के धरातल पर मिलते हैं । हिन्दी के चारण-काल में भी उसकी प्रायः वही स्थिति रही, लेकिन लोक-गाथाओं में वह प्रेम विशुद्ध लौकिक धरातल पर आया तथा उस पर अन्यान्य लोक-गाथाएँ और प्रेम-कथाएँ प्रतिष्ठित हुई । मध्यकालीन हिन्दी आख्यानक काव्यों में इन्हीं लौकिक-कल्पित—अथवा मिश्रित प्रेम-कथाओं में आध्यात्मिकता जोड़ी गयी और इसके तादात्म्य से हिन्दी में जो आख्यानक काव्य आए, उनमें कथा-शिल्प भावनात्मकता दोनों अपूर्व ढंग से सिद्ध हुए । ये मध्यकालीन हिन्दी आख्यानक काव्य; जैसे—कुतुबन की 'मृगावती,'

१. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृष्ठ १४५ : डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, लाहौर ।

जायसी का 'पद्मावत', मंझन 'मधुमालती', उसमान की 'चित्रावली', नूर मुहम्मद की 'इंद्रावती' और 'पुष्पावती', आदि—जहाँ एक ओर अपने वर्णनों, चित्रणों और काव्यात्मक रसात्मकता में उत्कृष्ट हैं, वहाँ दूसरी ओर इनका कथा शिल्प भी परम आकर्षक है।

कथा-शिल्प

'पद्मावती', 'मृगावती', 'मधुमालती', इंद्रावती' आदि प्रेमाख्यानों का कथा-शिल्प प्रायः एक ही भाँति है क्योंकि इन सब में मूल कथा प्रारम्भ से विभिन्न आरोह अवरोहों के साथ अन्त तक चलती रहती है तथा अपने संयोग-बिन्दु पर आकर रुक जाती है। इसके पात्र, कथानकों की संधियाँ तथा इनके वर्णन सब प्रायः एक ही प्रकार के हैं, लेकिन मंझन की 'मधुमालती' के कथा-शिल्प पर 'कथासरित्सागर' और 'हितोपदेश' के कथा-शिल्प का प्रभाव है अर्थात् मूल कथा के विकास के साथ-साथ तमाम अन्तर्कथाएँ और उपकथाएँ उनसे फूटती रहती हैं और कथाओं की चरम-परिणति मूल कथाओं में ही होती रहती है।

इस प्रकार उक्त सभी प्रेम-कथात्मक कृतियों में कथा-तत्व और कथा-शिल्प दोनों पर्याप्त मात्रा में हैं।

यहाँ कथा तत्व अथवा कथानक वस्तुतः इसीलिए इतनी कलात्मकता से प्रस्तुत किए गए हैं, कि उस समय जनता उतने बड़े-बड़े प्रेमाख्यानों को अधिकतर कथा की जिज्ञासा और आग्रह से पढ़ती और सुनती रही होगी, आध्यात्मिकता के आग्रह से उतना नहीं। अतः स्पष्ट शब्दों में इन प्रेमाख्यानों में कथा-तत्व युग की वस्तु है और इनकी आध्यात्मिकता कवि की अपनी वस्तु रही है, जिसका संचयन वह स्वान्तःसुखाय के लिए करता रहा होगा तथा इस विकास के पीछे प्राकृत और अपभ्रंश कथा-तत्व की प्रेरणा संस्कृत के परवर्ती कथा-साहित्य के तत्वों की प्रेरणा से अधिक रही है।

वार्ता-साहित्य की धार्मिक कथाएँ

चारण साहित्य में हमें बात की शैली का दर्शन हो जाता है, लेकिन उस काल में बात मुख्यतः पद्य ही के लिए प्रयुक्त होता था। यहाँ वार्ता साहित्य मुख्यतः ब्रजभाषा-गद्य की वस्तु है और इस वार्ता पर प्राचीन संस्कृत की कथा-वार्ता शैली की पूरी छाप है। यह साहित्य विशेषकर पुष्टिमार्गीय श्री वल्लभ सम्प्रदायी वैष्णव से सम्बन्धित है। इसमें यथासम्भव वैष्णव भक्तों के जीवन-सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन कथाओं के माध्यम से हुआ है। इन कथाओं का ध्येय वल्लभ सम्प्रदाय के प्रति हममें आस्था उत्पन्न करना है। वार्ता से यहाँ तात्पर्य वैष्णव के जीवन-सम्बन्धी घटनाओं की कथा के पुट से अभिगत करना है। वार्ता-साहित्य के मुख्यतः दो प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं (१) चौरासी वैष्णवन की वार्ता[१] और (२) दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता[२]।

१. गोकुलनाथ, लक्ष्मी वेंकटेश्वर, कल्याण बम्बई, सं० १९८५।
२. गोकुलनाथ, लक्ष्मी वेंकटेश्वर, कल्याण बम्बई, सं० १९८८।

चौरासी वैष्णवन की

चौरासी वैष्णवन की
मिलती हैं जो वैष्णव के जीव
'दामोदर दास हर्षानी की वा
तिनकी वार्ता', 'नरहर दास
जीवन सम्बन्धी किसी एक घ
केवल एक छोटी-सी बात के
भाट तिनकी वार्ता'[१] 'सो
भाई श्री आचार्य जी महाप्र
करवायौ पाछे श्रीनाथ जो
कविराज भाट के ऊपर बहु
प्रभून के ऐसे परम कृपा प
उक्त वार्ता से स्पष्
है। न इसमें कोई कथा-त

दो सौ बावन वैष्णव

ये वार्ताएँ भी मू
अपेक्षाकृत कुछ अधिक क
चरित्र-चित्रण की ओर
प्रेत,[५], एक वेश्या[६], एक
आदि वार्ताएँ चौरासी वै
कथा-तत्व आए हैं तथा
तीन विशेषताएँ नितान्त

१. चौरासी वै
२. दो सौ बाव
३. दो सौ बाव
४. दो सौ बा
५. दो सौ बा
६. दो सौ बा
७. दो सौ बा
८. दो सौ बा
९. दो सौ ब
१०. दो सौ ब

चौरासी वैष्णवन की वार्ता

चौरासी वैष्णवन की वार्ता में कुल चौरासी वार्ताएं संग्रहीत है। इनमें वे वार्ताएं मिलती हैं जो वैष्णव के जीवन-सम्बन्धी विवरण पर थोड़ा-सा प्रकाश डालती हैं: जैसे 'दामोदर दास हर्षानी की वार्ता', 'पद्मनाभ दास कन्नौजिया ब्राह्मण', 'कन्नौज में रहने तिनकी वार्ता', 'नरहर दास तिनकी वार्ता' आदि। इन वार्ताओं में वैष्णव भक्तों के जीवन सम्बन्धी किसी एक घटना से अधिक का विवरण नहीं मिलता और यह विवरण केवल एक छोटी-सी बात के धरातल पर कथात्मकता के पुट से आता है; जैसे 'कविराज भाट तिनकी वार्ता'[1] 'सो वे कविराज भाट ब्राह्मण हुते, सो तीन भाई हुते, सो तीन भाई श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे परम कृपापात्र भगवदीय हैं उनको समर्पण करवायौ पाछे श्रीनाथ जो के सन्निधान कवित्त सुनावते पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभु कविराज भाट के ऊपर बहुत प्रसन्न रहने, सो वे कविराज भाट श्री आचार्य जी महाप्रभून के ऐसे परम कृपा पात्र भगवदीय हैं ताते इनकी वार्ता अब कहाँ ताई लिखिए।'

उक्त वार्ता से स्पष्ट है कि इसका धरातल कथा की दृष्टि से कितना सामान्य है। न इसमें कोई कथा-तत्व ही है, न जीवन का कोई संतुलित पक्ष ही।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

ये वार्ताएँ भी मूलतः धार्मिक धरातल से आई हैं, लेकिन इनकी संवेदनाओं में अपेक्षाकृत कुछ अधिक कथा-तत्व आए हैं। भाव-पक्ष में मानव-अनुभूतियाँ और उनके चरित्र-चित्रण की ओर आग्रह भी है; जैसे वेश्या की बेटी[2], हंस हंसनि[3], दो ठग[4], दो प्रेत,[5], एक वेश्या[6], एक चोर[7], पठान का बेटा[8], एक सौदागर[9] और सामुबहू[10] आदि वार्ताएँ चौरासी वैष्णवन की वार्ताओं से बिलकुल अलग हैं। इनमें अधिक से अधिक कथा-तत्व आए हैं तथा इनका स्थान कथा-विकास की कड़ी में है। इनके कथा-तत्व की तीन विशेषताएँ नितान्त स्पष्ट हैं। इनमें एक छोटी-सी कथा-वस्तु है, एक घटना है,

---

१. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ २४६।
२. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ १२७।
३. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ ३७२।
४. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ ३६४।
५. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ २७८।
६. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ २६४।
७. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ २२४।
८. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ ३०८।
९. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ ४६५।
१०. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ ३६२।

और इन दोनों का आरोह-अवरोह भी है, तथा इनके विकास की एकसूत्रता भी है। लेकिन फिर भी इन वार्ताओं का ध्येय वही है अर्थात् वैष्णवधर्म सर्वोत्कृष्ट है और श्री ठाकुर जी परम महान् हैं।

शिल्प-विधि

विशुद्ध शैली की दृष्टि से ये वार्ताएँ वर्णनात्मक ढंग से कही गयी हैं। इनमें कौतूहल और जिज्ञासा-वृत्ति पर कोई विशेष बल नहीं पड़ता। फलतः इन वार्ताओं में कथा-तत्व केवल इसी अर्थ में है कि यहाँ जीवन की किंचित् घटनाओं-विवरणों की अभिव्यक्ति कथा के माध्यम से हुई है, लेकिन इसे हम यों भी कह सकते हैं कि हिन्दी गद्य में यह पहला प्रयत्न है, जहाँ जीवन की कुछ यथार्थ बातें कथा-तत्व में ढल कर हमारे साहित्य में आई हैं।

सिंहावलोकन

पिछले पृष्ठों में हमने संक्षिप्त रूप में वैदिक काल से लेकर हिन्दी के मध्ययुग तक के कथा-साहित्य के ऐतिहासिक विकास-सूत्र का अध्ययन किया है। इसमें हमने वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, चारण काल तथा मध्ययुगीन हिन्दी आख्यानक काव्यों-वार्ताओं आदि में कथा के क्रमिक रूपों का अवलोकन तथा अध्ययन किया है। इनमें जहाँ हमने कथा को विभिन्न शैलियों से परिचय प्राप्त किया है, वहाँ हमें यह भी स्पष्ट हुआ है कि कथा और चरित्र के रूपों के परिवर्तन के साथ-साथ किस भाँति कथाओं, आख्यानों के विषय और लक्ष्य में भी परिवर्तन होते गये हैं।

वैदिक काल में कथाएँ अपने बीज रूप में, देवताओं की स्तुति और यज्ञादि के मंत्रों के बीच में छिपी हुई थीं और उनका ध्येय विशुद्ध धार्मिक था। उपनिषद्-काल में कथाओं की मुख्य संवेदनाएँ अध्यात्म-ज्ञान और अध्यात्म-चर्चा को लिये हुए आई हैं। पौराणिक काल में जीवन अपने सम्पूर्ण रूपों में अभिव्यक्त हो उठा है। धर्म, समाज, राजनीति का समावेश साहित्य में हुआ है। फलतः यहाँ से दन्त-कथाओं एवं आख्यानों का आरम्भ हुआ है। जीवन और साहित्य में कथा ने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया है। इसके प्रभाव का उदाहरण हमने सम्पूर्ण परवर्ती संस्कृत-कथा-साहित्य में देखा है। पालि-साहित्य में कथाओं का आकार अपेक्षाकृत छोटा हो गया है और कथा के माध्यम से धर्म की प्रचारात्मक नीति की नींव पड़ी है। प्राकृत और अपभ्रंश में कथाएँ लौकिक एवं जीवन और यथार्थ के धरातल पर आयी हैं, फलतः यहाँ मनोरंजक कथाओं के साथ ही प्रेमाख्यानों और आख्यानों की भी सृष्टि हुई। चारण-काल और गाथा-काल में कथा के इस विकास का चरम उत्कर्ष हुआ तथा मध्ययुग के प्रेमाख्यानों और वार्ताओं में उसका पर्यवसान हुआ।

●

आविर्भाव-युग

हिन्दी के आरम्भ और मध्यकाल में काव्य की प्रमुखता थी। प्राय: सब प्रकार के विषयों और विवेचनाओं का माध्यम पद्य ही था, लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि काव्य की इस अपूर्व प्रमुखता में कथा का महत्व सर्वत्र था। कुछ ही स्फुट गीतों और उद्गार प्रकट करने वाले कवियों को छोड़ कर शेष समस्त कवियों की वाणी का मूलाधार कथा ही था। चन्दबरदाई का 'रासो', जगनिक का 'आल्ह-खण्ड' तथा उस समय की अन्य लोक-गाथाएँ, जायसी का 'पद्मावत', सूर का 'सूरसागर', तुलसी का 'मानस', केशव की 'रामचन्द्रिका', लाल का 'छत्र प्रकाश' और सूदन का 'सुजान चरित्र' आदि सब काव्य-ग्रन्थों का मेरुदण्ड कथा ही है। दूसरे शब्दों में हम यहाँ तक कह सकते हैं कि ये सब कथाएँ हैं या कथाओं पर आश्रित काव्य-कृतियाँ हैं। वस्तुत: यह परम्परा संस्कृत-साहित्य के महाकाव्यों और अपभ्रंश-साहित्य के प्रेमाख्यानों से आई हुई ज्ञात होती हैं। हिन्दी के मध्ययुग ही में बल्लभ-सम्प्रदाय ने ब्रजभाषा-गद्य को भी जन्म दिया और गोकुलनाथ जी की वैष्णवों की वार्ताओं के माध्यम से हिन्दी-कथा को एक नवीन मार्ग मिला, लेकिन इस दिशा में शीघ्र ही हिन्दी खड़ीबोली के आ जाने से यह मार्ग बन्द हो गया और कथा का सर्वथा अन्य रूप हमारे सामने आया।

हिन्दी खड़ीबोली में कथाओं का आरम्भ

ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रजभाषा, राजस्थानी और खड़ीबोली इन तीनों में गद्य की स्फुट साहित्यिक परम्पराएँ हमें पहले मिली थीं, लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन तीनों परम्पराओं से खड़ीबोली-गद्य को एक नूतनतम पथ मिला और यह ब्रज-भाषा और राजस्थानी की परम्पराओं को छोड़ कर स्वयं प्रकाश में आ गयी तथा यहाँ से इसके गद्य-साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास मिलने लगा, जिसमें कथा की शृंखला सबसे महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। उन्नीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध ही हिन्दी कहानियों की पीठिका है। पिछले पृष्ठों में हमने जो अब तक कथा-सूत्र का अध्ययन किया है, वस्तुत: उसका महत्व केवल ऐतिहासिक है, लेकिन भारतेन्दु से पूर्व की हिन्दी-कथाओं का अध्ययन तथा अगले पृष्ठों में उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध के कथा-सूत्र और पत्र-पत्रिकाओं में कथा-तत्व और कहानी तत्व का इतिवृत्तात्मक अध्ययन हिन्दी-कहानियों की भावभूमि का वह अध्ययन है, जिसके प्रकाश में इसकी उत्पत्ति ढूँढ़ी जा सकती है।

भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी-कथाएँ

भारतेन्दु से पूर्व का कथा-साहित्य मुख्यतः पौराणिक आख्यानों पर आधारित है और लेखक-गण रागात्मक कल्पनाओं से प्रेरित हैं। भारतेन्दु से पूर्व (१८०० ई० से १८५८ ई०) हिन्दी-गद्य की दिशा में, हमें तीन महत्वपूर्ण ग्रन्थ मिलते हैं। पहला लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' (१८०३-१८०६), दूसरा सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' (१८०३ ई०) और तीसरा सैयद इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' (१८०० ई० से १८१० के बीच)। 'प्रेमसागर' के अतिरिक्त लल्लूलाल से संबंधित 'सिंहासन बत्तीसी' 'बैताल पच्चीसी' और 'माधोनल' उनके अन्य कथा-ग्रन्थ कहे जाते हैं, लेकिन ऐतिहासिक और आलोचनात्मक दृष्टि से केवल 'प्रेमसागर' का ही महत्व है, क्योंकि इनके अन्य ग्रन्थ संस्कृत-कथा-साहित्य के भावानुवाद या छायानुवाद-मात्र हैं।

प्रेमसागर

लल्लूलाल का प्रेमसागर[1] भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद नहीं है, बल्कि दशम स्कन्ध के अनुसार कृष्ण-चरित्र का पौराणिक दृष्टि से वर्णन है। इस तरह, समस्त प्रेमसागर इक्यानबे अध्यायों में बँटा है और सब अध्यायों में कृष्ण के जन्म से लेकर कंस-बध और महाभारत के नायक अर्जुन-भेंट तक की कथा है। इन अध्यायों के विस्तार में भागवत के दशम स्कन्ध की कथाएँ इसमें आ गई हैं। इन कथाओं की शैली अक्षरशः पौराणिक है। वर्णनों के माध्यम से कथा आरम्भ होती है और एक कथा की पूर्ति में अनेक कथाएं जन्म पाती जाती हैं। ये कथाएँ पुराणों की भाँति श्री शुकदेव जी द्वारा राजा परीक्षित से कही गई हैं!

"इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, हे महाराज! कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज करने लगा और उग्रसेन दुःख से मरने। देवक जो कंस का चाचा था, उसकी कन्या देवकी जब ब्याहन-योग हुई तब विन्नै जा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें। वह बोला, सूरसेन के पुत्र बसुदेव को दीजिये। इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाय शुभ लग्न ठहराय, सूरसेन के घर टीका भेज दिया, तब तो सूरसेन भी बड़ी धूम-धाम से बारात बनाय, सब देश-देश के नरेश साथ ले मथुरा में बसुदेव को ब्याहन आये[2]।"

नासिकेतोपाख्यान

नासिकेतोपाख्यान[3] की भूमिका से स्पष्ट है कि यह पुस्तक संस्कृत के नासिकेतो-

१. प्रेमसागर—अनुवादक लल्लूलाल, सम्पादक पं० योगाध्वन मिश्र, फोर्ट विलियम किताब कालेज, १८४२ ई०।

२. प्रेमसागर, पृष्ठ ६।

३. नासिकेतोपाख्यान—अनुवादक, सदल मिश्र, सम्पादक श्यामसुन्दर दास, ना० प्र० सभा १६२५।

पाख्यान से अनूदित है जिसमें
णिक कथा है जिसे वैशम्पायन
के पास पिप्पलाद मुनि गये
दी। घटनाओं के विकास मे
से मिलता है। नासिकेत क
है और सब अपने आश्रम प
नासिकेत को जीवित ही य
के पास लौटता है तथा य

वस्तुतः यह कथा
आख्यान-रूप में बदली है
अपेक्षा अधिक कलात्मक
कथा है तथा समस्त कथा

रानी केतकी की क

आलोच्य काल के
अधिक है। यद्यपि इसके
हिन्दवी छुट और किसी
भाखापन भी न हो, लेकि
कथात्मक मौलिक रचना
किसी की छाया तक है
जहाँ-तहाँ कविता का भ

इसकी कथावस
शिकार में एक हिरन
पचास (स्त्रियाँ) भूला
राजकुमार जब अपनी
किया। राजा की ओर
प्रस्ताव को अस्वीकार
ने जोगी महेन्द्र की स
दिया। इधर रानी के
उसे विजय दिलवाई

१. सैय्यद इ
बी० ए०, ना० प्र०

पाख्यान से अनूदित है जिसमें चन्द्रावली की कथा कही गई है। वस्तुतः यह भी पौराणिक कथा है जिसे वैशम्पायन जी जनमेजय को सुनाते हैं कि ब्रह्मा के पुत्र उद्दालक मुनि के पास पिप्पलाद मुनि गये और उन्होंने उनसे वैवाहिक जीवन व्यतीत करने की सलाह दी। घटनाओं के विकास में उद्दालक नासिकेत के पिता होते हैं और वह अपने पिता से मिलता है। नासिकेत की माता चन्द्रावली भी बाद को ढूँढ़ती-ढूँढ़ती वहीं मिलती है और सब अपने आश्रम पर जाते हैं। वहाँ उद्दालक की आज्ञा की अवहेलना पर नासिकेत को जीवित ही यमपुर जाने का शाप मिलता है। समयानुकूल वह फिर पिता के पास लौटता है तथा यमपुर आदि का वर्णन करता है।

वस्तुतः यह कथा कठोपनिषद् की है और अपने पौराणिक रूपों में होती हुई आख्यान-रूप में बदली है। शैली की दिशा में 'नासिकेतोपाख्यान' 'प्रेमसागर' की अपेक्षा अधिक कलात्मक और सुगठित है। यह पूर्णतः पौराणिक शैली में आई हुई कथा है तथा समस्त कथाओं के वर्णन और उद्देश्य भी पौराणिक हैं।

रानी केतकी की कहानी

आलोच्य काल के कथा-सूत्र में, रानी केतकी[1] की कहानी का महत्व सबसे अधिक है। यद्यपि इसके लिखने का उद्देश्य एक ऐसी रचना करना था जिसमें हिन्दी, हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो, लेकिन फिर भी यह रचना उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध की प्रथम कथात्मक मौलिक रचना है। यह न किसी के आधार पर लिखी गई है, न इस पर किसी की छाया तक है। कथा कहने का ढंग भी चित्ताकर्षक और मनोहर है। इसमें जहाँ-तहाँ कविता का भी पुट दिया गया है।

इसकी कथावस्तु से स्पष्ट है कि किसी देश के एक राजकुमार कुँवर उदैभान एक शिकार में एक हिरन का पीछा करते-करते एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ चालिस-पचास (स्त्रियाँ) झूला झूल रही थीं। उनमें से एक रानी केतकी से प्रेम हो गया। राजकुमार जब अपनी राजधानी लौटा, तब उसने राजा से इस विवाह का प्रस्ताव किया। राजा की ओर से एक ब्राह्मण उस राजा के यहाँ गया, लेकिन राजा ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, फिर राजाओं में लड़ाई हुई। रानी केतकी के पिता ने जोगी महेन्द्र की सहायता से कुँवर उदैभान और उसके माँ-बाप को हिरन बना दिया। इधर रानी केतकी ने भी उसी योग क्रिया से कुँवर का पक्ष लिया और उसने उसे विजय दिलवाई। फिर दोनों की शादी हो जाती है।

---

१. सैय्यद इंशा अल्ला खां लिखित रानी केतकी की कहानी : श्यामसुन्दर दास बी० ए०, ना० प्र० सभा, तृतीय आवृत्ति, सं० २००२।

शैली

वस्तुतः इंशा अल्ला खाँ अरबी-फारसी के विद्वान थे। उनके संस्कारों में अरबी-फारसी मसनवियाँ और दास्तानों के रूप ताजे थे, फलतः उन्होंने इन सब अरबी-फारसी शैलियों को मिला कर 'रानी केतकी की कहानी' लिखी है। इसका आरम्भ ईश्वर की प्रार्थना से होता है इसके आरम्भ ही में कहानी लिखने का प्रयोजन दिया गया है। इन बातों से मसनवी शैली का प्रभाव स्पष्ट है। दूसरी ओर इसकी कथा, इसके विकास आदि में दास्तान शैली का प्रभाव है। समूची कथा विभिन्न परिच्छेदों से हो कर आगे बढ़ी है; जैसे (क) कहानी के जीवन का उभार और बोलचाल की दुलहिन का सिंगार, (ख) आना जोगी महेन्दर गिर का कैलास पहाड़ से और कुँवर उदैभान तथा उसके माँ-बाप को हिरनी-हिरन कर देना, (ग) रानी केतकी का भभूत लगा कर निकल जाना, (घ) राजा इन्द्र का कुँवर उदैभान का साथ करना, (ङ) आ पहुंचना कुंवर का ब्याह के ठाट के साथ दूल्हन का ड्योढ़ी पर।

इंशा अल्ला खाँ ने अपनी इस लम्बी कथा को 'कहानी' कहा है; यही कारण है कि हिन्दी के कुछ आलोचकों ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की पहली कहानी माना है, लेकिन यह पूर्णतः अवैज्ञानिक है। यहाँ उन्होंने कहानी का तात्पर्य केवल कथा से लिया है। जैसा कि इस कथा-ग्रन्थ से ही स्पष्ट है, यह एक लम्बी और विस्तृत कथा है, जिसमें बार-बार पद्य का भी प्रयोग हुआ है तथा इसकी शैली से दास्तान और मसनवी का रूप स्पष्ट हो जाता है। लेकिन यह सत्य है कि हमारे आलोच्य काल की कथा की दिशा में इसके मूल्य सबसे अधिक है।

व्यवधान

हमारे उक्त आलोच्य काल में यह जो कुछ कथा की दिशा में संभव हुआ, उसका भी विकास आगे काफी समय तक न हो सका। यद्यपि यह सत्य है कि उक्त कथा-साहित्य अपने कलात्मक रूप में कुछ भी नहीं था, लेकिन फिर भी इसका विकास आगे एक लम्बे व्यवधान के कारण रुक ही गया। वह लम्बा व्यवधान दो दिशाओं से प्रस्तुत हुआ-प्रथम गद्य-कथा के पाठकों की अत्यन्त कमी थी और कोई भी गद्य-कथा पढ़ने से दूर भागता था। यह विधा उस समय अत्यन्त उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती थी, फलतः जितने पाठक थे वे मुख्यतः पद्य की रचना को पढ़ते थे। दूसरी दिशा में राजनीतिक व्यवधान था। उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध तक आते-आते देश में एक अजीब राजनीतिक असंतोष फैल रहा था। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध देश में क्रान्ति और विद्रोह की ज्वाला भड़क रही थी, जिसकी चरम सीमा थी अठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति। इस तरह उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के अंतिम पन्द्रह-बीस वर्षों की स्थिति साहित्य-अवतारणा के बिल्कुल विरुद्ध थी। विशेषकर गद्य-कथा की दिशा और भी

रुकी थी। राजनीतिक असंतोष, फलतः स्वाभिमान-जागरण की प्रेरणा से राजा शिव-प्रसाद ने कुछ नई शैली में जरूर लिखना आरम्भ किया, जैसे 'गुलाब चमेली का किस्सा', 'राजा भोज का सपना', 'नरसिंह का वृत्तान्त', लेकिन इन सबके पीछे स्पष्ट रूप से पूर्व संस्कृत की नीति-कथाओं और अरबी-फारसी की दास्तान शैली कार्य कर रही थी। फलतः इन सब हिन्दी-कथाओं को कोई नवीन मार्ग न मिल सका। हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि हरिश्चन्द्र से पूर्व तक का हिन्दी कथा-साहित्य, उपन्यास और कहानी किसी भी क्षेत्र अथवा विधा में नहीं आ सकता क्योंकि न इसमें उपन्यास-कहानी की कोई शिल्प-विधि ही थी और न कोई भाव-विशेष या तत्व-विशेष ही।

भारतेन्दु-युग में कथा-विकास

विशेषकर कथा की दिशा में उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतेन्दु-युग है। इस युग में कथा के धरातल से नाटकों और उपन्यासों की सृष्टि अपूर्व ढंग से हुई। ऐसा क्यों और कैसे हुआ, इसको समझने के लिये हमें उन शक्तियों को देखना होगा, जो इस युग की प्रमुख प्रेरणा थीं तथा जिनकी प्राण-शक्ति से यह समूचा युग अपने में इतने विशाल साहित्य को सृष्टि कर गया, जिससे हमारे आधुनिक हिन्दी साहित्य को गौरव मिला तथा आधुनिकता की नींव पड़ी।

शक्तियाँ

वे शक्तियाँ थीं—सुधारवादी आन्दोलन और राजनीतिक प्रतिक्रियाएँ। सुधार-वादी आन्दोलन में सर्वप्रथम 'ब्रह्म समाज' (१८२८ ई०) का नाम आता है। इसका जन्म पाश्चात्य विचारधारा की प्रेरणा से हुआ था, अतः बङ्गाल में भी यह केवल शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहा। इसका प्रभाव न हमारी सामाजिकता पर पड़ा, न ही हमारे साहित्य पर, क्योंकि इस आन्दोलन में विशुद्ध करके भारतीय दृष्टिकोण नहीं के बराबर था।

भारतीय नवोत्थान तथा विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण हमें आर्यसमाज आन्दोलन में मिला। इसकी स्थापना स्वामी दयानन्द ने १८७५ ई० में की। यह आन्दोलन मुख्यतः हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र का महान् आन्दोलन था। इसने ही सबसे पहले हिन्दू समाज के पुनरुत्थान और ईसाई तथा मुस्लिम धर्म के विरोध में सबसे सशक्त और ऊँची आवाज उठाई। इस आवाज से समूची उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध को प्रेरणा मिली तथा इस आन्दोलन का प्रभाव हमारे समाज के उच्च, मध्यम और निम्न वर्ग पर समान रूप से पड़ा। सामाजिक क्षेत्र में इसने बाल-विवाह, बहु-विवाह और वृद्ध-विवाह का निषेध किया तथा विधवा विवाह का प्रचार किया। इसने स्त्री-अधिकार और समानता की सर्वप्रथम आवाज उठाई। धर्म-पाखंड, व्यभिचार के विरुद्ध इसने आन्दोलन किया तथा अंधविश्वासों, रूढ़ियों, अंधभक्ति और भूत-प्रेतादि अमानुषिक शक्तियों की आस्था को

खंडित किया । इस तरह से आर्य-समाज ने जहाँ देश में सामाजिक पुनर्जागरण किया, वहाँ दूसरी ओर इसने देश को इसकी वास्तविक संस्कृति और विशालता की ओर प्रेरित किया । इसने स्थान-स्थान पर गौ-रक्षिणी सभाएँ और समाज की शाखाएँ स्थापित कीं। जगह-जगह पर यज्ञशालाएं और गुरुकुलों को स्थापित कर, उनसे वैदिक आदर्शों की शिक्षा दी । इसी समय अमेरिका में थियोसोफिकल सोसाइटी के जन्मदाता मेडम ब्लैट-वस्की और कर्नल अलकाट भारतवर्ष में आये तथा उन लोगों ने यहाँ थियोसोफिकल सोसाइटी का केन्द्र स्थापित किया । इसके बाद ही श्रीमती ऐनीबिसेन्ट के भारत-आगमन ने इस मत का भारत में और प्रचार किया । इन्होंने अपनी सोसाइटी द्वारा पाश्चात्य दर्शन की उत्कृष्टता को सिद्ध करना चाहा और इसके साथ ही साथ इस मत ने हमारे देश के प्राचीन गौरव को भी हमारे सामने रखा तथा इसका खूब गुण-गान किया । इस सोसाइटी को यहाँ के शिक्षित वर्ग ने बहुत ही शीघ्र अपनाया क्योंकि इससे हमारी राष्ट्रीय भावना को बल एवं हमारे सामाजिक पुनरुत्थान आन्दोलन को सहयोग मिल रहा था । थियोसोफी ने विशेषकर हमारी संकीर्णता को दूर करने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न किया । रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के प्रयत्न और इनकी प्रतिभा ने देश में आध्यात्मिकता की प्रतिष्ठा की तथा इन लोगों ने देश का ध्यान वैदिक संस्कृति की ओर आकर्षित किया ।

दूसरी ओर इस युग में राजनीतिक शक्तियों तथा इनकी प्रतिक्रियाओं ने भी अपूर्व शक्ति और नवोत्थान की प्रेरणा दी । वस्तुतः १८५७ ई० की क्रान्ति उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध की सबसे बड़ी राजनीतिक घटना है । इस घटना के बाद, आने वाले बीस वर्ष तक देश में शान्ति थी और अंग्रेजों ने इसी समय में कितने शासन सम्बन्धी सुधार किये । देश में वैज्ञानिक आविष्कारों रेल-तार आदि का प्रचार हुआ तथा १८५७ ई० के ही आसपास प्रमुख विश्वविद्यालयों की स्थापना भी हुई । फलस्वरूप इंगलैण्ड, फ्रांस, रूस जैसे देशों के साहित्य से हमारे सम्पर्क स्थापित होने का सूत्रपात हुआ । इसी समय इटली का स्वतन्त्र होना और अमेरिका के संयुक्त राज्य की स्थापना ने हमारी राष्ट्रीय भावना में और भी प्राण फूँके । इसमें दूसरी ओर से आयरलैंड, रूस, इथोपिया, चीन, जापान तथा इस्लाम आदि के आन्दोलनों ने अपूर्व बल दिया । इस तरह इन अन्यान्य राजनीतिक शक्तियों, प्रतिक्रियाओं और आधुनिकता के आन्दोलनों के फलस्वरूप १८८८ में इंडियन नेशनल कांग्रेस का जन्म हुआ । यह घटना भी इस युग की दूसरी महान् घटना है । इससे हमारी राष्ट्रीय भावना को एक सशक्त और निश्चित मोर्चा मिल गया । हम आत्मसम्मान और राष्ट्र-गौरव की भावना लेकर और भी प्रेरित हुए । इसी समय हाजसन, बोतलिंक् और मैक्समूलर आदि ने प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन और अनेक खोजों को हमारे सामने उपस्थित किया । इनकी खोजों तथा

रचनाओं का प्रभाव यहाँ के शिक्षित
कवियों, मनीषियों, लेखकों का
विशेषकर इस प्रेरणा से उस काल
प्रतिक्रिया हुई ।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की
हिन्दी-साहित्य के समस्त पक्षों के
सामाजिक आंदोलनों ने जहाँ एक
स्फूर्ति दी, दूसरी ओर उसने युग के
संवेदनाओं को उपस्थित किया त
कि वे इनके धरातल से नवीन स
नवचेतना के प्राण फूँकें तथा देश
उन्हें राष्ट्रीय भावना और प्राची
लेखकों को विदेशी साहित्य के सम
इस युग के तमाम साहित्यिक उन्न
पर स्पष्ट रूप से राजनीतिक, स
उन्नायक की छाप है । यही कारण
नाटक और उपन्यास की सृष्टि अ
सदा अमर रहेगा । आधुनिक कथ
देन इन्हीं के व्यक्तित्व की देन है
का विकास क्यों नहीं किया, इस
आगे बढ़ाने की प्रतिभा और क्षम
उस समय तक भारतवर्ष में आधु
था । बंगाल भी अभी पश्चिम से
कर प्राचीन संस्कृत नाटकों को
व्यस्त थे । उन्हें शायद कहानी-क
वे शायद यह समझते थे कि सा
वह हलकी और नगण्य है । इस
और उपन्यास के अनुवाद और
इसका विस्तार भी इतना हुआ
पर अधिकांशतः नाटक और प्रह
आदर्श के अनुरूप नहीं समझा
नाटक का विषय हमारी

रचनाओं का प्रभाव यहाँ के शिक्षित वर्ग पर अपूर्व ढंग से पड़ा और इन्हें अपने पूर्वजों, कवियों, मनीषियों, लेखकों का सर्वप्रथम वैज्ञानिक परिचय मिलना आरम्भ हुआ। विशेषकर इस प्रेरणा से उस काल के लेखकों में एक अजीब रचनात्मक तथा उदात्त प्रतिक्रिया हुई।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की शक्तियों ओर प्रेरणाओं ने भारतेन्दु-युग को आधुनिक हिन्दी-साहित्य के समस्त पक्षों के निर्माण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान कीं। सामाजिक आंदोलनों ने जहाँ एक ओर हमारी सामाजिकता में पुनर्जागरण-क्रिया को स्फूर्ति दी, दूसरी ओर उसने युग के समस्त लेखकों के सामने असंख्य कथा वस्तुओं और संवेदनाओं को उपस्थित किया तथा लेखकों को अपनी मूक वाणी से आमंत्रित किया कि वे इनके धरातल से नवीन साहित्य का निर्माण करें, अपनी लेखनी से समाज में नवचेतना के प्राण फूँकें तथा देश में नवप्रकाश ला दें। राजनीतिक प्रतिक्रियाओं ने जहाँ उन्हें राष्ट्रीय भावना और प्राचीन साहित्य की ओर प्रेरित किया, उसने युग के लेखकों को विदेशी साहित्य के सम्पर्क में ला खड़ा किया। इन्हीं शक्तियों के फलस्वरूप इस युग के तमाम साहित्यिक उन्नायकों (विशेषकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) के व्यक्तित्व पर स्पष्ट रूप से राजनीतिक, समाज-सुधारक, धर्मोपदेशक और प्राचीन संस्कृति के उन्नायक की छाप है। यही कारण है कि भारतेन्दु-युग के कथा-साहित्य की दिशा में नाटक और उपन्यास की सृष्टि अपूर्व है। इस समूची सृष्टि में भारतेन्दु का व्यक्तित्व सदा अमर रहेगा। आधुनिक कथा-साहित्य में उपन्यास और नाटकों की परम्परा की देन इन्हीं के व्यक्तित्व की देन है। इन्होंने कथा की दिशा में आधुनिक हिन्दी-कहानी का विकास क्यों नहीं किया, इस पर आश्चर्य होता है। भारतेन्दु में कहानी-कला को आगे बढ़ाने की प्रतिभा और क्षमता थी। इसके उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि उस समय तक भारतवर्ष में आधुनिक कहानी-कला का बहुत ही अस्पष्ट रूप आ सका था। बंगाल भी अभी पश्चिम से केवल उपन्यास-कला सीख रहा था। भारतेन्दु विशेषकर प्राचीन संस्कृत नाटकों को अनूदित करने तथा मौलिक नाटकों आदि के लिखने में व्यस्त थे। उन्हें शायद कहानी-कला की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला और वे शायद यह समझते थे कि साहित्यिक क्रान्ति में कहानी का विशेष महत्व नहीं है। वह हलकी और नगण्य है। इस युग के अन्य लेखक भी कथा-शैली के बड़े रूप नाटक और उपन्यास के अनुवाद और मौलिक सृष्टि में ही अधिकतर व्यस्त थे। इस काल में इसका विस्तार भी इतना हुआ कि वस्तुतः कहानी की कथा-वस्तुओं और संवेदनाओं पर अधिकांशतः नाटक और प्रहसन ही लिखे गये। कहानी-कला का प्रयोग साहित्यिक आदर्श के अनुरूप नहीं समझा गया।

नाटक का विषय हमारी आलोचना-सीमा के बाहर का विषय है, अतएव हम

इनकी स्वतंत्र समीक्षा न देकर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि इस काल में नाटक-साहित्य का इतना प्रसार और प्रभाव हुआ कि पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त लेखक-गण छोटी-छोटी संवेदनाओं, इतिवृत्तों, घटनाओं और विषयों को लेकर प्रहसन लिखने लग गये, जिनमें देवकीनंदन (१८७०) का नाम प्रमुख है और इनकी रचनाओं में 'रक्षा-बन्धन', 'एक-एक के तीन-तीन', 'स्त्री-चरित्र', 'वेश्या-विलास', 'वैल छः टके को', 'जय नरसिंह को', 'सैकड़ों में दस-दस', और 'कलजुगी जनेऊ' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अन्य प्रहसन-लेखकों और उनके प्रहसनों में राधाचरण गोस्वामी का 'बूढ़े मुँह मुँहासे, लोग देखे तमाशे', किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट चपेट', देवकीनंदन तिवारी का 'कलयुगी विवाह' और चौधरी नवलसिंह का 'वेश्या नाटक' तथा गोपालराम गहमरी का 'जैसा का तैसा' आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। इन प्रहसनों की संवेदनाएँ वस्तुतः कहानी की संवेदनाएँ हैं, लेकिन उस समय तक कहानी-कला की अवहेलना के कारण उक्त लेखकों ने इन कहानी-अनुकूल संवेदनाओं से विवशतः प्रहसनों की सृष्टि की।

इन प्रहसनों की समस्याएँ अथवा वर्ण्य विषय मुख्यतः सामाजिक-नैतिक कुरीतियाँ हैं, जैसे बहु-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह, वेश्यागमन, चोरी-चंडाली, अनैतिकता, पश्चिमी सभ्यता की गुलामी, धार्मिक-पाखंड और स्त्री की हीन दशा तथा उनका शोषण। संवेदना की ये इकाइयाँ शिल्प-विधि की दृष्टि से कहानी की संवेदनाएँ हैं, लेकिन इस युग के लेखक तो कथा-साहित्य की दिशा में केवल नाटक और उपन्यासों की सृष्टि में व्यस्त थे। कहानी-कला के विकास की ओर इन लोगों ने ध्यान ही नहीं दिया। निष्पक्ष रूप से यह युग मुख्यतः भारतीय साहित्य की प्राचीन परम्पराओं का उपासक रहा और इस युग की अपनी मौलिक देन है, नाट्य-कला के साथ उपन्यास-कला भी। कहानी-कला के आविर्भाव की पृष्ठभूमि का श्रेय भी इस काल को है जिस पर हम आगे विचार करेंगे।

उपन्यास

इस काल में नाटकों की अपेक्षा उपन्यासों का आरम्भ कुछ बाद में हुआ। इनका कारण था कि भारतेन्दु को स्वभावतः नाटकों की सृष्टि प्रिय थी। उपन्यास-साहित्य को इन्होंने मूलतः अध्ययन और प्रसार की दृष्टि से देखा था, लेकिन इस दिशा में भी भारतेन्दु की सेवा स्तुत्य है। इन्होंने ही सर्वप्रथम बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय-कृत 'राजसिंह' का अनुवाद किया, तथा अपने निर्देशन और प्रेरणा से अनेक उपन्यासों को अनूदित कराया, जैसे बाबू गदाधर सिंह द्वारा 'कादम्बरी' और 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद, पं० रमाशंकर व्यास द्वारा 'मधुमती' और बाबू राधाकृष्ण दास द्वारा 'स्वर्णलता' का अनुवाद। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु जी दो-एक मौलिक उपन्यास जैसे

'एक कहानी', 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती', और 'हमीर हठ' लिखने की ओर तत्पर हुए, पर ये दोनों मौलिक उपन्यास अपूर्ण ही छूट गये, लेकिन भारतेन्दु की दीक्षा और प्रेरणा से अन्य मौलिक उपन्यासकार प्रकाश में अवश्य आये। सर्वप्रथम श्रीनिवास दास ने 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास की सृष्टि की। उपन्यास की भूमिका से स्पष्ट है कि यह अंग्रेजी उपन्यासों के अनुकरण में रचित एक कथाकृति है। लेखक ने इसमें पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने की चेष्टा की है तथा इसमें व्यावहारिक जीवन-तत्वों को अपनाने का प्रयत्न हुआ है। इसकी कथा एक रईस के जीवनवृत्त को लेकर चलती है जिसमें उसके उत्थान और पतन का चित्र दिया गया है। इसकी शैली पर संस्कृत के कथा-साहित्य की उपदेशात्मक प्रवृत्ति सर्वत्र स्पष्ट है। इसमें कथा की वर्णनात्मकता और उसमें लम्बे-लम्बे उपदेश के अंश इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं। वस्तुतः 'परीक्षा गुरु' भारतेन्दु-काल के समस्त उपन्यासों में सफल और यथार्थवादिता की प्रेरणा से लिखा गया है। इस युग के उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी का स्थान वही है जो भारतेन्दु का स्थान नाटकों की दिशा में है। इन्होंने 'त्रिवेणी' (१८८८), 'स्वर्गीय कुसुम' (१८८६), 'हृदयहारिणी' (१८६०), 'लवंगलता' (१८६०) आदि उपन्यासों की सृष्टि से हिन्दी उपन्यासों की श्रीवृद्धि की। इनके साथ अन्य उपन्यासकार पं० देवी प्रसाद शर्मा, राधाचरण, कार्तिक प्रसाद खत्री, और गोपालराम गहमरी के भी नाम उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासकारों ने वस्तुतः आधुनिक हिन्दी-उपन्यास का शृंगार किया तथा भाव और कला की दिशा में अपनी अपूर्व क्षमता का प्रदर्शन भी किया। विशेषकर किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में इनकी औपन्यासिकता तथा सामाजिकता की समस्याएँ दोनों सफलता से प्रदर्शित हुई हैं। 'त्रिवेणी' में इन्होंने सनातन धर्म के पक्ष में आवाज उठाई है तथा आर्यसमाज, ईसाई और इस्लाम धर्म की मान्यताओं को चुनौती दी है। 'स्वर्गीय कुसुम' में बिहार के राजा कर्णसिंह की पुत्री कुसुमकुमारी की करुण कथा है। इसमें भी सामाजिक रूढ़ियों-कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह की भावना प्रतिष्ठापित हुई है। कलात्मक दृष्टि से इस उपन्यास में घटना-बाहुल्य, प्रेम की प्रधानता, षड्यन्त्र, ऐयारी, जासूसपन और स्वाभाविकता की अवतारणा हुई है तथा इन सबके समन्वय से आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। 'हृदयहारिणी' और 'लवंगलता' में तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं को स्थान मिला है तथा उनके प्रकाश में इन उपन्यासों की संवेदनाओं को पूर्ण विकास मिला है तथा जीवन की आदर्श मान्यताओं की प्रतिष्ठा हुई है। बालकृष्ण-कृत, 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ सुजान और एक अजान', मेहता लज्जा राम शर्मा-कृत 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी', गोपाल राम गहमरी-कृत 'बड़ा भाई और सास-पतोहू' इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।

इन उपन्यासों की रचना के पूर्व हिन्दी में 'सिंहासन बत्तीसी', 'वैताल पच्चीसी',

'किस्सा तोता मैना', 'रानी केतकी की कहानी', 'प्रेमसागर' और 'नासिकेतोपाख्यान' आदि कथा की रचनाएँ थीं। उर्दू की ओर से हिन्दू जनता में 'बागो बहार', 'फसानाए अजायब', 'अलिफ-लैला' आदि की कथाएँ मनोरंजन उपस्थित कर रही थीं।

इनके अतिरिक्त लोक-भावना में दंत-कथाओं के स्वरूप से जोगियों और सिद्धों की अनेक जादू-टोना और रहस्य आदि की अनेकानेक तिलस्मी कथाएँ भी प्रचलित थीं। इनका प्रभाव सीधे और परोक्ष दोनों ढंगों से समस्त हिन्दी-जनता पर पड़ रहा था। प्रायः समस्त उपन्यासकार ही इस प्रभाव से नहीं बच सके। इस काल के प्रतिनिधि उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी पर इसका प्रभाव सबसे अधिक स्पष्ट है। 'स्वर्गीय कुसुम' में तिलस्मी घर और कमरे मिलते हैं। 'लवंगलता' रहस्यपूर्ण घटनाओं तथा आश्चर्यजनक कार्य-व्यापारों से अभिभूत है। 'प्रणयिनी परिणय' को पढ़ने से 'रानी केतकी की कहानी' याद आती है। इसी प्रवृत्ति के विकास में हम आगे चलकर देवकी-नंदन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता-संतति' ग्रन्थ को पाते हैं। 'चन्द्रकान्ता' में राजकुमार वीरेन्द्रसिंह तथा एक वजीर के लड़के क्रूरसिंह और राजकुमारी चन्द्रकान्ता के प्रेम में अभियान की अनेकानेक आश्चर्यजनक कथाएँ हैं। 'संतति' में चन्द्रकान्ता की संतति के अनेक तिलस्मी करिश्मे संगृहीत हैं।

समूचे हरिश्चन्द्र-युग के कथा-साहित्य में नाटक और उपन्यासों की मौलिक सृष्टि हुई और उन दोनों कलाओं को पर्याप्त प्राण-शक्ति भी मिली। इसके फलस्वरूप शीघ्र ही बीसवीं शताब्दी में उनकी दिशा में पूर्ण विकास हुआ। अतएव हरिश्चन्द्र-युग हिन्दी साहित्य का नवोत्थान युग सिद्ध हुआ। इस युग में हिन्दी नाटक, उपन्यास, कविता और निबन्ध आदि सभी काव्य-रूपों को विकास मिला। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इस साहित्यिक पुनरुत्थान और आविर्भाव-युग में हिन्दी-कहानी के विकास की क्या स्थिति रही? इस नवोत्थान-युग ने हिन्दी-कहानी के विकास में कितनी प्राण-शक्ति दी?

वस्तुतः चमत्कार और कौतूहल ही कहानी की प्रबल प्रेरणा है। कहानी अपने द्विज रूप से ही दो प्रकार से चली है—

१—दैवी प्रभाव से   २—स्वाभाविकता से

कहानी की प्रेरणा का पहला स्वरूप ही भारतेन्दु-युग की कथा-प्रवृत्ति की मूल देन है, जिसके सम्यक् स्वरूप को हम निम्न रेखाओं में देख सकते हैं।

कहानी की प्रेरणा

चमत्कार	कौतूहल
दैवी, अद्भुत शक्ति, आकस्मिकता	असम्भव घटना, आदर्श की पुष्टि

कहानी का दूसरा प्रकार जीवन की स्वाभाविकता से सम्बन्ध रखता है। इसका विकास भारतेन्दु-युग के उपरांत ही आरम्भ हुआ है। कहानी-कला के विकास की दृष्टि से, संसार के कहानी-साहित्य के इतिहास से स्पष्ट है कि जिस देश के कलाकार जितने ही शीघ्र जीवन के यथार्थ प्रश्नों और संघर्षों के धरातल पर उतरे हैं, उतने ही शीघ्र उनमें कहानी-कला की वास्तविक उत्पत्ति हुई है।

भारतेन्दु-युग में या उससे पूर्व ही कहानी-विकास की समस्त परिस्थितियाँ उपस्थित थीं। मानव-संघर्ष राजनीतिक और सामाजिक दोनों रूपों में प्रबल हो चुका था, लेकिन फिर भी कहानी के विकास में आश्चर्यजनक विलम्ब हुआ। वस्तुतः भारतेन्दु-युग आदर्श-मर्यादा का युग था। काव्य के क्षेत्र में यह एक ऐसा युग था जहाँ यथार्थ का आरोप पग-पग पर होता था। दूसरी ओर तब तक भारतीय मान्यताओं में काफी रूढ़िवादिता थी। इस काल ने मूलतः नाटक-उपन्यास की ही कला के माध्यम से युग-संघर्षों की यथासंभव अभिव्यक्ति की, क्योंकि ये दोनों कलाएँ पिछली परम्पराओं के सूत्र में थीं। इन दोनों के अनुवाद, अनुसरण की सुन्दरतम पृष्ठभूमि हमारे प्राचीन साहित्य में उपस्थित थी। अतएव इन कलाओं को हिन्दी में आरम्भ करने के लिए कोई विशेष बाधा नहीं उपस्थित हुई, लेकिन फिर भी इस युग ने हिन्दी-कहानी की उत्पत्ति की कुछ प्राण-शक्ति अवश्य उपस्थित की, जिसके प्रेरणा-सूत्र से ही आगे हिन्दी-कहानी का विकास संभव हुआ।

हिन्दी कहानी की कहानी

इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' प्रयोगात्मक रूप में लिखी गई थी, जिसे कलात्मक दृष्टि से कहानी के विधान का कोई भी रूप नहीं मिल सका। वस्तुतः कौतूहल-तत्व के सहारे आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए यहाँ एक लम्बी कहानी गढ़ी गई है। हिंदी कहानी की सम्यक् शैली की ओर प्रेरित करने का श्रेय भारतेन्दु-युग को है। यह युग पत्रकारिता के आरम्भ का युग था, और तत्कालीन समाज को इस ओर आकर्षित करने के लिए इस युग ने मुख्यतः मनोरंजक शैलियों को अपनाया, जिनके क्रोड़ में कहानी-कला के बीज निश्चित रूप से आये।

इस तरह भारतेन्दु-युग में हिंदी कहानी-उत्पत्ति की प्राणशक्ति को हम सर्वथा यहाँ की पत्र-पत्रिकाओं में पाते हैं। 'कवि वचन सुधा' (१८६७), 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (१८७३), हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (१८७४), 'हिंदी प्रदीप' (१८७७), 'ब्राह्मण' (१८८०), 'सार सुधानिधि' (१८७९), 'क्षत्रिय पत्रिका' (१८८०), और 'भारत मित्र' (१८७७) आदि मासिक-पत्रों और साप्ताहिकों में जहाँ एक ओर आधुनिक हिंदी भाषा-शैली के विकास का प्रयत्न हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर इन्हीं प्रयत्नों के माध्यम से हिंदी गद्य-

काव्य के लघु रूपों का जन्म हो रहा था। इन लघु रूपों में निबंध, व्यंग चित्र स्फुट चित्र, हास्य चित्र आदि गद्य-शैलियाँ उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः इन्हीं गद्य-शैलियों के अध्ययन से आगे हम देखेंगे कि भावी हिंदी-कहानी का रूप किस तरह प्रकट हो रहा था।

इन पत्र-पत्रिकाओं में साधारण कोटि के सामाजिक अथवा राजनीतिक निबंध के रूप में जो लेख आते थे, वे प्रायः सम्पादकों की लेखनी से ही अभिव्यक्त होते थे, अर्थात् संपादकीय होते थे। ये सम्पादकीय प्रायः सामाजिक विषयों और समस्याओं पर आधारित होते थे जिनमें बहुत कुछ कहानी की संवेदना होती थी। जैसे हरिश्चन्द्र चन्द्रिका[1] का संपादकीय निबन्ध 'भ्रूण हत्या'—"हम सरकार से, अपने सब आर्य भाइयों से हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं, इसको सब लोग एक बेर चित्त देकर और हठ छोड़कर सुनै, यदि सरकार कहै कि हम धर्म विषय में नहीं बोलते तो उसका हमसे पहले उत्तर ले। सती होना हमारे यहाँ स्त्रियों का परम धर्म है। इसको सरकार ने बलपूर्वक क्यों रोका है, क्योंकि यह धर्म प्राण से संबंध रखता है और प्रजा की प्राण-रक्षा राजा को सबके पहले मान्य है। वैसे ही हम जो कहेंगे उसमें भी प्रजा के प्राण से संबंध है। अभी बनारस में बुलानाले पर एक लड़की नल में से निकली है। निःसंदेह भगवान ने उसको अपने प्रताप-बल से बचाया है, नहीं तो उसकी माता तो अपनी जान से उसे मार चुकी थी। ऐसी हत्या सारे हिन्दुस्तान में यदि सब पकड़ी जाय और गिनी जाय तो प्रति महीने में एक हजार होती है। इस हत्या के दोषी कौन हैं?"

"हमारे ही आर्य गण और धर्माभिमानी लोग, यदि वह यौनभंव संतति की निन्दा न करते, उसका अनुमोदन करते तो यह हत्या क्यों होती? यह हमने न कभी कहा है न कहेंगे कि सबका बलात् पुनर्विवाह हो, परन्तु जो कन्या-दशा में विधवा हो गई है वा जिनको कामचेष्टा हो उनका विवाह क्यों न हो: इसीलिए कि हर महीन एक सहस्र आर्य संतति नष्ट हो? हाय रे राम! अपनी स्त्री मरे पर कैसा कूदकर ब्याह कर लेते हो, पर स्त्रियों को नहीं करने देते क्योंकि इन्द्रिय-दमन तुम्हीं को है उनको थोड़े ही है, सब अनर्थ हो जाय, स्त्रियाँ वेश्या हो जायँ, गर्भ गिरे बालक मरे वा जाहिर हो थाना पुलिस जेहलखाना सब होय पर पुनर्विवाह न होय। होय कैसे इसमें जो नाक कटेगी। सच है फूटी सही जायगी आँजी न सहेंगे। सच है जबरदस्त का ठेंगा सर पर—यदि स्त्रियाँ भी प्रबल होतीं तो कैसे होने पाता।"[2]

इसी तरह उस समय स्वतंत्र साहित्यिक निबन्धों के भी नाम पर जो लेख आते

१. श्री हरिश्चन्द्र चंद्रिका, खन्ड २, मार्च १८७५ संख्या ६।
२. श्री हरिश्चन्द्र चंद्रिका, खन्ड २, संख्या ६, पृष्ठ १७२।

थे, उनमें भी कहानी के चित्रालेखन के तत्व मिले रहते थे—जैसे, 'हरिश्चन्द्र मैगजीन'[१] में 'प्रान्तर प्रदर्शन'—"अहा हा ! वह कौन-सा देवता है जिसके दर्शन के हेतु मुसलमान अपना इस्लाम छोड़ और क्रस्तान अपने मत से मुँह मोड़ उन्मत्त से हो उस दीपक की द्युति के अनुराग में आपको उसके चारों ओर पतंग से उड़ा रहे हैं और ज्यूज अपने जीवन से हाथ धो, बौद्ध बुद्धि खोय, जैन पाषंड तजि और सकल मतावलम्बी इस भुवन के हिन्दुओं की भाँति मनसा वाचा कर्मणा से उस देव की पूजा में तत्पर हो रहे हैं। कोई उसके ध्यान के निमित्त अपना-पराया घर-द्वार कुल परिवार वरन् इस संसार से विमुख हो नदी के करार पर छा रहे हैं जिसका नील वर्ण जल दर्पण सा झलकता है और वायु के सनसनाहट में छोटी-छोटी लहरें मन तरंग में आकर अपने प्रीतम सिंधु की ओर उसके मिलने के लिये पधारती हैं।

पक्षियों के बोल, समीर के डोल, भ्रमरों के गुंज, फूलों के पुंज के बान से तो वे मूर्छित हो भूमि पर झूम रहे थे, इतने में क्या देखते हैं कि बैकुण्ठ की सारी-अप्सरा रंभा, हूर-परी, मेनका-उर्वशी आदि, इधर-उधर संगमरमर और संगमूसा की सड़कों को अपने चरण-कमल की धूरि से सुगंधित करती हैं। रंभाओं के रूप का प्रकाश इतना फैला कि सूर्य मारे भय के अस्ताचल के कन्दरे में जा छिपा। कोई कहते हैं कि लज्जा के मारे पश्चिम के समुद्र में जा डूबा। और शरद ऋतु का पूर्ण चन्द्रमा ऊपर चढ़ सारे ग्रह-तारों और राशियों के साथ चतुराई कर सबसे पहले इनकी शोभा देखने के लिये आकाश में बंदी सा आ लटका और आकाश से सुर गण इस चाँदनी में उस वाटिका के बीचों-बीच एक चबूतरे पर जो कि लाजवर्द का बना है और जिसके चारों ओर कोने पर फव्वारे हैं। पंक्ति-की-पंक्ति सोने-रूपे की जड़ाऊ चौकियों पर असंख्य चन्द्रमा बैठते देख चकोर के समान अपना जी हारने लगे। बैठते ही एक सखी अपने चारों ओर जमुर्द के वृक्षों की झलक, मूँगे के समान लाल अधर दिखाती हुई मेह बरसाती है—हे परियो तुम जानती हो, सुन्दरता क्या वस्तु है ?

इस प्रश्न को सुनकर सब हँस पड़ीं और कहने लगीं कि,—"तू अपने यौवन पर मोहित होकर पागल हो गई है अतएव ऐसी बातें मुँह से निकालती है।"[२]

उक्त लेख से स्पष्ट है कि प्राकृतिक चित्रण के सहारे किस तरह एक मनोरंजक गद्य-विधा का ढाँचा खड़ा किया गया है। इसमें यदि लेखक ने किसी तरह कथा-वस्तु का प्रयोग किया होता, तो यह गद्य-रचना निश्चित रूप से कहानी के समीप पहुँच गई होती।

---

१. हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ नवम्बर १८७३ ई०, पृष्ठ ३२।

२. हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ नवम्बर १८७३ ई०, पृष्ठ ३४।

ऐसे निबंधों और संवाददाताओं के प्रेषित पत्रों के अतिरिक्त इन पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग चित्र की भी अवतारणा होती थी। यह गद्य-शैली मूलतः अंग्रेजों की देन है। इंगलैण्ड के प्रसिद्ध 'लंडन पंच' का जन्म १८४१ में हुआ और इस शैली में उस समय इंगलैण्ड में अपूर्व सफलता के साथ सामयिक लेखकों, आलोचकों तथा अन्य कलाकारों की मनोवृत्ति और भाव-धारा पर सुन्दर छींटे और व्यंग किये जाते थे। भारतवर्ष में यह शैली आंग्ल-भारत पत्रकारिता के माध्यम से आयी तथा पहले यहाँ यह शैली बहुत असम्मानित दृष्टि से देखी जाने लगी[1]। वस्तुतः इस शैली को पहले-पहल उर्दू वालों ने अपनाया और उनकी तंज शैली इसी का विकसित रूप है। हिन्दी में इसका जन्म, हरिश्चन्द्र मैगजीन ने दिया और इसकी मान्यता धीरे-धीरे सब पत्र-पत्रिकाओं पर छा गई।

पाठकों की दृष्टि से उस समय बिना पंच के पत्रिकाएं आकर्षणहीन समझी जाने लगीं। 'भारत मित्र', 'हिन्दी प्रदीप' और 'उचित वक्ता' आदि ने इसे खूब आगे तक बढ़ाया। संक्षेप में १८६७ से १९०० ई० तक हिन्दी गद्य-साहित्य में पंच की वही मान्यता थी जितनी कि आज कहानी की मान्यता है। हिन्दी प्रदीप में इस व्यंग चित्र के बहुत अच्छे-अच्छे उदाहरण मिलते हैं। छोटे-छोटे व्यंग चित्रों को यहाँ 'चीज' की संज्ञा दी गई है। जैसे, चीज नम्बर १—"पंडित जी वर्ण-विवेक पर कुछ वक्तृता कर रहे थे, इतने में एक मसखरा बोल उठा—पंडित जी कुत्ते की क्या जात है, हिन्दू या मुसलमान? पंडित जी ने जवाब दिया—कुत्ता तो हिन्दू मालूम होता है क्योंकि जो मुसलमान होता तो दूसरे कुत्ते को अपने साथ खिलाते में न भूकता।" चीज नम्बर २—"भिखारिन अंधी बुढ़िया बोझ सिर पर लादे जा रही थी। किसी ने पूछा—बूढ़ा तुम्हारा नाम क्या है? उसने जवाब दिया—दौलत। आदमी ने कहा—क्या दौलत भी अंधी होती है? बुढ़िया बोली—अंधी नहीं है तो क्यों मेरे घर न आई[2]?"

बड़े व्यंग चित्रों में वस्तुतः कहानी के तत्व स्पष्ट रूप से उभर आये हैं और इन्हें पढ़ते समय व्यंगात्मक कहानी की सुधि हो जाती है—जैसे, एक पढ़े-लिखे सभ्य महाशय बेकारी की हालत में घर-बैठे पाँच-सात लंगोटिया यारों से सलाह करने लगे कि यार कहाँ जायँ, कौन-सा उद्यम करें जिससे रोटी चले? उनकी यह बात सुन जिसे जैसा समझ पड़ा, यार लोगों ने अपनी-अपनी राय जाहिर की। बाद इसके सभ्य महाशय ने भी कुछ कहना शुरू किया कि इतने में उनकी स्त्री जो किसी पुलिस कर्मचारी की बेटी थी, पर्दे की आड़ में ढोल बजाय गाने के मिस से सलाह देने लगी सो पीछे सुन लीजिये। पहले उन लंगोटिया यारों के दास्तानों को भी सुनते चलिए। एक

१. हिन्दी प्रदीप, नवम्बर १८७९ ई०, पृष्ठ ७६।
२. हिन्दी प्रदीप, सितम्बर १८८९ ई०, पृष्ठ ३६।

ने कहा—यार, आप कथक
ओर कान तक माथा मोच
देहाती बोली में गाली गुप्त
लीजिए। जनानी बोली में
अर्पण कराइए। इसी तरह
बातें। इस पर अंत में सभ
खि
सैय
इस गाने के समाप्त होते
घर चले गए।[1]

स्फुट चित्र और
'गपाष्टक' की संज्ञा दी ग
रहता था, जिसमें एक म
रूप से सम्पादक की ही
१८७६ वाले अंक में सर्व
हैं, जैसे—

"एक बूढ़ा मनुष
चला जा रहा था। एक
जवाब दिया—बेटा, मेरी
बड़े मियाँ झूठ क्यों बोल
हूँ!"

"किसी महफिल
किसी ने पूछा—बीबी
बन्दी को मिसरी कहते
रक्खा है, तुम तो शीरा
शीरा ही सही!"

"एक बूढ़ा कम
ने पूछा कि यह कमान
करो, यह तुम्हें आपसे
स्वप्न-चित्रों में

१. हिन्दी प्रदी
२. हिन्दी प्रदी

ने कहा—यार, आप कथक्कड़ वक्ता बन जाइए। मेर खलिया पीली मिट्टी से दोनों ओर कान तक माथा मीच लीजिए। तेली तमोली सूद बाबर को इकट्ठा कर असभ्य देहाती बोली में गाली गुप्ता बका कीजिए। औरतों के लिये दो-एक छल्ला अंगूठी पहन लीजिए। जनानी बोली में खूब मटकिए, यह न बन सके तो गुरु बन तन-मन-धन अर्पण कराइए। इसी तरह लंगोटिया यार गपाष्टक करते हैं। चोरी बेईमानी की बातें। इस पर अंत में सभ्य की औरत गाने लगती है—

खिलाय नाहीं देव्यौ पढ़ाय नाहीं देव्यौ।
सैयाँ फिरंगिन बनाय नाहीं देव्यौ॥

इस गाने के समाप्त होते ही लंगोटिया यार सब कहकहे मारते तालो पीट-पीट अपने घर चले गए।[1]

स्फुट चित्र और हास्य चित्र भी 'हिन्दी प्रदीप' में सर्वप्रथम आए, इन्हें यहाँ 'गपाष्टक' की संज्ञा दी गई है। 'गपाष्टक' का वस्तुतः इसमें एक स्वतन्त्र स्तम्भ भी रहता था, जिसमें एक साथ कई स्फुट हास्य-चित्रों को स्थान मिलता था। यह निश्चित रूप से सम्पादक की ही लेखनी से व्यक्त होता रहा होगा। 'हिन्दी प्रदीप' के अप्रैल १८७६ वाले अंक में सर्वथा एक साथ कई ऐसे चित्र 'गपाष्टक' संज्ञा के नाम से आए हैं, जैसे—

"एक बूढ़ा मनुष्य जिसकी कमर बुढ़ापे से झुक गई थी कुबड़े की भाँति हाट में चला जा रहा था। एक मसखरे ने पूछा—बड़े मियाँ क्या ढूँढ़ते जाते हो? बूढ़े ने जवाब दिया—बेटा, मेरी जवानी खो गई है उसी को ढूँढ़ता हूँ! मसखरे ने कहा—बड़े मियाँ झूठ क्यों बोलते हो, यों क्यों नहीं कहते कि कबर के लिए जमीन ढूँढ़ रहा हूँ!"

"किसी महफिल में एक काली-कलूटी रंडी नाच रही थी। जब नाच चुकी, किसी ने पूछा—बीबी आपका इसमशरीफ क्या है? बीबी ने उत्तर दिया—जनाब, बन्दी को मिसरी कहते हैं। फिर मियाँ ने कहा—किस बेवकूफ ने आपका नाम मिसरी रक्खा है, तुम तो शीरा हो! बीबी ने हँसकर उत्तर दिया—खैर साहब, आपकी हम-शीरा ही सही!"

"एक बूढ़ा कमर झुकाए लाठी लिए बाजार में चला जाता था। राह में किसी ने पूछा कि यह कमान तुमने कितने में लिया है? उसने उत्तर दिया कि थोड़े दिन सबर करो, यह तुम्हें आपसे आप मिल जायगा।"[2]

स्वप्न-चित्रों में कहानी के तत्व अपेक्षाकृत सबसे अधिक स्पष्ट हुए हैं और ऐसे

१. हिन्दी प्रदीप, सितम्बर १८८६ ई०, पृ० ३६।
२. हिन्दी प्रदीप, अप्रैल १८७६ ई०, पृष्ठ ४२।

स्वप्नों की अवतारणा विशेषकर 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'हिन्दी प्रदीप' दो ही पत्रों में होती थी, लेकिन इन दोनों पत्रों में इसके रूप सामान्यतः कहानी-तत्व के समीप रहते थे। उदाहरण के लिए किसी में से 'स्वप्न' को ले सकते हैं—'सद्ज्ञान-रूपी प्रभाकर के अंतर्ध्यान होते ही महामोह निशा आन पहुँची। सारा जगत् अंधकारमय हो गया। रजनीचरों ने अपने अनुकूल समय जान एकाएक हलकड़ मचा दिया। वंचक लुटेरे तस्कर-गण निशावल पाय अपने मनोरथ साधन में तत्पर हुए, उल्लुओं की बन आई। रुद्रगण का तो राज्य ही हो गया, लेकिन समयानुकूल प्रत्येक का उदयास्त उचित ही है इसलिए उस परात्पर प्रभु ने भगवान मृगधारी न्याय सुधाकर को प्रकट किया। जिनके नीतिमय मनोहर किरणों के प्रकाश से अंधकार हट-हटकर जगत् की भलाई और उपकार का उद्योग होने लगा और सबको भरोसा हुआ कि जिस ज्ञान प्रभाकर के प्रकाश में हम लोग चैतन्य और स्वतंत्र स्वरूप थे अब वही समयानुकूल श्वेत वर्ण का न्याय सुधाकर हो के प्रकट हुआ। अब उनकी शीतल मनोहर किरणों के आश्रय और सहायता से हमारे सम्पूर्ण प्रयोजन सिद्ध हुए। फिर आलस ने हाथ पकड़कर योग-निद्रा को सौंप दिया, फिर क्या पूछना है? सम्पूर्ण इन्द्रियों के धर्म शिथिल हो गए, केवल वैर-फूट की लालसा यथावत स्थित रही। इस स्वप्नावस्था में यद्यपि अनेक प्रकार के वृत्तान्त दृष्टिगोचर हुए है, पर इस स्थल पर वह कौतूहल लिखना चाहिए जिसमें अपूर्व और विलक्षण बातें विद्यमान हों। स्वप्नान्तर में यह चित्त चकोर चाँद की चाँदनी समझ एक चमत्कार उपवन में जा पड़ा जहाँ श्वेत रंग की मनोहर लता अपने पुष्पों से हिल-मिल के कटाक्ष कर रही थी। अब वाटिका की सारी छवि के वर्णन से मेरा प्रयोजन दूर जा पड़ेगा इसलिए मनभावनी वाटिका की शोभा-सम्पत्ति के वर्णन से लेखनी को रोक कर एक राज-समाज-वार्त्ता के वर्ण-विन्यास में प्रवृत्त होता हूँ। अहा: क्या विचित्र सभा थी, जिसमें बड़े-बड़े सबल श्रीमन्त, जिनको अंग्रेजी में सिविल सर्वेण्ट कहते हैं, यूथ के यूथ विद्यमान हुए। उनके अतिरिक्त और बहुत से यूरोप देशी प्रधान जिनको प्रभुता का सम्राट समर्पित है एकत्र हुए जिनकी राज्यश्री और कान्ति के आगे सूरज की किरणें दबक जाती थीं, फिर उनके रथों के दमक-चमक के साथ मिलकर ऐसी निकलती थी जैसे घन घटा के बीच से बिजली की छटा। धन्य है। इनका पूर्वज-तप जिसके प्रभाव से ये प्रभुता के पात्र बने। धन्य है वह देश जहाँ इन महात्माओं ने जन्म लिया। अब सुनिए, उस सभा का वृत्तान्त, जब सब साहब लोग बैठ चुके तो बड़े साहब ने सब साहबों से यह सम्भाषण किया कि आप महाशयों को हमने इस हेतु से बुलाया है कि हमारी स्थिति यहाँ बहुत थोड़ी रह गई है इसलिए लालसा रह गई कि इस भारतवर्ष में अरबी, फारसी, अंग्रेजी का विशेष प्रचार करें और हिन्दी, संस्कृत का विस्तार न होने पावे और संयोगवश कहीं रहे तो ऐसा हो जैसा दाल में नोन क्योंकि हिन्दी, संस्कृत

सुनकर मेरा जी जलता है, मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक महानगरी में अरबी, फारसी अंग्रेजी की अच्छी-अच्छी पाठशाला नियत की जाय। यह बात सुनकर बहुत साहबों ने तालियाँ बजाईं, बहुतों ने सिर नीचा कर लिया और कई एक साहब आकाश की ओर देखने लगे।[1]

उक्त समस्त गद्य-शैलियों में किसी न किसी रूप में कहानी-कला के थोड़े-बहुत बीज स्पष्टतः विद्यमान हैं, सामान्य लेखों, निबन्धों और व्यंग-चित्रों ने उस समय कथा-जिज्ञासु जनता को आज की हिन्दी कहानी ही जैसा आनन्द और आकर्षण दिया होगा। दूसरी ओर स्वप्न-चित्रों अथवा स्वप्न-कल्पनाओं के माध्यम से अनेक के वर्णन, संवेदनाओं के वर्णन और चित्रण निश्चित रूप से हिन्दी-कहानी के विकास का सर्वप्रथम मौलिक प्रयोग कहा जा सकता है, अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में हिन्दी कहानी-कला के विकास में यह स्वप्न-चित्र-शैली शिल्प-विधि के निर्माण का सर्वप्रथम मौलिक प्रयास है।

सरस्वती का प्रकाशन

प्रयाग में 'सरस्वती' का प्रकाशन (१६०० ई०) बीसवीं शताब्दी के भाषा-साहित्य का अन्यतम प्रतीक है। दूसरे शब्दों में यह आधुनिक हिन्दी साहित्य की वह प्रयोग-भूमि अथवा संधि-स्थल है जहाँ एक ओर भारतेन्दु-युग की प्रेरणा से मिले हुए साहित्य-रूपों पर आधुनिक प्रयोग और आधुनिक विकास किए गए, वहाँ दूसरी ओर विभिन्न साहित्य-रूपों के लिए निश्चित और स्वाभाविक भाषा का प्रयोग हुआ।

दूसरी ओर इसके प्रकाशन का सबसे महान् और क्रांतिकारी प्रयत्न था, हिन्दी कहानी का आरम्भ। इस तरह अगर हम 'सरस्वती' का प्रकाशन बीसवीं शताब्दी हिन्दी-साहित्य के इतिहास की सबसे महान् घटना कहें, तो कोई अत्युक्ति न होगी। विशेषकर हिन्दी कहानी-कला की उत्पत्ति, प्रयोग और आरम्भ इन तीनों क्रमों अथवा चरणों के प्रकाश में 'सरस्वती' का नाम कहानी शिल्पविधि के आरम्भ और विकास के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

हिन्दी कहानी का आरम्भ

भारतेन्दु-युग में कहानी-कला की उत्पत्ति की दिशा में जितने भी परोक्ष और प्रत्यक्ष ढंग के प्रयत्न हुए, उन समस्त प्रयत्नों और गद्य-शैलियों में हिन्दी कहानी का कोई भी रूप नहीं बन सका अर्थात् उस काल में हमें कहानी ऐसी कोई काव्य-वस्तु नहीं मिल सकी। निश्चित रूप से हिन्दी कहानी अपनी संज्ञा और कलात्मक रूप की प्राप्ति में केवल 'सरस्वती' का आभार वहन करेगी। वस्तुतः 'सरस्वती' के भी प्रारम्भिक वर्षों में इसे आख्यायिका और गल्प की संज्ञा दी गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से क्रमशः

१. हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ अप्रैल १८७४ ई०, पृष्ठ १८७।

पहली संज्ञा संस्कृत की परम्परा को याद दिलाती है और दूसरी बंगला का प्रभाव। फिर भी कहानी के भावी रूप के निर्माण में भारतेन्दु-काल के व्यंग-चित्रों, लेखों और स्वप्न-कल्पनाओं ने इसकी प्राण-शक्ति उपस्थित की तथा यही प्राण-शक्तिवाहक सूत्र अपने विकसित रूप में 'सरस्वती' में उदित हुए। इन्हीं विकसित माध्यमों से 'सरस्वती' के प्रारम्भिक वर्षों में हिन्दी कहानी के आरम्भ में अविकल प्रयत्न और प्रयोग हुए, जिनसे हिन्दी कहानी का मौलिक आविर्भाव हुआ।

प्रारम्भिक प्रयत्न और प्रयोग

'सरस्वती' के प्रायः प्रारम्भिक दो वर्षों में हिन्दी कहानी के आरम्भ की दिशा में मुख्यतः सात प्रकार के प्रयत्न और प्रयोग हुए हैं। इन प्रयत्नों और प्रयोगों का मूल्य हिन्दी कहानी-शिल्प-विधि की उत्पत्ति और विकास में अनन्य है।

इनमें सर्वप्रथम उस प्रयत्न और प्रयोग की कहानी आती है जो शेक्सपियर के नाटकों की इतिवृत्ति की छाया पर अन्यपुरुष और वर्णनात्मक शैली में निर्मित हुई है—जैसे, किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती'[1], यह कहानी शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' की इतिवृत्ति की छाया लेकर लिखी गई है। इस कहानी की मुख्य प्रेरणा 'टेम्पेस्ट' की मीराण्डा की भाँति सघन वन में छिपकर अपने पिता के साथ रहती है। वह अपने यौवनकाल में सर्वप्रथम एक नवयुवक अजयगढ़ के राजकुमार चन्द्रशेखर को देखती है और फौरन उससे प्रेम करने लगती है। टेम्पेस्ट' के 'प्रास्पेरो' की भाँति इन्दुमती का पिता दोनों प्रेमियों के प्रेम की परीक्षा लेता है और अंत में दोनों का विवाह हो जाता है। इस तरह 'इन्दुमती' कहानी 'टेम्पेस्ट' की इतिवृत्ति की छाया पर एक राजपूत संवेदना के सम्मिश्रण से निर्मित हुई है! डॉ० श्री कृष्णलाल[2] ने इस कहानी को हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी कहा है। 'इन्दुमती' सर्वप्रथम हिन्दी-कहानी अवश्य है, लेकिन सर्वप्रथम मौलिक कहानी नहीं कही जा सकती। वस्तुतः 'सरस्वती' के उन प्रारम्भिक दो वर्षों में आई हुई ऐसी तथा अन्य प्रकार की कहानियाँ कलात्मक दृष्टि से हिन्दी की मौलिक कहानी की सृष्टि और शिल्प-विधि के निर्माण की दिशा में विभिन्न प्रकार के प्रयत्न और प्रयोग हैं।

दूसरा प्रयत्न है भारतेन्दु-युग की स्वप्न के रूप में उपस्थित की गई कहानी। स्वप्न-कल्पनाओं में जहाँ हमने देखा है कि उनमें कहानी-तत्व लाने का प्रयत्न किया गया है, वहाँ स्वप्न-कल्पनाओं को केवल साधन बनाकर कहानी की सृष्टि हुई है। लेकिन फिर भी यह प्रयत्न पिछले ही सूत्र का विकसित रूप है और इसमें अधिक

१. सरस्वती, भाग १, संख्या ६।

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, डा० श्री कृष्णलाल, पृष्ठ ३२२।

कहानी-तत्व आ गये हैं, जैसे—
इसमें लेखक ने स्वप्न को एक
सामने लाने का प्रयत्न किया है
से लिखी गई तथा इसमें कौतूह

इसी प्रयत्न की प्रेरणा
देश के काल्पनिक चरित्रों को
हुई है, जैसे—गिरिजादत्त बाज
का उदाहरण और इसकी संवे
सूबा है। उसमें समुद्र के तट प
ब्रिमन्नी नामक एक सौदागर के
वहाँ के एक पादरी के लड़के
तब इससे और 'वैरसफर्ड' से
'जेम्स' को प्यार करती थी औ
जब 'लिली' दो बच्चों को माँ
वह 'फिनिक्स' जहाज से कहीं
जहाज डूब जाता है और लि
है, लेकिन इधर 'जेम्स' जीवि
और 'वैरस्फर्ड' का पुनर्विवाह
बताकर मर गया। लिली को
वह उसकी लाश को बहुत
चढ़ाती है।

चौथे प्रयत्न में यात्रा-
गया है। यह वर्णन वस्तुतः
दोनों प्रकार के स्थानों के वर्ण
के निर्माण और निर्वाह के प्र
की यात्रा'[1] में नव कल्पित
अधिक तत्व सफलता से आए
वर्णन में मनोरंजन के तत्व
कृत अधिक सफलता से चरि
लिया गया है।

१. सरस्वती, भाग
२. सरस्वती, भाग

कहानी-तत्व आ गये हैं, जैसे—केशव प्रसाद सिंह की 'आपत्तियों का पर्वत' कहानी। इसमें लेखक ने स्वप्न को एक अभिव्यक्ति का साधन मानकर कहानी के मनोरंजन को सामने लाने का प्रयत्न किया है। यह कहानी प्रथमपुरुष में 'मैं' और 'हम' के प्रयोग से लिखी गई तथा इसमें कौतूहल की मात्रा पर्याप्त रूप से आई है।

इसी प्रयत्न की प्रेरणा से तीसरे प्रयोग में वह कहानी आती है जो एक सुदूर देश के काल्पनिक चरित्रों को लेकर तथा उनसे एक मौलिक संवेदना की सृष्टि से निर्मित हुई है, जैसे—गिरिजादत्त बाजपेई-कृत 'पति का पवित्र प्रेम'। संक्षेप में इसकी शैली का उदाहरण और इसकी संवेदना यों है—इंग्लैंड के दक्षिण में ससैक्स नाम का एक सूबा है। उसमें समुद्र के तट पर ब्राइटन नाम का एक छोटा-सा नगर है। यहाँ त्रिमली नामक एक सौदागर के लिली नामक एक रूपवती कन्या थी। बचपन से ही वहाँ के एक पादरी के लड़के जेम्स से इसका प्रेम था। जब वह सोलह वर्ष की हुई तब इससे और 'वैरस्फर्ड' से खिंचाव हुआ, लेकिन यह प्रेम एकांगी था। 'लिली' हमेशा 'जेम्स' को प्यार करती थी और अंत में दोनों में विवाह भी हो गया। कुछ दिनों के बाद जब 'लिली' दो बच्चों की माँ हुई, तब 'जेम्स' बीमार पड़ा और डाक्टर के अनुसार वह 'फिनिक्स' जहाज से कहीं वायु-परिवर्तन के हेतु चला गया। रास्ते में संयोगवश जहाज डूब जाता है और लिली उसे मृतक समझकर 'वैरस्फर्ड' से पुनर्विवाह कर लेती है, लेकिन इधर 'जेम्स' जीवित था और जब वह अस्पताल आया और उसने 'लिली' और 'वैरस्फर्ड' का पुनर्विवाह सुना, वह अपनी इन सब बातों को वहीं के डाक्टर को बताकर मर गया। लिली को इसकी सूचना मिलती है। उसे अतुल करुणा होती है। वह उसकी लाश को बहुत श्रद्धा से अपने पास रखती है, और उस पर सदैव फूल चढ़ाती है।

चौथे प्रयत्न में यात्रा-वर्णन के माध्यम से कहानी-निर्माण का प्रयोग किया गया है। यह वर्णन वस्तुतः प्रथमपुरुष में चलता है और इसमें कल्पित और यथार्थ दोनों प्रकार के स्थानों के वर्णनों के साथ-साथ अनेक घटनाओं के तादात्म्य से इतिवृत्त के निर्माण और निर्वाह के प्रयत्न किए गए हैं, जैसे—केशव प्रसाद सिंह-कृत 'चन्द्रलोक की यात्रा'[१] में सब कल्पित अवतारणाएँ की गई हैं, लेकिन फिर भी इसमें कहानी के अधिक तत्व सफलता से आए हैं तथा अंत तक पात्रों द्वारा यात्रा-वर्णन और घटना-वर्णन में मनोरंजन के तत्व मिलते हैं। 'कश्मीर-यात्रा'[२] में वहीं कहानी-तत्व अपेक्षाकृत अधिक सफलता से चरितार्थ हुए हैं, लेकिन इसमें पत्रात्मक-शैली का सहारा नहीं लिया गया है।

---

१. सरस्वती, भाग १, संख्या ७, पृष्ठ २२७।

२. सरस्वती, भाग १, संख्या ५।

पाँचवें प्रयत्न में आत्म-कहानी की शैली से कहानी की सृष्टि हुई है, जैसे— कार्तिक प्रसाद खत्री-कृत 'दामोदर राव की आत्म-कहानी'[१]।

इसमें उत्तमपुरुष में कहानी कहने की शैली सफलतापूर्वक चरितार्थ हुई है। कहानी के वर्णन-पक्ष में विषय-प्रतिपादन तथा व्यक्ति के माध्यम से आदर्श प्रतिष्ठा इन दोनों तत्वों को सफलता मिली है।

छठे प्रयत्न की दिशा में संस्कृत नाटकों की आख्यायिका आती है, जैसे—श्रीहर्ष-रचित, 'रत्नावली नाटक'[२] की आख्यायिका। इसे पंडित जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी ने कहानी के रूप में ढाला है। यह आख्यायिका अपेक्षाकृत बहुत लम्बी और विस्तृत रूप में आई है, फलतः इसमें कहानी की सीमा नहीं रह पाती। इस कहानी में मूल नाटक के समस्त इतिवृत्त को स्थान देने का प्रयत्न किया गया है। सातवें और अंतिम प्रयत्न में एक ऐसी कहानी के निर्माण का प्रयोग किया गया है जहाँ केवल वर्णन और विश्लेषण शैली से एक सामाजिक संवेदना इतिवृत्त में बाँधी गई है, जैसे—लाला पार्वती-नन्दन-कृत 'प्रेम का फुआरा[३]' नामक कहानी। इसमें एक समस्यापूर्ण सामाजिक कथानक की अवतारणा हुई है। बीस वर्ष की जवान, काली, चेचक के दाग वाले चेहरे की हुसेनी बीबी की कहीं शादी नहीं हो रही है। वह अपनी शादी की ही इच्छा से अपनी खाला के घर जाती है। उसी गाँव में उसकी दो ब्याही हुई सखियाँ भी मिलती हैं, लेकिन उनसे समवेदना के स्थान पर ईर्ष्या होती है फलतः हुसेनी बीबी उस गाँव को भी छोड़कर कहीं और चल पड़ती है। संयोगवश उसे रास्ता भूल जाना है और वह एक खंडहर में जा पहुँचती है और एक बुढ़िया से भेंट होती है। बुढ़िया वहीं के एक फुआरे से तीन घूंट पानी बीबी को पिलाती है और सवेरे उसे एक घोड़े पर चढ़ा हुआ युवक मिलता है। वे कहीं के नवाब साहब हैं। वे इसे एक अन्य स्थान पर ले जाते हैं, कहीं रंगोली के पास। इसे वहाँ बहुत परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं। वहाँ से उसे कोई करीमबक्स उसके गाँव टिकियापुर पहुंचाने को तैयार होते हैं, पर संयोगवश बीच में कोई मोटा आदमी आ जाता है, उसे बहुत सताता है। इस तरह हुसेनी बीबी के साथ अनेकानेक घटनाएं घटती हैं और अंत में उसे वही खंडहर की बुढ़िया बचाती है। इस कहानी का निर्माण केवल संयोगों के आधार पर हुआ है। इसमें घटनाएँ एक के बाद एक आती रहती हैं।

उपर्युक्त आठों प्रकार के प्रयत्नों और कलात्मक प्रयोगों से हिन्दी कहानी-कला के आरम्भ का सूत्रपात निश्चित रूप से हुआ। कहानी के रचना-विधान में

१. सरस्वती, भाग १, संख्या ८, पृष्ठ २६३।
२. सरस्वती, भाग २, संख्या १।
३. सरस्वती, भाग २, संख्या ५, पृष्ठ १६६।

कथानक, चरित्र, शैली और समस्या
अर्थात् कहानी की सीमा, क्षेत्र और
पूर्ण और कथापूर्ण; चरित्र कल्पि
तिलस्मी, ऐय्यारी, समस्या अथवा
तिलस्मी व्यापार आदि तात्विक वि
करने लगीं, लेकिन यहाँ यह भी स्प
कहानी शिल्पविधि की दृष्टि से हि
इन कहानियों में से कुछ भाव-पक्ष
कला-पक्ष की दृष्टि से कहानी नहीं
कहानियों में से प्रायः अधिक कहा
वस्तुतः इन्हीं की प्रेरणा और भाव
ही वर्ष मौलिक हिन्दी कहानी का
की मौलिक कहानी है रामचन्द्र शु

कथानक

दो मित्र रात को टहलते-
वहाँ दैव संयोग से वे एक स्त्री देख
लेते हैं। स्त्री अपनी कहानी कहत
उसकी शादी इसी खंडहर वाले ग
नक बाढ़ से वह गाँव बह गया अ
अबोध और अज्ञान थी। उसे इन
में अपने माँ बाप के घर रही, लेि
व्यंग मिलने लगे। फलस्वरूप वह
उधर उसका पति बाढ़ में बहते-ब

वहाँ कुछ वर्षों के बाद पु
वह वहाँ से चल पड़ता है। अंत
उससे बातें पूछने वाला वही युवक
हैं। इसकी पुष्टि स्त्री पुरुष के हा

शैली

संपूर्ण कहानी प्रथमपुरुष
कहानी आरम्भ होती है, फिर स्त्र

१. सरस्वती, सितम्बर

कथानक, चरित्र, शैली और समस्या को गुँफित करने की एक निश्चित दिशा भी मिली, अर्थात् कहानी की सीमा, क्षेत्र और ध्येय को एक रूप मिला। कथानक, घटना संयोग-पूर्ण और कथापूर्ण; चरित्र काल्पनिक और स्वच्छंद पर स्थूल; शैली वर्णनात्मक; तिलस्मी, ऐय्यारी, समस्या अथवा वर्ण्य वस्तु में धर्म आचरण का आदेश, रोमांस और तिलस्मी व्यापार आदि तात्विक विशेषताएँ कहानी के सीमा-क्षेत्र और रूप को निर्धारित करने लगीं, लेकिन यहाँ यह भी स्पष्ट है कि इन समस्त प्रयोगों से निर्मित कोई भी कहानी शिल्पविधि की दृष्टि से हिन्दी की मौलिक कहानी नहीं कही जा सकती क्योंकि इन कहानियों में से कुछ भाव-पक्ष की दृष्टि से छायानुवाद हैं, भावानुवाद हैं, और शेष कला-पक्ष की दृष्टि से कहानी नहीं हैं। लेकिन यह अवश्य है कि इन प्रयोगात्मक कहानियों में से प्रायः अधिक कहानियाँ अपने लक्ष्य की ओर अवश्यमेव प्रेरित हैं। वस्तुतः इन्हीं की प्रेरणा और भाव-शक्ति के फलस्वरूप शीघ्र ही 'सरस्वती' के तीसरे ही वर्ष मौलिक हिन्दी कहानी का आरम्भ हुआ। शिल्पविधि की दृष्टि से प्रथम हिन्दी की मौलिक कहानी है रामचन्द्र शुक्ल-कृत 'ग्यारह वर्ष का समय।'[1]

कथानक

दो मित्र रात को टहलते-टहलते एक उजड़े हुए गाँव के खंडहर में पहुँचते हैं। वहाँ दैव संयोग से वे एक स्त्री देखते हैं और उसका पीछा कर उससे उसका परिचय लेते हैं। स्त्री अपनी कहानी कहती है कि वह काशी की लड़की है। ग्यारह वर्ष हुए उसकी शादी इसी खंडहर वाले गाँव में हुई थी, लेकिन दैव संयोग से उसी वर्ष भयानक बाढ़ से वह गाँव बह गया और सब लुप्त हो गए। उस समय वह लड़की बिल्कुल अबोध और अज्ञान थी। उसे इन बातों का कुछ भी पता न था। वह बस काशी ही में अपने माँ बाप के घर रही, लेकिन जब वह तरुणी हुई, उसे घर-परिवार से ताने-व्यंग मिलने लगे। फलस्वरूप वह ढूँढ़ती-ढूँढ़ती उसी गाँव के खंडहर में चली आई, उधर उसका पति बाढ़ में बहते-बहते एक व्यापारी की किश्ती में कलकत्ता पहुँचा।

वहाँ कुछ वर्षों के बाद पुरुष को एक शादी देखकर अपनी स्त्री की याद आई। वह वहाँ से चल पड़ता है। अंत में स्पष्ट हो जाता है कि वह खंडहर की स्त्री और उससे बातें पूछने वाला वही युवक आपस में दोनों ग्यारह वर्षों के बिछुड़े हुए पति-पत्नी हैं। इसकी पुष्टि स्त्री पुरुष के हाथ में एक तिल देखकर करती है।

शैली

संपूर्ण कहानी प्रथमपुरुष में कही गई है। पहले सीधे कहानीकार के मुख से कहानी आरम्भ होती है, फिर स्त्री से भेंट होने के उपरान्त कहानी का सूत्र उस स्त्री

१. सरस्वती, सितम्बर १९०३, भाग ४, संख्या ९।

की आत्मकथा से आगे बढ़ता है। इसके उपरान्त नायक का मित्र प्रथमपुरुष में कहानी का सूत्र बढ़ाकर पिछले सूत्र से जोड़ता है और अंत में रहस्योद्घाटन के बाद कहानी का अंत हो जाता है। कहानी अपनी कलात्मक विशेषता में कथात्मक है तथा अपने विकास-क्रम में संयोगात्मक, लेकिन फिर भी इस कहानी-शैली में जिज्ञासा-कौतूहल-वृत्ति को वर्णनों में इस तरह संगुम्फित किया गया है कि अंत तक कहानी में आकर्षण विद्यमान रहता है। पात्र और चरित्र-चित्रण की प्रतिष्ठा की दृष्टि से कहानी साधारण है। केवल पात्र चरित्रों के रूप में कहानी में पिरोए गए हैं, उनके व्यक्तित्व-विश्लेषण का सर्वथा अभाव है। लेकिन यहाँ हमें यह भी नहीं भूलना है कि यह कहानी की विकास-दृष्टि से आदि कहानी है, फलतः इसकी अपनी सीमाएँ होना स्वाभाविक है। वस्तुतः यह कहानी हिन्दी के एक भावी आलोचक की लेखनी से निर्मित हुई है, इसलिए इस कहानी के विकास में कहानीकार स्पष्ट रूप से आलोचक और समर्थक भी बन गया है। जब कहानी का नायक कलकत्ते पहुँच कर एक दिन सहसा अपनी पत्नी की याद करता है, कहानीकार ने जब ऐसी उक्ति कही, वहीं उसने इसका विश्लेषण किया कि "है......न कभी साक्षात् हुआ, न वार्तालाप, न लम्बी-लम्बी कोर्टशिप हुई, यह प्रेम कैसा ! महाशय रुष्ट न हूजिये। इस अदृष्ट प्रेम का धर्म और कर्तव्य से घनिष्ठ संबन्ध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और निःस्वार्थ हृदय में हो सकती है। इसकी जड़ संसार के और प्रकार के प्रचलित प्रेमों से दृढ़तर और प्रशस्त है। आपको संतुष्ट करने को मैं इतना और कहे देता हूँ कि इंगलैंड के भूतपूर्व प्रधान मंत्री अर्ल आफ बेकन्स फील्ड का भी यही मत है।"[1]

इस तरह इस कहानी की शिल्प-विधि में वर्णन, विश्लेषण का स्थान मुख्य है। इसके आरम्भ, विकास और अंत का विधान संयोगों के माध्यम से हुआ है तथा चरित्र-चित्रण घटनाओं के सहारे आकर्षण के प्रकाश में हुआ है। फिर भी इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह हिंदी की आदि मौलिक कहानी है तथा इसकी शिल्प-विधि का निर्माण कहानी का अपना मौलिक प्रयास है। इसमें कहानी के वे सब तत्व आ गये हैं, जिनके प्रकाश में यह कहानी सर्वथा उल्लेखनीय है। इस कहानी के बाद से हमें आने वाली 'सरस्वती' की प्रायः अधिक संख्याओं में हिंदी की और मौलिक कहानियाँ मिलने लगती हैं। दूसरी ओर अहिंदी कहानियों जैसे बंगला, अंग्रेजी कहानियों के अनुवाद मिलने लगते हैं। इन प्रारम्भिक विकास-सूत्रों के अध्ययन में हिंदी की इन मौलिक कहानियों का सूत्र बहुमूल्य है।

विकास-क्रम

इस विकास-क्रम में जो दूसरी कहानी आती है, वह है पण्डित गिरजादत्त बाज-

१. सरस्वती, सितम्बर १९०३, भाग ४, संख्या ९ पृ० ३३६।

देवी-लिखित 'पण्डित और पण्डि
से पिछले व्यंग चित्र और हास्
का समग्र रूप सफलता से निर्
के पण्डित और उनकी बीस ब
में स्वभाव-विरोध के रहते दाम्
हाल यों है—कमरे के एक को
ऊपर कुछ लिख रहे थे। थोड़ी
पण्डितानी ने उन्हें आकर्षित क
पण्डितानी ने अपनी बात शुरू
लेख के प्रवाह में कोई विघ्न-ब
उन्हें अच्छी न लगती थीं, इस
अपने तर्कों पर जुटी थीं। उन
शिवदत्त दाता।'

अंत में पंडित जी पंडि
पंडितानी से प्रेमपूर्वक कहा—
तो प्रसन्न हो। इस पर पंडित
जी ने जल्दी-जल्दी अपना लेख
की कहानी 'दृष्टिदान'[2] का
है, जिसका भावानुवाद हिंदी
उसकी पत्नी के प्रेम-विश्वास
में कही गई है, जिसमें दो क
वर्णन, और चिंतन शैली। प
चरित्र-प्रतिष्ठा भी हुई है। क
पुष्ट हैं। कथोपकथन काफी
पैरों से लिपट कर कहा—'
हुई है, दूसरी स्त्री का तुम्हें

पति ने कहा—'मैं
मुझे एक अनंत आवरण में
धमका सकूँ, जिस पर क्रोध

१. सरस्वती, सित
२. सरस्वती, १९०
३. सरस्वती, १९०

पेयी-लिखित 'पण्डित और पण्डितानी'[1] नामक कहानी। यह कहानी कलात्मक दृष्टि से पिछले व्यंग चित्र और हास्य चित्र के विकसित सूत्र में आती है तथा यहाँ कहानी का समग्र रूप सफलता से निर्मित हो गया है। कहानी की संवेदना एक पैंतालिस वर्ष के पण्डित और उनकी बीस वर्ष की पण्डितानी की समस्या को लेकर चलती है। दोनों में स्वभाव-विरोध के रहते दाम्पत्य आकर्षण है। शैली-अध्ययन के लिये एक दिन का हाल यों है—कमरे के एक कोने में जहाँ मेज-कुर्सी लगी थी, पण्डित जी एक कवि के ऊपर कुछ लिख रहे थे। थोड़ी ही दूर पर पण्डितानी भी एक पत्र पढ़ रही थीं। पण्डितानी ने उन्हें आकर्षित करने के लिए कुछ खाँसा, पर पण्डित जी चुप थे। फिर पण्डितानी ने अपनी बात शुरू की। वे एक तोता पालने जा रही हैं। पंडित जी अपने लेख के प्रवाह में कोई विघ्न-बाधा नहीं चाहते थे। दूसरी बात घर में तोते का पालना उन्हें अच्छी न लगती थी, इसलिए वे बराबर मना करते थे, लेकिन पण्डितानी जी अपने तर्कों पर जुटी थीं। उन्होंने बताया कि उनका तोता कैसे बोलेगा 'सत्य गुरु दत्त शिवदत्त दाता।'

अंत में पंडित जी पंडितानी के प्रेम में बहकर कोई विरोध न कर सके। उन्होंने पंडितानी से प्रेमपूर्वक कहा—अच्छा तुम्हारे लिए एक नहीं छः तोते आ जायेंगे, अब तो प्रसन्न हो। इस पर पंडितानी जी प्रसन्नता से फूलकर चुपचाप बैठ गईं और पंडित जी ने जल्दी-जल्दी अपना लेख समाप्त कर डाला। उसी वर्ष कुमुदबंधु मित्र ने टैगोर की कहानी 'दृष्टिदान'[2] का हिंदी में भावानुवाद किया। टैगोर की यह पहली कहानी है, जिसका भावानुवाद हिंदी में सर्वप्रथम हुआ। कहानी की संवेदना एक डाक्टर और उसकी पत्नी के प्रेम-विश्वास को लेकर निर्मित हुई है। सम्पूर्ण कहानी प्रथमपुरुष में कही गई है, जिसमें दो कलात्मक विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं; भावुकतापूर्ण सूक्ष्म वर्णन, और चिंतन शैली। पात्रों की सजीव अवतारणा के साथ-साथ इसमें उनकी चरित्र-प्रतिष्ठा भी हुई है। चरित्र-प्रतिष्ठा में मनोविज्ञान और आत्म-विश्लेषण दोनों पुष्ट हैं। कथोपकथन काफी संयत, कलात्मक और स्वाभाविक है—जैसे, मैंने उनके पैरों से लिपट कर कहा—'मैंने तुम्हारा कौन-सा पाप किया है, किस बात में मेरी भूल हुई है, दूसरी स्त्री का तुम्हें क्या प्रयोजन ?[3]

पति ने कहा—'मैं सच कहता हूँ, मैं तुमसे डरा करता हूँ। तुम्हारी अंधता ने मुझे एक अनंत आवरण से ढक रक्खा है, वहाँ मेरा प्रवेश असम्भव है। मैं जिसको धमका सकूँ, जिस पर क्रोध कर सकूँ, जिसे आदर कर सकूँ, जिसके लिए गहने गढ़ा

१. सरस्वती, सितम्बर १९०३, भाग ४, संख्या ९, पृ० १३६।

२. सरस्वती, १९०३, भाग ४, सं० २, ३।

३. सरस्वती, १९०३, भाग, ४ सं० २, ३।

सकूँ, मुझे ऐसी पत्नी चाहिए।' इस तरह इस कहानी में आदर्शवाद की भी प्रतिष्ठा हुई है। इसकी चरम सीमा, यद्यपि कौतूहल-जिज्ञासा की दृष्टि से निर्बल है, फिर भी चरित्र के अंतर्द्वंद्व पर आधारित है।

'सरस्वती' के चौथे वर्ष में पिछले प्रयत्न 'आत्म-कहानी'[1] शैली के प्रयोग से यशोदानंद अखौरी-कृत 'इत्यादि की आत्म-कहानी' और पं० महेंदुलाल गर्ग-कृत 'पेट की आत्म-कहानी'[2] नाम से दो कहानियों की सृष्टि हुई है। इन दोनों की शैलियों में आश्चर्यजनक प्रवाह और कौतूहल तथा आकर्षण के तत्व हैं। पिछले व्यंग चित्र और हास्य चित्र शैली का यहाँ चरम उत्कर्ष हुआ है। इससे कहानी-कला में व्यंग पक्ष तथा संवेद्य पक्ष को कितना अधिक बल मिला होगा, यह इससे अनुमान लगाया जा सकता है। इनके विचार-प्रतिपादन अंश में जहाँ एक ओर उत्कृष्ट भाव-निबंध के तत्व हैं, वहाँ दूसरे कहानी-तत्व भी इसमें सफलता से आए हैं। यही कारण है कि इनका महत्व निबंध-साहित्य में भी बहुत है।

'सरस्वती' के दूसरे वर्ष में कोई भी मौलिक कहानी नहीं आ सकी। लाला पार्वतीनन्दन ने 'मेरी चम्पा'[3] के नाम से एक कहानी अवश्य लिखी, लेकिन यह कहानी स्वयं लेखक के शब्दों में टामस कारलायल द्वारा अनुवादित एक जर्मन कहानी की छाया के आधार पर लिखी गई है। इसके अतिरिक्त लाला पार्वतीनन्दन ने एक अन्य कहानी 'नरक गुलजारा[4]' के नाम से अनूदित की है, लेकिन इसका पता नहीं कि यह किस मूल अथवा स्रोत से अनूदित हुई है।

वस्तुतः इन प्रारम्भिक कहानियों के विकास का व्यापक रूप हमें १९०६ ई० की 'सरस्वती' से मिलने लगता है। इस वर्ष उदाहरण-स्वरूप कुल नौ कहानियाँ आई हैं, जैसे पंडित सूर्यनारायण दीक्षित-कृत, 'चंद्रहास का अद्भुत आख्यान'[5], चाँदनी-कृत 'प्रोषित पतिका'[6], लाला पार्वतीनन्दन-कृत, 'एक के दो दो'[7], बंगमहिला-कृत 'कुम्भ में छोटी बहू'[8], और 'दान-प्रतिदान'[9], पं० वेंकटेश नारायण-कृत, 'एक अशरफी की

१. सरस्वती, जून १९०४, भाग ५, सं० ६।
२. सरस्वती, सितम्बर १९०४, भाग ५, सं० ९।
३. सरस्वती, एप्रिल १९०५, भाग ६, सं० ४ पृ० १३२।
४. सरस्वती, सितम्बर १९०५, भाग ६, सं० ९।
५. सरस्वती भाग ७, सं० ३, पृ० १०४।
६. सरस्वती, भाग ७, सं० ५, पृ० १७४।
७. सरस्वती, भाग ७, सं० ६, पृ० २६५।
८. सरस्वती, भाग ७ सं० ९, पृ० ३४२।
९. सरस्वती, भाग ७ सं० ४, पृ० १३५।

आत्म-कहानी[1], चतुर्वेदी-कृत 'भूल
और भट्टाचार्य-कृत 'राजपूतनी[4],
'एक के दो दो', 'चंद्रहास का अद्
मौलिक कहानियाँ हैं। ये सब कहा
दृष्टि से कुछ भी आगे नहीं बढ़
कहानियों में 'राजपूतनी', 'भूलभु
प्राय: उल्लेखनीय हैं। इनमें 'राज
पत्र में प्रकाशित बाबू सुधीन्द्रनाथ
कहानी है। भूलभुलैया, भावात्मक
नाटक की संवेदना पर आधारित
बंगला कहानी का अनुवाद है।

'कुम्भ में छोटी बहू' भी
रचित बंग भाषा के एक गल्प का
कला है कि इसका प्रभाव उस सम
इस कहानी की संवेदना मूलतः वि
इतिवृत्त का निर्माण हमारी भा
इसका कथानक है—मिर्जापुर क
मेले में आता है। प्रयाग मेले में
छोटी बहू का एकलौता बच्चा भ
आदि चोरी चले जाते हैं। बस,
समस्या को लेकर कहानी का वि
वर्णनात्मक के साथ-साथ अलग
परिवार का सामूहिक चित्रण, वि
का चित्रण तथा तृतीय अनुच्छे
परिसमाप्ति।

इस तरह इस कहानी क
और स्वाभाविक धरातल पर हु
अक्षुण्य है। उदाहरणार्थ बहुएँ वि

१. सरस्वती, भाग ७ स
२. सरस्वती, भाग ७
३. सरस्वती, भाग ७
४. सरस्वती, भाग ७,

आत्म-कहानी[1], चतुर्वेदी-कृत 'भूल भुलैया'[2], लाला पार्वतीनन्दन-कृत, 'मेरा पुनर्जन्म'[3], और भट्टाचार्य-कृत 'राजपूतनी'[4], । इन कहानियों में, 'एक अशरफी की आत्म-कहानी', 'एक के दो दो', 'चंद्रहास का अद्भुत आख्यान', 'प्रोषित पतिका', और 'मेरा पुनर्जन्म', मौलिक कहानियाँ हैं। ये सब कहानियाँ साधारण ढंग की हैं और शिल्पविधि-विकास की दृष्टि से कुछ भी आगे नहीं बढ़ सकी हैं। शेष पूर्ण अनूदित अथवा छायानुवादित कहानियों में 'राजपूतनी', 'भूलभुलैया', 'दान-प्रतिदान', 'कुम्भ में छोटी बहू' कहानियाँ प्रायः उल्लेखनीय हैं। इनमें 'राजपूतनी', बंग भाषा के 'प्रवासी' नामक प्रसिद्ध मासिक पत्र में प्रकाशित बाबू सुधीन्द्रनाथ ठाकुर के एक लेख के अनुवाद के आधार पर निर्मित कहानी है। भूलभुलैया, भावात्मक रूप से शेक्सपियर की 'कॉमिडी ऑफ एरर्स' नामक नाटक की संवेदना पर आधारित कहानी है तथा 'दान-प्रतिदान' रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बंगला कहानी का अनुवाद है।

'कुम्भ में छोटी बहू' भी वस्तुतः बंगमहिला की माँ श्रीमती नीरदवासिनी घोष-रचित बंग भाषा के एक गल्प का अनुवाद है, लेकिन फिर भी इस कहानी में इतनी कला है कि इसका प्रभाव उस समय के हिन्दी पाठकों और कहानीकारों पर बहुत पड़ा। इस कहानी की संवेदना मूलतः हिन्दी प्रदेश की समस्या पर आधारित है, तथा इसके इतिवृत्त का निर्माण हमारी भावनाओं, मान्यताओं को संगुम्फित करके चला है। इसका कथानक है—मिर्जापुर का हिन्दू परिवार अपनी छोटी बहू के साथ प्रयाग कुम्भ मेले में आता है। प्रयाग मेले में अपार भीड़ होने के कारण सब लोग खो जाते हैं। छोटी बहू का एकलौता बच्चा भी दब कर मर जाता है तथा अन्य स्त्रियों के गहने आदि चोरी चले जाते हैं। बस, इस कहानी का कथासूत्र इतना ही है। इस स्वाभाविक समस्या को लेकर कहानी का निर्माण हुआ है। शैली की दृष्टि से सम्पूर्ण कहानी वर्णनात्मक के साथ-साथ अलग अनुच्छेदों में कही गई है, जैसे—प्रथम अनुच्छेद में उस परिवार का सामूहिक चित्रण, द्वितीय अनुच्छेद में छोटी बहू के मेले में आने की तैयारी का चित्रण तथा तृतीय अनुच्छेद में प्रयाग के कुम्भ मेले का वर्णन और कहानी की परिसमाप्ति।

इस तरह इस कहानी की मूल आत्मा तथा उसका सामूहिक विकास पूर्ण यथार्थ और स्वाभाविक धरातल पर हुआ है। इसके कथोपकथन में यह स्वाभाविकता सर्वत्र अक्षुण्ण है। उदाहरणार्थ बहुएँ जिस समय मेले में आने की तैयारी कर रही थीं, उस

---

१. सरस्वती, भाग ७ सं० १०, पृ० ३६६।
२. सरस्वती, भाग ७ सं० १, पृ० ३१।
३. सरस्वती, भाग ७ सं० १, पृ० ५६।
४. सरस्वती, भाग ७, सं० ५, पृ० १८२।

समय गाँव की एक औरत आकर कहती है—"का हो बहू। का सलाह होत बाय, प्रयाग जी नहाए चलत जाब का। हे भाई, हमहूँ कै लिवाय चला।"[1] इस कहानी का उद्देश्य भी अत्यन्त समस्यापूर्ण और यथार्थ है। मेले आदि में गाँव की लज्जाशीला बहुओं के आने से क्या दुर्गति होती है, फलतः उनका मेले आदि में न आना इस कहानी का उद्देश्य है। 'सरस्वती' के सातवें वर्ष[1] भर की संख्याओं में फिर छः कहानियाँ हैं, जैसे बाबूराम दास-कृत, 'एक के दो-दो', पंडित उदय नारायण बाजपेयी-कृत 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी', लक्ष्मीधर बाजपेयी-कृत 'तीक्ष्ण छुरी', श्रीमती बंग-महिला-कृत 'दुलाई वाली', 'प्रेमनाथ भट्टाचार्य-कृत 'पक्का गठिबंधन' और पं० गंगा प्रसाद अग्निहोत्री-कृत 'सच्चाई का शिखर' इन समस्त कहानियों में शिल्पविधि की दृष्टि से केवल 'दुलाई वाली' कहानी महत्वपूर्ण है। परवर्ती कहानी-शिल्प के विकास में इसका भी स्थान ऐतिहासिक है।

यही कारण है कि कुछ आलोचकों ने इसी कहानी को हिन्दी की आदि मौलिक कहानी माना है। इस कहानी की संवेदना दो मित्रों के मनोरंजनपूर्ण कलात्मक मजाक के धरातल पर चली है। इलाहाबाद के बंशीधर बनारस अपनी ससुराल से दुल्हन बिदा-करा कर मुगलसराय जंकशन से होते हुए आ रहे थे। मुगलसराय जंकशन पर उनके मित्र नवलकिशोर भी अपनी पत्नी को लेकर मिलने वाले थे। लेकिन वहाँ कोई न मिला, बल्कि गाड़ी में उन्हें एक रोती हुई दुल्हन मिली। सहानुभूति और करुणावश बंशीधर जी उसे अपनी संरक्षता में लिए हुए इलाहाबाद स्टेशन पर उतरे। वहाँ उन्हें एक दुलाईवाली बुढ़िया मिली। उसी की देख-रेख में सब को छोड़कर बंशीधर जी स्टेशन-मास्टर को, उस लावारिस दुल्हन के सम्बन्ध में सूचना देने गये और जब लौट कर आते हैं, तब वहाँ सब लापता थे—उनकी दुल्हन भी। बंशीधर जी परेशान होकर जैसे ही आगे बढ़े, उन्होंने दुलाई वाली बुढ़िया को देखा और पूछने पर वह दुलाई वाली अपना घूँघट खोलकर हँस पड़ी और बंशीधर ने देखा वह नवलकिशोर ही था। वस्तुतः इस इतिवृत्त की कलात्मक सजावट ही इस कहानी की शिल्पविधि की परम विशेषता है। सम्पूर्ण कहानी विभिन्न भागों में विकसित की गई है। कहानी का आरम्भिक भाग समस्या की पृष्ठभूमि तैयार करने और मुख्यतः आकर्षण और कौतूहल प्रस्तुत करने के लिए है। कहानी के दूसरे भाग में इसका फैलाव आता है। इसमें एक ओर कहानी की कथावस्तु स्पष्ट होकर आगे बढ़ती है, तथा दूसरी ओर कहानी के नायक का द्वंद्व सामने आता है। तीसरे भाग में कहानी की समस्या सामने आती है और कहानी के नायक के द्वंद्व से मिलकर कहानी में गंभीरता और कौतूहल की सृष्टि करती है। कहानी का चौथा भाग चरम सीमा का भाग है जहाँ हमारी जिज्ञासा वृत्ति को शांति

---

१. सरस्वती, १९०१ भाग, ८, सं० १ से १२ तक।

मिलती है। विशुद्ध शैली की दृष्टि से इस कहानी में दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—यथार्थ जीवन का चित्रण और स्वाभाविक वर्णन। यथार्थ जीवन-चित्रण में दो बातें स्पष्ट हैं, पूर्ण संवेदना से मानव-भावनाओं के चित्रीकरण तथा चरित्र और परिस्थिति के साधारणीकरण का प्रयत्न। स्वाभाविक वर्णनों में स्वाभाविक कथोपकथन और कहानी की गति के अनुकूल इसके वर्णन विशेष रूप से सफल हुए हैं।

अगले वर्ष की 'सरस्वती'[1] की संख्याओं में अध्ययन की दृष्टि से कहानी-सामग्री का अभाव है। इसकी संख्या सात और ग्यारह में दो कहानियाँ क्रमशः सत्यदेव-कृत 'कीर्तिकालिमा', और मधुमंगल-कृत 'भुतही कोठरी' आई हैं, तथा ये दोनों कहानियाँ विकास-अध्ययन की दृष्टि से बिल्कुल नगण्य हैं। इसके बाद की 'सरस्वती'[2] में कुल पाँच कहानियाँ आई हैं, जैसे—श्री लाल शालग्राम पंड्या-कृत 'एक ज्योतिषी की आत्मकथा,' श्रीमती बंगमहिला-कृत 'दालिया', कुन्दनलाल शाह-कृत 'प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण', श्री वृन्दावनलाल वर्मा-कृत 'राखीबंद भाई', और पं० शिव नारायन शुक्ल-कृत 'सात सुनार'। इन समस्त कहानियों में केवल वृन्दावन लाल वर्मा-कृत 'राखीबंद भाई' को छोड़कर शेष सब कहानियाँ किसी न किसी रूप में अनूदित हैं। 'सात सुनार' सम्पादक के शब्दों में—यह कहानी 'फोक टेल्स' की एक कहानी का भावार्थ है। 'दालिया' टैगोर की लिखी हुई बंगला गल्प का अनुवाद है। 'प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण' स्वयं अनुवादक श्री शाह के शब्दों में अनुवाद मात्र है। 'राखीबंद भाई' भावी हिन्दी कहानी-जगत् के उस ऐतिहासिक और मर्यादावादी कहानीकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा की सृष्टि है जिन्हें इस दिशा में आगे चलकर अपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। वस्तुतः वर्मा जी के भावी कहानीकार व्यक्तित्व की प्रायः समस्त विशेषताएँ अपने बीज-रूप में यहाँ मिल जाती हैं। इस कहानी का इतिवृत्त राजस्थान के दो राजाओं से संबंधित है जो राजकुमारी पन्ना के राखी बाँधने से विकसित होती है। कहानी की आत्मा इस द्वंद्व और संयोग पर आधारित है कि पन्ना जिस राजा को राखी भेजकर अज्ञानवश भाई बनाती है, वही उसका प्रेमी निकलता है। इस तरह कहानी का अंत मानव-आदर्श और चिरंतन द्वंद्व के आधार पर होता है। कहानी कलात्मक रूप में वर्णनात्मक और इतिवृत्त-प्रधान है। इसका प्रभाव हृदय पर पूर्णतः आदर्श भावना के साथ पड़ता है। आगे चलकर 'सरस्वती' १९१० की संख्या १० में इनकी इसी शिल्प-विधि की अन्य कहानी 'तातार और एक वीर राजपूत' के नाम से आती है।

'सरस्वती' की इतनी कहानी-सेवा और प्रेरणा ने हिंदी कहानी-शिल्प-विधि के विकास में जहाँ एक ओर कहानी-युग को प्रतिष्ठा की, दूसरी ओर इसने हिन्दी प्रदेश

१. सरस्वती, १९०८ ई०, भाग ९ संख्या १ से १२ तक।

२. सरस्वती, १९०९ ई०, भाग १०, संख्या १ से १२ तक।

और इसके एक-एक भाषा-भाषी तथा पाठक और लेखक के हृदय में कहानी की सत्ता की जड़ जमा दी। अब पाठक साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा कहानी के पठन-पाठन को अधिक प्रश्रय देने लगा। उस समय की यह मनोवृत्ति मुख्यतः दो कारणों से इस विशेष दिशा में बदली।

वस्तुतः १९०९ और १९१० ई० के आस-पास का समय, भारतीय परिस्थिति में कठिन राजनीतिक और सामाजिक असन्तोष के आरम्भ का काल है। इसके पूर्व भी भारत में यह असंतोष था, लेकिन उस असन्तोष में आशा थी, भाग्यवादिता का सम्बल था। इस समय से देश में वह असन्तोष आरम्भ होता है जिसकी जड़ में निराशा और पराजय थी। यह निराशा और पराजय की भावना भारतीय चेतना में १९१८ ई० के बाद एक कारण से और भी बढ़ जाती है कि हमें प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के उपरांत कुछ नहीं मिलता। इस समय देश के शासक अंग्रेज हमारी संपूर्ण परिस्थितियों को अपने दमन चक्र में डालकर स्वयं प्रथम महायुद्ध की तैयारी में लग चुके थे। इधर भारतीय राजनीति में गाँधी जी का अभ्युदय हो गया और देश में स्वाभिमान की लहर उठने लगी, लेकिन दूसरी ओर हमारी सामाजिक मान्यताएँ कठोर, निश्चित तथा स्थिर हो चली थीं और आर्थिक दृष्टि से भी हमारा पतन आरम्भ हो गया था, फलतः जीवन द्रुतगामी होने लगा था। अवकाश के क्षण सीमित हो चले थे और क्षणिक अवकाश में ही मनोरंजन के लिए कहानी की माँग बढ़ गई। इस माँग में लेखकों के स्वाभिमान और स्थितियों के प्रति असन्तोष ने अपूर्व सहयोग दिया। उस समय प्रयाग और काशी हिन्दी-क्षेत्र के दो मुख्य केन्द्र रहे। प्रयाग में 'सरस्वती' कहानी की इस बढ़ती हुई पिपासा को शान्त करने में असमर्थ होने लगी, इसलिए 'सरस्वती' के अतिरिक्त काशी केन्द्र से 'इन्दु' (१९०९) का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस तरह 'सरस्वती' और 'इन्दु' की सामूहिक प्रेरणा ने हिन्दी कहानी-जगत् में उस उज्ज्वल द्वार को खोला, जिससे प्रसाद (इन्दु) और गुलेरी (सरस्वती) का कहानी-क्षेत्र में आविर्भाव हुआ।

'इन्दु' का प्रकाशन

हिन्दी कहानी-शिल्पविधि के आरम्भ और विकास की दृष्टि से 'सरस्वती' के उपरान्त 'इन्दु' का भी स्थान कहानी-साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण रहेगा। इसके उज्जवल पृष्ठों से जहाँ एक ओर युग के एक प्रतिनिधि कहानीकार प्रसादजी का आविर्भाव हुआ, वहाँ दूसरी ओर इसकी विभिन्न 'किरणों' में अनेकानेक बँगला कहानियाँ अनूदित होकर हिंदी में आईं तथा कहानी के क्षेत्र में इतने नये हिंदी-लेखकों का आगमन हुआ कि 'इंदु' की केवल पाँच वर्षों की ही 'किरणों' में 'सरस्वती' के दस वर्षों की संख्याओं में कुल आई हुई कहानियों से प्रायः दुगुनी कहानियाँ आई होंगी।

प्रसाद की प्रथम कहानी 'गाँव,'[1] इसके दूसरे ही वर्ष द्वितीय 'किरण' में आई है। इनकी दूसरी कहानी 'चंदा'[2] उसी वर्ष की अगली किरण में आई। इसके उपरान्त प्रसाद की अन्य कहानियाँ—जैसे 'गुलाम'[3] 'चित्तौर उद्धार'[4] आगे की कलाओं में आईं। वस्तुतः प्रसाद के कहानी-साहित्य की प्रारम्भिक कहानियाँ 'इंदु' के प्रारम्भिक वर्षों में आई हैं। प्रसाद के अतिरिक्त 'इंदु' के इन प्रारम्भिक वर्षों में हिंदी के अन्य मौलिक कहानीकार पं० विश्वम्भरनाथ जिज्जा का नाम उल्लेखनीय है। इनकी प्रथम कहानी 'विदीर्ण हृदय'[5] इन्हीं वर्षों के 'इंदु' के पृष्ठों में आई है।

'इंदु' का अपार महत्व इस दिशा में भी है कि इसके माध्यम से बंगला की अनूदित कहानियाँ हिंदी-प्रदेश में अपूर्व ढंग से आई हैं। इन कहानियों से हिंदी के उदीयमान कहानीकारों को अनेक प्रेरणाएं मिलीं। बंगला की ये कहानियाँ मुख्यतः वहाँ के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'प्रवासी' से ली जाती थीं। इस तरह का आभार, हिंदी कहानी-शिल्पविधि के विकास के इतिहास से स्मरणीय है। 'इंदु' के इन बंगला कहानियों के अनुवादक मुख्यतः पं० पारसनाथ त्रिपाठी थे। इन्होंने बंगला कहानियों के अनुवादों से 'इंदु' की किरणों को बार-बार सुशोभित किया है। 'इंदु' की छः वर्षों की किरणों में त्रिपाठी जी ने अनेक बंगला कहानियों को अनूदित किया। 'मन का दाग', 'चूक की हूक', 'प्रेम पुस्तक', 'लज्जा', 'ललिता', 'प्रियम्बदा', बंग महिला-कृत 'दुलाई वाली' तथा 'पोस्टकार्ड', 'मेघनाथ', और 'विमला की पाठशाला' आदि बंगला कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

इस भाँति 'इंदु' की कहानी-कला के विकास की प्रेरणा में मौलिक हिंदी कहानियों की अपेक्षा बंगला से अनूदित कहानियों की प्राणशक्ति ने युग की उद्बुद्ध कहानी-कला की चेतना को अपूर्व बल दिया। कहानियों की मांग, जनता तथा पाठकों की ओर से और बढ़ गई तथा उदीयमान कहानी-लेखकों ने भी इधर अपनी क्षमता का पूर्णप्रदर्शन आरम्भ किया। काशी में 'इंदु' के अतिरिक्त १९१८ ई० में 'हिंदी गल्प-माला' के प्रकाशन की नींव पड़ी और इस विशुद्ध कहानी मासिक ने कहानी-जगत् में अपनी कहानियों के विविध रूप, विविध शैलियों और प्रयोगों से हलचल मचा दी।

'हिन्दी गल्प-माला' का प्रकाशन

हिन्दी कहानियों को लोकप्रिय बनाने तथा इनकी कला को विस्तार देने में

१. इन्दु : कला २, किरण २, पृष्ठ ६१।
२. इन्दु : कला २, किरण ३, पृष्ठ ८२।
३. इन्दु : कला ५, किरण १, पृष्ठ ४।
४. इन्दु : कला ६, किरण १, पृष्ठ १६७।
५. इन्दु : कला ६ किरण १, पृष्ठ ४४, ४८।

'हिंदी गल्प-माला'[1] की बहुत बड़ी विशेषता है। इसके प्रथम भाग के द्वितीय अंक में श्री प्यारेलाल गुप्त-कृत 'समालोचक', श्रीमती फूलमती-कृत 'बड़े की बेटी', रुद्रदत्त भट्ट-कृत 'अजीवदास की जासूसी' और जी० पी० श्रीवास्तव-कृत 'मैं न बोलूँगी' कुल चार कहानियाँ हैं। इन कहानियों में जी० पी० श्रीवास्तव की 'मैं न बोलूँगी'[2] कहानी अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसमें कथावस्तु नाम जैसा कोई विशेष तत्व नहीं है, बल्कि समूची कहानी की संवेदना एक मनोवैज्ञानिक भाव-बिंदु पर आधारित है। कोई मुग्धा नायिका अपने पति की अनुपस्थिति में स्वयं अपने आप तय करती है कि मैं उनसे न बोलूँगी, उनके आने पर रूठी रहूँगी। लेकिन जैसे ही पति आ जाता है, वह अपनी सहज निर्बलता के फलस्वरूप बिल्कुल नहीं रूठ पाती। शैली की दृष्टि से यह प्रथम पुरुष की शैली में चिंतन-प्रणाली में निर्मित हुई है। यह कहानी निश्चित रूप से मनोवैज्ञानिक कहानी है और इसकी चरम सीमा विशुद्ध रूप से चरित्रात्मक है।

उसी वर्ष के अंक चार में जी० पी० श्रीवास्तव-कृत अन्य कहानी 'झूठमूठ है'[3] छपी। इन कहानियों का भी धरातल किंचित् मनोविज्ञान है, कथामय इतिवृत्त नहीं। दूसरे वर्ष के आठवें अंक में भावी हिंदी-कहानीकार श्री इलाचंद्र जोशी-कृत 'सजनवाँ'[4] नामक उनकी प्रथम कहानी का प्रकाशन हुआ। 'सजनवाँ' कहानी में जोशी जी के भावी हिंदी-कहानीकार के व्यक्तित्व के सारे बीज विद्यमान हैं। जी० पी० श्रीवास्तव ने अपनी 'मैं न बोलूँगी' और 'झूठमूठ है', कहानी के माध्यम से जिस मनोवैज्ञानिक कहानी-धारा का सूत्रपात किया उसमें 'सजनवाँ' द्वारा जोशी जी का तादात्म्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। 'सजनवाँ' द्वारा जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक प्रणाली को बल दिया तथा इस कहानी की चिंतन-शैली काफी सफलता के साथ आई। 'माला' के अगले वर्षों के अंकों में प्रसाद जी की कहानियाँ नियमित रूप से आने लगीं—जैसे, 'पत्थर की पुकार', 'करुणा की विजय', 'उस पार का योगी', 'खण्डहर की लिपि', 'प्रतिभा', 'पाप की पराजय' और 'दुखिया' आदि।

हिंदी कहानी-शिल्पविधि के प्रारम्भिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से 'इन्दु' द्वारा जयशंकर प्रसाद, 'सरस्वती' द्वारा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी[5] और इधर मन्नन द्विवेदी

१. हिन्दी गल्प माला, प्रवर्तिका, कौशल्या देवी, काशी, आरम्भ तिथि अगस्त १९१८ ई०।
२. हिन्दी गल्प माला, भाग १, अंक २, सितम्बर १९१८ ई०, पृष्ठ ६२।
३. हिन्दी गल्प माला, भाग १, अंक ४, नवम्बर १९१८, पृष्ठ १५८।
४. हिन्दी गल्प माला, भाग २, अंक ८ मार्च १९२०, पृष्ठ ३५९।
५. सरस्वती, अक्टूबर १९१५।

द्वारा 'सप्त सरोज' की
युग-द्वार खोला। हिन्दी
हुई तथा समूचा विका
हम यों भी कह सकते
की अनन्य साधना, जो
इनके कहानी-साहित्य
सत्ता उपस्थित हुई, दू
हम हिन्दी कहानियों
प्रस्तुत कर सकें।

अध्ययन की
की जड़ में किन-किन
किन प्रवृत्तियों के प्रभ
खोजने का प्रयत्न करें
जिनसे हमारी इस क

१. प्रेमचन्द
१९१७ हिन्दी पुस्त

द्वारा 'सप्त सरोज' की भूमिका से प्रेमचन्द[1] के 'अभ्युदय' ने समष्टि रूप से एक नया युग-द्वार खोला। हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की निश्चित प्रतिष्ठा इन्हीं के द्वारा हुई तथा समूचा विकास-युग इन्हीं तीनों के व्यक्तित्व से स्थिर हो सका। इस सत्य को हम यों भी कह सकते हैं कि 'गुलेरी', प्रेमचन्द और 'प्रसाद' का अभ्युदय हिन्दी कहानी की अनन्य साधना, जो पिछले पचास वर्षों से की जा रही थी, उसी के फलस्वरूप है। इनके कहानी-साहित्य तथा इनकी शिल्पविधि में एक ओर हिंदी कहानी-कला की स्वतंत्र सत्ता उपस्थित हुई, दूसरी ओर हमें वह व्यापक भाव-भूमि मिली, जिसके आधार पर हम हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के विकास और उद्गम-सूत्र का समुचित अध्ययन प्रस्तुत कर सकें।

अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि की उत्पत्ति और विकास की जड़ में किन-किन उद्गम-सूत्रों से इसे प्राणशक्ति मिली तथा इसके विधान पर किन-किन प्रवृत्तियों के प्रभाव पड़े, इसका विवेचन सबसे प्रमुख है। इस विवेचन से हम यह खोजने का प्रयत्न करेंगे कि उन समस्त प्रेरणा-शक्तियों के क्या-क्या रूप और स्तर हैं, जिनसे हमारी इस कला का आविर्भाव और विकास हुआ।

●

---

१. प्रेमचन्द के सप्त सरोज की भूमिका, मन्नन द्विवेदी, चौथी बार ८, ६, १६१७ हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता।

विकास-युग

हिंदी कहानी-कला को ही यह सुयोग मिल सका है कि इसका आविर्भाव जिन साहित्यिक मनीषियों द्वारा हुआ, उन्हीं की साहित्य-साधना से इसका विकास भी हुआ। यह विकास इतना व्यापक और विस्तृत था कि इसने अपने में एक स्वतंत्र युग की प्रतिष्ठा की। हिन्दी कहानी-कला के आविर्भाव में प्रेमचंद और 'प्रसाद' का व्यक्तित्व ही मुख्य था तथा इसके विकास की दिशा में भी इन्हीं की साधना फलीभूत हुई। इन दो महान् कथा-शिल्पियों से दो पृथक् संस्थानों के निर्माण हुए, जिनके अंतर्गत अनेकानेक कहानीकारों ने अपनी बहुमूल्य कला-कृतियाँ दीं। विकास-क्रम की दृष्टि से प्रेमचंद और 'प्रसाद' के पहले चंद्रधर शर्मा गुलेरी का स्थान अपूर्व है। इनकी केवल तीन कहानियाँ 'उसने कहा था'[1], 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा'[2] वस्तुतः हिन्दी कहानी-कला के विकास के प्रथम युग-द्वार हैं, लेकिन प्रेरणा और प्रभाव की दृष्टि से गुलेरी का स्थान अपने आप में स्वतंत्र है। इनसे विकास-युग को एक गति अवश्य मिली, लेकिन इनसे यह युग प्रेरित न हो सका। इसका एकमात्र कारण यही था कि इन्होंने कहानियाँ कम लिखीं और खोजपूर्ण लेख अधिक। ऐसे युग में प्रेमचन्द और प्रसाद के आविर्भाव ने भी इन्हें पृष्ठभूमि में डाल दिया। अतएव हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के विकास-युग के केवल दो मुख्य चरण हैं : प्रेमचंद और प्रसाद; तथा समूचे विकास-युग का प्रतिनिधित्व इनकी विभिन्न शिल्पविधियों और कलागत मान्यताओं ने किया।

प्रवृत्तियाँ

प्रेमचंद और 'प्रसाद' की कहानी-कला इस युग में दो विभिन्न प्रवृत्तियों के फलस्वरूप प्रतिष्ठित है। इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों का अनुसरण और प्रभाव समूचे विकास-

१. सरस्वती, अक्टूबर १९१५।

२. 'सुखमय जीवन' शीर्षक कहानी सन् १९११ में 'भारत मित्र' में छपी थी, 'बुद्धू का काँटा' किस पत्र या पत्रिका में छपी थी, यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता हूँ। शायद यह सन् १९११-१५ के बीच में लिखी गयी थी। गुलेरी जी की अमर कहानियाँ—सम्पादक शक्तिधर गुलेरी, वक्तव्य पृ० ३।

युग पर हुआ। ये दोनों प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से भिन्न थीं। प्रेमचंद मूलतः आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा के प्रतीक थे। 'प्रसाद' भावमूलक परम्परा के अधिष्ठाता थे। तुलनात्मक दृष्टि से प्रसाद की भावमूलक परम्परा को अपेक्षाकृत कम कहानीकारों ने अपनाया और प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा में इस युग के अधिक-से-अधिक कहानीकार आए। व्यापक रूप में विकास-युग की समूची कहानी-कला इन्हीं दोनों की कलाओं के अनुसरण का फल है, अतएव इनकी प्रवृत्तियाँ ही विकास-युग की वास्तविक प्रवृत्तियाँ मानी जा सकती हैं, जिन्हें हम दो कोटियों में बाँट कर देख सकते हैं :

(क) भावगत प्रवृत्तियाँ

(ख) शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

भावगत प्रवृत्तियाँ

'प्रसाद' के व्यक्तित्व पर बौद्ध दर्शन और भारतीय संस्कृति का प्रभाव बहुत अधिक था। यही कारण है कि इनकी भाव-धारा में एक ओर बौद्ध दर्शन की करुणा, त्याग, बलिदान था और दूसरी ओर इनमें भारतीय संस्कृति की चारित्रिक उदारता और आदर्श का अपूर्व आग्रह था। इन दोनों आग्रहों से इनका जो जीवन-दर्शन बना, उसमें करुणा, प्रेम, आनन्द और आदर्श की भावना अत्यन्त तीव्र थी। इनके व्यक्तित्व में अतीत की इतनी अद्‌भुत प्रेरणा और भारतीय संस्कृति का इतना आग्रह प्रतिफलित हुआ कि इसके फलस्वरूप इन्हें वर्तमान की अपेक्षा अतीत की ओर जाना पड़ा और यथार्थ परिस्थितियों की अपेक्षा काल्पनिक परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ा। प्रसाद की भावगत प्रवृत्तियों का रहस्य यही है, और इनका मूल धरातल समाज, इतिहास और परिस्थितिजन्य कल्पना है। कल्पना-तत्व इनके समस्त काव्य-रूपों का वह मूल स्रोत है, जहाँ से इन्हें सौंदर्य और शिव की अनेक प्रेरणाएँ प्राप्त हुई हैं। यह भावगत वृत्ति इनके कहानी-साहित्य में पूर्ण कलात्मक और उच्च शिखर पर स्थित है। यही कारण है कि इनकी प्रायः समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गईं। समाज, इतिहास और कल्पना तीनों धरातलों से निर्मित कहानियों के वर्ण्य विषय और भावों के अध्ययन से यह सत्य स्पष्ट है।

तत्कालीन समाज की गरीबी, निरीहता और शोषण को भी इन्होंने अपनी कहानियों में स्थान दिया है। अपनी गतिशील सांस्कृतिक आस्था में प्रसाद ने सामाजिक परिस्थितियों के प्रति विद्रोह और सुधार भी लक्षित किया है। 'चूड़ी वाली' में चूड़ी-वाली एक वेश्या की कथा है, लेकिन वह अपनी पवित्रता और संयम के साथ उस दुनियाँ से बाहर निकल कर एक प्रतिष्ठित व्यक्ति विजयकृष्ण के घर में बधू बनकर रहना चाहती है और अंत में वह अपने इस सङ्कल्प में सफल भी होती है। 'नीरा' में एक अन्य धनी और प्रतिष्ठित व्यक्ति; एक अकिंचन, अपाहिज व्यक्ति की लड़की, नीरा से

विवाह कर लेता है और समाज की सारी मान्यताओं को ठुकरा देता है। इस तरह सामाजिक प्रवृत्तियों में 'प्रसाद' पूर्ण आदर्शवादी हैं। इनका यह आदर्शवाद मुख्यतः प्रेम और विवाह की संवेदनाओं को लेकर चलता है। प्रेम-तत्व तथा प्रेम की स्थितियों में 'प्रसाद' सदैव उन्मुक्त, स्वच्छन्द और अर्थनिरपेक्ष प्रेम-भाव को स्वीकार करते हैं। 'रसिया वालम', 'तानसेन' और 'सुनहरा साँप' में इन्होंने सर्वथा स्वतन्त्र वासनारहित प्रेम का परम शाश्वत और महान सत्य स्वीकार किया है। वैवाहिक स्थितियों में इन्होंने प्रेम और सहज आकर्षण-तत्व को बहुत प्रधानता दी है और इस दिशा में इन्होंने सामाजिक और आर्थिक मान्यताओं को कुछ भी स्थान नहीं दिया है।

ऐतिहासिक धरातल से प्रसाद ने जिन वर्ण्य विषयों और भाव-धाराओं को चुना है, उनमें एक ओर विशुद्ध रूप से भारतीय संस्कृति की आदर्शवादिता और स्वर्ण-युग की प्रतिष्ठा है, तथा दूसरी ओर उन्होंने करुणा, बलिदान और उत्सर्ग की भावाभिव्यक्तियों से अतीत की धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक मान्यताओं को चुनौती भी दी है। प्रथम के उदाहरण में 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' और 'इन्द्रजाल' आदि कहानियों के भावपक्ष लिये जा सकते हैं और दूसरी दिशा में 'सालवती', 'देवरथ', 'आँधी', 'नूरी' आदि की भावगत प्रवृत्तियाँ उल्लेखनीय हैं। ये समस्त कहानियाँ जिन वेदनाओं और लक्ष्य-बिन्दुओं को लेकर लिखी गई हैं, उनमें सर्वत्र करुणा, उत्सर्ग और मूक विद्रोह की प्रवृत्ति है। इन कहानियों की भावनाएं अधिकांशतः प्रेमपूरक हैं, अर्थात् स्वच्छंद प्रेम, उत्सर्गपूर्ण मिलन और आदर्शमय विच्छेद इनकी भावपूरक इकाइयाँ हैं, जिन पर 'प्रसाद' की ऐतिहासिक कहानियों के प्रासाद की सृष्टि हुई है। वस्तुतः कल्पना का धरातल इनकी समस्त कहानियों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। कहीं उन्होंने कल्पना में सामाजिक विद्रोह का रूप लिया है और कहीं दर्शन की गूढ़ और आदर्शवादी सृष्टि की है; जिसमें 'प्रलय' आदि कहानियाँ प्रमुख हैं।

सारांशतः प्रसाद की भावगत प्रवृत्तियों में भारतीय संस्कृति और अतीत की प्रेरणा मुख्य है, और इसमें कल्पना की तीव्रता सबसे अधिक है। अतएव भाव-पक्ष की दृष्टि से प्रसाद की कहानियाँ आदर्शोन्मुखी और काल्पनिक हैं जिनके लक्ष्यबिंदु पर आनन्द और सौंदर्य की अमिट आभा है।

विकास-युग की दूसरी विशिष्ट प्रवृत्ति के प्रतीक हैं, प्रेमचन्द। जहाँ 'प्रसाद' की प्रवृत्ति भावमूलक थी, वहाँ प्रेमचंद यथार्थनिष्ठ आदर्श-मूलक हैं। प्रेमचंद की यह विशेष यथार्थवादी परम्परा विकास-युग की मूल आत्मा है। प्रसाद की भावमूलक परम्परा की अपेक्षा प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा का प्रभाव समूचे विकास-युग के कहानीकारों पर अधिक-से-अधिक पड़ा और कहानीकार ने इस परम्परा को अपनाया। इसका मुख्य कारण यही था कि प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा में उनका तत्कालीन

युग, उसकी समस्त मान्यताएँ,
हुआ। तत्कालीन सामाजिक कु
शोषित, निर्धन किसान-मजदूर
प्रेरणा प्रेमचंद के भावपक्ष की
की भावमूलक प्रवृत्तियों का मू
था, वहाँ प्रेमचन्द की यथार्थमू
संवेदनाओं पर आधारित था।
कोणों में अपार विभिन्नता थी
व्यक्ति आदि की उपयोगिता
इसका सम्बन्ध अपने नाटक अ
आनन्द, और सौन्दर्यानुभूति से
प्रेम को अपनी कला का वास्त
आलोचक और सुधारक थे अ
और आन्दोलनों की क्रान्तिका
दृष्टिकोण में इतनी विविधत
समकालीन सामाजिकता के

सामाजिक धरातल
जाति, धर्म और परम्परा को
की यही वे ऊँची दीवारें हैं,
आर्थिक दासता के नाम पर
है, कहीं पति की उच्छृङ्खल
ने अपने आत्मसम्मान की र
विज्ञान ऐसी हृदयरंजक स्थि
हमारे सामने जीवन का एक
प्रेमजगत् को बहुत व्यापक
की है। उन्होंने पति-पत्नी,
विवाह से सम्बन्धित अनेक
स्थितियों के प्रति सर्वत्र सु
आग्रह से उन्होंने जीवन की
की दो प्रमुख इकाइयों—घ
और किसानी, मजदूरी, न

युग, उसकी समस्त मान्यताएँ, परिस्थितियाँ और युग-चेतना का पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ। तत्कालीन सामाजिक कुरीतियाँ और उनके सुधार के प्रति उत्कट आग्रह, दलित शोषित, निर्धन किसान-मजदूर के साथ अपार सहानुभूति तथा राष्ट्रीय जागरण की प्रेरणा प्रेमचंद के भावपक्ष की मुख्य इकाइयाँ थीं। तुलनात्मक दृष्टि से जहाँ 'प्रसाद' की भावमूलक प्रवृत्तियों का मूल धरातल इतिहास, अतीत और कल्पना पर आश्रित था, वहाँ प्रेमचन्द की यथार्थमूलक प्रवृत्तियों का मेरुदंड समाज, व्यक्ति और राष्ट्र की संवेदनाओं पर आधारित था। स्पष्ट शब्दों में प्रेमचन्द और 'प्रसाद' के कलागत दृष्टि-कोणों में अपार विभिन्नता थी। प्रसाद प्रेमचन्द की भाँति कहानी-कला को समाज, व्यक्ति आदि की उपयोगिता और नैतिकता के आधार पर नहीं रखना चाहते। वे इसका सम्बन्ध अपने नाटक और काव्य की भाँति मनुष्य की आत्मा के लोकोत्तर आनन्द, और सौन्दर्यानुभूति से जोड़ते हैं, क्योंकि प्रसाद प्रकृति के कवि हैं और वे आनन्द प्रेम को अपनी कला का वास्तविक लक्ष्य मानते हैं। प्रेमचन्द प्रकृति से समाज के आलोचक और सुधारक थे और वे अपनी इस कला को मानव-जीवन की समस्याओं और आन्दोलनों की क्रान्तिकारिणी शक्ति मानते हैं। प्रेमचन्द के इस यथार्थवादी दृष्टिकोण में इतनी विविधता और व्यापकता है कि मनुष्य का पूर्ण व्यक्तित्व अपनी समकालीन सामाजिकता के साथ चमक उठा है।

सामाजिक धरातल से प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम समाज के रूढ़िग्रस्त रीति-रिवाज, जाति, धर्म और परम्परा को अपनी कला का विषय बनाया है, क्योंकि मूलतः समाज की यही वे ऊँची दीवारें हैं, जिनमें मानवता कहीं अछूत के नाम से बहिष्कृत है, कहीं आर्थिक दासता के नाम पर बन्दी है और कहीं वेश्या तथा पतिता के नाम से अग्राह्य है, कहीं पति की उच्छृङ्खलता से दाम्पत्य जीवन में कलह की लपट उठी है, कहीं नारी ने अपने आत्मसम्मान की रक्षा और उत्सर्ग में अपनी बलि दे दी है। यथार्थवादी मनो-विज्ञान ऐसी हृदयरंजक स्थितियों से होकर वस्तुवादी जगत् में अवतरित हुआ है कि हमारे सामने जीवन का एक स्वस्थ दृष्टिकोण उपस्थित हो गया है। प्रेमचन्द ने अपने प्रेमजगत् को बहुत व्यापक रूप में लिया है और व्यावहारिक आदर्श की पूर्ण प्रतिष्ठा की है। उन्होंने पति-पत्नी, विधवा-विवाह, अन्तर्जातीय-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह से सम्बन्धित अनेक उत्कृष्ट कहानियों की सृष्टि की है, जिनमें समस्याओं और स्थितियों के प्रति सर्वत्र सुधार का आग्रह है। कहीं-कहीं सुधार और परिवर्तन के आग्रह से उन्होंने जीवन की करुणा को बहुत सफलता से जागरित किया है। समाज की दो प्रमुख इकाइयों—घर और संस्था—में उन्होंने क्रमशः संयुक्त परिवार-समस्या और किसानी, मजदूरी, नौकरी तथा जमींदारी आदि संस्थाओं को लिया है। घरों की

आर्थिक समस्याओं के साथ-साथ इन्होंने संयुक्त परिवार-परम्परा के खोखलेपन को सर्वत्र दिखाया है। मुख्यतः मध्यम वर्ग और निम्न-मध्यम वर्ग के घर ही इस दिशा में प्रेमचन्द के विषय बन सके हैं। संस्थाओं से सम्बन्धित संवेदनाओं में जमींदारी संस्था पुलिस संस्था, न्यायालय संस्था आदि को उन्होंने लिया है क्योंकि ये संस्थाएं सीधे किसान वर्ग से सम्बन्धित हैं।

व्यक्तिगत भाव-धरातल पर प्रेमचन्द ने एक ओर व्यक्ति के चरित्र को लिया है, जहाँ सत् असत् तथा नैतिकता और अनैतिकता का अध्ययन पूर्ण सफलता से हुआ है, और दूसरी ओर व्यक्तिगत धरातल से प्रेमभाव को भी इन्होंने अपनी कहानी-कला में विकसित किया है, लेकिन इसका क्षेत्र प्रेमचन्द के भाव-जगत् में अत्यन्त सीमित है।[1] संभवतः द्विवेदी-युग की अतिनैतिकता इसका एक कारण रही हो। प्रेम-भाव को इन्होंने सर्वत्र स्वस्थ दृष्टिकोण से लिया है। उसमें कहीं भी छिछलापन अथवा वासना की दुर्गन्धि नहीं आ सकी है। प्रेम को उन्होंने चरित्र और उसकी नैतिकता का माप-दंड माना है और उसकी चरम परिणति उन्होंने विवाह माना है। व्यक्ति-चरित्र की दिशा में प्रेमचंद ने मनोविज्ञान को लिया है। यह मनोविज्ञान एक ओर व्यक्ति-चरित्र के अध्ययन और चित्रण में पूर्ण निरपेक्ष रूप में आया है, जैसे 'बूढ़ी काकी', 'आत्मा-राम', और 'कफन' आदि में। दूसरी ओर यह मनोविज्ञान चरित्र की बाह्य परि-स्थितियों और समस्याओं की सापेक्षता में चरितार्थ हुआ है। मनोविज्ञान की यह दूसरी विधि प्रेमचंद की कहानी-कला का दृढ़ आधार है।

राष्ट्रीय भावधारा में प्रेमचन्द मूलतः गांधीवादी थे। अछूतोद्धार, दलित, निर्धन देहाती के साथ अपार समवेदना, सुधार तथा राष्ट्रीय भावना का जागरण इनकी कहानी-कला के भाव-पक्ष का एक जबरदस्त मोर्चा है। इस मोर्चे से उन्होंने गांधीवाद की प्रतिष्ठा और राष्ट्रीय जागरण का जोश दिलाया है तथा झूठे विश्वासघाती राष्ट्र-सेवक, दम्भी नेताओं की व्यंगात्मक आलोचना की है। प्रेमचन्द अपनी कहानी-कला में साम्यवाद से प्रेरित हुए तथा शोषण और श्रमविभाजन के भाव-पक्ष से कहानियाँ लिखीं। 'कफन' इसका ज्वलंत उदाहरण है। वस्तुतः आर्थिक विषमता और इसके अनेक रूप प्रेमचन्द के भावपक्ष में समाविष्ट हुए। इस विषमता को हल करने के लिए उन्होंने

१. प्रेम से अभिप्राय यदि स्त्री-पुरुष के प्रेम से लें तो प्रेमचन्द में इससे सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ उँगली पर गिनी जा सकेंगी। नर-नारी प्रेम प्रेमचन्द जी का विषय ही नहीं रहा, उन्होंने यौन-प्रेम को विषय नहीं बनाया। प्रेम के दीवाने पात्र, दीवानों की विकृत मनःसृष्टि शरत् की भाँति इनके कथानकों की प्रेरणा नहीं बन पाई।

सत्येन्द्र : प्रेमचन्द उनकी कहानी-कला

कभी गांधीवाद का पक्ष लि
भी है।

ऐतिहासिक धरातल
प्राचीन मर्यादा की प्रतिष्ठा
की वेदी', 'जुगनू की चमक
के राजपूत और सामंतकाल
रिक्त प्रेमचन्द ने भारतीय
किया है और विलास-वैभव
संकेत कर हमें जागरूक औ
की पूर्ण और व्यापक सफ
मिली।[1]

समग्र रूप में विका
दोनों आदर्शवादी थे। इन
लेकिन दोनों धाराओं की
उद्गम सूत्र अथवा धरातल
चंद का वस्तुविन्यास जन-ज
विश्वास है। परिणामस्वरू
का प्रतिनिधित्व करती हैं।

शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

भावगत प्रवृत्तियों
स्वभावतः स्पष्ट अन्तर है।
प्रेम, सौंदर्य और रहस्य-भा
सामाजिक और यथार्थवा
ऐतिहासिक कोटि में रखी
कल्पना और भावुकता है,
और गद्यगीत के समीप आ
की क्रमबद्धता, बल्कि उसमें
प्रसंग में ही नहीं, केवल ए
कला एक ही भाव के अनेक
में सांकेतिकता और व्यंजन

१. 'शरणागत औ

कभी गांधीवाद का पक्ष लिया है और कभी साम्यवाद का; प्रश्न के साथ इसका उत्तर भी है।

ऐतिहासिक धरातल से लिखी हुई कहानियों के भाव-पक्ष में आदर्शवाद और प्राचीन मर्यादा की प्रतिष्ठा इनकी कला की मूल प्रवृत्ति है। 'राजा हरदौल', 'मर्यादा की वेदी', 'जुगनू की चमक' और 'रानी सारंधा' आदि कहानियों में भारतीय इतिहास के राजपूत और सामंतकाल के अनेक गौरवपूर्ण आदर्श चरित्र गुंफित हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द ने भारतीय इतिहास की मुगल-कालीन कथा-वस्तुओं को भी चित्रित किया है और विलास-वैभव तथा ऐश्वर्य के चित्रण के बीच उन्होंने पतन की दिशा का संकेत कर हमें जागरूक और चैतन्य होने का सन्देश दिया है। इस ऐतिहासिक प्रवृत्ति की पूर्ण और व्यापक सफलता आगे चलकर वृन्दावनलाल वर्मा की कहानी-कला में मिली।[1]

समग्र रूप में विकास-युग की भावगत प्रवृत्तियों के अंतर्गत 'प्रसाद' और प्रेमचंद दोनों आदर्शवादी थे। इन दोनों प्रतिनिधि-धाराओं में सुधार का उत्कट आग्रह है, लेकिन दोनों धाराओं की अलग-अलग दिशाएँ हैं। 'प्रसाद' की भावगत प्रवृत्तियों का उद्गम सूत्र अथवा धरातल इतिहास का अतीत वैभव और कल्पना का संसार है। प्रेमचंद का वस्तुविन्यास जन-जीवन का सुखदान और उससे परे मानव-कल्याण का विराट विश्वास है। परिणामस्वरूप प्रेमचंद की प्रवृत्तियाँ तत्कालीन समाज और उसकी चेतना का प्रतिनिधित्व करती हैं।

शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

भावगत प्रवृत्तियों के समान 'प्रसाद' और प्रेमचन्द की शिल्पविधियों में भी स्वभावतः स्पष्ट अन्तर है। 'प्रसाद' अपनी भावगत प्रेरणा के फलस्वरूप कहानियों में प्रेम, सौंदर्य और रहस्य-भावना के कहानीकार हैं। भावनाओं से ओत-प्रोत कुछ विशुद्ध सामाजिक और यथार्थवादी कहानियों को छोड़कर शेष कहानियाँ प्रतीकात्मक और ऐतिहासिक कोटि में रखी जा सकती हैं। प्रतीकात्मक कहानियों का मूल धरातल कल्पना और भावुकता है, अतएव ये कहानियाँ अपने शिल्प में भावुकतापूर्ण रेखाचित्र और गद्यगीत के समीप आ गई हैं। इनके कथानक में तो इतिवृत्तात्मकता है, न संवेदना की क्रमबद्धता, बल्कि उसमें भावनाओं का उमड़ता हुआ ज्वार है। समस्त कथा एक प्रसंग में ही नहीं, केवल एक भाव के ऊपर एक पैर से खड़ी हो जाती है और उसकी कला एक ही भाव के अनेक चित्रों के माध्यम से स्पष्ट होती है। अतः ऐसी कहानियों में सांकेतिकता और व्यंजना ही शैली के दो उपकरण माने जा सकते हैं।

---

१. 'शरणागत और कलाकार का दण्ड', वृन्दावन लाल वर्मा।

ऐतिहासिक कहानियों में एकसूत्रता तथा विकास के अंतर्गत आदि, मध्य और अंत तीनों परिस्थितियाँ मिलती हैं। ऐसी कहानियाँ एक ओर पूर्ण विस्तृत और व्यापक होती हैं और दूसरी ओर इनकी एकसूत्रता और इतिवृत्तात्मकता निश्चित होती है। 'आकाशदीप', 'स्वर्ग के खंडहर में', 'पुरस्कार', देवरथ' और 'सालवती' आदि कहानियों के कथानक उदाहरणस्वरूप लिये जा सकते हैं। इन कथानकों में अनेक प्रकार की कल्पना-रंजित सूक्ष्म रेखाएँ उभर उठी हैं, फिर भी उनमें भावों का तारतम्य और एकसूत्रता सर्वत्र स्पष्ट है। कथानकों के आरम्भ, विकास और अन्त तीनों भागों में घटनाओं की अवतारणा 'प्रसाद' की कला की मूल विशेषता है। एकदम किसी घटना की अवतारणा से कथानक का आरम्भ होता है और इसके क्रमिक विकास के साथ-साथ सम्पूर्ण कथानक विकसित होता है, इन्हीं घटनाओं में आरम्भ ही से कौतूहल और जिज्ञासा-वृत्ति का संगुम्फन प्रसाद-कला की सबसे बड़ी विशेषता है। घटनाओं में पूर्व कथा, पूर्व सूत्र और भूमिका आदि बिल्कुल छिपा दी जाती है और कथानक का आरंभ एकाएक बहुत विकसित रूप में होता है। कथावस्तु का चयन और संगुफन अलग-अलग कार्य-खण्डों में रखकर विभिन्न अनुक्रमों से इस तरह संवारते हैं, जैसे कि वह अंत में एक सम्पूर्ण जीवन का बहुरंगी चित्रालेख हो। 'आकाश-दीप' इस शिल्प का सुन्दरतम उदाहरण है। घटनाओं के साथ-साथ संयोग का सहारा लेने में 'प्रसाद' को कोई आपत्ति नहीं है।

चरित्र की दिशा में 'प्रसाद' का दृष्टिकोण बहुत ऊँचा है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में इतने ऊँचे-ऊँचे व्यक्तित्व के चरित्र अवतरित हुए हैं कि उनकी तुलना अन्यत्र नहीं की जा सकती। 'प्रसाद' स्वभावतः भावुक और सौंदर्य-प्रेमी थे और इनके व्यक्तित्व पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव बहुत था, अतएव इनके चरित्रों की अवतारणा और चित्रण पर इन दोनों का प्रभाव परिलक्षित है। बौद्ध दर्शन के प्रभाव से इनके चरित्र अत्यन्त कारुणिक हो गए हैं। इनके चरित्र-चित्रण में बलिदान, उत्सर्ग और मूक करुणा ही मुख्य भूमिकाएँ बनी हैं। दूसरी ओर भावुकता के फलस्वरूप उनके चरित्र-चित्रण पूर्ण भावुक प्रेमी बने। प्रथम प्रभाव में मूलतः 'प्रसाद' के नारी-चरित्र आते हैं, और द्वितीय में पुरुष-चरित्र। नारी-चरित्र और उनका विश्लेषण ही मुख्य रूप से प्रसाद की कला का केन्द्र-बिंदु है। यही स्त्री-चरित्र अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शों के प्रतीक हैं। नारी सामाजिक बन्धनों, परम्पराओं और मान्यताओं के प्रति विद्रोह करती हैं। स्त्रियाँ सदैव अपने अप्रतिम रूप, आकर्षण और अनुपम व्यक्तित्व से कहानियों का सूत्र-संचालन करती हैं, और अपने में घात-प्रतिघात, अंतर्द्वन्द्व, विद्रोह और उत्सर्ग के तत्त्व छिपाए रहती हैं। पुरुष पात्र प्रायः स्त्री पात्रों के ही व्यक्तित्व की परिधि में घूमते रहते हैं, और उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण स्त्री-चरित्रों की अपेक्षा गौण और

संक्षिप्त हो गया है। पुरुष-चरित्र
की अंतर्मुखी भावधारा उनकी प्र

'प्रसाद' की कहानियों
आती है, अर्थात् इनके निर्माण
सकती है। यह सत्य 'प्रसाद' क
लेकिन उनकी प्रतीकात्मक और
अधिक विकसित नहीं हो पाया
अंतर्गत कहानी के मुख्य पात्र,
विकास-भाग में समस्या-प्रवेश,
क्रमों की शृंखला मिलती है।
तारणा बराबर होती चलती है
से व्यंजित हुई हैं। कहीं तो च
कहीं चरम सीमाएँ घटनात्मक
'प्रसाद' ने उन्हें पूर्ण नाटकीय
के खंडहर में', और कहीं चरम
हरण के लिए 'प्रतिध्वनि', 'प्र
जा सकती हैं।

'प्रसाद' की भावमूलक
और वर्णन, चित्रण शैली सब
संस्कृत समासावली, तत्सम श
ताएं हैं। सौन्दर्य-वर्णन और
और शोभा-चित्रण इस धारा

प्रेमचन्द यथार्थवादी प
समस्त शिल्पगत प्रवृत्तियाँ वि
हैं। प्रेमचन्द की कहानी की
विविधता उपस्थित करने में
मर्यादित क्षेत्र और मान्यताओं
उनके माध्यम से समकालीन
शोषित, दलित, देहाती और
चेतना को सफल अभिव्यक्ति
कहानी-कला के विशिष्ट प्रति
चरित्र और शैली तीनों दिशा

संक्षिप्त हो गया है। पुरुष-चरित्रों में चारित्रिक दृढ़ता, संवेदनशीलता और व्यक्तित्व की अंतर्मुखी भावधारा उनकी प्रमुख विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

'प्रसाद' की कहानियों की शैली भारतीय नाटक प्रणाली की प्रेरणा के अंतर्गत आती है, अर्थात् इनके निर्माण में बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठा देखी जा सकती है। यह सत्य 'प्रसाद' की ऐतिहासिक कहानियों में पूर्ण सफलता से स्पष्ट है। लेकिन उनकी प्रतीकात्मक और गद्यगीत शैली में लिखी हुई कहानियों में यह सत्य अधिक विकसित नहीं हो पाया। प्रसाद की प्रतिनिधि कहानियों के आरम्भ में बीज के अंतर्गत कहानी के मुख्य पात्र, मूल द्वन्द्व अथवा समस्या का पूर्वाभास मिल जाता है। विकास-भाग में समस्या-प्रवेश, पूर्व परिचय, द्वन्द्व का जन्म और घात-प्रतिघात अवस्था-क्रमों की शृंखला मिलती है। इनके विधान में घटनाओं और कार्य-व्यापारों की अवतारणा बराबर होती चलती है। कहानी की चरम सीमा में तीन विशेषताएँ स्पष्ट रूप से व्यंजित हुई हैं। कहीं तो चरम सीमाएँ मनोवैज्ञानिक अनुभूति पर प्रतिष्ठित हुई हैं, कहीं चरम सीमाएँ घटनात्मक और संयोगात्मक हैं, अंत में कुछ और पंक्तियाँ जोड़कर, 'प्रसाद' ने उन्हें पूर्ण नाटकीय बना दिया है; जैसे 'आकाश-द्वीप', 'ममता' और 'स्वर्ग के खंडहर में', और कहीं चरम सीमाएँ व्यंजनात्मक और अस्पष्ट रूप में हुई हैं। उदाहरण के लिए 'प्रतिध्वनि', 'प्रलय' और 'रमल' आदि कहानियों की चरम सीमाएँ ली जा सकती हैं।

'प्रसाद' की भावमूलक कहानी-धारा में शैली का सामान्य पक्ष अर्थात् भाषा और वर्णन, चित्रण शैली सब अत्यन्त कलात्मक ढंग से प्रस्तुत हुई है। भाषा-शैली में संस्कृत समासावली, तत्सम शब्दों का बाहुल्य और काव्यात्मकता इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं। सौन्दर्य-वर्णन और रूप-वर्णन इस धारा की अनुपम देन है। प्रकृति-चित्रण और शोभा-चित्रण इस धारा की शैली का प्राण है।

प्रेमचन्द यथार्थवादी परम्परा के कर्णधार हैं, अतएव इनकी कहानियों में वे समस्त शिल्पगत प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं, जो वस्तुतः कहानी-कला की आधार-शिलाएँ हैं। प्रेमचन्द को कहानी की शिल्पविधि पर असंदिग्ध अधिकार था, लेकिन शिल्पगत विविधता उपस्थित करने में इनकी रुचि नहीं थी। इन्होंने कहानी-विधान के एक मर्यादित क्षेत्र और मान्यताओं के अंतर्गत अनेकानेक कहानियों की सृष्टि की, और उनके माध्यम से समकालीन सामाजिक स्थितियों का वैषम्य, अत्याचारों का विरोध, शोषित, दलित, देहाती और निम्न, मध्यम वर्ग के प्रति अथाह सहानुभूति और राष्ट्रीय चेतना को सफल अभिव्यक्ति दी। शिल्पगत प्रवृत्तियों की दृष्टि से प्रेमचन्द सदैव कहानी-कला के विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार थे। इनके शिल्पविधान में कथानक, चरित्र और शैली तीनों दिशाओं में आश्चर्यजनक सुगमता और कला का सहज आकर्षण

मिलता है। कथानक सदैव इतिवृत्तात्मक होते हैं और इतिवृत्त का सर्वथा स्पष्ट और सुनिश्चित आकार होता है, क्योंकि इनकी कहानी-कला की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह भाव-प्रधान न होकर वस्तु-प्रधान होती है। कथानक-निर्माण में घटना-क्रम और संयोग की अवतारणा मुख्य है। मुख्यतः इनकी प्रारम्भिक और विकास-काल की कहानियों में बिना घटना-क्रम और संयोग के कथानक की कल्पना करना कठिन है। वस्तुतः प्रेमचन्द की शिल्पगत प्रवृत्ति में घटना स्पष्ट और इतिवृत्त का सर्वसाधारण होना आवश्यक है; यही कारण है कि प्रेमचन्द की कहानियों में सर्वरुचि की आश्चर्य-जनक शक्ति है।

चरित्र-कल्पना और चरित्र-चित्रण की दिशा में प्रेमचन्द की शिल्पविधि अत्यन्त सुदृढ़ है। उनके पात्र निम्न वर्ग से लेकर मध्यम, उच्च और समस्त अधिकारी वर्ग तक फैले हैं। उनमें किसान, मजदूर, राजा, प्रजा, अफसर, गरीब, अमीर सब आ जाते हैं। उनमें भी सब उम्रों और सब स्तरों के पात्र आ जाते हैं, बालक से लेकर वृद्ध तक और अकिंचन एवं दुश्चरित्र से लेकर पूँजीपति और सच्चरित्र तक। यही नहीं, पशु[1], पक्षी[2] तक इनकी चरित्र-सीमा में आ गए हैं, लेकिन संवेदनात्मक दृष्टि से प्रेमचन्द मध्यमवर्गीय पात्रों के कहानीकार हैं और इनके समस्त चरित्र सहज और स्वाभाविक हैं। इनकी अवतारणा और चरित्र-चित्रण में अधिक-से-अधिक स्वाभाविकता लाने का आग्रह है। पात्रों में व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा भी हुई है, लेकिन यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि प्रेमचन्द के पात्रों ने कभी चरित्र की जटिलता उपस्थित नहीं की। उनके पात्र सहज गति से आगे बढ़ते हैं, और परिस्थितियों को उलझाने वाली शृंखलाओं के पाश में कभी आबद्ध नहीं होते। इस भाँति जीवन के तूफान में ये पात्र दिशा-भ्रम में नहीं पड़ते और हमारे सामने मानसिक गुत्थियाँ नहीं रखते, जिनमें जीवन की क्रिया और प्रतिक्रिया का विकट तुमुल आबद्ध रहता है।

प्रेमचन्द की पात्र-परिधि और उनके चरित्र-चित्रण में तत्कालीन समाज अपने अधिक-से-अधिक यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है। इस दिशा में आज तक हिन्दी कहानी-साहित्य में और कोई कहानीकार उनसे आगे नहीं बढ़ सका है। चरित्र की सत्-असत् वृत्तियों के आधार पर प्रेमचन्द के सारे पात्र इन दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं। सत्-असत् और आदर्श-निम्न—इन दो विरोधी वर्ग के चरित्रों को लेकर वस्तुतः प्रेमचन्द का संपूर्ण कहानी-साहित्य प्रस्तुत हुआ है और सर्वत्र यथार्थ और आदर्श के द्वन्द्व के बीच आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई है।

१. 'पूस की रात' में झबरा।
२. 'आत्माराम' में तोता।

प्रेमचन्द की कहानियों व
ये तीनों भाग पूर्णतः स्पष्ट और
और परिचय के साथ आता है।
का पूर्ण परिचय विद्यमान रहत
समावेश भी रहता है। विकास-
भाग के बीच में, प्रायः चार अ
(१) मुख्य घटना की है
(२) मुख्य घटना की
(३) व्याख्या और
(४) घात-प्रतिघात।
प्रसाद की भाँति प्रेमच
आधार पर निश्चित होता है।
की प्रवृत्ति सबसे अधिक नशर
कहानियाँ सर्वदा लक्ष्यात्मक हो
अन्त पर आदर्श अथवा नीति
सीमा के बाद कहानियों में प्रा
पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाय।
शैलियों में कहानियाँ लिखी हैं
प्रतिनिधि शैली है।

शैली के सामान्य पक्ष
जिस तरह प्रेमचन्द यथार्थवाद
अनुरूप सरल और पात्र-परि
स्वर हैं। बोलचाल की भाषा
यहाँ विस्तार है। इस पर मु
प्रवाह है, और दोनों के समन
विषय-वस्तु के साथ-साथ चल
कथन में अपूर्व स्वाभाविकत
शैली में अपने कथोपकथनों
वर्णन-चित्रण में प्रेमचन्द सर्व
में भी इनका संयम और इन

प्रसाद और प्रेमचन्द
हैं। इनकी विभिन्न भावगत

प्रेमचन्द की कहानियों की निर्माण-शैली में आरम्भ, विकास और चरम सीमा, ये तीनों भाग पूर्णतः स्पष्ट और सुनिश्चित होते हैं। आरम्भ भाग प्रायः भूमिकात्मक और परिचय के साथ आता है। इसमें पात्र और कहानी की संवेदना की परिस्थिति का पूर्ण परिचय विद्यमान रहता है। बहुधा कहानी के यथासम्भव सभी तत्वों का समावेश भी रहता है। विकास-भाग में, अर्थात् कहानी, आरम्भ और चरम सीमा के भाग के बीच में, प्रायः चार अवस्था-क्रमों से होकर विकसित होती है :

(१) मुख्य घटना की तैयारी।
(२) मुख्य घटना की निष्पत्ति।
(३) व्याख्या और
(४) घात-प्रतिघात।

प्रसाद की भाँति प्रेमचन्द की चरम सीमा का भाग भी फलागम तत्व के आधार पर निश्चित होता है। प्रेमचन्द में अपेक्षाकृत चरम सीमा के नाम पर फलागम की प्रवृत्ति सबसे अधिक सशक्त है। इसके मुख्यतः दो कारण हैं—प्रेमचन्द की कहानियाँ सर्वदा लक्ष्यात्मक होती हैं, उनमें एक निश्चित उद्देश्य होता है और उनके अन्त पर आदर्श अथवा नीति की व्यंजना होती है। यही कारण है कि प्रेमचन्द ने चरम सीमा के बाद कहानियों में प्रायः उपसंहार जोड़ा है; जिससे उनकी कला की सोद्देश्यता पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाय। शैली के रूप-विधान की दिशा में प्रेमचन्द ने अन्यान्य शैलियों में कहानियाँ लिखी हैं, लेकिन इतिवृत्तात्मक अथवा वर्णनात्मक शैली ही उनकी प्रतिनिधि शैली है।

शैली के सामान्य पक्ष में प्रेमचन्द की भाषा उनकी कला की मूल विशेषता है। जिस तरह प्रेमचन्द यथार्थवादी धारा के कहानीकार थे, उनकी भाषा-शैली भी इसके अनुरूप सरल और पात्र-परिस्थिति-सापेक्ष्य है। इसमें विविध वर्ग के पात्रों के सहज स्वर हैं। बोलचाल की भाषा से लेकर ऊँचे स्तर के गद्य तक इनकी भाषा-शैली का यहाँ विस्तार है। इस पर मुख्यतः उर्दू भाषा का प्रभाव होते हुए भी शुद्ध हिन्दी का प्रवाह है, और दोनों के समन्वय से इनकी भाषा चुस्त, चुलबुली, मुहाविरेदार और विषय-वस्तु के साथ-साथ चलने वाली हो गयी है। इसके फलस्वरूप प्रेमचन्द के कथोपकथन में अपूर्व स्वाभाविकता और शक्ति आ गई है। प्रेमचन्द ने कहानियों की निर्माण-शैली में अपने कथोपकथनों से अत्यधिक सहारा लिया है। देश, काल, परिस्थिति के वर्णन-चित्रण में प्रेमचन्द सदैव यथार्थवादी और सहज थे। रूप-वर्णन तथा दृश्य-वर्णन में भी इनका संयम और इनकी व्यंजना दोनों उल्लेखनीय हैं।

प्रसाद और प्रेमचन्द ही विकास-युग की दो मूल प्रवृत्तियों के दो विभिन्न प्रतीक हैं। इनकी विभिन्न भावगत और शिल्पगत प्रवृत्तियों में समूचा विकास-युग आ जाता

है, लेकिन प्रसाद की भावमूलक परम्परा को इस युग तथा आगे के कहानीकारों ने बहुत कम रूप में अपनाया है और प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा समूचे विकास-युग और उससे आगे भी बहुत जोरों से चली।

ऐतिहासिक दृष्टि से विकास-युग में 'प्रसाद' और प्रेमचन्द की स्वतन्त्र धारा के पूर्व चंद्रधर शर्मा गुलेरी का स्थान अमर है, और इनकी केवल तीन कहानियों का अध्ययन अपना अलग मूल्य रखता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

गुलेरी का कहानी-साहित्य केवल तीन कहानियों 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा था' से निर्मित है। सम्भव है कि उन्होंने और भी कहानियाँ लिखी हों, लेकिन ये कभी हिन्दी-जगत् के सामने नहीं आ सकीं, बस केवल यही तीन कहानियाँ अपनी कलात्मक श्रेष्ठता के कारण गुलेरी जी को विकास-युग का प्रथम चरण सिद्ध कर गईं। इन तीनों कहानियों में विकास की दृष्टि से 'सुखमय जीवन' उनकी कहानी-कला का प्रारम्भिक रूप है। 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा था' क्रमश: उनकी कला के विकास और चरम उत्कर्ष के उदाहरण हैं।

कथानक

तीनों सामाजिक कहानियाँ हैं, लेकिन समस्त सामाजिक मान्यताओं और प्रश्नों के बीच इन कहानियों की संवेदनाएँ मुख्यत: प्रेम और कर्तव्य को लेकर उभरी हैं। 'सुखमय जीवन' में इसका रूप अपरिपक्व है फलत: कथानक की सृष्टि, रूप के आकर्षण और रोमांस के माध्यम से हुई है, जिसमें प्रेम केवल अपने बाह्य रूप में ही चित्रित हो सका है और कर्तव्य का जन्म मात्र होकर रह गया है। 'बुद्धू का काँटा' के कथानक में प्रेम अपने अव्यक्त और असाधारण ढंग में पलता है। प्रेम तथा स्त्री-सम्पर्क की दिशा में नायक में हीन-ग्रन्थि है, फलत: नायिका को अग्रगण्यता लेनी पड़ती है। यही कारण है कि इस कहानी में पहले कर्त्तव्य आता है, फिर प्रेम।

'उसने कहा था' की संवेदना प्रेम और कर्त्तव्य का उज्ज्वलतम और अनन्य उदाहरण है। इसके कथानक का आरम्भ सहज कुमार-आकर्षण और कर्त्तव्य से होता है। आकर्षण धीरे-धीरे पवित्र प्रेम में परिणत हो जाता है तथा दोनों ओर से भावों की दुनिया में खो जाता है। कालान्तर में संयोगवश इसका उदय फिर एक बार होता है, लेकिन वहाँ वह केवल विशुद्ध कर्त्तव्य बन जाता है तथा इसकी चरम परिणति त्याग-उत्सर्ग के सन्धि-बिन्दु पर होती है। निर्माण की दृष्टि से इन तीनों कहानियों के कथानकों का निर्माण घटनाओं और संयोगों से होता है। मुख्यत: इनका प्रारम्भ संयोगों से हुआ है। विकास संयोगों और कार्यों से हुआ है तथा अन्त के निर्माण में फिर घटना और संयोग का सहारा लिया गया है। उदाहरणार्थ, 'सुखमय जीवन'

शीर्षक कहानी के कथानक का आरम्भ साइकिल की हवा निकल जाने के संयोग से होता है। इसके विकास में कई और संयोगों का सहारा लिया गया है। रास्ते में जयदेवशरण वर्मा की भेंट एकाएक एक युवती कमला से होती है, जो उनके लिखे हुए ग्रन्थ 'सुखमय जीवन' की अनन्य पुजारिन थी। वह उन्हें अपने घर लाती है। उसके चाचा भी उनकी बहुत श्रद्धा करते हैं। जयदेवशरण वर्मा और कमला में सहज आकर्षण पैदा होता है। कमला को बगीचे में अकेली पाकर वर्मा जी उससे प्रणय-प्रस्ताव करते हैं और सारी परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाती हैं। कमला क्रोधपूर्वक इनकी उपेक्षा करती है। उसके चाचा से भी तिरस्कृत होते हैं। अन्त में झगड़े के ही बीच संयोगवश जयदेवशरण के मुख से निकल जाता है—भाड़ में जाय सुखमय जीवन उसी के मारे नाकों दम है। सुखमय जीवन के कर्त्ता ने क्या यह शपथ खा ली है कि जन्म भर क्वाँरा रहे? क्वाँरा की स्थिति-संयोग से सारी प्रतिकूल परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं और जयदेवशरण वर्मा तथा कमला का मंगलमय संयोग होता है।

'उसने कहा था' के कथानक-निर्माण में उक्त तत्व कलात्मक ढंग से चरितार्थ हुए हैं। कथानक का आरम्भ बम्बू कार्ट वालों के बीच में एक लड़का और लड़की के संयोगवश मिल जाने से होता है। लड़का अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और लड़की रसोई के लिए बड़ियाँ। दोनों इस तरह महीने-भर कभी-न-कभी मिलते रहते हैं। दोनों में सहज प्रेम और अनुराग पैदा होता है तथा इसकी पुष्टि केवल उन वाक्यों से हो जाती है, दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गई?' और उत्तर वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिये उससे पूछा, तब लड़की संभावना के विरुद्ध बोली—'हाँ हो गई। कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू। लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली।'[1]

फिर कथानक-विकास इस संयोग के पच्चीस वर्ष के बाद होता है। लड़का लहना सिंह नं० ७७ राइफल का जमादार होकर अंग्रेजों की ओर से फ्रांस के युद्धस्थल में मोर्चे की खाइयों में पड़ा हुआ है। पिछली बार वह अपने एक मुकदमे के सिलसिले में भारत आया था और लौटते समय अपनी फौज के सूबेदार के घर गया था। वहाँ संयोगवश उसमें उसी लड़की से भेंट होती है, जो इसकी आदि-प्रेयसी थी, लेकिन उस समय सूबेदारनी थी। इस दर्शन से प्रेम, कर्त्तव्य में परिणत हो जाता है। सूबेदारनी ने लहना सिंह से कहा, 'अब दोनों जाते हैं, मेरे भाग! तुम्हें याद है कि एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दही वाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे, आप घोड़ों की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते

१. गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृष्ठ ३६।

पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही उन दोनों (पति-पुत्र) को बचाना, यही मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'[1] लेकिन कथानक के इस विकास-अंग की सबसे बड़ी कलात्मकता इसमें है कि यह विकास-अंग लहना सिंह के उस स्मृति-चित्र के माध्यम से सँजोया गया है, जब लहना अपने कर्त्तव्य की बलिवेदी पर सूबेदारनी के पति-पुत्र की रक्षा और आत्म-वीरता में मोर्चे पर घायल होकर मरणासन्न है।

कथानक के इस चरम विकास में पूर्व चित्र स्मृति-दृश्यों के माध्यम से इस पूर्व विकास को इतनी कलात्मकता से सँजोना, उस समय गुलेरी जी की कहानी-कला का चरमोत्कर्ष है। इसके आगे प्रेमचन्द और प्रसाद के कहानी-साहित्य में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिल पाता। कथानक का चरम विकास, विविध घटनाओं से होता है: जैसे, बोधा का बीमार होकर मोर्चे पर पड़ा रहना तथा उसके प्रति लहना का असीम प्यार और त्याग, लपटन साहब की मृत्यु और उसके वेश में दुश्मन का लपटन बनकर आना, लहना सिंह को रहस्य का ज्ञान होना, लहना सिंह द्वारा उसकी मृत्यु और स्वयं लहना सिंह का घायल होना, दुश्मनों का नया आक्रमण, लहना सिंह के सीने में गोली लगना, लेकिन फिर भी सबको विदा करके स्वयं मोर्चे पर पीड़ा से विक्षिप्त हो जाना। इसी दिशा में कथानक का आरम्भ, पूर्व विकास तथा जीवन से संबन्धित समस्त स्मृति-चित्रों का सिमट जाना, तथा कथानक का अंत भी उसकी मृत्यु-घटना से ही हो जाना, कथा-विधान के अति संयम और योजना के प्रति संकेत करता है। गुलेरी जी ने कथानक-निर्माण में संयोग और घटनाओं के अतिरिक्त जीवन तथा कर्मक्षेत्र का साधारण, वैयक्तिक व्यापक रूप भी लिया है। 'सुखमय जीवन' का कथानक एक परिवार तथा मुख्यतः एक व्यक्ति की एक दिन की जीवन-विवेचना है। 'बुद्धू का काँटा' का कथानक रघुनाथ और भगवन्ती के जीवन के प्रणय-पक्ष की अनेक दिनों की विवेचना है। 'उसने कहा था', में दो व्यक्तियों के प्रेम-कर्त्तव्य का क्षेत्र इतने विशाल और व्यापक ढंग से लिया गया है कि इसमें एक ओर जीवन के पच्चीस वर्ष चित्रित हैं, दूसरी ओर भारत से फ्रांस की भूमि तक इसका चित्र-फलक (केनवेस) फैला हुआ है, अतएव तीनों कहानियों के कथानक इतिवृत्तात्मक और लम्बे भी हो गए हैं। लेकिन फिर भी इनमें वर्णनात्मकता का सहारा कम लिया गया है, वरन् विविध भाव-चित्रों और चिन्तन-शैली को इनमें स्थान मिला है।

चरित्र

गुलेरी जी के चरित्र मानवीय और यथार्थ हैं। इनकी अवतारणा व्यक्ति, समाज और उसकी मान्यताओं के धरातल पर हुई है। 'सुखमय जीवन' के जयदेवशरण वर्मा,

---

१. गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृष्ठ ५१।

'बुद्धू का काँटा' का रघुनाथ दोनों पुरुष-चरित्रों से मानवीय पक्ष इतने सहज रूप में आया है कि ये दोनों चरित्र पूर्ण वैयक्तिक होते हुए भी पूर्ण सामाजिक हो गए हैं।

ये दोनों चरित्र अपनी सहज दुर्बलता के कारण हमारे आकर्षण के पात्र हो गए हैं। जयदेवशरण में कमला के प्रति आकर्षण और उसके प्रेम-प्रस्ताव में जयदेवशरण का व्यवहार उच्छृङ्खलता तक पहुँच गया है, फलतः इसमें कुछ अस्वाभाविकता भी आ गई है। दूसरी ओर इनमें चरित्र की वह गम्भीरता भी नहीं रह गई है जो 'बुद्धू के काँटा' के रघुनाथ में है। कमला का भी चरित्र बहुत दब गया है, तथा इसमें और भी अस्वाभाविकता आ गई है, क्योंकि जो तरुणी जयदेवशरण को जीवन की प्रथम भेंट में अनन्य श्रद्धा और प्रशंसा देती है, स्वयं उसे अपने घर लाती है वह कैसे जयदेव के प्रणय-प्रस्ताव पर इतनी निर्ममता से उपेक्षा कर सकती है ? 'बुद्धू का काँटा' का रघुनाथ और भगवन्ती दोनों चरित्रों की अवतारणा अपेक्षाकृत अधिक चारित्रिक गम्भीरता और मानवीय धरातल से हुई है। यहाँ रघुनाथ एक ऐसा पुरुष-चरित्र है जो स्वभावतः स्त्री-वर्ग के सम्मुख अपने में हीन-ग्रन्थि पाता है, ऐसा क्यों है ? इसके लिए कहानी में चरित्र-चित्रण और विश्लेषण दोनों की विधि रखी गई है। पिता की कठोर शिक्षा का प्रभाव बालकपन से ही स्वभाव पर ऐसा पड़ गया था कि दो वर्ष प्रयाग में स्वतन्त्र रह कर भी अपने चरित्र को केवल पुरुषों के समाज में बैठकर पवित्र रखता था। जो कोने में बैठकर उपन्यास पढ़ा करते हैं उनकी अपेक्षा खुले मैदान में खेलने वालों के विचार अधिक पवित्र होते हैं। इसलिए फुटबाल और हाकी के खिलाड़ी रघुनाथ को कभी स्त्री-विषयक कल्पना ही नहीं होती थी। वह मानवीय सृष्टि में अपनी माता को छोड़कर और स्त्रियों के होने या न होने से अनभिज्ञ था।

फलतः इस चरित्र में एक अजीब तरह की सौम्यता मिलती है, जिसमें यद्यपि स्त्री-वर्ग की ओर से हीन-ग्रन्थि अवश्य है, लेकिन फिर भी इसमें प्रेम-विषयक भोलापन और बचपना के अतिरिक्त स्नेह और करुणा की तीव्रता भी है। रघुनाथ झुंझला कर भगवन्ती को उसकी नाक पर एक मुक्का जमाता है तथा रघुनाथ के दौड़ाने से भगवन्ती के पैर के तलुवे में एक काँटा भी चुभ जाता है। वस्तुतः ये दोनों घटनाएँ रघुनाथ के भोलेपन की एक सीमा के उदाहरण हैं, लेकिन दूसरी सीमा पर जब वह उसकी नाक से लहू बहते देखता है, वह अपने को एकदम से भूलकर पश्चाताप और दुःख के पाश में फँस जाता है। उसका मुँह पसीना-पसीना हो जाता है। उसे इतनी ग्लानि हुई कि वह इन लहू की बूँदों के साथ धरती में समा जाय। दूसरी ओर रघुनाथ ज्यों ही भगवन्ती के पैर के तलुवे में चुभे हुए काँटों को देखता है और उसे पता चलता है कि यह सब उसके ही कारण हुआ, वह फौरन वहीं भगवन्ती के सामने घुटने टेककर बैठ जाता है और उसके पैर को खींचकर, रूमाल से धूल झाड़ता हुआ काँटे को निकालने लगता

है। भगवन्ती का भी चरित्र अत्यन्त जीवन्त और मानवीय संवेदनाओं से अभिभूत है। 'सुखमय जीवन' की कमला को हम बहुत शीघ्र भूल सकते हैं, लेकिन 'बुद्धू का काँटा' की भगवन्ती को हम कभी नहीं भूल सकते, क्योंकि रघुनाथ के समान ही इसके चरित्र-विश्लेषण के साथ इसके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है।

मानवीय चरित्रों की अवतारणा तथा उनमें सहज व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा का सुन्दरतम उदाहरण हमें 'उसने कहा था' में मिलता है। सूबेदारनी और लहना सिंह के माध्यम से जहाँ एक ओर सच्चे प्रेम और उत्सर्ग की भावना मिलती है, वहाँ इन दोनों आदर्श प्रतीकों में यथार्थ मानवीय भावनाओं का आदि से अन्त तक सुन्दरतम विकास देखने को मिलता है। लहना सिंह के चरित्र के मुख्यतः चार अध्याय हैं—पहला उसके चरित्र का कुमार-स्वरूप जब वह बारह वर्ष का है, अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है, दही वाले के यहाँ, सब्जी वाले के यहाँ, हर कहीं उसे आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गई? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। इस पवित्रतम आकर्षण और प्रेम के साथ ही साथ उसमें कर्तव्य का भी जन्म होता है। एक दिन ताँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। उस समय स्वयं घोड़े की लातों में जाकर लहना ने उसका प्राण बचाया था। इसके चरित्र का दूसरा अध्याय उस समय निर्मित होता है जब एक दिन लहना ने उससे फिर पूछा कि तेरी कुड़माई हो गई, तब उस दिन उसने कह दिया कि—हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू। तीसरा अध्याय उस समय आरम्भ होता है, जब लहना सिंह पूर्ण युवक है—नं० ७७ राइफल्स का जमादार है और पच्चीस वर्षों के बाद वह अकस्मात् अपनी आदि प्रेमिका को अपनी फौज के ही सूबेदार की धर्मपत्नी के रूप में देखता है—"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। अब एक काम कहती हूँ। मेरे सूबेदार और बेटा, दोनों को मैं तुम्हें सौंपती हूँ। इन दोनों को बचाना, यह मेरी भिक्षा है, तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।" लहना सिंह के चरित्र का चौथा और अन्तिम अध्याय उस समय खुलता है, जब वह फ्रांस में युद्ध-मोर्चे की खाई में पड़ा है। एक ओर वह अपने आराम-सुख के उत्सर्ग पर बीमार बोधा की सेवा-सुश्रूषा करता है, दूसरी ओर वह अपूर्व चतुराई, बुद्धिमत्ता और वीरता के साथ दुश्मनों से लड़ता है। अन्त में सूबेदारनी की बात को पूर्ण करने में अर्थात् सूबेदार और बोधा की रक्षा में वह अपने आपको उत्सर्ग कर देता है। वस्तुतः लहना सिंह के इस तरह के आदर्शमय महान चरित्र की अवतारणा तथा इसमें परम मानवीय व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के ही कारण यह कहानी हिन्दी कहानी-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाती है। इसमें चरित्र-विकास, चरित्र-विश्लेषण तथा व्यक्तित्व-तीनों पूर्ण कलात्मक ढङ्ग से चरितार्थ हुए हैं।

शैली

शैली के व्यापक प्रकाश में, गुलेरी जी अपनी कहानियों की निर्माण-शैली में आदि, मध्य और अंत तीनों की योजनाओं में बहुत उदार हो गए हैं। तीनों कहानियों का आरम्भ भूमिकाओं से होता है। ये भूमिकाएँ वस्तुतः कहानी की संवेदना के पृष्ठभूमि-निर्माण के लिए लाई गई हैं। 'उसने कहा था' का आदि भाग अर्थात् प्रारम्भ की भूमिका कहानी की पृष्ठभूमि के अतिरिक्त प्रारम्भ ही से आकर्षण और जिज्ञासा प्रकट करने के लिए आई है तथा यह आदि भाग दोनों प्रकाश में प्रायः सफल ही है, लेकिन, 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा'—इन दोनों कहानियों की भूमिकाएँ कलात्मक दृष्टि से प्रायः असंगत और विस्तृत हो गई हैं। 'बुद्धू का काँटा' कहानी का आरम्भ इस भूमिका से होता है—"रघुनाथ प् प् प्र सा द त् त् त्रिवेदी—या र घु ना त प र्शा द् त्रिवेदी, यह क्या ? क्या करें, दुविधा में जान है। एक ओर तो हिन्दी का यह गौरवपूर्ण दावा है कि इसमें जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा जाता है, दूसरी ओर हिन्दी के कर्णधारों का अविगत शिष्टाचार है कि जैसे धर्मोपदेशक कहते हैं कि हमारे कहने पर चलो; हमारी करनी पर मत चलो; वैसे हिन्दी के आचार्य लिखें, वैसे लिखो; जैसे वे बोलें, वैसे मत लिखो; शिष्टाचार भी कैसा ! हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति अपने व्याकरण कथापति कंठ से कहें, पर्सोत्तमदास, और हर्किशनलाल, और उनके पिट्ठू छापें ऐसी तरह कि पढ़ा जाय—पुरुषोत्तम अ दास अ, और हरिकृष्ण लाल अ।"

वस्तुतः उक्त भूमिका से कहानी की संवेदना का कोई संबन्ध नहीं है। कहानी की संवेदना एक हीन-ग्रन्थि-प्रधान युवक और एक युवती की कहानी है और यह भूमिका हिन्दी में आने वाले संस्कृत के तत्सम् शब्दों के ऊपर व्यंग के रूप में लिखी गई। किसी भी तरह भूमिका का सम्बन्ध कहानी से नहीं है, लेकिन फिर भी कहानी का आरम्भ इसी शैली से हुआ है। 'सुखमय जीवन' की भूमिका भी पूर्ण रूप से कहानी की संवेदना से संगति नहीं रखती, बस नायक की मनःस्थिति की थोड़ी-सी भूमिका अवश्य कही जा सकती है। नायक परीक्षाफल के लिए बहुत उद्विग्न है, फलतः कहानी का आरम्भ इसी भूमिका से हुआ कि परीक्षा के उपरान्त परीक्षार्थी की क्या स्थिति होती है। 'उसने कहा था' की भूमिका सर्वथा कलात्मक और कहानी की संवेदना से तादात्म्य रखती है। उसमें शैली का आकर्षण है, कहानी में आरम्भिक जिज्ञासा है और कहानी में देश, काल परिस्थिति का आंशिक चित्रण हो जाता है।

इन कहानियों का मध्य भाग कलात्मक दृष्टि से इनका विकास भाग है। कथानक का विकास जहाँ गुलेरी जी ने मुख्यतः संयोगों से किया है, वहाँ सम्पूर्ण कहानी का विकास विविध कार्यों तथा मुख्यतः वर्णनों तथा विवेचनाओं के माध्यम से किया

है । विकास-क्रम अथवा विकास के इन प्रसाधनों में जिज्ञासा और कौतूहल को बढ़ाते रहना इनकी सबसे बड़ी सफलता है । 'सुखमय जीवन' में इस शैली को बहुत ही कम सफलता मिली है, शेष दोनों कहानियाँ इसके सुन्दरतम उदाहरण हैं । विकास-क्रम में एकसूत्रता की दृष्टि से 'सुखमय जीवन' और 'उसने कहा था' परम सफल हैं । लेकिन 'बुद्धू का काँटा' में त्रुटि आ गई है । इसमें मोती के स्वामी इलाही की अवतारणा तथा उनका लम्बा-सा प्रवचन "बा छा मेरे हाल में आपका क्या जी लगेगा ? गरीबों का क्या हाल ? रब रोटी देता है !" से प्रारम्भ होकर "आप जैसे साईं लोगों की बन्दगी करता हूँ, सबका नाम बड़ा है" तक कहानी से बिल्कुल अलग की वस्तु है । इसका सम्बन्ध किसी तरह कहानी के विकास-भाग या विकास-क्रम से नहीं है । 'उसने कहा था' का विकास-भाग कहानी-कला का उत्कृष्ट उदाहरण है । विविध वर्णनों और अनुक्रमों के बीच में कार्यों-घटनाओं की योजना तथा इन सबके ऊपर स्मृति-चित्रों के माध्यम से कहानी का पूर्ण विकास, आरम्भ-भाग तथा व्यक्ति की मनःस्थिति का सुन्दर विश्लेषण आदि सब तत्वों को एक में अपूर्व कलात्मक ढङ्ग से बाँधा गया है ।

इन कहानियों की चरम सीमाएँ संयोगात्मक और घटनात्मक होती हुई भी मानव-प्रकृति तथा मनोविज्ञान के प्रकाश में चरितार्थ हुई हैं । 'सुखमय जीवन' की चरम सीमा यद्यपि कुछ आदर्श-बिन्दु पर स्थित है, फिर भी इसमें मनोभावों की तीव्रता विद्यमान है । "उन्होंने मुस्कराकर कमला से कहा—दोनों मेरे पीछे-पीछे चले आओ । कमला ! तेरी माँ ही सच कहती थी । वृद्ध बंगले की ओर चलने लगे । उनकी पीठ फिरते ही कमला ने आँखें मूदकर मेरे कन्धे पर सिर रख दिया ।" 'बुद्धू का काँटा' की चरम सीमा में मनोभावों की यह तीव्रता और भी अधिक है ।

"घूँघट के भीतर जहाँ आँखें होनी चाहिए, वहाँ कुछ गीलापन दिखा । रघुनाथ ने एक हाथ उसकी कमर में डालकर उसे अपनी ओर खींचना चाहा । मालूम पड़ा कि नदी के किनारे का किला, नींव के गल जाने से धीरे-धीरे धँस रहा है । भगवन्ती का बलवान शरीर, निस्सार होकर, रघुनाथ के कन्धे पर झूल गया । कन्धा आँसुओं से गीला हो गया ।

मेरा कसूर, मेरा गँवारपन में उजड्ड मेरा अपराध मैंने क्या कह डा····आ···· घिग्घी बंध चली ।

उसका मुँह बन्द करने का एक ही उपाय था । रघुनाथ ने वह किया ।"[1] कहानियों के अन्त भाग में चरम सीमा के उपरान्त उपसंहार बिल्कुल नहीं जोड़ा गया है, फलतः कहानियों के अंत में प्रभविष्णुता आ गई है । 'उसने कहा था' कहानी की

१. गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, 'बुद्धू का काँटा', पृष्ठ २७ ।

अंतिम पंक्तियों में "कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा फ्रांस और बेल्जियम ६८वीं सूची मैदान में घावों से मरा नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहना सिंह।"[1] उपसंहार का किंचित् मात्र स्पर्श अवश्य आ गया है, लेकिन कहानी की प्रभविष्णुता पर इसका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि कहानी की तीव्रता बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है।

शैली के सामान्य पक्ष में भाषा-वर्णन और कथोपकथन तीनों बहुत स्वाभाविक और कलात्मक ढङ्ग से प्रयुक्त हुए हैं।

भाषा और वर्णन शैली

इन कहानियों की भाषा अत्यन्त स्वाभाविक और जीवन्त है, क्योंकि गुलेरी जी भाषाशास्त्र के स्वयं बहुत बड़े विद्वान् थे तथा जर्मन, फ्रेंच के अतिरिक्त भारत की प्रायः समस्त प्रादेशिक भाषाओं और बोलियों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। यही कारण है कि उनके वर्णनों में अपूर्व ढङ्ग से स्वाभाविकता और प्रवाह दोनों तत्व आ गए हैं, जैसे अमृतसर में बम्बूकार्ट वाले भाग का वर्णन, "जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—"हट जा जीणे जोगिये, हट जा करमा वालिये, हट जा पुत्ता प्यारिए, बच जा लम्बी वालिए।"[2] तीनों कहानियों में सर्वत्र पात्र की परिस्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है और इस प्रयोग से वर्णन में सर्वत्र जीवन आ गया है।

कथोपकथन

भाषा और वर्णनों के ही अनुरूप, इन कहानियों में कथोपकथनों की भी सफल सृष्टि हुई है। भाषा की स्वाभाविकता तथा परिस्थिति के अनुकूल इसका प्रयोग, इन दोनों प्रसंगों के सुन्दर उदाहरण हमें गुलेरी जी के कथोपकथनों में मिलते हैं। जैसे 'उसने कहा था' में—

"लहना सिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।'

"हाँ देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस गुना जमीन यहीं माँग लूँगा और फूलों के बूटे लगाऊँगा।'

---

१. गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, 'उसने कहा था', पृष्ठ ५१।

२. गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, 'उसने कहा था', पृ० ३८।

'लाड़ी होरां को भी यहां बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने 'वाली फिरङ्गी मेम !'

'चुपकर। यहाँ वालों को शरम नहीं।'

देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया। अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं।''[1]

कथोपकथन के प्रायः समस्त रूप और शैलियाँ इन कहानियों में प्रयुक्त हैं अर्थात् कार्यों, व्यापारों के बीच से कार्यों, व्यापारों के संकेतों के साथ तथा बड़े-बड़े और अत्यन्त छोटे-छोटे स्वाभाविक कथोपकथनों के यहाँ दर्शन होते हैं। इन समस्त रूपों और शैलियों में स्वाभाविकता ही इसकी प्रमुख विशेषता रही है। इसके अतिरिक्त इसमें सहज विनोद, व्यंग और जीवन के अन्य सहज तत्व मिलते हैं।

निम्नलिखित कथोपकथन में इन तत्वों के स्पष्ट उदाहरण मिलेंगे—

"तुम्हारा नाम क्या है ?

भगवन्ती।

रहती कहाँ हो ?

मामी के पास, वही जिसने कुएं पर पानी पिलाया था।

उस दिन का स्मरण आते ही रघुनाथ चुप हो गया। फिर कुछ देर ठहर कर बोला—तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो ?

तुम्हें आदमी बनाने को, जो तुम्हें बुरा लगा हो, तो मैंने भी अपने किए का लहू बहाकर फल पा लिया, एक सलाह दे जाती हूँ।

क्या ?

कल से नदी में नहाने मत आना।

क्यों ?

गोते खाओगे, तो कोई बचाने वाला नहीं मिलेगा।

रघुनाथ झेंपा, पर सम्हल कर बोला—अब कोई मेरी जान बचाएगा तो पीछा नहीं करूंगा, दो गालो भी सुन लूँगा।

इसलिए नहीं, मैं आज अपने बाप के यहाँ जाऊँगी।

तुम्हारा घर कहाँ है ?

जहाँ अनाड़ियों के डूबने के लिए कोई नदी नहीं है।''[2]

---

१. गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, पृष्ठ ४१।
२. गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, 'बुद्धू का काँटा', पृष्ठ ३०।

लक्ष्य और अनुभूति

गुलेरी जी की तीनों क
लक्ष्य के धरातल से लिखी गई
बड़ी प्रेरणा थी और अनुभूति
नहीं। इस निष्कर्ष पर पहुंचने
कहानीकार का दृष्टिकोण अप
समस्त कहानियाँ संयोग और
कारण ये कहानियाँ लम्बी औ

समीक्षा

ये कहानियाँ लक्ष्या
समाज और वर्ग तीनों के सु
के प्रति गुलेरी जी का दृष्टिक
भूतियाँ नहीं हैं, जीवन की म
पूर्ण रूप से स्वीकार करते हु
नहीं थे।''[1] वस्तुतः सामाजि
तथा नीति-सदाचार, जीवन
हैं। समाज की उभरी हुई
दासता और विवाह से स
समस्याओं के प्रति उन्होंने
जी का हास्य इन कहानियों
रंजना के कारण अप्रासंगिक
दोष अधिक नहीं खटकता।
निर्माण, परिस्थिति-चित्रण

हिन्दी कहानी के
भाषा, शैली और प्रवाह दे
जिस समय प्रेमचन्द और
लिख रहे थे, उस समय गुले
और पाठक दोनों के सामने
उपलब्ध है।

---

१. विचार और
प्रदीप कार्यालय, मुरादाबा

लक्ष्य और अनुभूति

गुलेरी जी की तीनों कहानियाँ अनुभूति के धरातल से नहीं लिखी गई हैं, बल्कि लक्ष्य के धरातल से लिखी गई हैं। इनकी सृष्टि तथा निर्माण में आदर्श लक्ष्य सबसे बड़ी प्रेरणा थी और अनुभूतियाँ इनमें साधन-तत्व के रूप में आई हैं; प्रेरणा-तत्व में नहीं। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए हमारे पास दो सबसे बड़े प्रमाण हैं। वस्तुतः कहानीकार का दृष्टिकोण अपनी इन कहानियों के निर्माण में लक्ष्यात्मक रहा है, फलतः समस्त कहानियाँ संयोग और घटना-प्रधान हुई हैं। एक निश्चित आदर्श की प्रतिष्ठा के कारण ये कहानियाँ लम्बी और दो विरोधी शक्तियों के साथ निर्मित हुई हैं।

समीक्षा

ये कहानियाँ लक्ष्यात्मक होती हुई भी अनुभूतियों से ओत-प्रोत हैं। व्यक्ति, समाज और वर्ग तीनों के सुन्दरतम आदर्श इन कहानियों में मिलते हैं। स्पष्टतः जीवन के प्रति गुलेरी जी का दृष्टिकोण सर्वथा स्वस्थ है। उनके साहित्य का आधार छायानुभूतियाँ नहीं हैं, जीवन की मांसल अनुभूतियाँ हैं। "जीवन में नीति और सदाचार को पूर्ण रूप से स्वीकार करते हुए भी वे सैक्स के नाम पर बिदकने वाले आदमियों में से नहीं थे।"[1] वस्तुतः सामाजिक चेतना इनकी कहानियों का प्राण है। आदर्श-प्रतिष्ठा तथा नीति-सदाचार, जीवन के ऊँचे मान को स्थिर करना इन कहानियों की प्रेरणाएँ हैं। समाज की उभरी हुई समस्याएँ जैसे पर्दा की अस्वस्थ प्रथा, सभ्यता की अनुचित दासता और विवाह से सम्बन्धित दहेज, मुहूर्त, प्रेम के व्यावसायिक स्वरूपों तथा समस्याओं के प्रति उन्होंने उचित संकेत और व्यंग दोनों किया है। इस व्यंग में गुलेरी जी का हास्य इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है। कहानियों में बार-बार अतिरंजना के कारण अप्रासंगिकता आई है, लेकिन हास्य रस से सिक्त होने के कारण यह दोष अधिक नहीं खटकता। हास्य की सृष्टि इन्होंने तीन शैलियों से की है—परिस्थिति-निर्माण, परिस्थिति-चित्रण और विनोद की अवतारणा से।

हिन्दी कहानी के उस शैशव-काल में कहानी को इतनी समुचित और कलात्मक भाषा, शैली और प्रवाह देना, गुलेरी जी के कहानीकार व्यक्तित्व की अपूर्व क्षमता है। जिस समय प्रेमचन्द और 'प्रसाद' अपनी कहानी-कला के प्रारम्भिक काल में कहानी लिख रहे थे, उस समय गुलेरी जी ने इन कहानियों की सृष्टि से कहानी-कला के विद्यार्थी और पाठक दोनों के सामने आश्चर्य खड़ा कर दिया; यह अपने-आप में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

●

१. विचार और अनुभूति, श्री नगेन्द्र, गुलेरी जी की कहानियाँ, पृष्ठ ४६। प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद १९४५।

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द का कहानी-साहित्य इतना विशाल और विस्तृत है कि उसमें समूचा एक युग समा गया है। उन्होंने बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण से प्रायः तीन दशाब्दियों के बीच में लगभग चार सौ कहानियाँ लिखी हैं। एक तरह से वे अपने में स्वयं एक कहानी-युग थे, जिसमें हिन्दी कहानियों के सच्चे तत्व अंकुरित हुए, विकसित हुए और उनसे भारतीय कहानी-साहित्य में सुगन्धि आई। प्रेमचन्द ने प्राचीन भारतीय चेतना से लेकर प्रायः समस्त आधुनिक पश्चिमी भाव-धाराओं का अपनी लेखनी में सफल प्रयोग किया है। बङ्गला कहानी-साहित्य में टैगोर की भाँति इन्होंने हिन्दी कहानियों को प्रेरणा दी और उनके भावपक्ष के क्षेत्र को अधिक से अधिक सम्पन्न बनाया। अतः इतने बड़े कहानीकार के व्यक्तित्व के विश्लेषण और उनकी लगभग चार सौ विभिन्न स्तरों की कहानियों की शिल्प-विधि के अध्ययन के लिए हमें कुछ कोटियाँ बनानी पड़ेंगी, जिनसे हम उनके विस्तृत और विशाल कहानी-संसार को अध्ययन-सीमा में बाँध सकें।

प्रेमचन्द की कहानियों की रचना-परिस्थितियाँ

'सप्त सरोज' की कहानियों (१९१७ से लेकर 'मानसरोवर' प्रथम भाग (१९३६ ई०) की कहानियों को रचना-विधान की दृष्टि से विविध राजनीतिक, सामाजिक, व्यक्तिगत परिस्थितियों के बीच से गुजरना पड़ा है और इन परिस्थितियों का मूल्य इन कहानियों के अध्ययन की दिशा में बहुत महत्वपूर्ण है। इन परिस्थितियों ने एक ओर उन्हें कहानियों के भावपक्ष में प्रेरणा दी है और दूसरी ओर इन्होंने कहानीकार के लक्ष्य को और भी तीक्ष्ण बनाया है।

राजनीतिक परिस्थितियाँ

प्रेमचन्द का कहानी-काल १९०७ ई० से लेकर १९३६ ई० तक है। वस्तुतः यह काल भारतवर्ष का संघर्ष-काल और नये भारत का जन्म-काल है। १९०७ ई० के आस-पास ही भारतवर्ष के इतिहास में तीन महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। १९०० ई० में 'सरस्वती' के प्रकाशन से आधुनिक हिन्दी साहित्य में कहानी-कला का आधुनिक रूप विकसित हुआ। सन् १९०१ में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हुई और सप्तम एडवर्ड

गद्दी पर बैठे। १९०१ ई० में महात्मा गाँधी सबसे पहले अफ्रीका के प्रश्न को लेकर महासभा में बोले और इसके उपरान्त कांग्रेस शक्तिशाली होने लगी। भारतीय शासन लार्ड कर्जन के हाथ में आया और उन्होंने 'बंग-भंग' से भारत की राष्ट्रीय उत्तेजना को भड़काया। उस समय तक प्रेमचन्द ने उर्दू में कई कहानियाँ लिखीं और पाँच कहानियों का संग्रह १९०१ ई० में 'सोजेवतन' के नाम से प्रकाशित किया, लेकिन सरकार ने उसे जब्त करके जलवा दिया। १९१२ ई० में लार्ड हार्डिंज पर बम फेंका गया, १९१३ से लेकर १९१५ ई० के बीच करांची कांग्रेस अधिवेशन में भारतीय स्वतन्त्रता पर विचार हुआ। चम्पारन के जिले में नील की खेती के प्रश्न पर अंग्रेजों का भारतीय किसानों पर अत्याचार बढ़ा और महात्मा जी के सत्याग्रह ने उसका जबर्दस्त मुकाबिला किया। इन सब घटनाओं के फलस्वरूप प्रेमचन्द ने मजदूर और किसान के प्रश्न को अपनी कहानियों का प्रमुख विषय बनाया। १९१८ ई० में प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर भारतवर्ष में शान्ति-दिवस मनाया गया। इसके आस-पास ही जलियानवाला बाग की दुर्घटना और १९२० ई० में कांग्रेस ने असहयोग के द्वारा सरकार से युद्ध ठान लिया। १९२२ ई० में टैक्स न देने का आन्दोलन छिड़ा और सरकार भारत के प्रति कठोर हुई। इसके फलस्वरूप भारतीय जनता के निम्न-मध्यम वर्ग और किसान-मजदूरों की दशा बहुत शोचनीय हो उठी।

यह समस्त असन्तोष और विक्षोभ प्रेमचन्द की कहानियों में अग्नि की चिनगारियाँ बनकर फूट पड़ा। १९३० ई० में गाँधीजी के नेतृत्व से नमक-कानून को भङ्ग करने का आन्दोलन चला। दारिद्रय और शोषण बढ़ता गया। लार्ड वेलिंगडन के कठोर शासन, अछूतों के वहिष्कार आदि प्रश्नों पर गाँधी जी ने अनशन किया। १९३५ ई० में भारतीय शासन-विधान तैयार हुआ, लेकिन भारत की आर्थिक स्थिति बहुत गिर गयी और उधर पश्चिम से मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ने लगा। भारतीय उद्‌बुद्ध चेतना इससे बहुत प्रभावित होने लगी। इसी काल में मार्क्सवादी राजनीति के साहित्यिक रूप 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन के रूप में हुई। अनेक देशों में इसकी शाखाएँ बनीं। इसकी स्थापना सन् १९३५ ई० में अंग्रेज लेखक ई० एम० फोस्टर के सभापतित्व में हुई, जिसका पहला अधिवेशन 'पेरिस' में हुआ। भारतवर्ष में डा० मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के उद्यम से १९३६ ई० में इसकी स्थापना हुई और इसके पहले अधिवेशन का सभापतित्व प्रेमचन्द ने किया। उधर शुद्ध राजनीतिक क्षेत्र में १९३६ ई० का मन्त्रिमंडल बनते-बनते प्रेमचन्द जी का देहावसान हो गया।

सामाजिक परिस्थितियाँ

प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक परिस्थितियाँ ही मेरुदंड की भाँति हैं।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत की सामाजिक परिस्थितियाँ सभी दिशाओं से जर्जरित थीं, और इसके पुनरुत्थान में तीन समाज-सुधारक शक्तियाँ कार्य कर रही थीं। पहली शक्ति तो आर्यसमाज की थी, जो हमारे समाज के अंधविश्वास और अनैतिक रूढ़ियों को उखाड़ फेंकने में प्रयत्नशील थी। बाल-विवाह, विधवा-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह आदि सब सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध उसका तीव्र आंदोलन था। दूसरी शक्ति कांग्रेस की वह समाज-चेतना थी, जिसमें अछूत-समस्या, हरिजन-समस्या, मद्यनिषेध आदि के विरुद्ध सत्याग्रह का प्रयोग था। तीसरी शक्ति ब्रह्म-समाजियों की परिष्करण नीति की थी, जो धर्म और समाज की आडंबरपूर्ण विवृतियाँ नहीं सहन कर सकती थी। प्रेमचन्द इन तीनों शक्तियों के पीछे अपनी बलवती लेखनी के माध्यम से किसी दयानन्द, किसी गाँधी और किसी राममोहनराय से कम नहीं थे। इनकी सभी सामाजिक कहानियाँ विशुद्ध सामाजिक धरातल पर लिखी गयी हैं जो हमारे तत्कालीन जर्जरित समाज की कुव्यवस्थाओं के प्रति अमोघ व्यंग हैं।

व्यक्तिगत परिस्थितियाँ

प्रेमचन्द का जन्म बनारस में पाँडपुर मौजा; उसका भी एक पुरवा लमही, में हुआ था अर्थात् ठेठ देहात तथा जन-जीवन से उनका सम्बन्ध सीधा और प्रत्यक्ष रूप में था। धरती का सम्पूर्ण जीवन और धरती के लाल किसानों से इनका सम्बन्ध आत्मिक था, बौद्धिक नहीं। व्यक्तिगत जीवन-धारा अत्यन्त कारुणिक और असाधारण थी। सात ही वर्ष की अवस्था में माता का देहान्त हो गया और इन्हें विमाता के कटु अनुभव प्राप्त हुए। लगभग सोलह ही वर्ष के थे कि पिता भी इनसे दूर हो गए और इतनी ही छोटी उम्र में ये विवाह के बंधन में जकड़ दिए गए। विवाह भी अस्वाभाविक और उल्टा सिद्ध हुआ, जिसने असन्तुष्ट होकर इन्हें विवशत: अपने जीवन में क्रान्ति उपस्थित करनी पड़ी। एक विधवा से विवाह किया। पारिवारिक जीवन की इतनी करुणा लिए हुए भी इन्होंने अपने आत्मबल पर मैट्रिक परीक्षा भी पास की। इसके उपरान्त इन्होंने शिक्षा-विभाग में प्रवेश किया और इस क्षेत्र में इन्हें पूर्ण अनुभव प्राप्त हुआ कि अपनी बात को स्थापित करने के लिए कैसी कला की आवश्यकता है। यहीं से इन्होंने कहानियाँ लिखनी आरम्भ कीं। १९०७ ई० में इन्होंने सर्वप्रथम कहानी लिखी। १९०८ ई० में डिप्टी इंस्पेक्टर हुए और १९२० ई० तक इसी पद पर थे। इसके उपरान्त गाँधी-दर्शन से पूर्ण प्रभावित होकर इन्होंने सक्रिय रूप से गाँधी के असहयोग-आंदोलन में भाग लिया और जीवन की यथार्थतम अनुभूति और स्थितियों से गुजरते हुए इन्होंने क्रमश: 'मर्यादा', 'माधुरी', 'जागरण' और 'हंस' का सम्पादन किया। अन्त में आर्थिक संकट के फलस्वरूप इन्हें फिल्म जगत् में भी प्रवेश करना पड़ा। वहाँ से भी इन्हें निराश होकर १९३५ ई० में काशी लौटना पड़ा। इस तरह

से प्रेमचन्द यथार्थ जीवन
पीकर मनुष्य रूप में काल
नीति, समाज और व्यक्ति
व्यक्तित्व में एक राजनीति
सिद्ध हुए।

प्रेमचंद का अवतरण

'जीवन-सार' नाम
और जन्म के विकास की
लिखना शुरू किया। डॉ०
भी कई पत्रिकाओं में छपक
दिया था, मेरा एक उपन्य
गल्प १९०४ के पहले मैंने
'संसार का सबसे अनमोल
चार-पाँच कहानियाँ और
के नाम से छपा। उस सम
की सृष्टि हो चुकी थी
गयी थी।"

उर्दू में

कहानीकार प्रेमच
इसका प्रमाण है। यह पुस्
जलवा दिया था। इसमें उ
नाम से ये कहानीकार के
के फलस्वरूप इन्होंने इस न
इन्होंने प्रेमचन्द नाम स्वीक
'प्रेम पचीसी' है। 'सोजेवत
उर्दू में निकले; जैसे :—'ह
ख्याल', 'फिरजोदराह', '
और 'नजात'।

अत: कहानीकार
'जमाना' की फाइलों से स्प
कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें

से प्रेमचन्द यथार्थ जीवन के महामानव थे, जो सामाजिक, व्यक्तिगत, आर्थिक विष को पीकर मनुष्य रूप में कालकूट शंकरवत् हो गए। उन्होंने अपनी कहानी-कला में राजनीति, समाज और व्यक्ति तीनों के सुदृढ़ धरातलों से कहानियाँ लिखीं और सम्पूर्ण व्यक्तित्व में एक राजनीतिज्ञ, एक समाज सुधारक और एक निष्ठा-सम्पन्न महापुरुष सिद्ध हुए।

प्रेमचंद का अवतरण

'जीवन-सार' नामक आत्मकथा में प्रेमचन्द ने स्वयं अपने कहानीकार व्यक्तित्व और जन्म के विकास की थोड़ी-सी झलक दी है, "मैंने पहले-पहल १९०१ ई० में गल्प लिखना शुरू किया। डॉ० रवीन्द्रनाथ की कई गल्पें पढ़ी थीं और उनका उर्दू अनुवाद भी कई पत्रिकाओं में छपवाया था। उपन्यास तो मैंने १९०१ ई० से लिखना शुरू कर दिया था, मेरा एक उपन्यास १९०२ में और दूसरा १९०४ ई० में निकला, लेकिन गल्प १९०४ के पहले मैंने एक भी न लिखी थी। मेरी पहली कहानी का नाम था 'संसार का सबसे अनमोल रत्न'। वह १९०७ के 'जमाना' उर्दू में छपी। इसके बाद चार-पाँच कहानियाँ और लिखीं। पाँच कहानियों का संग्रह १९०९ ई० में 'सोजेवतन' के नाम से छपा। उस समय बंग-भंग का आन्दोलन हो रहा था। कांग्रेस में गरम दल की सृष्टि हो चुकी थी। इन पाँच कहानियों में स्वदेश प्रेम की महिमा गायी गयी थी।"

उर्दू में

कहानीकार प्रेमचंद का अवतरण पहले-पहल उर्दू में हुआ। 'सोजेवतन' इसका प्रमाण है। यह पुस्तक अप्राप्य है क्योंकि सरकार ने इसे उसी समय जब्त करके जलवा दिया था। इसमें उन्होंने नवाबराय के नाम से कहानियाँ लिखी थीं। शायद इसी नाम से ये कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध होना चाहते थे, लेकिन राजनीतिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इन्होंने इस नाम से आगे की कहानियाँ नहीं लिखीं और इसके बाद ही इन्होंने प्रेमचन्द नाम स्वीकार किया। इस उपनाम से इनका पहला उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम पचीसी' है। 'सोजेवतन' और 'प्रेम पचीसी' के पश्चात् इनके और भी कहानी-संग्रह उर्दू में निकले; जैसे :—'खाके परवाना', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम चालीसा', 'फिरदौसए ख्याल', 'फिरजोदराह', 'दूध की कीमत', 'वारदात', 'पारवाज ख्याल', 'खाके ख्याल' और 'नजात'।

अतः कहानीकार प्रेमचन्द का उदय सर्वप्रथम उर्दू में हुआ। इन्होंने, जैसा कि 'जमाना' की फाइलों से स्पष्ट है, १९०७ से लेकर १९१७ ई० तक उर्दू में आठ-दस कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें प्रायः ये कहानियाँ आती हैं : 'बड़े घर की बेटी', 'रानी

सारंधा', 'राजा हरदौल', 'जुगनू की चमक', 'गुनाह का अग्निकुण्ड', 'नमक का दरोगा' आदि । इस तरह प्रेमचन्द की उर्दू कहानियाँ मुख्यतः जमाना की फाइलों में आईं और आगे भी आती रहीं । इनकी कुल उर्दू कहानियाँ १७८ हैं, लेकिन १९१७ ई० के उपरांत प्रेमचन्द हिन्दी संसार के कहानीकार हो गए ।

उर्दू और हिन्दी का संधिकाल

उर्दू में इनके उदय होते ही हिन्दी-उन्नायकों और समर्थकों ने इनके कहानीकार के उज्ज्वल भविष्य को देख लिया और उन्हें स्पष्ट हो गया कि उर्दू के माध्यम से लिखने वाला कथाकार निस्संदेह भारतीय जनता और नागरी का सच्चा प्रतिनिधि है । अतएव ८ जून १९१७ ई० को आजमगढ़ जिले के अहरौला-निवासी मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने उन्हें निम्नलिखित भूमिका से हिन्दी-कहानी मन्दिर में प्रतिष्ठित किया—"उर्दू संसार के हिन्दी महारथियों में प्रेमचन्द जी का स्थान बहुत ऊँचा है । अनेक नामों से आपकी पुस्तकें उर्दू संसार की शोभा बढ़ा रही हैं । उर्दू पत्रों ने आपकी रचनाओं की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है । हर्ष की बात यह है कि मातृभाषा हिन्दी ने कुछ दिनों से आपके चित्त को आकर्षित किया है । प्रेमचंद जी ने उसे पूजनार्थ नागरी मन्दिर में प्रवेश किया और माता ने हृदय लगाकर अपने इस यशशाली प्रेम पुत्र को अपनाया है । × × × आपकी कहानियाँ हिन्दी संसार में अनूठी चीज हैं । हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ आपके लेखों के लिए लालायित रहती हैं । कुछ लोगों का विचार है कि आपकी गल्पें साहित्य-मार्तण्ड रवीन्द्र बाबू की रचना से टक्कर लेती हैं । ऐसे विद्वान् और प्रसिद्ध लेखक के विषय में विशेष लिखना अनावश्यक और अनुचित होगा ।"[1]

इस तरह 'सप्त सरोज' की कहानियों के साथ प्रेमचन्द हिन्दी कहानीकार के रूप में हमारे सामने आये । इस संग्रह की कहानियाँ हैं—१. 'बड़े घर की बेटी', २. 'सौत' ३. 'सज्जनता का दंड' ४. 'पंच परमेश्वर' ५. 'नमक का दरोगा' ६. 'उपदेश' और ७. 'परीक्षा' ।

अध्ययन की दृष्टि से यही कहानियाँ प्रेमचन्द की आदि कहानियाँ हैं, चाहे इनका उदय उर्दू के माध्यम से हुआ हो चाहे हिन्दी के । 'सप्त सरोज' कहानी-संग्रह के बाद शीघ्र ही 'नवनिधि' कहानी-संग्रह हिन्दी-जगत के सामने आया । इन दोनों कहानी-संग्रहों की अधिकांश कहानियाँ १९०७ से लेकर १९२० ई० तक की 'जमाना' की फाइलों में प्रकाशित हैं, बिल्कुल इसी रूप में, कम से कम जहाँ तक शिल्पविधि का सम्बन्ध है । अन्तर केवल भाषा, शैली और एकाध कहानियों के शीर्षक-परिवर्तन तक ही सीमित है; जैसे, 'सप्तसरोज' की 'बड़े घर की बेटी', 'जमाना' की 'बड़े घर की बेटी', 'नवनिधि' का 'पाप का अग्निकुंड', 'जमाना' का 'गुनाह का अग्निकुंड' आदि ।

१. भूमिका, सप्तसरोज, चौथी बार, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता ।

यह तो हुई केवल अ
व्यक्तित्व आगे बहुत व्यापक है
मनोभावों, शिल्पविधियों के
साहित्य की शिल्पविधि के अ
क्रमिक अध्ययन को हम वैज्ञ

ऐतिहासिक विशेषत

प्रेमचन्द के समूचे
कलात्मक स्वर मिलते हैं, उ
कहानियों को तीन भागों मे

(क) प्रथम काल :
(ख) द्वितीय काल
(ग) तृतीय काल

इन तीनों कालों क
है और यही प्रगतिशील क

प्रथम काल :

प्रथम काल में प्रे
की प्रारम्भिक कहानियाँ
कलात्मक स्तर है । इन स
ही शिल्पविधि की प्रक्रिया

प्रथम काल की क
आधार पर खड़ी हैं । ये
पूर्ण कथात्मक और इतिव
लेकिन यहाँ इतना स्पष्ट
करने के पूर्व दो वृहद् सा
वे छोटी कहानी लिखने
थीं वे एक-एक करके कह
अपनी विभिन्न इकाइयों,
हिन्दी कहानी के उस प्र
की उन लम्बी-लम्बी, इ
छाँट कर उसी के धरात
हृदय और मस्तिष्क में
उत्पन्न जितनी समस्याएँ

यह तो हुई केवल आरम्भ के इतिहास की बात, परन्तु प्रेमचन्द का कहानीकार व्यक्तित्व आगे बहुत व्यापक है। १९१७ से १९३६ ई० तक इन्होंने विभिन्न स्तरों, विभिन्न मनोभावों, शिल्पविधियों के प्रयोगों से अनेक कहानियाँ लिखी हैं। इस विशाल कहानी-साहित्य की शिल्पविधि के अध्ययन में हमें कुछ निश्चित दिशाएँ बनानी हैं, जिसके उनके क्रमिक अध्ययन को हम वैज्ञानिक रूप दे सकें।

ऐतिहासिक विशेषता

प्रेमचन्द के समूचे कहानी-साहित्य में हमें क्रमिक विकास और अलग-अलग कलात्मक स्वर मिलते हैं, जो काल-परिस्थिति-सापेक्ष हैं। हम ऐतिहासिक दृष्टि से इनकी कहानियों को तीन भागों में बाँट सकते हैं—

(क) प्रथम काल : १९१७ से १९२० ई० तक।

(ख) द्वितीय काल : १९२० से १९३० ई० तक।

(ग) तृतीय काल : १९३० से १९३६ ई० तक।

इन तीनों कालों की कहानियों में क्रमशः भावात्मक और कलात्मक अन्तर स्पष्ट है और यही प्रगतिशील कलाकार की पहचान है।

प्रथम काल :

प्रथम काल में प्रेमचन्द की 'सप्तसरोज' से लेकर 'नवनिधि' तथा 'प्रेमपचीसी' की प्रारम्भिक कहानियाँ आती हैं। इन कहानियों का अपना स्वतन्त्र भावात्मक और कलात्मक स्तर है। इन सभी कहानियों का ध्येय, भावधाराएँ प्रायः एक-सी हैं। एक ही शिल्पविधि की प्रक्रिया के माध्यम से ये कहानियाँ निर्मित हुई हैं।

प्रथम काल की कहानियाँ अपने समग्र रूप में कुछ मूलगत विशेषताओं के आधार पर खड़ी हैं। ये भावपक्ष की दृष्टि से पूर्ण आदर्शवादी और कलात्मक दृष्टि से पूर्ण कथात्मक और इतिवृत्तात्मक हैं। ऐसा क्यों है? इसकी चर्चा हम आगे भी करेंगे, लेकिन यहाँ इतना स्पष्ट कर देना अप्रासंगिक न होगा कि प्रेमचन्द ने कहानी आरम्भ करने के पूर्व दो वृहद् सामाजिक उपन्यास लिख डाले था और इसके उपरान्त ही जब वे छोटी कहानी लिखने बैठे तो समाज की लम्बी-लम्बी कथाएँ जो उनके सामने बिखरी थीं वे एक-एक करके कहानीकार प्रेमचन्द के संवेद्य मस्तिष्क में घर कर गयीं, और वे अपनी विभिन्न इकाइयों, विभिन्न रसों के साथ इनकी एक-एक कहानियों में आने लगीं। हिन्दी कहानी के उस प्रथम काल में अगर कोई कुशल कहानीकार होता, तो वह समाज की उन लम्बी-लम्बी, इतिवृत्तात्मक कथाओं से कोई छोटा-सा सारभूत प्रसंग या अंग छाँट कर उसी के धरातल पर कहानी की सृष्टि कर देता। परन्तु प्रेमचन्द जिनके हृदय और मस्तिष्क में तत्कालीन भारत की सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों से उत्पन्न जितनी समस्याएँ घनीभूत थीं, वे अधिक से अधिक रूप से अपनी लम्बी-लम्बी

कथाओं के साथ, अनेकानेक इकाइयों, अनुक्रमों को लिए हुए इस प्रथम काल की कहानियों में आईं।

विशेषताएँ

प्रेमचन्द के प्रथम काल की कहानियों के प्रभाव और उनकी विशेषताएँ बिल्कुल स्पष्ट हो गयी हैं, और इनमें किसी गूढ़ छान-बीन की आवश्यकता नहीं। समुचित रूप में ये मूलगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(क) कहानी की भावभूमि अति प्रशस्त है।

(ख) इनमें कई रस, अनेक चरित्र, कई घटनाओं और संवेदनाओं का समावेश हुआ है।

(ग) इनमें व्याख्या का अंश अधिक, संवेदना का अंश कम है।

(घ) ये कहानियाँ प्रायः वर्णनात्मक शैली में हैं। कथावाचक की भाँति कहानीकार ने सब कुछ अपनी ही तरफ से कहने का प्रयत्न किया है।

(ङ) अतः चरित्रों की केवल व्याख्या हुई है। उनके मनोभावों को व्यंजित नहीं किया गया है।

(च) कहानी का मूल, घटना-विन्यास और आदर्श-पालन में है, स्वाभाविकता में नहीं।

(छ) प्रायः सभी कहानियाँ संयोगात्मक हैं।

द्वितीय काल :

द्वितीय काल में आकर इनकी कहानियों के रूप और शैली में परिवर्तन हुए। कहानी के सम्बन्ध में स्वयं प्रेमचन्द जी की धारणा प्रथम काल की धारणा से आगे बढ़ गयी। इसका उदाहरण हमें प्रेमचन्द की भूमिकाओं में स्वयं इनकी वाणी के माध्यम से मिलने लगा। 'प्रेम प्रसून' और 'प्रेम द्वादशी' की भूमिकाओं में इन्होंने अपनी धारणा को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया :

"आज-कल आख्यायिका का अर्थ बहुत व्यापक हो गया है। उसमें प्रेम की कहानियाँ, जासूसी किस्से, भ्रमण वृतान्त, अद्भुत घटना, विज्ञान की बातें यहाँ तक कि मित्रों की गपशप सभी बातें शामिल कर दी जाती हैं।"[1]

"हमारा विचार है कि आख्यायिका में यह तीन गुण अवश्य होने चाहिये—

१. उसमें कोई आध्यात्मिक या नैतिक उपदेश हो।

२. उसकी भाषा अत्यन्त सरल हो।

---

१. प्रेम प्रसून की भूमिका, पृ० १।

३. उसकी वर्णन-शैली स्वाभाविक हो और उन्हीं सिद्धांतों के अनुसार इन कहानियों की रचना की गयी हो।"[१]

अतः द्वितीय काल की कहानियों का उद्देश्य मनोरंजन के अतिरिक्त रसास्वादन भी कराना हो गया। इस काल में गल्पों का आधार कोई न कोई नैतिक तत्व या सामाजिक विवेचन हुआ। इस काल में आकर प्रेमचंद ने स्वयं अपनी कहानियों के परम लक्ष्य की ओर इंगित करते हुए बताया कि "ऐसी कहानी जिसमें जीवन के किसी अंग पर प्रकाश न पड़ता हो, जो मनुष्य में सद्भावनाओं को दृढ़ न करे या जो मनुष्य में कुतूहल का भाव न जागृत करे, कहानी नहीं।"[२]

इस काल की कहानियों का धरातल सत्य और सुन्दर दोनों के समन्वय पर आधारित है। प्रथम काल की कहानियों में मुख्यतः आदर्शवाद की प्रतिष्ठा हुई है, इस काल में आकर वह आदर्शवाद पूर्णतः यथार्थोन्मुख हुआ है। प्रेमचन्द के शब्दों में इस काल की कहानियाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की दिशा में हैं। "हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है।"[३]

वस्तुतः इस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पीछे प्रेमचन्द का गाँधीवाद मुखरित है। द्वितीय काल में ऐसी तमाम कहानियों का अन्त इसी बिन्दु पर हुआ है और इसका उदाहरण तो हमें कुछ कहानियों में स्पष्ट रूप से मिल गया है। 'सत्याग्रह' में उन्होंने झूठे प्रपंची सत्याग्रही का चित्रण करके सच्चे सत्याग्रही की कल्पना की है और उसका व्यक्तित्व निश्चित किया है। 'ब्रह्म का स्वांग' में खोखले पति को दिखाकर जगती हुई स्वतंत्र नारी-भावना का स्वप्न देखा है। 'महातीर्थ' में तीर्थ की अपेक्षा मानव-सेवा श्रेष्ठ सिद्ध किया है। 'जेल' में मृदुला के व्यक्तित्व में असहयोग और गांधी सत्याग्रह की ओर सफल संकेत है। 'मैकू' में मद्य निषेध का सफलता से प्रतिपादन हुआ है और इन उपर्युक्त कहानियों की शिल्पविधि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पर आधारित है।

तृतीय काल

इस काल में आकर कहानियों का धरातल और भी बदल गया। यहाँ इनका आधार मनोविज्ञान-विवेचन हो गया और ये जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना एकमात्र ध्येय समझने लगीं। इनमें कल्पना कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक हो गयी, बल्कि अनुभूतियाँ रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बनने लगीं। तृतीय काल में प्रेमचंद की कहानियाँ जीवन के बहुत निकट आ गयीं। उसकी

---

१. प्रेम प्रसून की भूमिका, पृ० ६।
२. प्रेम द्वादशी की भूमिका, पृ० ४।
३. प्रेम प्रसून, भूमिका, पृष्ठ ६।

३. उसकी वर्णन-शैली स्वाभाविक हो और उन्हीं सिद्धांतों के अनुसार इन कहानियों की रचना की गयी हो।''[1]

अतः द्वितीय काल की कहानियों का उद्देश्य मनोरंजन के अतिरिक्त रसास्वादन भी कराना हो गया। इस काल में गल्पों का आधार कोई न कोई नैतिक तत्व या सामाजिक विवेचन हुआ। इस काल में आकर प्रेमचंद ने स्वयं अपनी कहानियों के परम लक्ष्य की ओर इंगित करते हुए बताया कि ''ऐसी कहानी जिसमें जीवन के किसी अंग पर प्रकाश न पड़ता हो, जो मनुष्य में सद्भावनाओं को दृढ़ न करे या जो मनुष्य में कुतूहल का भाव न जागृत करे, कहानी नहीं।''[2]

इस काल की कहानियों का धरातल सत्य और सुन्दर दोनों के समन्वय पर आधारित है। प्रथम काल की कहानियों में मुख्यतः आदर्शवाद की प्रतिष्ठा हुई है, इस काल में आकर वह आदर्शवाद पूर्णतः यथार्थोन्मुख हुआ है। प्रेमचन्द के शब्दों में इस काल की कहानियाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की दिशा में हैं। ''हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है।''[3]

वस्तुतः इस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पीछे प्रेमचन्द का गाँधीवाद मुखरित है। द्वितीय काल में ऐसी तमाम कहानियों का अन्त इसी बिन्दु पर हुआ है और इसका उदाहरण तो हमें कुछ कहानियों में स्पष्ट रूप से मिल गया है। 'सत्याग्रह' में उन्होंने झूठे प्रपंची सत्याग्रही का चित्रण करके सच्चे सत्याग्रही की कल्पना की है और उसका व्यक्तित्व निश्चित किया है। 'ब्रह्मा का स्वांग' में खोखले पति को दिखाकर जगती हुई स्वतंत्र नारी-भावना का स्वप्न देखा है। 'महातीर्थ' में तीर्थ की अपेक्षा मानव-सेवा श्रेष्ठ सिद्ध किया है। 'जेल' में मृदुला के व्यक्तित्व में असहयोग और गांधी सत्याग्रह की ओर सफल संकेत है। 'मैकू' में मद्य निषेध का सफलता से प्रतिपादन हुआ है और इन उपर्युक्त कहानियों की शिल्पविधि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पर आधारित है।

तृतीय काल

इस काल में आकर कहानियों का धरातल और भी बदल गया। यहाँ इनका आधार मनोविज्ञान-विवेचन हो गया और ये जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना एकमात्र ध्येय समझने लगीं। इनमें कल्पना कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक हो गयी, बल्कि अनुभूतियाँ रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बनने लगीं। तृतीय काल में प्रेमचंद की कहानियाँ जीवन के बहुत निकट आ गयीं। उसकी

---

१. प्रेम प्रसून की भूमिका, पृ० ६।
२. प्रेम द्वादशी की भूमिका, पृ० ४।
३. प्रेम प्रसून, भूमिका, पृष्ठ ६।

जमीन, प्रथम, द्वितीय काल की अपेक्षा बहुत संकुचित हो गयी। उसमें कई घटनाओं, कई रसों और अनेक चरित्रों का समावेश रुक गया। अब इस काल की कहानियाँ स्वयं प्रेमचंद के शब्दों में—"एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। इस तथ्य ने उसमें प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। अब उसमें व्याख्या का अंश कम, संवेदना का अंश अधिक रहता है। उसकी शैली प्रवाह-मयी हो गयी है। लेखक को जो कुछ कहना है वह कम से कम शब्दों में कह डालना चाहता है। वह अपने चरित्रों के मनोभावों की व्याख्या करने नहीं बैठता, केवल उसकी तरफ इशारा कर देता है।"[१]

अतः तृतीय काल में आकर कहानियाँ अपने समग्र रूप में अधिक कलात्मक और ऊँचे धरातल पर पहुँची हैं। यहाँ आकर कहानियों की घटनाओं की कोई स्वतन्त्र विशेषता नहीं रह गयी है। यहाँ की कहानियाँ घटना के चक्र पर नहीं घूमतीं, वरन् पात्रों के मनोभावों के फलस्वरूप घटनाओं की सृष्टि स्वतः होती चलती है। इस तरह यहाँ की कहानियाँ पूर्णतः यथार्थ धरातल पर आकर अपने मूल्य को उत्कृष्ट बना देती हैं। यहाँ यथार्थ धरातल और यथार्थ भाव भूमि के पीछे आर्थिक समस्या मुख्य हो गयी है। एक तरह से यहाँ की यथार्थवादिता, मुख्यतः आर्थिक धरातल से बोल रही है, सामाजिक धरातल से नहीं क्योंकि प्रेमचन्द ने स्पष्ट रूप से देख लिया था, अनुभव कर लिया था कि हमारे जीवन की सारी समस्याओं के पीछे आर्थिक व्यवस्था का मुख्य हाथ है। प्रेमचन्द के इस दृष्टिकोण के पीछे किसी भी तरह से मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रेरणा नहीं थी, बल्कि यह प्रेमचन्द का अनुभव था। वे स्वयं इसके बहुत बड़े शिकार बने रहे और ग्रामीणों तथा मजदूरों के बीच तथा मध्य एवं निम्न-वर्ग के बीच में रहकर उन्होंने इसको कटुता भी देखी थी।

अतः इस काल की कहानियाँ छोटी और व्यंगात्मक हैं और उक्त समस्या के विभिन्न प्रसंगों और छोटी-छोटी सांकेतिक संवेदनाओं को समेटती हुई चली हैं।

प्रेमचन्द की कहानियों की शिल्प-विधि

ऊपर हमने मोटे रूप में प्रेमचन्द की कहानियों का काल-विभाजन करके उनका परिचयात्मक अध्ययन किया है। हमने यह भी देखा है कि प्रथम काल में कैसी कहा-नियाँ थीं, मोटे ढंग में उनका क्या रूप था, फिर द्वितीय काल में, प्रथम काल की कहानियों की अपेक्षा उनमें विकास हुआ और तृतीय काल में कहानियाँ अपने उत्कर्ष पर पहुँच गयीं।

१. मानसरोवर, प्रथम भाग, भूमिका, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ८।

अतः प्रेमचन्द की
के लिए हम उपर्युक्त तीन
(क) आरम्भिक

काल-विभाजन

यहाँ उक्त कोटि-
कोई ऐतिहासिक या गणि
कोटि की कोई निश्चित
कहानी की शिल्पविधि,
है। इसमें ऐतिहासिक
'नवनिधि' और 'प्रेमपची
शिल्पविधि प्रायः एकसी
दिया गया है। इसके बा
हैं, अर्थात् यहाँ कहानियों
मित और भिन्न है और
भावगत विकास करती
एक बात यह भी ध्यान
कहानी ऐसी भी मिलें
कहानी, 'नवनिधि' की
नियों के आरम्भिक काल
कहानियों के अनुरूप है
'आत्माराम', 'मुक्ति का
काल और उत्कर्ष-काल
त्मक स्तर बिलकुल नीचे
के अपवाद हैं, स्तर के
और परिस्थिति-सापेक्ष
अमुक-अमुक वस्तुओं को
उपर्युक्त काल निर्धारण
अलग-अलग विशेषताएँ
भूत तत्व रही है।

आरम्भिक काल

जैसा कि विषय

अतः प्रेमचन्द की तीनों काल की कहानियों की शिल्पविधि के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए हम उपर्युक्त तीनों कालों को निम्नलिखित कोटियों में रख सकते हैं :

(क) आरम्भिक काल, (ख) विकास-काल, (ग) उत्कर्ष-काल ।

काल-विभाजन

यहाँ उक्त कोटि-विभाजन, काल-विभाजन के आधार पर हुआ है, लेकिन यह कोई ऐतिहासिक या गणित-विभाजन नहीं कि एक काल और दूसरे काल में कहानी-कोटि की कोई निश्चित रेखा खींच दी जा सके । वस्तुतः काल या कोटि का निर्धारण कहानी की शिल्पविधि, कहानी के रूपों और रचना-पद्धतियों के आधार पर किया गया है । इसमें ऐतिहासिक तथ्य ढूँढ़ना ठीक नहीं, उदाहरण के लिए 'सप्त सरोज', 'नवनिधि' और 'प्रेमपचीसी' की कुछ कहानियों का रूप, उनका ढर्रा, उनकी समूची शिल्पविधि प्रायः एकसी है । अतः इन कहानियों को क्रमशः आरम्भिक काल में रख दिया गया है । इसके बाद की कहानियों में कलागत, भावगत अन्तर और दोनों स्पष्ट हैं, अर्थात् यहाँ कहानियों का कलात्मक आधार आरम्भिक कहानियों से नितांत विकमित और भिन्न है और इनसे भी आगे आने वाली कहानियाँ धीरे-धीरे क्रमशः कलागत, भावगत विकास करती हुई अपने समग्र रूप में उत्कर्ष पर पहुँच गयी हैं, लेकिन यहाँ एक बात यह भी ध्यान में रखने की है कि अपवादस्वरूप हर एक काल-विशेष में एकाध कहानी ऐसी भी मिलेगी जो काल-निरपेक्ष हैं, जैसे 'सप्तसरोज' की 'पंचपरमेश्वर' कहानी, 'नवनिधि' की 'अमावस्या की रात्रि' नामक कहानी । यद्यपि प्रेमचंद की कहानियों के आरम्भिक काल में लिखी गयी हैं, लेकिन उनका व्यक्तित्व विकासकाल की कहानियों के अनुरूप है । इसी तरह विकास-काल की कहानियाँ, जैसे 'बूढ़ी काकी', 'आत्माराम', 'मुक्ति का मार्ग' अपने कलात्मक रूपों में उत्कृष्ट हैं । दूसरी ओर विकास-काल और उत्कर्ष-काल में अपवादस्वरूप कुछ कहानियाँ ऐसी भी मिलेंगी जिनका कलात्मक स्तर बिल्कुल नीचे उतरा हुआ दिखाई देता है । वस्तुतः ये कलाकार की सृष्टि के अपवाद हैं, स्तर के अपवाद नहीं, क्योंकि ये कृतियाँ विशिष्ट मनोवृत्ति, चित्तवृत्ति और परिस्थिति-सापेक्ष हैं । काव्य सृष्टियाँ कोई रासायनिक तत्व की प्रक्रिया नहीं कि अमुक-अमुक वस्तुओं को मिलाया जाय और हमेशा एक-सी चीज निकलती रहे । अतः उपर्युक्त काल निर्धारण और कोटि-निर्धारण का धरातल कहानियों के शिल्पविधिगत अलग-अलग विशेषताएँ हैं, जो प्रायः एक काल में विशिष्ट रूप से कहानियों की आधारभूत तत्व रही हैं ।

आरम्भिक काल

जैसा कि विषय-प्रवेश में स्पष्ट किया गया है, कहानी की शिल्पविधि का केवल

एक संधि-बिन्दु या पकड़ है—लक्ष्य और अनुभूति। कहानी की सृष्टि के पीछे केवल यही एक प्रेरणा हो सकती है कि या तो कहानी में किसी निश्चित लक्ष्य या उद्देश्य का प्रतिपादन हो या किसी अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति। इसी के चारों ओर कहानी-शिल्पविधि के समस्त ताने-बाने बुने जाते हैं, जैसे, कथानक, चरित्र और शैली आदि।

उपर्युक्त तत्वों की समष्टि से, तथा उनके सुगठित व्यापार और कलात्मक संयोग से जो कृतित्व निकलती है, वही कहानी है, और उन विभिन्न तत्वों, साधन-प्रसाधन के कलात्मक व्यापारों को प्रक्रिया को, उस (कहानी) की टेकनीक या शिल्प-विधि कहेंगे।

कथानक

कलात्मक दृष्टि से कहानी का कथानक बहुत छोटा, जीवन में प्रतिदिन घटने वाली समस्याओं, घटनाओं के एक प्रसंग, एक छोटा-सा टुकड़ा होना चाहिए। कहानी द्वारा जिसकी पकड़ से उस दिशा की समूची समस्या पर थोड़ी-सी विद्युतगति की झलक पड़ सके, लेकिन कथानक की यह कलात्मक कसौटी कहानी-कला के चरम उत्कर्ष पर ही मिल सकती है, आरम्भिक काल की स्थिति में नहीं।

कथानक की दिशा में प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियाँ बहुत लम्बी, इतिवृत्तात्मक और कभी-कभी दो-दो कथाओं को साथ लेकर आयी हैं।

लम्बे कथानक

'सप्तसरोज', 'नवनिधि' और 'प्रेम पचीसी' की कुछ कहानियों को देखने से स्पष्ट है कि 'सौत', 'पंचपरमेश्वर', 'नमक का दरोगा', 'बड़े घर की बेटी', 'रानी सारंधा', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुंड', 'ममता' और 'अमावस्या की रात्रि' के कथानक कितने लम्बे हैं। इन कहानियों के कथानक की लम्बाई और विस्तार पर आज आसानी से उपन्यास लिखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए हम 'पंचपरमेश्वर' के कथानक को देख सकते हैं कि इसके कथानक का विस्तार कितने मोड़ों को छूते हुए कहानी में बिखरा है। जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता के परिचय की कहानी कहानी का एक मोड़ है अर्थात् यह मित्रता दोनों में कैसे पनपी, उनका क्या रूप है, कितनी गाढ़ी है। दूसरा मोड़, जुम्मन शेख की बूढ़ी खाला की जायदाद की समस्या, जिसको खाला ने जुम्मन के नाम हिब्बा कर दिया था, उसका परिचयात्मक कथा-वर्णन। तीसरा मोड़, जुम्मन और बूढ़ी खाला में द्वन्द्व और असंतोष तथा पंचायत में समस्या रखने की पूरी तैयारी। चौथा मोड़, अलगू और खाला का परिचय और खाला

अलगू को पंचायत में सत्य बोलने के लिए आमंत्रित करती है। पाँचवाँ मोड़ है, अलगू का खाला के पक्ष में अपने दोस्त जुम्मन के विरुद्ध मुकदमा का फैसला करना। छठा मोड़ है, जुम्मन और अलगू की प्रतिद्वन्द्विता और आपसी बैर। सातवाँ मोड़, चौधरी और बटेसर साहु में बैल के लेन-देन की कहानी और उनका आपसी झगड़ा, जहाँ बटेसर सरासर अलगू के प्रति बेईमानी कर रहा है। फिर कथानक में आठवाँ मोड़ आता है, बटेसर साहु और अलगू चौधरी में पंचायत का होना। नवाँ मोड़, अलगू की पंचायत में उससे पुरानी दुश्मनी का बदला लेने के लिए जुम्मन शेख का सरपंच बनना और अन्त में इतने लम्बे कथानक के बाद अन्तिम और दसवाँ मोड़ इस बिन्दु पर आकर समाप्त होता है कि जुम्मन में भी सहसा ईमानदारी, न्यायप्रियता की भावना जागती है और वह अलगू के पक्ष में अपना सही न्याय देता है और दोनों मित्र आपस में मिल जाते हैं।

'नवनिधि' की ऐतिहासिक कहानियों के कथानकों की अवतारणा और भी लम्बी, व्यापक और विस्तृत हुई है। एक-एक कथानक के निर्माण और विकास में कम-से-कम बीसों मोड़ तैयार किये गए हैं। 'रानी सारंधा' कहानी के कथानक का विस्तार ठीक उन ग्राम-कथाओं; जैसे सारंगा-सदावृक्ष, बाबा लखन्दर या राजा भरथरी और रानी अन-बोलती आदि की तरह हैं जिसे पूरा का पूरा सुनाने में सारी रात से भोर हो जाता है।

इस तरह प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियों के कथानक की लम्बाई, विस्तृत भाव-भूमि का खाका स्पष्ट है। जैसा कि पहले कहा गया है, इन प्रारम्भिक कहानियों के इतने लम्बे-लम्बे कथानकों के पीछे निश्चित रूप से दो प्रेरणाएँ कार्य कर रही थीं। प्रेमचंद की इन कहानियों में भावपक्ष, विषय या इनकी संवेदनाएँ किसी इकाई या एक भाव-बिन्दु पर नहीं आधारित थीं, बल्कि इनका धरातल, विषय के एक प्रसंग के स्थान पर पूरा विषय होता था, जिसमें न जाने कितनी अन्य संवेदनाएँ, इकाइयाँ आ जाती थीं, अतः कहानी का विस्तार और उसके कथानक स्वभावतः लम्बे और विस्तृत हो जाते थे क्योंकि इनके माध्यम से उन्हें एक परिवार, एक वंश या व्यक्ति के जीवन का पूरा भाग उसमें समेटना पड़ता था। दूसरी प्रेरणा थी नितान्त शिल्पविधि से संबंधित—पहले, कथानकों के प्रति प्रेमचंद की धारणा इन विकास-क्रमों के साथ चलती थी—जैसे भूमिका, कहानी की समस्या का आरम्भ, द्वन्द्व, आरोह, कौतूहल, चरमसीमा और उपसंहार। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक कथानक किसी समस्या के भाव-बिन्दु को आधार मानकर, उसी एक बिंदु से नहीं विकसित होते थे, वरन् इनके कथानक पृष्ठ ९२ की रेखाओं से विकसित हैं।

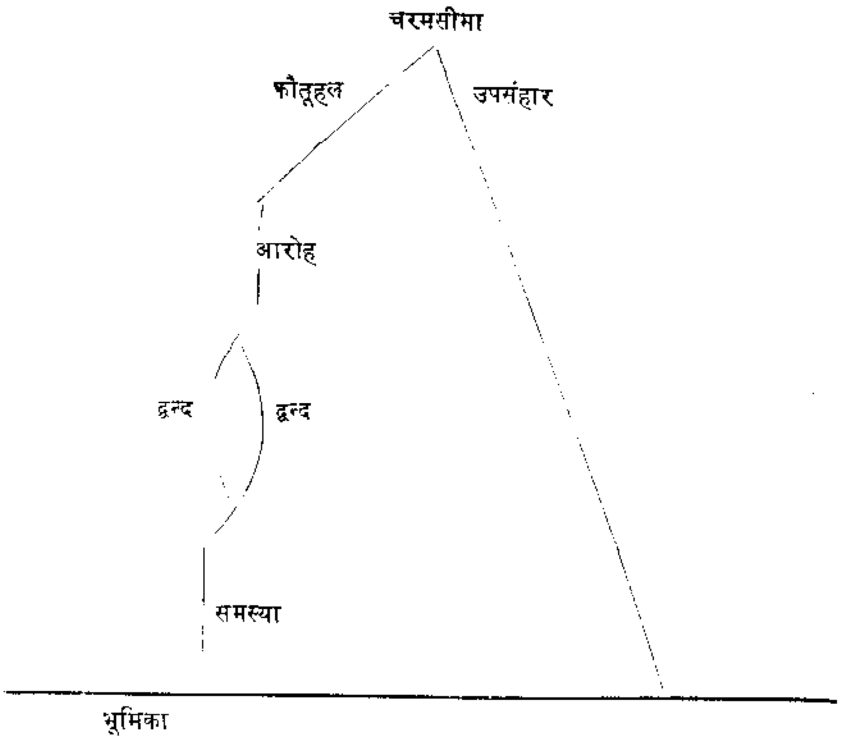

इतिवृत्तात्मकता

कलात्मक दृष्टि से कहानी का धर्म किसी समस्या की प्रस्तावना से लेकर उपसंहार तक की व्याख्या नहीं है, और न उस समस्या की सारी मान्यताओं को कहानी के अन्दर गूँथकर उसे इतिवृत्तात्मक स्वरूप देने ही में है, वरन् इसका धर्म है, समस्या पर थोड़ा-सा विद्युत-आलोक और पाठक के मनोभावों का स्पर्श, जिससे कहानी पाठक क्षण-भर के लिए आश्चर्य-चकित रह जाय—जैसे 'चेखोव' और 'मोपाँसा' की कहानियों में स्पष्ट है, लेकिन प्रेमचंद ने अपनी आरम्भिक कहानियों में समस्या की भाव भूमि विस्तृत ली है और कई इकाइयों को एक सूत्र में पिरोने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप उन्हें इतिवृत्तात्मक हो जाना पड़ा है। इसके पीछे दूसरी प्रेरणा यह भी थी कि वे पूरी समस्या को कथावाचक के रूप में वर्णन करते थे तथा आदि से अंत तक उसका पूर्ण निर्वाह करते थे और पाठकों से सोचने के लिए कुछ नहीं छोड़ते थे।

प्रेमचंद की यह इतिवृत्तात्मकता दो रूपों में चरितार्थ हुई है। मुख्यतः उन्होंने जब कभी भी किसी समस्या को अपनी कहानी में बाँधना चाहा है, उस समस्या को

आदि से लेकर अंत तक बाँधने की चेष्टा की है। कथानक के आदि-अंत दोनों सिरों के बीच में भी, उस समस्या से संबंधित अधिक-से-अधिक व्यवस्थाएँ दी हैं। उदाहरण के लिए, 'बड़े घर की बेटी' में कहानी का आरम्भ गौरीपुर में गाँव के जमींदार बेनीमाधव सिंह के घर से होता है। यहाँ आरंभ में ही हमें बेनीमाधव सिंह के समूचे परिवार की पूरी कथा मिलती है। इनके दो बेटों—श्रीकंठ सिंह और लालबिहारी सिंह की अवस्था, स्थिति और मनोवृत्तियों का पूरा-पूरा ब्योरा मिलता है। श्रीकंठ सिंह की धर्मपत्नी आनन्दी की कथा मिलती है। यह बड़े घर की बेटी है और इसकी सारी स्थिति और मनोभाव इसी के अनुकूल हैं। लालबिहारी द्वारा शिकार से घर में चिड़िया आती है और उसके बनाने में तथा घी की समस्या पर परिवार में द्वन्द्व की अवतारणा होती है। भाई-भाई से मनमुटाव होता है और उसका पूरा क्रमिक विकास इतिवृत्त ढङ्ग से दिखाया जाता है। लालबिहारी घर छोड़कर कहीं भाग जाने को तय करता है, लेकिन इसी बीच में आनन्दी के मन में देवत्व जगता है। वह लालबिहारी को क्षमा करती है, स्नेहमयी हो जाती है और अन्त में दोनों भाइयों में प्रेम हो जाता है, फलतः 'बड़े घर की बेटी' कहानी के इतिवृत्त में समूचे परिवार की कहानी कही गई है। इसमें आनन्दी, बेनीमाधव सिंह, श्रीकंठ सिंह और लालबिहारी सिंह सबकी कहानियाँ, सबका चारित्रिक अध्ययन आदि से अंत तक गूँथा गया है। कहानी के आरम्भ में हम जहाँ से चले थे अंत में हम वहीं पहुँच जाते हैं अर्थात् बेनीमाधव सिंह के शांत परिवार से हम कहानी के आरम्भ में चले थे और कहानी के इतिवृत्त के साथ-साथ हम फिर उसी शान्तिपूर्ण परिवार में आ जाते हैं। वस्तुतः इस इतिवृत्तात्मकता के पीछे द्विवेदी-युग की प्रवृत्ति भी काम करती थी, अर्थात् जिस विवाद या समस्या को काव्य का भावपक्ष बनाया जाय उसका इतिवृत्तात्मक, विस्तृत और समूचा वर्णन उसमें अपेक्षित था।

सहायक कथानक

कहीं-कहीं इन प्रारंभिक कहानियों के कथानक में सहायक कथाओं की भी अवतारणा हुई है जिनके दो रूप हमें मिलते हैं। कहीं-कहीं सहायक कथानक नाटक में प्रकरी की भाँति मूल कथा के साथ थोड़ी दूर तक जाकर रुक गया है। कहीं-कहीं यह सहायक कथानक पताका की भाँति मूल कथा के साथ आदि से अन्त तक चला है। पहले के उदाहरण में हम 'पाप का अग्निकुण्ड' ले सकते हैं। इसमें मूल-कथा के विकास की दौड़ान में एक और कथा आ जाती है। राजनन्दिनी, कहानी की नायिका, से एक स्त्री स्वतन्त्र कहानी कहती है। शिल्पविधि की दृष्टि से यह कथानक मूल कथानक के बीच में स्वतन्त्र रूप से संयोगवश चल पड़ता है और इसका भी रूप बिल्कुल मूल कथानक की भाँति हो जाता है। अतएव ऐसे स्थानों पर हमें अरबी, फारसी तथा

संस्कृत में उर्दू, हिंदी में अनूदित क्रमशः 'हजारदास्ताँ' और 'कथासरित्सागर' की याद आती है जहाँ मूल कथानक के बीच से सहसा कोई कहानी प्रसंगवश निकल आती है और मूल कथानक फिर आगे बढ़ता है। दूसरे ढंग के सहायक कथानक की अवतारणा हम 'मर्यादा की वेदी' में पाते हैं। इसमें मूल कथानक राजकुमारी प्रभा और मंदार के राजकुमार को लेकर चलता है और सहायक कथानक चित्तौर के राजा भोजराज, राजकुमारी प्रभा और मीरा को लेकर।

कथानक-निर्माण के विभिन्न ढंग

कथानक-निर्माण की दिशा में यहाँ प्रेमचन्द के कुछ विशिष्ट ढंग हैं, जिनके आधार पर उन्होंने अपनी कहानियों की सृष्टि की है :

(क) कथासूत्र आरम्भ होकर सीधे शांतरूप से आगे बढ़ रहा है, एकाएक बीच में एक घटना घटती है और कथासूत्र दो विरोधी धाराओं में बँट जाता है, और वे दोनों विरोधी सूत्र एक दूसरे से संघर्ष लेते हुए टूट जाने को होते हैं, लेकिन सहसा एक ऐसी परिस्थिति के आने से जिसमें मनोभावों की घनीभूत रेखाएँ रहती हैं, वे दोनों टूटते हुए सूत्र फिर एक में मिल जाते हैं और दोनों पूर्व स्थिति को प्राप्त होते हैं, जैसे—'बड़े घर की बेटी' और 'पंचपरमेश्वर'।

(ख) कथानक का आरम्भ एक सूत्र को लेकर होता है। वही मूल सूत्र अपने स्वाभाविक रूप में आगे बढ़ना चाहता है, लेकिन परिस्थिति के आग्रह से उसमें एक नयी समस्या का प्रवेश होता है जिसके फलस्वरूप मूल सूत्र स्वतः विकृत हो जाता है और अंत में वह सूत्र कारुणिक बिंदु पर समाप्त होता है। 'सौत' में गोदावरी स्वयं अपने पति को विवश करके स्वेच्छा से सौत को बुलाती है और उसके संयोग तथा प्रतिक्रिया से गोदावरी का जीवन कारुणिक अन्त पर समाप्त होता है।

(ग) कथानक का आरम्भ दो विरोधी सूत्रों के साथ होता है। दोनों का मानसिक संघर्ष एक दूसरे की प्रतिक्रिया में बढ़ता है। एकाएक एक सूत्र दूसरे से समझौते के लिए अपने को पूर्णतः बदल देता है। इस परिवर्तन के विकास से दूसरा विरोधी सूत्र और भी विरक्त होने लगता है, लेकिन पहला सूत्र फिर भी संयोग के लिए आशान्वित रहता है—जैसे 'ब्रह्म का स्वांग' में वृन्दा और उसका विरोधी पति इन दोनों सूत्रों के प्रतिनिधि हैं।

(घ) आदर्श भावभूमि से एक कथा-सूत्र आगे बढ़ता है। सूत्र में दो प्रेरणाएँ एक में मिली रहती हैं, एक कुछ यथार्थवाद का पुट लिए हुए, समझौते की प्रवृत्ति के साथ; लेकिन उसमें मिली हुई दूसरी प्रेरणा विशुद्ध आदर्शवादी, मर्यादावादी रहती है। दोनों शक्तियाँ आपस में मिली हुई, अनेक विरोधी परिस्थितियों, संघर्षों का सामना

करती है और अन्त में मर्यादा की बलिवेदी पर दोनों का सर्वस्व त्याग होता है; जैसे —'रानी सारंधा', 'मर्यादा की वेदी' और 'विस्मृति'।

(ङ) एक सीधे-सादे मार्ग से कथा का सूत्र आगे बढ़ता है। सूत्र का नायक विरोधी शक्तियों के रहते भी अपने सत्य मार्ग पर आरूढ़ रहता है। परिणामतः उसका कभी अहित होता है, जैसे 'सज्जनता का दण्ड' और कभी विरोधी शक्ति ही उसके सूत्र से परिमार्जित होती है और नायक को पुरस्कृत करती है; जैसे 'नमक का दरोगा'।

प्रायः इन्हीं उपर्युक्त कथानकों के निर्माण के ढंगों पर प्रेमचंद ने अपनी प्रारंभिक कहानियों की सृष्टि की है।

चरित्र

कहानी में चरित्र के सम्पूर्ण अध्ययन के लिए हमें उसके दोनों रूपों को देखना पड़ता है—मूर्त रूप और अमूर्त रूप। मूर्त रूप में जैसे स्त्री-पुरुष और उसके अमूर्त रूप को हम उनके मनोभावों, आचरणों आदि के माध्यम से देख सकते हैं। वस्तुतः चरित्र के इसी दूसरे, अमूर्त रूप की प्रतिष्ठा से कहानी में उत्कृष्टता आती है।

स्त्री

प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों के स्त्री-पात्र के प्रतिनिधि चरित्र हैं—'बड़े घर की बेटी' की आनन्दी, 'सौत' की गोदावरी, 'पंचपरमेश्वर' की खाला, 'रानी सारंधा' की सारंधा, 'मर्यादा की वेदी' की प्रभा, 'पाप का अग्निकुण्ड' की राजनन्दिनी, 'अमावस्या की रात्रि' की गिरजा और 'ममता' की माँ। ये स्त्री-चरित्र यथार्थ भाव-भूमि और यथार्थ परिस्थितियों पर खड़े हैं, लेकिन सबका सामूहिक चरित्र आदर्शवादी और मर्यादावादी है। 'मर्यादा की वेदी' की प्रभा की मर्यादा इन स्त्रियों की वह परम्परागत दीवार है जहाँ ये चरित्र अपनी पिछली मान्यताओं और लोकनिन्दा से सहमे हुए पीछे खड़े हैं: "संसार में अपनी आशाएँ पूरी नहीं होतीं। जिस तरह यहाँ अपना जीवन काट रही हूँ, वह मैं ही जानती हूँ, किन्तु लोकनिन्दा भी तो कोई चीज है। संसार की दृष्टि में मैं चित्तौड़ की रानी हो चुकी, अब राणा जिस भाँति रक्खें उसी भाँति रहूँगी। मैं अन्त समय तक उनसे जलूँगी, घृणा करूँगी, कुढ़ूँगी, जब जलन बढ़ ही जायगी विष खा लूँगी या छाती में कटार मार कर मर जाऊँगी; लेकिन इसी भवन में। इस घर से बाहर कदापि पैर न रक्खूँगी।"[1] यहाँ स्त्री-चरित्र का जीवन कितनी विपत्ति और कितनी क्रान्तियों से ओत-प्रोत है, लेकिन स्त्री-चरित्र कितना आदर्शवादी है कि वह इन सबके बदले में अपने को ही नष्ट करना चाहती है, जर्जर समाज और उसकी मान्यताओं को नहीं। वह अपने बन्दी भवन से किसी मूल्य पर बाहर कदम नहीं रखना चाहती क्योंकि लोकनिन्दा की सबसे बड़ी चिन्ता है अतः यहाँ स्त्री केवल अपनी मर्यादा,

१. नवनिधि—'मर्यादा की वेदी', पृष्ठ ६०, ६१।

आदर्श और स्त्री-लोकनिन्दा के विषय में जागरूक है, अपनी बन्दी आत्मा के लिए नहीं। 'बड़े घर की बेटी' की आनन्दी कितने विरोधी परिवार में पड़ी है। यहाँ उसके सारे संस्कार मारे जा रहे हैं। विषाक्त वातावरण से उसका दम घुटा जा रहा है और इसके ऊपर वह अपने देवर के हाथों पिट भी जाती है, लेकिन वह स्त्री-मर्यादा और अपने परिवार तथा बड़े घराने की इज्जत के सामने कितना झुक जाती है, किस तरह समझौता कर लेती है, क्योंकि उसे अपने नाम कमाने का मोह है—"बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं: बिगड़ा हुआ काम बना लेती हैं।"[1]

'सौत' की गोदावरी की आत्मा में हिन्दू स्त्री की सच्ची मर्यादा है। उसका ध्येय है कि किसी भी मूल्य पर पति की प्रसन्नता मिलनी चाहिए अतः वह स्वयं अपनी छाती पर सौत बुलाती है। "तुम्हारे लिए मैं सौत से छाती पर मूँग दलवाने के लिए तैयार हूँ।" सौत घर में आ जाती है; परिस्थितियाँ भावना-लोक से यथार्थ भूमि पर उतरती हैं। गोदावरी का जीवन विषाक्त हो जाता है और वह उनकी प्रसन्नता की बलिवेदी पर आत्महत्या कर लेती है। फिर भी मर्यादा की साँसों के बीच कहती रहती है, "स्वामी, संसार में सिवा आपके मेरा कोई नहीं था। मैंने अपना सर्वस्व आपके सुख की भेंट कर दिया है। आपका सुख इसी में है कि मैं इस संसार से लोप हो जाऊँ। इसलिये ये प्राण भी आपकी भेंट हैं। मुझसे जो कुछ अपराध हो क्षमा कीजिएगा। ईश्वर आपको सदा सुखी रक्खे।"[2]

उपर्युक्त पत्र जैसे प्रेमचंद के नारी-पात्र की खुली हुई आत्मा है और जैसे इस पत्र की प्रत्येक पंक्ति उसके स्वरूप, मर्यादा, आदर्श के घोषणापत्र हैं, जिसके प्रकाश में प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों की सारी स्त्रियाँ खड़ी हैं। ऐसा लगता है कि यहाँ स्त्री-चरित्र की इन मान्यताओं के पीछे प्रेमचंद की इतनी धारणाएँ थीं—भारतीय आर्य-ललनाओं, पत्नियों की आदर्श संयुक्त परिवार में आस्था और स्त्री-चरित्र के पीछे शिवं-सुन्दरम् की भावना।

पुरुष

पुरुष-चरित्र भी स्त्री-चरित्र के दूसरे पहलू हैं। भावना और कर्त्तव्य दोनों रूपों में ये अपेक्षाकृत आदर्शवादी हैं तथा अपनी यथार्थ परिस्थितियों पर मरते-मिटते हुए भी सदैव अपने विरोधी शक्तियों से समझौता करने के लिए तत्पर हैं। 'बड़े घर की बेटी' में श्रीकंठ सिंह और उनके छोटे भाई लालबिहारी सिंह में सर्वथा विरोध है। "लाल बिहारी सिंह दोहरे वदन का सजीला जवान था। मुखड़ा भरा हुआ, चौड़ी छाती, भैंस का दो सेर ताजा दूध वह उठ सबेरे पी जाता था। श्रीकंठ सिंह की दशा उसके

१. सप्तसरोज—'बड़े घर की बेटी', पृष्ठ १४।

२. सप्तसरोज—'सौत', पृष्ठ १६।

बिलकुल विपरीत थी। इन ने
कर दिया था।"[1] यह तो हु
पीट भी बैठता है, लेकिन फि
को गले लगाये फिरता है।
उनके सामने दो यथार्थ परिस्थि
पिता द्वारा उपदेश, दूसरी ओ
घूस। परन्तु दरोगा जी अप
आदर्श पुरस्कृत भी होता है।
पुरस्कृत होती है। यह तो हु
ऊँचे ही रहे। कुछ ऐसे भी पु
धोखेबाज हैं, लेकिन वे भी क
'उपदेश' में शर्मा जी, 'बड़े घ
खाँ आदि इसके ज्वलंत उदाह

वस्तुतः ऐसे पुरुष-च
स्त्री-पात्रों के पीछे थीं। दोनों
चरित्र में असंतोष, क्रान्ति की
अपेक्षाकृत आदर्शवादी हैं औ

चरित्र की अपेक्षा आ

यहाँ की कहानियों
प्रारम्भिक कहानियों के पढ़ने
व्यवस्था ही आती है। पात्रों
'रानी सारंधा' कहानी पढ़ने
समय के लिए याद आता है
इस दिशा में हमें जो कुछ मि
में जानकीनाथ का चरित्र न
दिखा कर यह सिद्ध करने की
में फँसी हुई गाड़ी को बाहर

'सज्जनता का दंड'
कुछ चरित्र-चित्रण की सम्भा
जाती है। उनके सहज मन
पीछे प्रेमचंद की आदर्शवादि

१. सप्तसरोज—'ब

बिलकुल विपरीत थी। इन नेत्र-प्रिय गुणों को उन्होंने इन्हीं दो अक्षरों पर निछावर कर दिया था।"[1] यह तो हुई स्वभाव की बात, लालबिहारी श्रीकंठ की धर्मपत्नी को पीट भी बैठता है, लेकिन फिर भी लोक-लाज, मर्यादा की बलिवेदी पर वह अपने भाई को गले लगाये फिरता है। 'नमक का दरोगा' में वंशीधर कितने आदर्श दरोगा हैं! उनके सामने दो यथार्थ परिस्थितियाँ आती हैं। एक ओर नौकरी पर जाने के पहले ही पिता द्वारा उपदेश, दूसरी ओर पं० अलोपीदीन की तरफ से चालीस हजार रुपये का घूस। परन्तु दरोगा जी अपने सत्य, आदर्श और मर्यादा पर स्थिर हैं। अन्त में यह आदर्श पुरस्कृत भी होता है। ठीक यही सच्चाई और कर्त्तव्य-भावना 'परीक्षा' में भी पुरस्कृत होती है। यह तो हुई केवल ऊँचे पुरुष-चरित्रों की बात, जो आरंभ से अन्त तक ऊँचे ही रहे। कुछ ऐसे भी पुरुष-पात्र आये हैं जो अपने मूल रूप में नीच, प्रवंचक और धोखेबाज हैं, लेकिन वे भी कहानी के अन्त तक सच्चे, आदर्श और पुनीत हो जाते हैं। 'उपदेश' में शर्मा जी, 'बड़े घर की बेटी' में लालबिहारी और 'पंचपरमेश्वर' के जुम्मन खाँ आदि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

वस्तुतः ऐसे पुरुष-चरित्रों के पीछे प्रेमचंद की मान्यताएँ वही थीं, जो उनके स्त्री-पात्रों के पीछे थीं। दोनों के मूल भाव-भूमि में केवल इतना ही अन्तर है कि स्त्री-चरित्र में असंतोष, क्रान्ति की भावना पुरुष की अपेक्षा अधिक है, लेकिन स्त्रियाँ यहाँ अपेक्षाकृत आदर्शवादी हैं और पुरुष यथार्थवादी, यद्यपि इनकी प्रगतिशीलता पंगु है।

चरित्र की अपेक्षा आचरण

यहाँ की कहानियों के पात्र आचरण-प्रधान हैं, चरित्र-प्रधान नहीं अर्थात् इन प्रारम्भिक कहानियों के पढ़ने से हमारे सामने पात्रों के आचरण का इतिहास और उनकी व्यवस्था ही आती है। पात्रों के चरित्र-चित्रण या चरित्र-विश्लेषण यहाँ नहीं हुआ है। 'रानी सारंधा' कहानी पढ़ने के बाद हमें रानी सारंधा के आचरण का ब्योरा ही थोड़े समय के लिए याद आता है। उसके चरित्र का आन्तरिक पक्ष हमें कहीं नहीं मिलता, इस दिशा में हमें जो कुछ मिलता है वह उसके चरित्र का बाह्य पक्ष ही है। 'परीक्षा' में जानकीनाथ का चरित्र नहीं दिखाया गया है, बल्कि उनका केवल एक आचरण-मात्र दिखा कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि जो व्यक्ति स्वयं घायल होकर नाले में फँसी हुई गाड़ी को बाहर निकालता है, वह कितना बहादुर है।

'सज्जनता का दंड' और 'नमक का दरोगा' में जहाँ सरदार और वंशीधर के कुछ चरित्र-चित्रण की सम्भावना भी उत्पन्न हुई है वहाँ उनके आदर्शवाद की आँधी आ जाती है। उनके सहज मन की गुत्थियाँ परोक्ष में छिपा दी जाती हैं। इस प्रवृत्ति के पीछे प्रेमचंद की आदर्शवादिता ही है, जहाँ वे इन पात्रों के आचरण के माध्यम से उसे

१. सप्तसरोज—'बड़े घर की बेटी', पृष्ठ १, २।

चरितार्थ करते रहते थे। इन प्रारम्भिक कहानियों के पात्र, जैसे—गोदावरी, सरदार, जुम्मन शेख, गिरजा, माँ आदि अपने बाह्य जगत् में अधिक स्पष्ट और अधिक मनोरंजक हैं। इसी तरह इनके मनोभाव-जगत् भी होंगे, लेकिन प्रेमचंद ने इनके अध्ययन को इनके कृत्यों और आचरणों में ही सीमित कर दिया है, इनके आन्तरिक पक्ष में जाकर मनोभावों की अभिव्यक्ति बिलकुल नहीं हुई है। अतः पात्रों की मानवीय-पूर्णता नहीं प्रकट हो सकी है। पात्रों का व्यक्तित्व अस्पष्ट रह गया है और विभिन्न चरित्रों का निजत्व नहीं स्थिर हो सका है।

शैली

यहाँ शैली का अभिप्राय दो पक्षों में लिया गया है : व्यापक और सामान्य पक्ष। जैसा कि विषय-प्रवेश में स्पष्ट कर दिया गया है, शिल्पविधि के अध्ययन में शैली का महत्व बहुत है, क्योंकि इसी के माध्यम से हम कहानी के रूप, उसके आरम्भ, विकास आदि का अध्ययन कर सकते हैं। कहानी में दृश्य-विधान, वस्तु-विधान और व्यापार-विधान, किन-किन आधारों और शैलियों पर हुआ है, ये सब बातें शैली के व्यापक पक्ष में आती हैं और कहानी में वर्णन, कथोपकथन, व्याख्या आदि का क्या ढंग है, ये बातें शैली के सामान्य पक्ष में आती हैं। इस दिशा में हम पहले शैली के व्यापक पक्ष के अन्तर्गत कहानी के रूप को लेते हैं, अर्थात् कहानी के आरम्भ, विकास और चरम सीमा को।

आरम्भ

प्रेमचंद की कहानियों का आरम्भ परिचयात्मक शैली के अन्तर्गत आता है। उसमें उन्होंने दो स्थितियाँ रखी हैं—पहली स्थिति में पात्रों का पूर्ण परिचय और दूसरी में परिस्थिति का पूर्ण परिचय। वस्तुतः कहानी के आरम्भ की यह शैली प्रेमचंद की अपनी विशेष शैली है, लेकिन इसका कलात्मक रूप इनकी प्रारम्भिक कहानियों में विशेष रूप से है। यहाँ उन्होंने इस सम्बन्ध में लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ बाँधी हैं, जिसके फलस्वरूप कहीं भी पाठक की ओर से कुछ सोचने का प्रश्न ही नहीं उठता।

भूमिका-सहित पात्रों के पूर्ण परिचय

इसके उदाहरण में हम 'सप्तसरोज' और 'नवनिधि' की कोई भी कहानी ले सकते हैं। 'पंचपरमेश्वर' का आरम्भ—"जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गए थे, तब अपना घर अलगू को सौंप कर गए थे और अलगू जब कभी बाहर जाते, जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-

पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता, केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूल मंत्र भी यही है।"[१]

उपर्युक्त विवरण में दोनों मित्रों का परिचय पर्याप्त है। दोनों पात्रों का आरम्भ पूर्ण है, लेकिन प्रेमचंद ने आगे बढ़कर इसकी एक और भी भूमिका बाँधी है—"इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ जब दोनों मित्र बालक ही थे और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमराती, उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरु जी की बहुत सेवा की। खूब रिकाबियाँ माँजी, खूब प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घन्टे तक किताबों से मुक्त कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे। शिक्षा की अपेक्षा उन्हें गुरु की सेवा-सुश्रुषा पर अधिक विश्वास था।"[२]

उक्त दोनों अवतरणों से अलगू और जुम्मन दोनों पात्रों का पूर्ण परिचय हमें स्पष्ट है। हमें अपनी ओर से उनके विषय में कुछ सोचना शेष नहीं है। ठीक यही स्थिति 'सौत', 'उपदेश', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुण्ड' आदि कहानियों के पात्रों के परिचय के सम्बन्ध में है।

भूमिकापूर्ण परिस्थिति का चित्रण

'सप्त सरोज' और 'नवनिधि' की प्रायः समस्त कहानियों में यह सत्य स्पष्ट है। इनमें अपवादस्वरूप दो-एक ही कहानी ऐसी मिलेंगी जिनमें परिस्थिति-चित्रण भूमिका के साथ न हो, लेकिन परिस्थिति का पूर्ण चित्रण फिर भी मिलेगा। भूमिका-पूर्ण परिस्थिति के चित्रण के सम्बन्ध में प्रेमचन्द की प्रारंभिक काल में यह धारणा थी कि कहानी के आरम्भ में कहानी की परिस्थिति का पूर्ण परिचय होना चाहिये, जिससे कहानी का भावपक्ष और कहानी की पीठिका पाठक को पूर्ण स्पष्ट रहे। 'नमक का दरोगा' नामक कहानी इस सत्य का साक्षी है—"जब नमक का नया विभाग बना और एक ईश्वर-प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया, तो लोग चोरी-छिपे उसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल-प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था तो कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ-बारह थे, पटवार-गीरी का सर्वसम्मानित पद छोड़-छोड़कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा-पद के लिये तो वकीलों का भी जी ललचता था। यह वह समय था जब अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और शृंगार रस के काव्य पढ़कर फारसीदां लोग सर्वोच्च

१. पंच परमेश्वर : सप्त सरोज।
२. वही, पृ० ४४।

पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुन्शी वन्शीधर भी जुलेखा कि बिरह-कथा समाप्त करके मजनू और फरहाद के प्रेम-वृतान्त को नल और नील की लड़ाई तथा अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्व की बातें समझते हुए रोजगार की खोज में निकले।"[1]

यहाँ कहानी की मुख्य समवेदना की सारी परिस्थिति स्पष्ट हो गई। यहाँ वह सारा वातावरण चित्रित हुआ है जिसके धरातल पर कहानी का निर्माण हुआ।

कहानी के सभी तत्वों का समावेश

ऐसे आरम्भों में एक विशेषता यह भी है कि इनमें कहानी के सभी आवश्यक तत्वों—कथानक, पात्र, समस्या, द्वन्द्वादि का समावेश मिलता है, साथ ही साथ उनके परिचय पर थोड़ा सा प्रकाश भी। शिल्पविधि के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के ऐसे आरम्भ प्रसाद के नाटकों में प्रथम अंक की याद दिलाते हैं। अध्ययन की दृष्टि से प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों के आरम्भ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनमें समूची कहानी के सारे तत्व बीज-रूप से विद्यमान रहते हैं। उदाहरण के लिए 'मौत' कहानी का आरम्भ—"पंडित देवदत्त का विवाह हुए बहुत दिन हुए, पर उनके कोई सन्तान न हुई। जब तक उनके माँ-बाप जीवित थे, तब तक वे उनसे दूसरा विवाह करने के लिए आग्रह किया करते थे, पर वे राजी न हुए। उन्हें अपनी पत्नी गोदावरी से अटल प्रेम था। सन्तान से होने वाले सुख के निमित्त वे अपना वर्तमान पारिवारिक सुख नष्ट नहीं करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे कुछ नये विचार के मनुष्य थे। वे कहा करते थे कि सन्तान होने से माँ-बाप की जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। जब तक मनुष्य में यह सामर्थ्य न हो कि वह उसका भली प्रकार पालन-पोषण और शिक्षण आदि कर सके, तब तक उसकी सन्तान से देश, जाति और निज का कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। पहले तो कभी-कभी बालकों को हँसते-खेलते देखकर उनके हृदय पर चोट भी लगती थी, परन्तु अपने अनेक देशभाइयों की तरह वे भी शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त रहने लगे। अब किस्से-कहानियों के बदले धार्मिक ग्रन्थों से उनका अधिक मनोरंजन होता था। अब सन्तान का ख्याल करते ही उन्हें भय-सा लगता था, पर गोदावरी इतनी जल्दी निराश होने वाली न थी। पहले तो वह देवी-देवता, गंडे-ताबीज और यन्त्र-मन्त्र आदि की शरण लेती थी, परन्तु जब उसने देखा कि ये औषधियाँ कुछ काम नहीं करतीं, तो वह एक महोषधि की फिक्र में लगी जो कायाकल्प से कम नहीं थी। उसने महीनों बरसों इसी चिन्ता-सागर में गोते लगाते काटे। उसने दिल को बहुत समझाया, परन्तु मन में जो बात समा गयी थी वह किसी तरह न निकली। उसे बड़ा भारी आत्मत्याग करना पड़ेगा। शायद पति-प्रेम के सदृश्य अनमोल रत्न भी उसके हाथ से निकल जायगा, पर क्या वैसा हो सकता है? पन्द्रह वर्ष तक लगातार जिम

१. सप्त सरोज : 'नमक का दरोगा', पृ० ७१।

प्रेम के वृक्ष की उसने सेवा की है, क्या वह हवा का एक झोंका भी न सह सकेगा ? गोदावरी ने अन्त में अपने प्रबल विचारों के आगे सिर झुका ही दिया । अब सौत का शुभागमन करने के लिये वह तैयार हो गई थी ।"[1]

उक्त अध्याय 'सौत' कहानी का आरम्भ है । इसमें समूची कहानी के तत्व, बीजरूप में विद्यमान हैं । कथानक का बीज इसमें है कि गोदावरी पंडित देवदत्त की पत्नी है । विवाह हुए पन्द्रह वर्ष बीत गये, उसे कोई बच्चा न हुआ और वह सब उपायों से हार कर अपनी ही छाती पर पति के सुख के लिये 'सौत' बुला रही है । कहानी के सभी पात्रों का प्रवेश और परिचय बीजरूप में मिल जाता है तथा उनके मनोभावों पर भी प्रकाश पड़ गया । कहानी की मुख्य समस्या सौत और पत्नी की समस्या है, यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है । अतएव प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों के आरम्भ-भाग अत्यन्त संश्लिष्ट ढंग के हैं । उनमें एक साथ उक्त सारी विशेषताएँ मिलती हैं, लेकिन तात्विक दृष्टि से कहानियों के ऐसे आरम्भ कलात्मक नहीं कहे जा सकते । ऐसे आरम्भों में शिल्पविधिगत तीन त्रुटियाँ आ जाती हैं । वस्तुतः कहानी का आरम्भ ही पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करना है और जब कहानी का आरम्भ लम्बे परिचय, लम्बी भूमिका में उलझा होगा, कहानी का पाठक उसके प्रारम्भ ही में ऊब जायेगा । परिचयात्मक आरम्भ अथवा वर्णनात्मक भूमिका शैली कहानी की मुख्य समवेदना की प्रवाह-शक्ति को कुंठित कर देती है । कहानी की आत्मा में विकास के बदले पूर्व प्रकाश आ जाता है और कहानी में कौतूहल बुद्धि का कभी-कभी सत्यानाश हो जाता है ।

विकास

यहाँ प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के कलात्मक विकास में जिन अवस्था-क्रमों को लिया है वे 'सप्त सरोज', 'नवनिधि' और 'प्रेमपचीसी' की प्रारम्भिक कहानियों में अत्यंत स्पष्ट हैं । 'आरम्भ और चरम सीमा' के बीच में हमें निम्नलिखित चार अवस्था-क्रम मिलते हैं जिनसे प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों का विकास किया है :

(१) मुख्य घटना की तैयारी
(२) मुख्य घटना की निष्पत्ति
(३) व्याख्या
(४) घात-प्रतिघात

'आरम्भ' अध्ययन के सम्बन्ध में हमने देखा है कि 'नमक का दरोगा' का आरम्भ या परिचयात्मक भाग वहाँ समाप्त होता है जहाँ अनुभवी पिता नौकरी ढूँढ़ने के लिए जाते हुए वंशीधर को सांसारिकता का पूर्ण उपदेश देकर समाप्त करते हैं— "इस उपदेश के बाद पिता जी ने आशीर्वाद दिया, वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे । ये बातें

१. सप्त सरोज : 'सौत', पृष्ठ १५-१६ ।

ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए। जाते ही जाते नमक विभाग के दरोगा-पद पर प्रतिष्ठित हो गए। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो कुछ ठिकाना ही न था।"[1]

मुख्य घटना की तैयारी

उक्त परिचय में जहाँ एक ओर परिस्थितियों का स्पष्टीकरण है, वहाँ दूसरी ओर समस्या का आरम्भ भी हो जाता है तथा इस आरम्भ का सूत्र आगे बढ़ कर कहानी में मुख्य रूप से आने वाली घटना की तैयारी करने लगता है—"जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त पड़े थे। मुंशी वंशीधर को यहाँ आए अभी छः महीनों से अधिक न हुए थे, आचरण से अफसरों को मोहित कर लिया था। अफसर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ्तर से एक मील पूरब की ओर जमुना बहती थी। उस पर एक बम्बों का पुल बना हुआ था। दरोगा जी किवाड़ बन्द किए मीठी नींद सोते थे। अचानक आँख खुली, तो नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनाई दिया। उठ बैठे। इतनी रात गए गाड़ियाँ क्यों नदी के पार जाती हैं? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वर्दी पहनी, तमंचा जेब में लिया और बात की बात में घोड़ा बढ़ाते हुए पुल पर आ पहुँचे। गाड़ियों की एक लम्बी कतार पुल से पार जाते देखी। लौटकर पूछा—किसकी गाड़ियाँ हैं। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में कुछ कानाफूसी हुई तब आगे वाले गाड़ीवान ने कहा—पंडित अलोपीदीन की।

कौन पंडित अलोपीदीन?

दातागंज के।

मुंशी वंशीधर चौंके। पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे बड़े और प्रतिष्ठित जमीन्दार थे। लाखों रुपये का लेन-देन करते थे।....पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ी वालों ने घबराए हुए आकर जगाया और बोले—महाराज, दरोगा ने गाड़ियाँ रोक दी हैं और घाट पर खड़े आपको बुलाते हैं।"[2]

उक्त अवतरण के आगे आने वाली घटना की पूरी तैयारी स्पष्ट है। एक ओर ईमानदार, अफसरों के विश्वास-पात्र नमक के दरोगा वंशीधर हैं, जिन्होंने रँगे हाथ इतनी रात को अलोपीदीन की नमक की चोरी पकड़ी है। दूसरी ओर पंडित अलोपी-

---

१. सप्त सरोज : 'नमक का दरोगा', पृष्ठ ६२।

२. सप्त सरोज : 'नमक का दरोगा', पृष्ठ ६३, ६४।

दीन हैं, जिन्हें अपने धन, घूस पर विश्वास है । जिनकी धारणा है कि "संसार का तो कहना ही क्या, और नीति ? सब लक्ष्मी का ही राज्य है—न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं । और उधर वंशीधर एक ऐसा सच्चरित्र व्यक्ति है जिस पर ऐश्वर्य की मोहनी का कुछ प्रभाव ही नहीं पड़ता । उसमें ईमानदारी की नई उमंग है ।" इस तरह से उपर्युक्त गद्यांश में आगे आने वाली घटना की पूरी तैयार कर ली गयी है ।

मुख्य घटना की निष्पत्ति

"पंडित जी को अपनी पूँजी पर पूरा विश्वास था । वे गाड़ी से चलकर दरोगा जी के पास पहुँचे, तो उन्हें पूर्ण विश्वास था कि मिनट-भर में रुपये के जोर से सारी समस्या सुलझ जायगी, लेकिन जैसे ही पंडित जी दरोगा जी के पास पहुँचे और उन्होंने घूस देने की बात चलाई, दरोगा ने कड़क कर कहा—"हम उन नमकहरामों में नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं । आप इस समय हिरासत में हैं । सवेरे आपका कायदे के साथ चालान होगा । बस, मुझे बहुत बातों की फुर्सत नहीं है । जमादार बदलूसिंह ! तुम इन्हें हिरासत में ले लो, मैं हुक्म देता हूँ ।'

पं० अलोपीदीन स्तंभित हो गए । गाड़ीवानों में हलचल हो गयी, किन्तु अभी तक धन की सांख्यिक शक्ति का (उन्हें) पूरा भरोसा था । अपने मुख्तार से बोले—'लाला जी, एक हजार का नोट बाबू साहब को भेंट करो । आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं ।' वंशीधर ने गरम होकर कहा—'एक हजार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से नहीं हटा सकता ।' अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा । धन ने उछल-उछल कर आक्रमण करने प्रारंभ किए । एक से पाँच, पाँच से दस, दस से पन्द्रह और पन्द्रह से बीस हजार तक नौबत पहुंची, किन्तु वीरता के साथ इस बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की तरह अटल, अविचलित खड़ा था । पंडित जी घबरा कर दो-तीन कदम पीछे हट गए । अत्यन्त दीनता से बोले—'बाह साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए । मैं पच्चीस हजार पर निपटारा करने को तैयार हूँ ।'

'असंभव बात है ।'

'तीस हजार पर ।'

'किसी तरह भी संभव नहीं ।'

'क्या चालीस हजार पर भी नहीं ?'

'चालीस हजार नहीं, चालीस लाख पर भी असंभव है ।'

हृष्ट-पुष्ट मनुष्य को हथकड़ियाँ लिए हुए अपनी तरफ आते देखा । चारों ओर निराश कातर दृष्टि से देखने लगे । इसके बाद एकाएक मूर्च्छित होकर गिर पड़े ।"[1]

---

१. सप्त सरोज : नमक का दरोगा, पृष्ठ ६५, ६६, ६७ ।

उपर्युक्त अवतरण में कहानी की मुख्य घटना की सारी उत्तेजना आ गई है। पंडितजी के तरकश में जितने बाण थे उन्होंने अपनी रक्षा के लिए सब छोड़ा, लेकिन सफलता नहीं मिली। मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि पण्डित जी के मस्तिष्क में दरोगा जी के इस कठिन व्यवहार की प्रतिक्रिया होगी।

व्याख्या

ऐसी उत्तेजक घटना के बाद कहानी का पाठक स्वभावतः आगे घटना का विकास और सत् असत् का घात-प्रतिघात देखना पसन्द करेगा, क्योंकि घटना की ऐसी उत्तेजना पर आकर पाठक की कौतूहल-वृत्ति में अजीब तनाव आ जाता है और वह दुनिया की सारी चीजें भूलकर घटना का अगला पहलू जल्द से जल्द देखना चाहता है, लेकिन प्रेमचंद ऐसे अवसर पर घटना का अगला पक्ष दिखाना स्थगित कर वस्तुस्थिति पर लम्बी-सी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—"दुनिया सोती थी, दुनिया की जीभ जागती थी। सबेरे ही देखिए तो बालक-वृद्ध सबके मुँह से यही बात सुनाई देती थी। जिसे देखिए वही पण्डितजी के इस व्यवहार पर टीका-टिप्पणी कर रहा था, निंदा की बौछारें हो रही थीं मानो संसार से अब पाप कट गया। पानी को दूध के नाम पर बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनाने वाले सेठ और साहूकार, यह सब-के-सब देवताओं की भाँति गर्दनें चला रहे थे।"[1]

घटना की उत्तेजना के बाद, यह व्याख्या वस्तुस्थिति पर चाहे जितना प्रकाश डाल रही हो, लेकिन इस व्याख्यांश से कहानी के प्रवाह में थोड़ी-सी स्थिरता आ गयी है, अतः भावपक्ष की दृष्टि से ऐसी व्याख्याएँ घटना-प्रवाह में चाहे जो मूल्य ला सकें, लेकिन शैली की दृष्टि से ठीक नहीं।

घात-प्रतिघात

व्याख्या के उपरान्त घात-प्रतिघात का क्रम आता है। यहाँ आकर व्याख्या से पूर्व की उत्तेजित घटना फिर आगे बढ़ती है और इसके विकास में जहाँ हमें कहानी का घात-प्रतिघात या कहानी का द्वन्द्व मिलता है, वहीं पिछली सत्-असत् शक्तियाँ स्पष्ट रूप से एक दूसरे को पराजित करने में तत्पर मिलती हैं। सत् के पास अपनी ईमानदारी का भरोसा है, लेकिन असत् फिर अपनी तरकश में वही बाण ढूँढ़ता है और इस बार असत् की सत् पर विजय हुई। दरोगा द्वारा चलाया हुआ मुकदमा खारिज हो गया। पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिये गये प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक सिद्ध हुए तथा एक ही सप्ताह के बाद दरोगा जी मुअत्तली भी हो गयी।

१. सप्त सरोज : नमक का दरोगा, पृष्ठ ६७।

लेकिन इस घात-प्रतिघात का प्रभाव दोनों पक्षों में है। दरोगा के पक्ष में उनके वृद्ध पिता और दरोगा, दोनों इस घटना से घायल हो गये, और पंडित जी के पक्ष में इस सत्य ने उन्हें उचित मार्ग पर ला खड़ा कर दिया क्योंकि घात-प्रतिघात क्रमशः सत् असत् का था, सामान्य तत्व का नहीं।

इसके उपरांत कहानी के विकास में एक मुख्य बिन्दु आता है, जिसे हम कहानी की चरमसीमा या चरम विन्दु कहते हैं।

चरमसीमा

चरमसीमा को दिशा में, प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों में दो क्रम मिलते हैं, चरमसीमा और उपसंहार। चरमसीमा के अन्तर्गत प्रायः हमें दो सत्य मिलते हैं। कहीं-कहीं चरमसीमा आदर्श पर टिकी मिलती है और कहीं-कहीं घटना या संयोग पर। दोनों सत्यों के उदाहरण हमें 'सप्तसरोज' और 'नवनिधि' की कहानियों की चरमसीमाओं में मिलते हैं। 'नमक का दरोगा' कहानी की चरमसीमा आदर्शवाद पर प्रतिष्ठित है। पंडित अलोपीदीन वंशीधर के दरवाजे पर आते हैं और उन्हें अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियुक्त करते हैं—छः हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़े, रहने के लिए बंगला, नौकर-चाकर मुफ्त। इसी तरह 'बड़े घर की बेटी', 'पंचपरमेश्वर', 'उपदेश', 'जुगुनू की चमक', 'ममता' आदि कहानियों की चरम-सीमाएँ आदर्शवाद पर टिकी हुई हैं। 'पंचपरमेश्वर' में अलगू के प्रति जुम्मन का न्याय-संगत होना, इतनी ऊँचाई पर जाकर निष्पक्ष न्याय देना, 'बड़े घर की बेटी' में आनन्दी का बिगड़ते हुए परिवार के प्रति इतनी उदारता और प्रेम दिखाना, 'उपदेश' में इतने ढोंगी, प्रपंची शर्मा जी का एकाएक ऊँचा होना आदि बातें आदर्शवाद के स्पष्ट उदाहरण हैं। वस्तुतः ऐसी चरमसीमाएँ कहानी-कला की दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं कही जा सकतीं, क्योंकि न इनमें स्वाभाविकता ही रह जाती है और न हमारे हृदय-मस्तिष्क पर इनका प्रभाव ही पड़ता है। घटना या संयोग की भूमिका पर चरमसीमा का चरितार्थ करना, प्रेमचन्द की अन्य विशेषता है। इसके उदाहरण में 'परीक्षा', 'मर्यादा की वेदी', 'धोखा' आदि कहानियों की चरमसीमाएँ ली जा सकती हैं। 'परीक्षा' में संयोग से जानकीनाथ के पैर में हाकी से चोट लग जाना और सबसे पीछे छूटकर नाले में फंसी हुई गाड़ी को बाहर निकालना; 'मर्यादा की वेदी' में राजकुमार ने ऐंठ कर राणा पर तलवार चलाई, इतने में प्रभा एकाएक बिजली की तरह झपटकर राजकुमार के सामने खड़ी हो गयी, और प्रभा का इस तरह एकाएक मर जाना, आदि ऐसी घटनाओं पर चरमसीमा का स्थिर होना, उक्त सत्य के उदाहरण हैं।

ऐसी चरमसीमाओं का प्रभाव हृदय पर स्थायी नहीं पड़ता, वस्तुतः ऐसी चरम-

सीमाएँ कथानक-प्रधान या घटना-प्रधान कहानियों में चरितार्थ होती है, जो कहानी-कला की दृष्टि से बहुत निम्नकोटि की समझी जाती हैं।

उपसंहार

चरमसीमा के बाद कहानी बिल्कुल स्पष्ट हो जाती। इसके भी उपरान्त कुछ कहना तात्त्विक और व्यावहारिक, दोनों ढंग से कहानी-शिल्पविधि के विरुद्ध है क्योंकि पाठक कहानी के प्रारम्भ से जिस संवेदना को पकड़े हुए उसके अन्त तक पहुँच गया, वह आगे क्यों दौड़ा जाय ? उसकी जिज्ञासा-वृत्ति चरमसीमा पर ही समाप्त हो गयी, लेकिन प्रेमचन्द ने अपनी समस्त प्रारम्भिक कहानियों में चरमसीमा के उपरांत हमेशा कुछ न कुछ उपसंहार जोड़ा है, जैसे—

(क) "दोनों भाइयों को गले मिलते देखकर (बेनीमाधव) आनन्द से पुलकित हो गये, बोल उठे—बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं। बिगड़ता हुआ काम बना लेती हैं। गाँव में जिसने यह वृत्तान्त सुना उसी ने इन शब्दों में आनन्दी की उदारता को सराहा, "बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।" [बड़े घर की बेटी]

(ख) "अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनों के दिल का मैल धुल गया। मित्रता की मुर्झायी हुई लता फिर हरी हो गयी।" [पंच परमेश्वर]

(ग) "हाँ, प्रेम के रहस्य निराले हैं, अभी एक क्षण पहले राजकुमार प्रभा पर तलवार लेकर झपटा। प्रभा उसके साथ चलने पर राजी न थी, किन्तु वह प्रेम के बंधन को तोड़ न सकी। दोनों उस घर ही से नहीं, संसार से एक साथ सिधारे।" [मर्यादा की वेदी]

(घ) "इस घटना को भारतीय इतिहास की अँधेरी रात में 'जुगुनू की चमक' कहना चाहिए।" [जुगुनू की चमक]

(ङ) "यह सब हो गया, किन्तु वह बात जो अब होनी थी वह न हुई। रामरक्षा की माँ अब भी अयोध्या रहती है और अपनी पुत्रवधू की सूरत नहीं देखना चाहती।" [ममता]

शैली का सामान्य पक्ष

पिछले पृष्ठों में हमने शैली के अन्तर्गत कहानी की व्यापक शैली अर्थात् रचना-शैली का अध्ययन किया है; जहाँ हमने कहानी के तीन भागों को रचना-विधान की दृष्टि से अध्ययन किया है। यहाँ हम शैली के सामान्य पक्ष के अन्तर्गत प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों में, चित्रण शैली, शोभा-दृश्य-वर्णन, कथोपकथन आदि को देख सकते हैं।

चित्रण-शैली के अन्तर्गत, देश-काल-परिस्थिति का चित्रण मुख्य है। यहाँ देश-काल का चित्रण केवल परिचयात्मक ढंग से हुआ है; और कहीं-कहीं तो प्रेमचन्द केवल

नाम लेकर आगे बढ़ गये है। परिस्थिति चित्रण में अवस्था-चित्रण कहीं-कहीं बहुत जोरदार और व्यंजनात्मक शब्दों में हुआ है। 'परीक्षा' में दीवान-पद के लिए आए हुए उम्मेदवारों की स्थिति और अवस्था-वर्णन श्लाघ्य है,—मि० अ नौ बजे दिन तक सोया करते थे, आजकल वे बगीचे में टहलते हुए ऊषा का वर्णन करते थे। मि० ब को हुक्का पीने की लत थी, पर आजकल बहुत रात गये किवाड़ बन्द करके अंधेरे में सिगार पीते थे। मिस्टर द, स और ज से उनके घरों पर नौकरों के नाक में दम था, लेकिन वे सज्जन आजकल आप-जनाब के बगैर नौकरों से बातचीत नहीं करते थे। महाशय नास्तिक थे, हौसले के उपासक थे, मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मन्दिर के पुजारी को पद-च्युत हो जाने की शंका लगी रहती थी। मिस्टर ल को किताबों से घृणा थी, परन्तु आजकल वे बड़े-बड़े ग्रन्थ खोले पढ़ने में डूब रहते थे। जिससे बात कीजिये, वह नम्रता और सदाचार का देवता बना मालूम होता था। शर्मा जी घड़ी रात ही से वेद-मन्त्र पढ़ने लगते थे और मौलवी साहब को तो नमाज और पालागन के सिवा और कोई काम न था। लोग समझते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।"[1]

यहाँ परिस्थिति और अवस्था-चित्रण कितना मार्मिक और व्यंजना लिए हुए है। एक ओर वास्तविक वस्तुस्थिति पर व्यंग है और दूसरी ओर सत्य का उद्घाटन हुआ है। कहानी के चित्रण और वर्णन-शैली का बहुत महत्व है।

शोभा-वर्णन के माध्यम से यहाँ कहीं-कहीं बहुत अच्छे ढंग से वातावरण प्रस्तुत किया गया है। 'मर्यादा की वेदी' में राजकुमारी प्रभा के विवाह में मंडप-शोभा कितने अच्छे वैवाहिक-वातावरण का सूचक है—

"रनिवास में डोमनियाँ आनन्दोत्सव के गीत गा रही थीं। कहीं सुन्दरियों के हाव-भाव थे, कहीं आभूषणों की चमक-दमक, कहीं हास-परिहास की बहार। नाइन बात-बात पर तेज हो रही थी। मालिन गर्व से फूली न समाती थी। धोबिन आँखें दिखाती थी। कुम्हारिन मटके के सदृश्य फूली हुई थी। मंडप के नीचे पुरोहित जी बात-बात पर स्वर्ण-मुद्राओं के लिए ढुलकते थे। रानी सिर के बाल खोले भूखी-प्यासी चारों ओर दौड़ रही थी। सबकी बौछारें सहती थी और अपने भाग्य को सराहती थी। आज प्रभा का विवाह है, बड़े भाग्य से ऐसी बातें सुनने में आती हैं।"[2]

शोभा-वर्णन जहाँ-कहीं निरपेक्ष ढंग से किया गया है, वहाँ और भी उत्कृष्ट हुआ है, जैसे गाँव की शोभा—"फागुन का महीना था। आमों के बौर से महकती हुई मन्द-मन्द वायु चल रही थी। कभी-कभी कोयल की सुरीली तान सुनाई दे जाती थी।

१. सप्त सरोज : परीक्षा, पृष्ठ १०६।
२. नवनिधि : मर्यादा की वेदी, पृष्ठ ४४।

खलिहानों में किसान आनन्द से उन्मत्त हो होकर फाग गा रहे थे।" इस तरह से गाँव, खलिहान, पंचायत, बैठक, खेत आदि की शोभा का वर्णन बहुत ही चित्रात्मकता से किया है।

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों में प्राकृतिक दृश्य-वर्णन स्वतन्त्र रूप से बहुत कम मिलते हैं, और यही सत्य वस्तुतः इनकी समस्त कहानियों पर लागू हो सकता है। प्राकृतिक दृश्य-वर्णन जहाँ-कहीं भी आया है, वह मानव-व्यापार के साथ आया है, उसे अपना सहायक बनाकर आया है—"मध्यान्ह काल था। सूर्यनारायण सिर पर आकर अग्नि की वर्षा कर रहे थे। शरीर को झुलसाने वाली प्रचंड, प्रखर वायु वन और पर्वतों में आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था मानो अग्निदेव की समस्त सेना गरजती हुई चली जा रही है। गगन-मंडल इस भय से काँप रहा था। रानी सारंधा घोड़े पर सवार, चम्पतराय को लिए पश्चिम की तरफ चली जाती थी·······तालू सूखा जाता था, किसी वृक्ष की छाँह और कुएँ की तलाश में आँखें चारों ओर दौड़ रही थीं।"[१]

आकार-प्रकार के वर्णन में प्रेमचन्द बहुत दूर तक नहीं जाते थे। जितने से कहानी के विकास में उसका सहयोग होता था, उतना ही वर्णन वे देने का प्रयत्न करते थे, और वह भी बहुत सूक्ष्म और सांकेतिक शैली में—"थोड़ी देर में रागिया भीतर आया। सुन्दर सजीले बदन का नौजवान था। नंगे पैर, नंगे सिर, कंधे पर एक मृग-चर्म, शरीर पर एक गेरुआ वस्त्र, हाथों में एक सितार। मुखारविन्द से तेज छिटक रहा था।"[२]

कथोपकथन

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों में कथोपकथन के तीन रूप मिलते हैं और तीनों रूपों में सर्वथा तीन विकास-क्रम का आभास है। पहले प्रकार के आरम्भिक कथोपकथन वे हैं, जहाँ बीच-बीच में नाटकीय संकेत दिये गये हैं; जैसे—

धर्मसिंह : हाँ, संभव है कि वह तुम्हारा कोई नातेदार हो।—

पृथ्वीसिंह : (जोश में) कोई हो, यदि वह मेरा भाई ही हो, तो भी जीता चुनवा दूँ।

धर्मसिंह : तेगा खींचो।

पृथ्वीसिंह : मैंने उसे नहीं देखा।

धर्मसिंह : वह तुम्हारे सामने खड़ा है। वह दुष्ट कुकर्मी धर्मसिंह ही है।

पृथ्वीसिंह : (घबराकर) ये तुम···हीं···।[३]

---

१. नवनिधि : 'रानी सारंधा' पृ० ३८।
२. नवनिधि : 'धोखा' पृ० ६४।
३. नवनिधि : पृ० ७६।

यहाँ कथोपकथन में नाटकीयता स्पष्ट है। वस्तुतः कहानी में ऐसे कथोपकथन बहुत निम्नकोटि के समझे जाते हैं। 'जोश में' 'घबराकर' आदि निर्देशनों का प्रयोग कहानी के कथोपकथनों में सर्वथा अकलात्मक है क्योंकि कहानी पाठन-पठन की चीज है, अभिनय की नहीं। विकास-क्रम में दूसरे प्रकार के कथोपकथन निम्नलिखित हैं—

"रामरक्षा—मूर्ख नहीं है।"

"क्या खाया है?"

"मन की मिठाई?"

"और क्या खाया है?"

"मार!"

"किसने मारा?"

"गिरधारी लाल ने।"[1]

और इस विकास-क्रम में तीसरे प्रकार के कथोपकथन ये हैं—

"वे तलवार खींचकर राणा पर झपटे। उन्होंने वार बचा लिया और प्रभा से कहा—राजकुमारी, हमारे साथ चलोगी। प्रभा सिर झुकाये राणा के सामने आकर बोली—हाँ, चलूँगी। राव साहब को कई आदमियों ने पकड़ लिया था, वे तड़प कर बोले—प्रभा, तुम राजपूत की कन्या हो।

प्रभा की आँखें सजल हो गयीं। बोली—राणा भी तो राजपूतों के कुल-तिलक है। राव साहब ने आवेश में आकर कहा—निर्लज्जा।"[2]

विकास-क्रम का तीसरे ढंग का यह कथोपकथन पूर्ण कलात्मक और आधुनिक है। इसमें एक साथ कथोपकथन, मनोभावों का चित्रण तथा कार्य-कलाप और मुद्राओं का संकेत है। अतः कथोपकथन के सम्बन्ध में प्रेमचन्द यहीं से पूर्ण सफल हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियाँ आदर्श को लक्ष्य-बिन्दु मानकर लिखी गयी हैं अर्थात् कहानीकार के सृष्टि-जगत् में पहले कोई समस्या आयी और उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप उसमें उसके लिए एक आदर्श भावना जमी और उसी को लक्ष्य मानकर वह कहानी लिखने बैठ गया। इस भावना को चरितार्थ करने के लिए प्रेमचन्द ने प्रायः अपनी समस्त प्रारम्भिक बल्कि विकास और कुछ-कुछ उत्कर्ष काल तक की कहानियों में सत्-असत् दो विरोधी तत्वों को स्थान दिया और प्रायः हमेशा असत् पर सत् की विजय दिखाकर आदर्श की प्रतिष्ठा की। इस लक्ष्य-बिंदु को लेकर इस काल की सभी

---

१. नवनिधि, पृ० १२३।

२. नवनिधि, पृ० ३४६।

प्रतिनिधि कहानियाँ; जैसे 'बड़े घर की बेटी', 'पंच-परमेश्वर', नमक का दरोगा', 'उपदेश', 'परीक्षा', 'अमावस्या की रात्रि', 'पछतावा' आदि लिखी गयी हैं।

अनुभूति-मात्र के सृष्टि-बिन्दु से इस काल में प्रायः कोई भी कहानी नहीं लिखी गयी है। अनुभूति के धरातल से लिखी हुई कहानियाँ सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ सिद्ध होती हैं, लेकिन कहानियों की यह सृष्टि-प्रेरणा कहानीकार की कला के उत्कर्ष-काल में मिलती है। यहाँ प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के विषय में 'घर और संस्था' इन दोनों से विषय और समस्याएँ ली हैं। इनका स्वतन्त्र अध्ययन हम भाव-पक्ष के प्रसंग में आगे करेंगे, लेकिन यहाँ शिल्पविधि की निश्चित सीमा में कहानियाँ प्रायः आदर्श भावना को लक्ष्य बनाकर लिखी गयी हैं, अनुभूति को नहीं।

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियाँ आदेश और परामर्श की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ हमें ऊँचे आदर्श के साथ कर्तव्य-पालन के कितने ही उदाहरण प्रस्तुत करती हैं फलतः इन कहानियों में एक साथ कई रस, कई इकाइयाँ आ गयी हैं। इनमें हमारी घरेलू और संस्था जैसे जमींदारी, किसानी, नौकरी, राजनीति आदि की समस्याएँ दी गयी हैं, लेकिन समस्याओं के प्रदर्शन के रहते यहाँ गुणों की ओर बढ़ने के लिए जबर्दस्त आग्रह है। इन कहानियों के अन्त में हमें कुछ देर के लिए अपनी परम्परा, अपनी भारतीयता के प्रति अनुराग, मोह उत्पन्न होता है। इस दिशा में हमें भारतेन्दु-कालीन मुख्य उपन्यास 'हिन्दू महात्म्य' और 'परीक्षा गुरु' याद आते हैं। इन उपन्यासों में भी इसी तरह परम्परा के प्रति मोह और आदर्शों के ग्रहण करने के परामर्श हैं तथा इन उपन्यासों में भी प्रेमचंद की प्रारम्भिक कहानियों की भाँति ऐन्द्रिक प्रेम को जानबूझकर छोड़ दिया गया है। वस्तुतः यह रीतिकाल की उत्तर काल पर काव्यात्मक प्रतिक्रिया थी जो समूचे द्विवेदी युग पर थी। फलतः ये कहानियाँ चरित्र-प्रधान न होकर आचरण-प्रधान हो गयी हैं। इसके फलस्वरूप इन कहानियों की समस्याएँ भी आचरण की सीमाओं में सीमित हैं। यही कारण है कि ये कहानियाँ परिस्थितियों के वर्णन, चित्रण और उनके हल की कहानियाँ हैं। इन समस्त कहानियों का धरातल नैतिक है, जिनमें व्याख्या अधिक है, व्यंग, चोट आदि कम। फिर भी ये कहानियाँ जन-जागृति और गाँधीवादी धारा के प्रथम चरण की कहानियाँ हैं। इनका मुख्य इनके भावपक्ष में अधिक है, स्वतन्त्र शिल्प-विधि में कम।

विकास-काल

आरम्भिक काल से विकास-काल तक आते-आते कहानी-शैली और इसके रूप-विधान के सम्बन्ध में प्रेमचंद की धारणा स्वयं बदल गयी। उनके इस परवर्ती दृष्टिकोण का उदाहरण हमें विकास-काल की कहानियों में मिलने लगा और विकास-काल के दो

कहानी-संग्रह 'प्रेम प्रसून' और 'प्रेम द्वादशी' की भूमिकाओं में प्रेमचंद ने अपनी कहानी-कला की धारणा के सम्बन्ध में थोड़ा-सा प्रकाश डाला है : "आजकल आख्यायिका का अर्थ बहुत व्यापक हो गया है। उसमें प्रेम की कहानियाँ, जासूसी किस्से, भ्रमण-वृत्तान्त, अद्‌भुत घटना, विज्ञान की बातें, यहाँ तक कि मित्रों की गप-सप सभी शामिल कर दी जाती है।"

(प्रेम प्रसून की भूमिका, पृष्ठ १)

इसी भाँति 'प्रेम द्वादशी' की भी भूमिका में उन्होंने विकास-अवस्था की कहानियों के बारे में कहा है—"वर्तमान आख्यायिका का मुख्य उद्देश्य साहित्यिक रसास्वादन करना है और जो कहानी इस उद्देश्य से जितनी दूर जा गिरती है, उतनी ही दूषित समझी जाती है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि वर्तमान गल्प-लेखक कोरी गल्पें लिखता है—जैसे 'वीस्ताने ख्याल' या 'तिलस्म होशरुआ' है। नहीं, इसका उद्देश्य चाहे उपदेश करना न हो, पर गल्पों का आधार कोई न कोई दार्शनिक तत्व या सामाजिक विवेचन अवश्य होता है। ऐसी कहानी, जिसमें जीवन के किसी अंग पर प्रकाश न पड़ता हो, कुतूहल का भाव न जागृत करे, कहानी नहीं।·········यूरोप और भारतवर्ष की आत्मा में बहुत अन्तर है। यूरोप की दृष्टि सुन्दर पर पड़ती है, पर भारत की सत्य पर।"

उपर्युक्त अवतरणों में विकास-काल की कहानियों की शिल्पविधि के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है, न कहानी-कला के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश पड़ा है। वस्तुतः शिल्पविधि कहानी के अन्तर्गत नितान्त अमूर्त तत्व है। यह एक प्रेरणा है, और कहानीकार स्वयं इसे अपनी व्याख्या में नहीं ला सकता। फिर तो प्रेमचंद कहानी के भाव-पक्ष पर अधिक बल देते थे, कला-पक्ष पर कम। फलतः शिल्पविधि कहानी का एक आदर्श रूप है जो कहानीकार के अवचेतन कभी-कभी चेतन जगत् में प्रेरणा-स्वरूप विद्यमान होता है और इसके फलस्वरूप कहानी की सृष्टि होती है। इसलिये शिल्पविधि के अध्ययन के लिए हमें फिर कहानियों की ही शरण में जाना पड़ता है, क्योंकि अमूर्त शिल्पविधि का मूर्त रूप कहानी ही है।

कथानक

आरम्भ-काल की कहानियों में हमने देखा है कि वहाँ के कथानक लम्बे इतिवृत्तात्मक और द्विपक्षता लिए आये हैं। इस दिशा में यहाँ विकास हुआ है। बातें पिछली ही हैं, लेकिन उनमें कलागत सुधार और काट-छाँट स्पष्ट है। कथानक अपने समग्र रूप में कहानी के अनुरूप और कलात्मक वृत्ति को संतोष देने लगे हैं। वस्तुतः यहाँ आकर स्वयं प्रेमचन्द ने कहानी की लम्बाई, इतिवृत और घटनाबाहुल्य के विरोध में कहा है—

"आख्यायिका में इस बाहुल्य की गुंजाइश नहीं, बल्कि कई सुविज्ञजनों की सम्मति तो यह है कि उनमें केवल एक ही घटना या चरित्र का उल्लेख होना चाहिए।"[1]

उपर्युक्त प्रकाश में प्रेमचन्द ने यहाँ अपनी कहानियों के विस्तार और इतिवृत्त में सुधार की चेष्टा की है तथा लम्बे कथानक से छोटे कथानकों की ओर जाने का प्रयत्न स्पष्ट है। 'प्रेम पूर्णिमा',[1] 'प्रेम चतुर्थी', 'प्रेम प्रसून', 'प्रेम पचीसी' की कहानियों तथा 'स्त्री-पुरुष', 'माता का हृदय', 'मैकू', 'मुक्ति का मार्ग' 'डिग्री के रुपये', 'वज्रपात' और 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि कहानियों के कथानकों के सम्बन्ध में उपर्युक्त सत्य सफलता से चरितार्थ होता है। यहाँ के कथानकों में गठन और संयम दोनों निश्चित हैं। प्रायः यहाँ की कहानियों में उतना ही कथानक लिया गया है, जितने से कहानी की मूल संवेदना सम्बन्धित है। अतएव यहीं कहानी में विस्तृत व्यापार और घटनाओं की कमी हुई है। अब कथानक अधिक-से-अधिक पाँच-छः मोड़ों के साथ कहानी में चरितार्थ होने लगे हैं। 'बूढ़ी काकी' के कथानक में कुल पाँच मोड़ हैं; जैसे, इसका आरम्भ, जहाँ बूढ़ी काकी का परिचयात्मक अंश कथानक के आदि में जुड़ा हुआ है। दूसरा मोड़ है, बुद्धिराम के बड़े लड़के सुखराम का तिलक-समारोह और इस अवसर पर प्रीति-भोज की व्यवस्था। तीसरा मोड़ है भूखी बूढ़ी काकी का स्वतः भंडारे में आ घुसना और उसकी उपेक्षा। चौथा मोड़ है, भूखी उपेक्षिता काकी का रात में मेहमानों की जूठी पत्तलें खाना और रूपा, घर की मालकिन, का उसे देख लेना तथा कथानक का पाँचवाँ और अन्तिम मोड़ है, रूपा का सब सामग्रियों के साथ थाली सजाना और बूढ़ी काकी को खिलाना।

प्रारम्भिक काल में ऐतिहासिक कहानियों के कथानक बहुत विस्तृत और अधिक मोड़ों के हो गए, लेकिन इस काल में भी प्रेमचन्द ने ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं, जैसे :—'शतरंज के खिलाड़ी' के कथानक—सामाजिक कहानियों के कथानकों की भाँति क्रमशः छोटे हो गए हैं। 'शतरंज के खिलाड़ी' का कथानक केवल पाँच-छः मोड़ों में समाप्त हो गया है। मीर साहब और मिर्जा साहब की शतरंज के खेलने की लत से कथानक का पहला मोड़ आरम्भ होता है। मिर्जा साहब की इस आदत से उनकी बेगम का तीखा विरोध और उसके फलस्वरूप खेल का स्थान मिर्जा साहब के यहाँ से मीर साहब के यहाँ बदल जाना, कथानक का दूसरा मोड़ है। तीसरा मोड़ है, बादशाही फौज के एक अफसर का मीर साहब को ढूँढ़ते हुए आना और इस डर से अब शतरंज का नक्शा गोमती पार एक मस्जिद के खंडहर में जमने लगता है। चौथा मोड़ वहाँ से जहाँ से वे शतरंज के खिलाड़ी खंडहर में छिपे हुए अपने बादशाह नवाब वाजिद अली शाह को देखते हैं जो अंग्रेजों से बन्दी बना हुआ शहर के बाहर जा रहा

१. प्रेम प्रसून, भूमिका, पृ० ४।

है, लेकिन उन्हें कोई फिक्र नहीं—वे अपने शतरंज में लगे हुए हैं। इस कथानक का पाँचवाँ अंतिम मोड़ यह है कि दोनों मित्रों में खेल ही में वाद-विवाद होता है और दोनों तलवार निकालते हैं, लड़ जाते हैं, और वहीं मस्जिद के खंडहर में मौत के घाट उतर जाते हैं।

यहाँ हम देखते हैं कि कथानक अपेक्षाकृत अपने रूप-विस्तार में कितने छोटे हो गए हैं। इसके पीछे तीन प्रेरणाएँ स्पष्ट हैं। यहाँ आकर प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में इकाई की ओर ध्यान दिया है। यहाँ उन्होंने कहानियों की भाव-भूमि तथा उसके विस्तार का 'कैनवेस' अपेक्षाकृत छोटा किया है। और यहाँ आकर प्रेमचन्द ने आधार-शिला, आदर्श व्यवस्था तथा उपदेश के स्थान पर भाव या समस्या को प्रसंग बनाया है।

इतिवृत्तात्मकता की दिशा में इस काल की कहानियों पर उसका प्रभाव स्पष्ट है प्रायः यहाँ भी कहानी का आरम्भ परिचय के साथ होता है और समस्या प्रवेश, द्वन्द्व द्वन्द्व के विकास, अवरोह के साथ चरमसीमा और उसके बाद भी उपसंहार पर कहानी का समाप्त होना यह भी स्पष्ट है। एक तरह से कथानक के विकास-क्रम की शिल्प-विधि यही है, लेकिन उसके रूप में, उसके मोड़ों में कुछ परिवर्तन हुए हैं और सबसे बड़ी विशेषता हमें यहाँ आकर मिलने लगती है कि कहानी पढ़ लेने के बाद पाठक-गण को सोचने के लिए कुछ बातें रह जाती हैं, वैसे इतिवृत्तात्मकता यहाँ भी है, उदाहरण के लिए 'शंखनाद' कहानी है। यहाँ आरम्भ में भानु चौधरी के समूचे परिवार का पूरा परिचय है। उसके तीनों लड़कों की विभिन्न प्रवृत्तियों और मनोभावों की पूर्ण विवेचना है। वितान बड़े लड़के बड़े अनुभवी, बड़े मर्मज्ञ; मँझले ज्ञान चौधरी कृषि-विभाग के अधिकारी थे; सबसे छोटे गुमान बड़े रसिक और उद्दंड थे। कैसे इन तीनों भाइयों में इनकी स्त्रियों द्वारा वैमनस्य बढ़ा है, कैसे विकास होता है, यहाँ हमें इनका पूर्ण परिचय मिलता है और अंत में कैसे गुमान का एकाएक सुधार हो जाता है इसका भी संकेत है और इसके भी बाद गुमान के मुख से यह भी कहला दिया जाता है—'तुमने मुझे आज सदा के लिए इस तरह जगा दिया मानो मेरे कानों में शंखनाद का कर्मपथ में प्रवेश करने का उपदेश दिया हो।' इसी तरह 'आत्माराम', 'बूढ़ी काकी' आदि इस काल की उत्कृष्ट कहानियों में भी पूर्ण इतिवृत्तात्मकता है, लेकिन पहले की अपेक्षा इसमें गठन और संक्षिप्तीकरण का सफल प्रयास है।

पिछली कहानियों के कथानकों में प्रायः हमने सहायक कथानकों को देखा था, इस काल में यह द्विपक्षता की प्रवृत्ति बिलकुल नष्ट हो गई है। यहाँ उसके स्थान पर प्रेमचंद ने संकेतों, व्याख्याओं, वर्णनों से काम लिया है। 'वज्रपात' और 'शतरंज के खिलाड़ी' पिछले खेवे की ऐतिहासिक कहानियाँ—'रानी सारंधा' और 'मर्यादा की वेदी' से बिल्कुल भिन्न हैं। भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष दोनों दिशाओं में इनमें सफलता से

इकाई एक समवेदना है, अतः अन्त तक कथानक की एकसूत्रता भी यहाँ है। कहानी की भाव-भूमि प्रतिपाद्य विषय और आलोच्य सामग्री सब अपेक्षाकृत सीमित और निश्चित हुई है। यहाँ भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों में और सुगठन और कला की ओर जाने का प्रयत्न है।

कथानक-निर्माण में विभिन्न ढंग

प्रेमचंद की कहानियों का विकास-काल उनकी कहानी-कला का विस्तार-काल है। इस काल में, प्रेमचंद ने कम से कम सौ कहानियाँ लिखीं और उनमें से भी निम्न-लिखित कहानियाँ अपने प्रतिनिधि रूपों में आई हैं और सब कला-वैचित्र्य और प्रयोगों में स्वतंत्र हैं, जैसे 'शंखनाद', 'शान्ति', 'नैराश्य लीला', 'डिगरी के रुपये', 'शिकारी राजकुमार', 'लाल फीता', 'बैंक का दिवाला', 'नागपूजा', 'प्रारब्ध', 'पूर्व संस्कार', 'गुप्त धन', 'बलिदान', 'मूठ', 'गरीब की हाय', 'बूढ़ी काकी', 'आत्माराम', 'विध्वंस', 'दुर्गा का मन्दिर', 'गृहदाह', 'सफेद खून', 'आदर्श', 'विरोध', 'वज्रपात', 'बौड़म', 'दफ्तरी', 'महातीर्थ', 'सेवा ग्राम', 'ज्वालामुखी', 'आभूषण', 'धर्म-संकट', 'मुक्तिमार्ग' और 'शतरंज के खिलाड़ी।'

उपर्युक्त सारी प्रतिनिधि कहानियाँ अपने कथानक-निर्माण में अलग-अलग हैं, लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से अगर देखा जाय, तो इतने विभिन्न कथानक-निर्माण में कुछ ऐसे कलात्मक सत्य मिलेंगे, उनमें कुछ ऐसे मूलगत ढंग या पद्धतियाँ मिलेंगी, जिनके आधार पर उक्त कहानियों के निर्माण हुए हैं।

(क) कथानक का आरम्भ एक सूत्र से होता है और उस सूत्र में अपनी वर्तमान प्रेरणा होती है। इनमें न किसी सहायक शक्ति की आवश्यकता है न किसी विरोधी शक्ति की प्रतिक्रिया, वरन् यह सूत्र स्वतः स्वाभाविक गति से आगे बढ़ता है और विविध मनोभावों, अन्यान्य कार्य-व्यापारों के बीच से आगे बढ़ता है, लेकिन सबमें एक क्षमता और शृंखला रहती है और अंत में यह कथानक उसी स्वाभाविक दृष्टि में एक हो जाता है। लगता है, जैसे इस कथानक-निर्माण में चरमसीमा की कोई अवस्था नहीं है, न कोई व्यवस्था है, न उसकी कोई अपेक्षा ही है; जैसे, 'नैराश्य लीला', 'शान्ति', 'शिकारी राजकुमार'।

(ख) कथानक-सूत्र आरम्भ ही से अपने में एक समस्या लेकर चलता है। आगे बढ़ते ही उसमें दो विरोधी संवेदनाएँ जुड़ती हैं और दोनों स्वतंत्र रूप से विकास पाती है। फिर दोनों संवेदनाओं की मूल शक्तियाँ सहायक शक्तियों को छोड़कर उनसे क्रमशः अलग हो जाती हैं और अंत में दोनों बिछुड़ी हुई अपनी-अपनी संवेदनाओं पर लौटती हैं, लेकिन एक संवेदना की लौटी हुई शक्ति सदा के लिए टूट जाती है और दूसरी से सदा के लिए अलग हो जाती है; जैसे 'आभूषण'।

(ग) कथानक का आरम्भ विस्तृत पृष्ठभूमि से होता है और कथानक की मुख्य संवेदना एक साधारण-सी बात पर आधारित रहती है जो कथानक की प्राथमिक समस्या भी रहती है । इस प्राथमिक समस्या के सुलझते एक अन्य संयोग के साथ अन्य संवेदना जुड़ती है और दोनों की चरमसीमाएँ घटनात्मक होती हैं, लेकिन कथानक अपने उत्तर भाग में वस्तुतः विकसित होता है, जैसे 'आत्माराम' ।

(घ) कथानक-सूत्र का जन्म अंधविश्वास से होता है और इसका विकास तथा चरम परिणति सब अन्ततोगत्वा उसी अंधविश्वास, परंपरा-पालन और विवेक शून्यता में होता है; जैसे 'नागपूजा', 'मूठ', 'प्रारब्ध', 'पूर्व-संस्कार' ।

(ङ) कथानक का आरंभ किसी व्यक्ति के आत्म-कथात्मक कथा-वर्णन से होता है । वह ग्राम-कहानियों की भाँति उसके आत्म-वर्णन से एकसूत्रता लिए आगे बढ़ता है और अत्यन्त स्वाभाविक गति से, बिना कथानक में किसी प्रकार की कलात्मक संश्लिष्टता उत्पन्न किए, चरमसीमा पर पहुँच जाता है, जैसा 'ब्रह्म का स्वांग', 'बौड़म', 'हार की जीत', 'शाप'' 'यह मेरी मातृभूमि है', 'ज्वालामुखी' आदि ।

(च) इस ढंग में वे सारी छोटी कथात्मक कहानियाँ आती हैं जिनके कथानकों का आरंभ कहानीकार द्वारा स्थिति-वर्णन और समस्या उद्घाटन में होता है । कथानक समस्या लेकर आगे बढ़ता है, उसमें घात-प्रतिघातों, संघर्षों की चोटें लगती हैं और उनमें फलस्वरूप कथानक तुरन्त अपनी स्वाभाविक चरमसीमा पर पहुँच जाता है अर्थात् कथानक अपने विकास और चरमसीमा तक पहुँचने के लिए किसी भी तरह आदर्श या सिद्धांत को न मानते हुए पूर्ण स्वाभाविक यथार्थ गति से चरमसीमा पर पहुँच जाता है और उसमें किसी भी तरह का विस्तार, व्याख्या या अप्रासंगिक फैलाव नहीं रहता; जैसे 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'वज्रपात', 'बौड़म', 'दफ्तरी', 'लालफीता', 'बलिदान', 'विध्वंस', 'धर्मसंकट', 'मुक्ति का मार्ग' आदि ।

इस तरह प्रेमचंद के विकास-काल की कहानियों में कथानक-निर्माण के प्रायः उपर्युक्त ढर्रे हैं । इन्हीं ढर्रों के किनारे कुछ काट-छाँट करके प्रेमचंद ने विकास-काल की अपनी सारी कहानियों के कथानकों को गढ़ा है, लेकिन यहाँ एक सत्य पहले की अपेक्षा बहुत उभरा हुआ है । यहाँ उन कहानियों के कथानकों का निर्माण और विकास अत्यंत स्वाभाविक और मानव-मनोविज्ञान के अनुरूप है । इनके निर्माण और विकास में पहले की अपेक्षा संयोग और घटनाओं का सहारा कम लिया गया है ।

चरित्र

आरम्भकाल की कहानियों के मुख्य चरित्र थे किसान, जमींदार, नौकर, और घर की बहुएँ, माताएँ तथा बूढ़ी खाला जैसी औरतें । इसी प्रकार के चरित्र इस काल में भी हमें मिलते हैं, लेकिन वहाँ इनकी संख्या और इनके टाइप बहुत सीमित थे तथा

स्त्री-चरित्र तो बिल्कुल उभर ही नहीं सका था, जैसे वे घर की चहारदीवारी और अपनी दासता में बुरी तरह जकड़े थे, लेकिन यहाँ पुरुष और स्त्री-चरित्रों की सीमा और विस्तार दोनों में अन्तर आ गया है। स्त्री-पुरुष का अपना-अपना व्यक्तित्व निखर कर निश्चित हो गया तथा इनका मनोविज्ञान-मनोभाव अधिक उभर कर स्पष्ट हो गया। पिछले खेवे की कहानियों में चरित्रों का अमूर्त रूप हमने उनके आचरणों-कृत्यों के माध्यम से देखा था, लेकिन यहाँ पात्रों का वह रूप उनके मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के माध्यम से अध्ययन किया जा सकता है। चरित्र की दिशा में यही दूसरा विकास, इस काल के चरित्रों की पहचान है और यही उनकी विशेषता है।

स्त्री

आरम्भ-काल की कहानियों में स्त्री-पात्रों का स्थान बहुत संकुचित रूप में मिला था। उनका रूप, उनका व्यक्तित्व बहुत ही अस्पष्ट था। स्त्रियाँ प्रायः यथार्थ की भावभूमि पर खड़ी रहकर सदैव आदर्शवादी और मर्यादा वादी थीं। एक तरह से वे अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में पंगु थीं। उनकी जागरूकता उनकी मर्यादा में सो गयी थी, लेकिन यहाँ स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक मुखरित और स्पष्टवादिनी हुई हैं। उन्हें स्थान-स्थान पर कहानी का नायकत्व मिला है और उनके व्यक्तित्व के किनारे-किनारे कहानी की घटनाएँ तथा अन्य पात्र घूमते हुए दृष्टिगोचर हुए हैं। यहाँ उनका जीवन दर्शन बहुत ही परिवर्तित और क्रान्तिकारी है, उनमें विद्रोह की सफल चेतना आ गयी है। 'शंखनाद' में स्त्री ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—"अब समझाने बुझाने से काम नहीं चलेगा, सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया।" 'आभूषण' में स्त्री ने इश्वर को भी ललकार दिया कि "ईश्वर के दरबार में पूछूँगी कि तुमने मुझे सुन्दरता क्यों नहीं दी; बदसूरत क्यों बनाया।" यहाँ आकर स्त्री का व्यक्तित्व पुरुष की बराबरी में आ गया है और पुरुष के अत्याचार, शोषण और उसकी निरंकुशता से ऊब कर स्त्री ने क्रान्ति-स्वर में अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व और निजत्व की घोषणा की है : "मुझमें जीव है,चेतना है, जड़ क्योंकर बन जाऊँ ? मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपने को अभागिनी, दुखिया समझूँ और एक टुकड़ा रोटी खाकर पड़ी रहूँ, ऐसा क्यों करूँ ? संसार मुझे जो चाहे समझे मैं अपने को अभागिनी नहीं समझती। मैं अपने आत्मसम्मान की रक्षा कर सकती हूँ। मैं इसे अपना घोर अपमान समझती हूँ कि पग-पग पर शंका की जाय। नित्य कोई चरवाहे की भाँति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता रहे। यह दशा मेरे लिए असह्य है। पुरुष क्यों स्त्री का भाग्य-विधाता है, स्त्री क्यों नित्य पुरुषों का आश्रय चाहे, क्यों उनका मुँह ताके ?"[1]

---

१. प्रेमपचीसी : 'नैराश्य लीला', पृष्ठ ३६२, ३६३।

अतः यहाँ आकर स्त्री, पुरुष की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील और जीवन पूर्ण हो गयी है। पुरुष जहाँ अवसरवादी हैं, अपने में द्विपक्षता रखता है, कपटी और प्रतिक्रियावादी है, वहाँ स्त्री बिल्कुल साफ, सीधी और स्पष्ट है। वह जो सोचती है वही कहती है और वही करती भी है। 'ब्रह्म का स्वांग' नामक कहानी की वृन्दा इतनी सरल और भोली-भाली है कि उसकी मर्यादावादिता और आदर्शपने पर उसके साम्यवादी पति खीझते हुए सदैव दुखी रहते हैं, लेकिन जब वृन्दा एकाएक सच्चे रूप में साम्यवादी बन जाती है, तब भी पति महोदय जल-भुन उठते हैं। फिर वृन्दा सोचती है कि अब वह क्या करे ? अन्त में वह पुरुष के इस खोखलेपन पर कुपित होकर सोचती है, "यह घर अब मुझे कारागार लगता है, किन्तु मैं निराश नहीं हूँ।"[१]

स्त्री अब यथार्थ-पक्ष में यथार्थ कदम उठाती है। उसकी पिछली झूठी मान्यताएँ टूट जाती हैं और वह अपने वर्गसंघर्ष में पूर्णतः जागरूक हो गई है। 'ईश्वरी न्याय' में विधवा भानुकुमारी को प्रपंची और दुश्चरित सत्य नारायण से लड़ना पड़ा है और उसने अपने विध्वंस होते हुए गाँव को बसाया है। 'विध्वंस' कहानी में विधवा, वृद्धा, संतानहीन भुनगी नामक गोड़िन अपने शोषक जमीदार से अपने संघर्ष में प्राण दे देती है, लेकिन कहती रहती है—"क्यों छोड़कर निकल जायँ ? बारह साल खेत जोतने से आसामी भी काश्तकार हो जाता है ! मैं तो इस झोपड़ी में बूढ़ी हो गई। मेरे सास-ससुर और उनके बापदादे इसी झोपड़ी में रहे। अब इसे जमराज को छोड़कर और कोई मुझसे नहीं ले सकता।"[२] दूसरी ओर यहाँ स्त्रियों ने अपने पथभ्रष्ट पतियों को कर्म-मार्ग पर ला खड़ा किया है, अपने उजड़ते हुए घरों को भी बचाया है तथा अपने ऊँचे चरित्र से बार-बार पुरुषों को आकर्षित किया है।

इस तरह विकास-काल में स्त्री-चरित्रों का रूप बहुत निखर आया है। ये भारतीय ललनाएँ अवश्य हैं, लेकिन अब यथार्थ भाव-भूमि पर खड़ी होकर अपने सत् रूप को भी पहचान रही हैं।

पुरुष

यहाँ आकर पुरुष-चरित्रों में भी भेद-प्रभेद होकर उनके विभिन्न-रूपों में विस्तार आ गया है। समाज का ऐसा कोई प्रमुख या साधारण पुरुष-चरित्र नहीं, जो इस अवस्था की कहानियों में न आया हो। चमार, धोबी, माली, ओझा से लेकर तालुकेदार, बादशाह, नवाब और अंगरेज तक आ गये हैं। दूसरी ओर नौकरी-पेशा लोगों में दफ्तरी कारिंदा, कानेस्टिबिल, गाँव का अध्यापक, सियाहनवीस और पेशकार से लेकर थानेदार,

---

१. प्रेमपचीसी : ब्रह्म का स्वांग, पृष्ठ ६५।
२. प्रेमपचीसी : विध्वंस, पृष्ठ २००।

डाक्टर, जज, बैरिस्टर तथा वाइसराय की कार्यकारिणी के सदस्य तक आ गये हैं। इसके अतिरिक्त देशसेवक, पंडित, शास्त्री और आचार्य लोग भी यहाँ आये हैं, लेकिन इन पुरुषों में व्यक्तित्व का विकास चाहे जितना हुआ हो, उनकी आत्मा अभी पिछली तरह की है। उनमें मानवता का किंचित् मात्र भी विकास नहीं हुआ है। हाँ, यहाँ वे अधिक वाचाल, अधिक प्रभावोत्पादक, अधिक आकर्षक भले ही बन गये हों। कारिंदे और पुलिस उसी तरह से अत्याचारी हैं, जज, वकील, बैरिस्टर उसी तरह से धनलोलुप और शोषक हैं। गरीब जनता, छोटे नौकर, सेवक और मजदूर पहले से ज्यादा निस्सहाय और शोषित हैं। पिछली कहानियों में प्राय: पुरुष-चरित्र के पेशे से सम्बन्धित समस्याएँ खड़ी हुई थीं और उन्होंने उसी दशा में आचरण भी दिखाए थे—लेकिन यहाँ पेशे को छोड़कर व्यक्ति और उसका जीवन अधिक उभरा है, उसकी आन्तरिकता हमारे सामने अधिक स्पष्ट है। उदाहरण के लिए पिछली कहानियों, जैसे 'नमक का दरोगा' और सरदार साहब के आचरण मूलत: उनकी नौकरी से सम्बन्धित हैं, लेकिन यहाँ, 'लाल फीता', 'ईश्वरी न्याय' और 'बैंक का दिवाला' आदि कहानियों में क्रमश: हरबिलास, सत्यनारायण, लाला साईंदास आदि के आचरण मूलत: उनके चरित्रों से सम्बन्धित हैं, उनकी नौकरी से नहीं। नौकरी तो बस प्रयोजन मात्र है। 'आत्माराम' के नायक सुनार है। उसका पेशा आभूषण बनाना है, लेकिन इस पेशे से उसके तोते तथा चोरों से धन पाने का संबंध बिल्कुल नहीं है। आत्माराम किसी भी पेशे का व्यक्ति हो सकता था, अतएव यहाँ पुरुष-चरित्र अपने मूर्तरूप में व्यक्तित्व और निजत्व-प्रधान हो गए हैं। अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ और अपनी यथार्थतम समस्याओं को लिए हुए हमारे सामने आये हैं, लेकिन यहाँ अब भी मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग के चरित्र अपनी पिछली मर्यादा, अंधविश्वास और लोकमत के झूठे सम्मान से प्रेरित हैं। वे अपने में, अपनी समस्याओं में दफ्तरी, भाई-भाई, बौड़म, मैकू आदि के रूपों में अवश्य लड़ रहें हैं, लेकिन उनमें निश्चित रूप से वर्ग-संघर्ष की चेतना उभर चुकी है।

आचरण की अपेक्षा चरित्र-चित्रण की ओर

यहाँ जब हम स्त्री-पुरुष के व्यापक चरित्र की दिशा में अध्ययन करने लगते हैं, तब हमें यहाँ जो वस्तु सबसे अधिक प्रभावित करती है, वह है—यहाँ के पात्रों का चरित्र और उनमें व्यक्तित्व का निखरा हुआ स्वरूप। यह चरित्र-विश्लेषण अथवा व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा आचरण के धरातल से ही नहीं हुआ है, बल्कि इनकी आधारशिला है—व्यक्ति, व्यक्ति की दुर्बलताएँ और व्यक्ति की आन्तरिकता। 'शतरंज के खिलाड़ी' में कहीं भी हमें मीर साहब और मिर्जा साहब का कोई भी आचरण नहीं मिलता, वरन् वे कितने सच्चे हैं, कितने यथार्थ मानव हैं, वे आचरण इसी के सबूत में आये हैं। यहाँ आचरण चरित्र-विश्लेषण और व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा के साधन मात्र हैं, साध्य नहीं।

'शतरंज के खिलाड़ी' में मीर साहब और मिर्जा साहब की खेल की लत, उसका नशा, उनके दिल-दिमाग में इतनी गहराई से बैठा हुआ है कि वे दोनों इसके लिए संसार की सब मान्यताओं, सुखों, मर्यादाओं की बलि कर देते हैं और मस्जिद के खंडहरों में छिपे हुए शतरंज खेलते हैं। उनके सामने से शहर में अंग्रेज प्रवेश करते हैं और उनके बादशाह को बन्दी बनाकर ले जाते हैं, लेकिन खेल के आगे उनपर जूँ तक नहीं रेंगती है। आगे, अगर वे तलवार भी निकालते हैं, तो अपने शतरंज के ऊपर और अगर मरते हैं, तो भी अपने खेल की ही शान पर। अर्थात् यहाँ आकर हमें चरित्र साफ मिलने लगते हैं। उनपर से झूठी मर्यादा, आदर्श का झीना परदा फटने लगा है और स्त्री-पुरुष दोनों चरित्र, बूढ़ी काकी, सुभागी, कैलाश, बौड़म, दफ्तरी, आत्माराम, मीर साहब, मैकू आदि चरित्रों में बहुत स्पष्ट हो गये हैं। यहाँ उसके द्वंद्व-संघर्ष और उनकी समस्त अच्छाइयाँ-बुराइयाँ हमारे सामने आ जाती हैं।

हम यहाँ उनके कृत्यों की ओर से अधिक उनके मनोभावों की ओर गये हैं। 'बूढ़ी काकी' में हमें बूढ़ी काकी का कोई कृत्य, कोई क्रिया-कलाप उतना नहीं याद रहता, बल्कि हमें स्पष्ट रूप से बूढ़ी काकी के वे स्वाभाविक-मनोवैज्ञानिक इच्छा और भूक के भाव-चित्रण और उनकी व्यंजनायें सदा स्मरण रहती हैं। यहाँ वह अकेले अपने कमरे में सोचती रहती है—"अब लाल-लाल, फूली-फूली नरम पूड़ियाँ होंगी। रूपा ने भली-भाँति मोयन दिया होगा। कचौरियों में अजवाइन और इलायची की महक आ रही होगी। एक पूरी मिलती तो जरा हाथ में लेकर देखती। क्यों न चल-कर कड़ाह के पास सामने ही बैठूं। पूड़ियाँ छन-छन कर तैरती होंगी। कड़ाह से गरम-गरम निकाल कर थाल में रक्खी जाती होंगी।"[1]

एक स्थान पर पात्र यहाँ अपनी खामोशी में आये हैं और बिना कुछ बोले, कुछ क्रिया-कलाप किये लौट गये हैं, लेकिन वे अपने मनोभावों का पूरा नकशा हमें दे गये हैं—"दफ्तरी ने सलाम किया और उलटे पाँव लौटा। उसके चेहरे पर ऐसी दीनता और बेकसी छायी हुई थी कि मुझे उस पर दया आ गयी। उसका इस भाँति बिना कुछ कहे सुने लौटना कितना सारपूर्ण था! इसमें लज्जा थी, सन्तोष था, पछताव था, उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला, लेकिन उसका चेहरा कह रहा था, मुझे विश्वास है कि आप यही उत्तर देंगे, इसमें मुझे जरा भी संदेह न था।"[2]

इस काल की कई कहानियों में स्त्री और पुरुष चुपचाप बैठे हुए स्वयं अपने-अपने मनोभावों का विश्लेषण हमें दे जाते हैं। 'ब्रह्म का स्वाँग' में स्त्री अपने मनोभाव स्पष्ट करती है—"सुपात्र ब्राह्मण की कन्या हूँ जिसकी व्यवस्था बड़े-बड़े गहन धार्मिक विषयों

१. प्रेम पचीसी : बूढ़ी काकी, पृष्ठ १३३।
२. वही, दफ्तरी, पृ० १९३।

पर सर्वमान्य समझी जाती है। अब मुझे धैर्य नहीं है। आज मैं इस अवस्था का अन्त कर देना चाहती हूँ। मैं इस आसुरिक भ्रष्ट जाल से निकल जाऊँगी। मैंने अपने पिता की शरण जाने का निश्चय कर लिया।''[1] पुरुष दूसरी ओर अपना सच्चा मनोभाव स्पष्ट करता है—''मैं भी राष्ट्रीय ऐक्य का अनुरागी हूँ। समस्त शिक्षित समुदाय राष्ट्रीयकरण पर जान देता है, किन्तु कोई स्वप्न में भी कल्पना नहीं करता कि हम मजदूरों या सेवा-वृत्ति धारियों को समता का स्थान देंगे। हम उनमें शिक्षा का प्रचार करना चाहते हैं, उनको दीनावस्था से उठाना चाहते हैं, और इसका मर्म क्या है, यह दिल में सभी समझते हैं।''[2]

अतः यहाँ आकर चरित्र की इस अवस्था में चरित्र-अवतारणा ने दो प्रभाव डाला है। यहाँ पात्रों की मानवीय पूर्णता प्रकट हो गयी है क्योंकि 'बूढ़ी काकी', 'आत्माराम', 'मुक्तिमार्ग', 'शतरंज के खिलाड़ी' में चरित्रों की सृष्टि उनके आन्तरिक और बाह्य दोनों जगत् के मिलन-बिन्दु के धरातल पर हुई है। इन चरित्रों में इनके अलग-अलग निजत्व स्थापित हुए हैं, अतः इन चरित्रों में हम अधिक सजीवता और मानवीय तत्व पाते हैं।

शैली

शैली के अन्तर्गत, इसके व्यापक पक्ष में कहानी के तीन भाग—आरम्भ, विकास और चरमसीमा का रूप हमें यहाँ निश्चित और वैज्ञानिक ढंग से मिलने लगे हैं। इनके अलग-अलग अध्ययन में यहाँ की कहानी की शिल्पविधि पूर्णतः स्पष्ट हो जायगी।

आरम्भ

विकास-काल प्रेमचन्द की कहानी-कला का विस्तार-काल है। यहाँ उन्होंने कहानियों में विभिन्न प्रयोग किये हैं, फलतः कुछ कहानियों का आरम्भ पिछले खेवे की कहानियों की भाँति है और कुछ का नितान्त नवीन है तथा कुछ पहले से विकसित होकर कलात्मक स्तर पर आई हैं। अतः विकास-काल में प्रेमचन्द की कहानियों में तीन प्रकार के आरम्भ मिलते हैं—

(क) पहले की भाँति, भूमिकासहित—पात्रों और परिस्थितियों के पूर्ण परिचय के साथ—जैसे, 'आत्माराम', 'लोकमत का सम्मान' और 'नैराश्य लीला' आदि।

(ख) भूमिकारहित—पात्रों-परिस्थितियों के यथावश्यक परिचय के साथ—जैसे 'दफ्तरी', 'नागपूजा', 'शंखनाद', 'विध्वंस', 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि।

---

१. प्रेमपचीसी ब्रह्म का स्वाँग, पृ० ५८-५९।

२. वही, ब्रह्म का स्वाँग, पृ० ६४।

(ग) नितान्त, नवीन ढंग के आरम्भ—सीधे एकाएक कहानी की समस्या के साथ कहानी के आरम्भ, बिना किसी प्रकार से परिचय के साथ—जैसे 'शांति', 'मैकू', 'वैर का अन्त' आदि ।

पहले और दूसरे तरह के आरम्भ का अध्ययन हमने पिछले खेवे की कहानियों के आरम्भ के साथ किया है । तीसरे प्रकार का आरम्भ, विकास-काल की नयी शैली है । इसके सम्बन्ध में प्रेमचंद ने अपनी भूमिका में सुन्दरता से एक व्याख्यात्मक भूमिका दी है—"आख्यायिका साधारण जनता के लिए लिखी जाती है, जिसके पास न धन है, न समय । यहाँ तो सरलता में सरलता पैदा कीजिए, यही कमाल है । कहानी वह ध्रुपद की तान है जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिखा देता है—एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देता है, जितना रात-भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता ।"[1]

तीसरे प्रकार के आरम्भ का यही आकर्षण है । कहानी आरम्भ होते ही एकाएक ध्रुपद की तान की भाँति पाठकों के हृदय पर स्थान पा जाती है । यही शैली पूर्णतः विकसित होकर आगे उत्कृष्टता पर पहुँची है । वस्तुतः कहानी-कला और शिल्पविधि के प्रकाश में प्रेमचन्द को श्रेष्ठ कहानियों का आरम्भ इसी कोटि में होता है; जैसे 'मैकू', कहानी का आरम्भ—"कादिर और मैकू ताड़ीखाने के सामने पहुँचे, तो वहाँ काँग्रेस के वालण्टियर झंडा लिए खड़े नजर आये । दरवाजे के इधर-उधर हजारों दर्शक खड़े थे । शाम का वक्त था । इस वक्त गली में पियक्कड़ों के सिवा और कोई न था ।" इसी तरह 'शांति' का आरम्भ—"जब मैं ससुराल आई, तो बिल्कुल फूहड़ थी । न पहनने-ओढ़ने का शऊर, न बातचीत करने का ढंग, सिर उठाकर किसी से बातचीत भी न कर सकती थी, आँखें अपने आप झपक जाती थीं ।"[2]

परन्तु विकास-काल की अधिकांश कहानियों का आरम्भ, दूसरे ही ढंग पर है—भूमिकारहित—पात्रों परिस्थितियों के यथावश्यक परिचय के साथ । आरम्भ की यह कोई नवीन शैली नहीं है, फिर भी पिछले खेवे की कहानियों के ऐसे आरम्भों में और यहाँ के ऐसे आरम्भों में अन्तर है । अन्तर केवल कलात्मक संघटन और प्रवाह का है, सामग्री और पर्याय का नहीं ।

आरम्भ भाग में ही कहानी के सभी तत्वों का यथासंभव समावेश करने की भी शैली यहाँ पीछे छूट गयी है । कहानियाँ आरम्भ भाग से ही सपाट न होकर नुकीली होती गयी हैं और उनमें शिल्पविधिगत कुशलता आ गयी है ।

---

१. प्रेम प्रसून : भूमिका, पृष्ठ ४ ।

२. प्रेम चतुर्थी : शान्ति, पृ० ८० ।

विकास

आरम्भिक कहानियों के विकास के अध्ययन में हमने देखा है कि प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के विकास में चार अवस्था-क्रम रखा था—घटना की तैयारी, उत्तेजक घटना, व्याख्या और घात-प्रतिघात।

इस काल की भी कहानियों में प्रेमचन्द ने उनके विकास में उपर्युक्त अवस्था-क्रमों को रखा है 'आतमाराम' उसका स्पष्ट उदाहरण है, लेकिन इस काल की कहानियों के विकास में उन्होंने और भी कलात्मक प्रयोग किया है तथा विकास के इस नवीन अवस्था-क्रमों पर आधारित कहानियाँ इस काल की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। यह नवीन और विकसित अवस्था-क्रम निम्नलिखित हैं—

(क) समस्या-प्रवेश की तैयारी
(ख) समस्या-प्रवेश और द्वन्द्व का जन्म
(ग) द्वन्द्व-उत्तेजना

विकास के इन अवस्था-क्रमों में कहानी-कला का संगुम्फन और संगठन आ गया है। यहाँ न भूमिका-क्रम का स्थान है, न व्याख्या का। कहानी में घटना के स्थान पर समस्या और मनोभाव आ गया है। व्याख्या और भूमिका की जिम्मेदारी पाठकों के ऊपर छोड़ दी गयी है। इन अवस्था-क्रमों को हम 'शतरंज के खिलाड़ी', 'मैकू', 'विध्वंस' आदि किसी भी कहानी में देख सकते हैं। उदाहरणार्थ हम 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी की रचना-प्रक्रिया को लेते हैं।

(क) समस्या की तैयारी—"सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी है, पौ-बारह का शोर हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फकीरों को भी पैसे मिलते तो वे रोटियाँ न लेकर अफीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गंजीफा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचारशक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है ये दलीलें जोरों के साथ पेश की जाती थीं। इसीलिए मिर्जा सज्जादअली और रौशन-अली अपना अधिकांश समय बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे, सो किसी विचार-शील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थीं, जीविका की कोई चिन्ता न थी, घर में बैठे चखौनियाँ करते थे। आखिर और करते ही क्या?"[1]

---

१. मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी, पृ० २५५।

(ख) समस्या-प्रवेश और द्वन्द्व का जन्म—"प्रातःकाल दोनों मित्र (मिर्जा-मीर) नाश्ता करके आसन बिछाकर बैठे जाते, और लड़ाने के दाँव-पेच होने लगते। इधर राज्य में हाहाकार मचा था। प्रजा दिनदहाड़े लूटी जाती थी, कोई फरियाद सुनने वाला न था। एक दिन दोनों मित्र बैठे हुए शतरंज की दलदल में गौते खा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फौजी मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीर साहब के होश उड़ गए। यह क्या बला सिर पर आई ? यह तलबी किसलिए हुई है ? अब खैरियत नजर नहीं आई। घर के दरवाजे बन्द कर लिए। नौकरों से बोले—कह दो घर में नहीं हैं।"[१]

(ग) द्वन्द्व-उत्तेजना—"बादशाह को लिए हुए सेना सामने से निकल गयी। उनके जाते ही मिरजा ने फिर बाजी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा—आइए, नवाब साहब के मातम में हम मर्सियाँ कह डालें। लेकिन मिर्जा की राज्यभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे। खेल होने लगा। झुंझलाहट बढ़ती गयी। तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता था, न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिरजा बोले—किसी ने खानदान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किये। आप शतरंज क्या खेलियेगा। रियासत और ही चीज है। जागीर मिल जाने से ही कोई रईस नहीं हो जाता। मीर—जबान संभालिए, वरना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँखें दिखायीं तो उसकी आँखें निकालीं। है हौसला। मिर्जा—आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर आइए, आज दो-दो हाथ हो जायँ, इधर या उधर। मीर—तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन है।"[२]

चरमसीमा

प्रारम्भिक कहानियों में हमें इस सम्बन्ध में दो क्रम मिले थे, चरमसीमा और उपसंहार। चरमसीमा की दिशा में यह क्रम यहाँ भी मिलता है, लेकिन यहाँ कलात्मक अंतर हो गया है। पहले चरमसीमा के बाद लम्बा-सा, कम से कम एक पृष्ठ का, उपसंहार जुड़ा रहता था या अन्त में कोई उपदेशात्मक अवतरण या कहानी-शीर्षक को चरितार्थ करने वाले दो-तीन वाक्य जुड़े रहते थे, लेकिन यहाँ चरमसीमा में कलात्मक विकास हुआ है। उपसंहार की पुरानी प्रथा प्रायः यहाँ खत्म-सी हो गई है, वैसे प्रेमचन्द ने यहाँ भी चरमसीमा के बाद हमेशा दो-तीन वाक्य जोड़ा है, अधिक नहीं। उदाहरणार्थ—'शतरंज के खिलाड़ी' की चरमसीमा है। दोनों दोस्तों ने कमर से

१. मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी, पृ० २५५, २५६, २६०।
२. वही, पृ० २६३, २६४, २६५।

तलवार निकाल ली। नवाबी जमाना था। दोनों विलासी थे, पर कायर न थे। दोनों ने पैंतरे बदले। तलवारें चमकीं, छप-छप की आवाजें आईं। दोनों जख्म खाकर गिरे और दोनों ने वहीं तड़प कर जानें दे दीं। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखों से एक बूँद भी आँसू न निकला, उन्हीं दोनों प्राणियों ने शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दिए।''[१]

उपसंहार के नाम पर—''चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। खंडहर की टूटी हुई महराबें, गिरी हुई दीवारें और धूल-धूसरित दीवारें इन लाशों को देखतीं और सिर धुनतीं।''[२]

वस्तुतः ये पंक्तियाँ चरमसीमा की नोक को और नुकीली और तेज करती हैं। ये उपसंहार की पंक्तियाँ नहीं हैं, क्योंकि पिछली कहानी के उपसंहार की तरह न कोई उपदेश है, न कोई आदर्श-समर्थन, न कहानी-शीर्षक को चरितार्थ करने की चेष्टा ही है।

हमने विकास-काल को प्रेमचंद की कहानियों का प्रयोग-काल माना है। यहाँ उन्होंने अनेक ढंग से कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें कुछ विशिष्ट कहानी-शैलियाँ स्पष्ट हो गई हैं, जैसे—

(क) आत्मकथात्मक शैली की कहानी—जैसे 'यह मेरी मातृभूमि है', 'हार की जीत', 'बौड़म', 'शाप'।
(ख) आत्मविश्लेषणात्मक शैली की कहानी—जैसे 'ब्रह्म का स्वाँग'।
(ग) भाषण शैली की कहानी—जैसे 'आभूषण'।
(घ) नाटकीय शैली की कहानी—जैसे 'दुराशा'।
(ङ) रूपकात्मक शैली की कहानी—जैसे 'ज्वाला', 'सेवापथ' आदि।
(च) लघुकथात्मक शैली—जैसे 'बौड़म', 'विध्वंस', 'मुक्ति का मार्ग'।
(छ) कथोपकथनात्मक शैली—विलक्षण आरम्भ वाली कहानियाँ—जैसे, 'धर्म संकट'।

इन समस्त कहानी-शैलियों में प्रेमचन्द को सफलता मिली है और ये कहानियाँ शैली की दृष्टि से प्रेमचंद की उत्तम कहानियाँ सिद्ध हुई हैं।

शैली का सामान्य पक्ष

देश-काल-परिस्थिति-चित्रण में यहाँ पहले की अपेक्षा शैली में अधिक व्यंजना, अधिक प्रभविष्णुता और अधिक गम्भीरता आ गयी है। इनके चित्रणों में जहाँ एक ओर समूची परिस्थिति की सारी तस्वीरें मिलती हैं वहीं व्यंग के माध्यम से हमें एक चुनौती भी मिलती है। यहाँ इन चित्रणों में कल्पना के साथ-साथ वस्तुस्थिति में अधिक पैठ

१. मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी, पृ० २६३, २६४, २६५।
२. वही, पृ० २६५।

हुई है। फलत: देश-काल-परिस्थिति के चित्रण में प्रेमचन्द का स्थूलता से सूक्ष्मता और गहराई की ओर जाने का प्रयत्न है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में देश-काल-परिस्थिति तीनों का चित्रण एक ही साथ अपनी समस्त विशेषताओं के साथ हुआ है। वाजिद-अली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला-कौशल में, उद्योग-धंधों में, आहार-व्यवहार में सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राज्य-कर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र, मीसी और उपटन का रोजगार करने में लिप्त थे।''[1]

प्राकृतिक शोभा और दृश्य-वर्णनों में यहाँ पूर्णरूप से चित्रात्मकता आ गयी है। कल्पना और निरीक्षण प्रवृत्ति के संयोग से इन तत्वों के वर्णन में अधिक सजीवता और गहराई का समावेश हुआ है।

कथोपकथन

आरम्भिक काल की ही कहानियों में साधारण, मध्यम और उत्तम ढंग के कथोपकथन मिलने लगे हैं। यहाँ उन तीनों प्रकार के कथोपकथनों में अधिक तेजी, अधिक बुद्धिमत्ता, अधिक हाजिरजवाबी आ गयी है। साथ ही उसमें चोट करने, व्यंग बाण चलाने की क्षमता आ गई है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में तीखे कथोपकथन करते-करते ही दोनों बहादुर खिलाड़ी आपस में लड़ जाते हैं।

> ''मिरजा बोले—किसी ने खानदान में शतरंज खेली होती तो इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किए, आप शतरंज क्या खेलिएगा ?
>
> मीर—क्या, घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे। यहाँ पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आ रहे हैं।
>
> मिरजा—अजी जाइए भी। गाजीउद्दीन हैदर के यहाँ बावरची का काम करते-करते उम्र गुजर गई। आज रईस बनने चले हो। रईस बनना कोई दिल्लगी नहीं है।
>
> मीर—क्यों अपने बुजुर्गों के मुँह में कालिख लगाते हो !
>
> मिरजा—अरे चल चरकटे, बहुत बढ़-बढ़ कर बातें मत कर।
>
> मीर—जबान सँभालिए, वरना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँखें दिखाईं कि उसकी आँखें निकालीं। है हौसला ?

---

१. मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी, पृ० २५५।

मिरजा—आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं ? तो फिर आइये आज दो-दो हाथ हो जायँ । इधर या उधर ।

मीर—तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन है ।"[१]

लक्ष्य और अनुभूति

विकास-काल की कहानियों के लक्ष्य-बिन्दु को बताते हुए प्रेमचंद ने स्वयं 'प्रेम-प्रसून' की भूमिका में कहा है—"हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है । हम कहाँ तक सफल हुए हैं इसका निर्णय पाठक ही कर सकते हैं ।"[२]

पिछली कहानियों का लक्ष्य-बिन्दु निस्सन्देह आदर्श की प्रतिष्ठा थी । क्या कुटुम्ब, क्या व्यक्ति और क्या नौकरीपेशा से प्रायः सर्वत्र कहानियाँ मर्यादावाद और आदर्शवाद के लक्ष्य से लिखी गई थीं । यहाँ आकर कहानियों का लक्ष्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद हो गया है, लेकिन इस काल में कुछ ऐसी कहानियाँ अवश्य मिलने लगती हैं जिनकी आधारशिला प्रारम्भ से अंत तक यथार्थ है । आदर्शोन्मुख यथार्थवाद लक्ष्य की भी कहानियों का धरातल पूर्ण यथार्थ है, लेकिन उनमें कहानीकार ने प्रत्यक्ष ढंग से कहानी के अंत को आदर्श पर स्थिर किया है; जैसे, 'ईश्वरी न्याय', 'महातीर्थ', धर्म संकट', 'बौड़म', 'वैर का अंत', 'सुहाग की साड़ी', 'मूठ', 'लालफीता', 'आत्माराम' आदि कहानियाँ । इन समस्त कहानियों की भाव-शिला पूर्णतः यथार्थ और मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है, लेकिन इन सबका अंत किसी न किसी तरह आदर्श पर टिकाया गया है, मनोवैज्ञानिक सत्य पर नहीं । 'सुहाग की साड़ी' में रतनसिंह एक विशुद्ध कांग्रेसी हैं । वे सैद्धान्तिक दृष्टि से विदेशी वस्त्रों के विरोधी हैं । गौरा उनकी पत्नी साधारण ढंग की स्त्री है जो अपना सब विदेशी वस्त्र पति के माँगने पर जलाने के लिए दे देती है, लेकिन अपनी सुहाग की साड़ी को छिपा लेती है । गौरा का यह निर्णय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है । इसके पीछे नारीत्व और पत्नीत्व दोनों की प्रेरणा है, लेकिन इस कहानी की इस संवेदना का अन्त इस पर होता है कि अन्त में गौरा आदर्श में आकर अपनी सुहाग की साड़ी को भी जलाने को दे देती है । 'ईश्वरी न्याय' में मुन्शी सत्यनारायण आदि से अंत तक भानुकुंवरि के साथ बेईमानी करते हैं, उसे बर्बाद करने की सब चालें चली हैं, लेकिन अन्त में पूर्ण आदर्शवादी और सच्चे निकलते हैं । इसके पीछे कहानीकार किसी तरह का मनोवैज्ञानिक समर्थन या चारित्रिक कारण नहीं दिखाता, बल्कि सम्पूर्ण कहानी एकाएक आदर्श पर टिक जाती है ।

---

१. मानसरोवर : भाग ३, शतरंज के खिलाड़ी, पृ० २६५ ।

२. प्रेम प्रसून : भूमिका, पृ० ६ ।

इस काल की कुछ कहानियों का धरातल केवल मनोवैज्ञानिक अनुभूति है— कहानीकार ने जैसा संसार में देखा और जैसा देख रहा है। 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'विध्वंस', 'नैराश्य लीला', 'वज्रपात', 'शांति', 'दफ्तरी' आदि इन समस्त कहानियों की प्रेरणा और भावभूमि में कहानीकार की अनुभूतियाँ स्पष्ट हैं। ये कहानियाँ पूर्ण मनोवैज्ञानिक सत्य और यथार्थ पर टिकी हैं और विकास-काल की ये कहानियाँ शिल्पविधि की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाँ हैं।

निष्कर्ष रूप में, विकास-काल की कहानियाँ अपने स्वाभाविक रूप में पहले से बहुत आगे बढ़ आई हैं। यह विकास आचरण की प्रधानता से चरित्र की प्रधानता की ओर है और चरित्र के भी अन्तर्गत हमें यहाँ पात्रों के आन्तरिक जगत् का दर्शन होता है। यहाँ कई कहानियों में मनोभावों की झाँकियाँ और मानसिक द्वन्द्व देखने को मिला है। प्रारंभिक कहानियों का धरातल प्रायः नैतिक था, यहाँ आकर कहानियों का धरातल आर्थिक और मनोवैज्ञानिक हो गया है। यहाँ प्रेमचन्द का दृष्टिकोण भाव-जगत् की दिशा में बहुत विस्तृत मिलने लगा है। उन्होंने मनुष्य को लेकर उसके लिए अपनी कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक, वैयक्तिक, मोरचा खड़ा किया है और उन्होंने मानव-कल्याण का सच्चा स्वप्न देखा है।

यहाँ शिल्पविधि की सफलता के फलस्वरूप, कुछ कहानियों में रस-परिपाक अपूर्व ढंग से हुआ है। 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'मुक्तिमार्ग', ये सब कहानियाँ प्रेमचन्द की कहानी-कला के विकास-क्रम की सुन्दर सीढ़ियाँ हैं। यहाँ की कहानियों में कहीं-कहीं संविधानात्मक सफलता और शिल्पविधि का सौन्दर्य अपनी उत्कृष्टता पर है। कहानियों में कथानक को केवल पृष्ठभूमि या साधनमात्र बनाने की सफल चेष्टा हुई है। चरित्र, मनोभाव, कला की कहीं-कहीं सफल संयोजना हुई है। अधिकांश कहानियों में केन्द्र का तीखापन, लक्ष्य की प्रभविष्णुता और शैली का आकर्षण अपूर्व है।

विकास-काल में प्रेमचन्द ने कहानी की विभिन्न शैलियों में बहुत प्रयोग किया है। रूपकात्मक शैली की कहानी केवल इसी काल में लिखी गई है, आगे फिर कभी नहीं। इस तरह से प्रेमचन्द की कहानियों का यह काल उनकी कहानी-शिल्पविधि का संक्रांति-काल है, जहाँ वे एक ओर उत्कृष्टता पर पहुँच गये हैं और दूसरी ओर केवल प्रयोग के संधि-बिंदु पर खड़े मिलते हैं।

उत्कर्ष-काल

इस काल में आकर प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के सम्बन्ध में यह दृष्टिकोण बनाया कि "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ, स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनु-

भूतियों की मात्रा अधिक रहती है, बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं। मगर यह समझना भूल होगी कि कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है। यथार्थ जीवन का चित्र मनुष्य स्वयं हो सकता है, परन्तु कहानी के पात्रों के सुख-दुःख से हम जितना प्रभावित होते हैं उतना यथार्थ जीवन से नहीं होते, जब तक यह निजत्व की परिधि में न आ जाय। अगर हम यथार्थ को हूबहू खींचकर रख दें, तो उसमें कला कहाँ है। कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है। कला दीखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो।"[1]

वस्तुतः शिल्पविधि की दृष्टि से प्रेमचन्द की कहानियों का विकास-काल उनकी कला का प्रयोगकाल था, फलतः उस काल में शिल्पविधि का जो प्रदर्शन हुआ है, वह इस काल में नहीं। इस काल में प्रेमचन्द की कहानियों की शिल्पविधि निश्चित हो गई। उनकी कला-रेखाएँ सजीव होकर स्वयं बोलने लगीं और उनमें कहानी का यथार्थ धरातल तथा मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ उभर आईं। यहाँ प्रेमचन्द कहानी की आत्मा की ओर अधिक झुके, शिल्पविधि की ओर कम। विकास-काल में वे जागरूक-चेतन शिल्पी थे, इस काल में वे जागरूक और चेतन मानव-द्रष्टा हैं। जीवन के गहन विश्लेषणों के महापंडित हैं। उनका शिल्पी-व्यक्तित्व उनके अवचेतन जगत् में छिपकर सजीव रेखाओं से कहानी-कला को सँवारता है। उनका चेतन मन रेखाओं में जीवन-दर्शन, जीवन के विभिन्न प्रसंगों की अवतारणा करता चला है। जो मनोविज्ञान, जो मानव-दर्शन, जैसी रेखाओं में बँधने लायक है, उसके लिए प्रेमचन्द ने वैसी ही शिल्प-विधि का प्रयोग किया है। अतएव उनके पिछले दोनों शिल्पी-व्यक्तित्व का यहाँ चरम उत्कर्ष हुआ।

कथानक

यहाँ प्रायः तीन धरातलों से कथानक का निर्माण हुआ है—

(क) किसी व्यक्ति या समस्या के केवल एक पक्ष को धरातल मानकर, कथानक का निर्माण करना; जैसे—'कुसुम', 'गुल्लीडण्डा', 'घासवाली', 'मिस पद्मा' आदि। इस धरातल पर खड़ी हुई कहानियाँ प्रायः मध्यम श्रेणी की हैं तथा इनमें संवेदन की इकाई और कथानक की एकसूत्रता अपूर्व है।

(ख) किसी व्यक्ति के जीवन के लम्बे भाग को लेकर उस पर कहानी की सृष्टि करना; जैसे—'दो कब्रें', 'अलग्योझा', 'नया विवाह' आदि।

(ग) मनोविज्ञान की अनुभूति के धरातल पर खड़ी कहानियाँ; जैसे—'कफन', 'मनोवृत्ति', 'पूस की रात', 'नशा', और 'जादू' आदि। ऐसी कहानियों के कथानक बहुत

१. मानसरोवर : प्रथम भाग, भूमिका, पृ० २-३।

छोटे और अपने में अत्यन्त गठित हैं—जैसे कोई मनोवैज्ञानिक बिन्दु ही कहानी-भर में, कथानक के नाम से सूक्ष्म रेखा बन गया हो।

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों के लम्बे कथानक की भाँति यहाँ हम लम्बे कथानक पाते हैं, विकास काल के मध्यम श्रेणी के कथानकों की भाँति यहाँ हम मध्यम श्रेणी के कथानक पाते हैं, लेकिन कलात्मक दृष्टि से इन दोनों प्रकार के कथानकों का यहाँ चरम उत्कर्ष हुआ है। कथानकों को एक सरलता, संवेदना की सफल इकाई तथा कथानक के साथ आने वाले समस्त संकेतों के सामूहिक प्रभाव ने कहानी की आत्मा को उत्कृष्टता पर पहुँचा दिया।

आरम्भिक कहानियों में जीवन के लम्बे भाग को लेकर जो कथानक तैयार किये जाते थे, उनमें इतिवृत्तात्मकता के साथ ही साथ भूमिका और उपसंहार की प्रवृत्ति थी। वह इतिवृत्तात्मकता नष्ट होकर प्रासंगिकता और एकसूत्रता में बदल गयी। उत्कर्ष-काल में आकर जीवन स्वयं अपने विभिन्न प्रसंगों में कथानक बन गया। ये कथानक लम्बे इस कारण से हुए कि प्रतिपाद्य जीवन दर्शन, जीवन के प्रसंगों को बिना दूर तक लिए हुए चरितार्थ नहीं होता था। अतः यहाँ कहानी की दृष्टि में लम्बे कथानकों का कोई महत्व नहीं रह गया और इन लम्बे कथानकों की यहाँ मुख्य विशेषताएँ इनमें थीं कि उसमें अब कई रसों, कई चरित्रों और कई घटनाओं के लिए कोई स्थान नहीं रहा। वह अब एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का सजीव स्पर्श चित्रण रह गया तथा कथानक इन विशेषताओं के साधन मात्र रह गये, साध्य नहीं। इन कथानकों का महत्व केवल पात्रों के मनोभावों और प्रतिपाद्य जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति में है तथा कथानक में गुंथी हुई घटनाओं का भी अपना कोई स्वतन्त्र महत्व नहीं रह गया है।

यहाँ आकर प्रेमचन्द ने साफ शब्दों में कहा है, अब हम कहानी का मूल्य उसके घटना-विन्यास से नहीं लगाते। हम चाहते हैं कि पात्रों की मनोगति स्वयं घटनाओं की सृष्टि करे। 'अलग्योझा' में पन्ना और रघु के जीवन के प्रायः तेरह वर्षों के लम्बे भाग पर कथानक फैला हुआ है। इस कथानक का विस्तार इतने मोड़ों से है : रघु और उसकी विमाता पन्ना में स्वाभाविक द्वेष है, और यह द्वेष पन्ना की ओर से है। आठ वर्ष बाद पन्ना विधवा होती है और रघु अपने ऊँचे चरित्र के आग्रह से पन्ना और उसके बच्चों को अपना समझ लेता है। इस तरह दोनों फिर से प्यार-स्नेह में बँध जाते हैं। इसके बाद ही रघु की शादी होती है तथा उसकी पत्नी मुलिया आती है और वह पन्ना से ईर्ष्या करने लगती है। इसके फलस्वरूप एक दिन पन्ना इनसे अलग हो जाती है। उसकी पीड़ा और प्रतिक्रिया से रघु बीमारी के बाद ही मर जाता है और अन्त में विधवा पन्ना विधवा मुलिया एक में मिल जाती हैं। वस्तुतः इस लम्बे

कथानक के पीछे एक निश्चित जीवन-दर्शन की प्रेरणा है। यह कथानक इस बात को दिखाने और सिद्ध करने के लिए इतना लम्बा खींचा गया है कि यह चरितार्थ करके दिखा दिया जा सके कि अलग्योझा स्वार्थ पर आधारित रहता है। जहाँ यह नहीं है, आपस में त्याग और प्रेम की भावना है वहाँ परिवार टूट कर भी बार-बार मिलते रहते हैं। इस कथानक के विस्तार में घटने वाली घटनाएँ, जैसे—भोला महतो का मर जाना, रग्घू का लड़ाकू मुलिया से विवाह होना, रग्घू और पन्ना में अलग्योझा होना, इसके परिताप और शोक से रग्घू का मर जाना आदि घटनाओं का अपना कोई स्वतन्त्र मूल्य नहीं है, वरन् इनका मूल्य इनके इस साध्य-प्रदर्शन में है कि मनुष्य परिस्थितियों का कितना बड़ा दास है, लेकिन वह परिस्थितियों से बहुत महान् भी है। अन्त में इन लम्बे कथानकों की एक विशेषता यह भी है कि इनकी चरमसीमा प्रायः सदैव घटना से दूर हटकर मनोवैज्ञानिक उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित होने लगी।

एक पक्ष और प्रसंग के कथानक

विकास-काल की कितनी ही कहानियों का धरातल जीवन के एक पक्ष पर आधारित है, लेकिन प्रायः उनके कथानकों के निर्माण में दो शैलियाँ आई हैं। कथानकों का विकास प्रायः घटनाओं की पारस्परिक शृंखला से हुआ है। उनकी चरमसीमा पर तथा कहानी के प्रतिपाद्य विषय पर प्रायः व्याख्या और उपसंहार जोड़े गये हैं—'दफ्तरी' और 'मैकू' कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। यहाँ जीवन के एक पक्ष से निर्मित कथानकों में इन्हीं दोनों दिशाओं में कलात्मक विकास हुए हैं। यहाँ न तो कथानकों का विकास घटनाओं के बीच से हुआ है, न कहानी के अन्त में व्याख्या या उपसंहार ही जोड़े गये हैं। कथानक का आरम्भ एकाएक विद्युत गति से हुआ है और निश्चित एकसूत्रता के साथ स्वाभाविक ढंग से चरमसीमा पर खत्म हो गया। इसकी एकसूत्रता में पूर्ण सफलता से एकतथ्यता आई है तथा इस एकतथ्यता ने उसमें प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। उदाहरणस्वरूप—'मिस पद्मा' में एक स्वतन्त्र युवती के जीवन का वैवाहिक पक्ष लिया गया है। इसके कथानक में उपर्युक्त सारी विशेषताएँ स्पष्ट हैं। इसका आरंभ वर्णन के चटपटे ढंग से हुआ है। आरम्भ ही में कथानक, कहानी की समस्या को अपनी गति में लिए हुए और कहानी की संवेदना की सारी एकतथ्यता, कहानी की सारी तीव्रता, तीखे व्यंग को लिए हुए चरमसीमा पर एकाएक समाप्त हो जाता है। यहाँ कहानी में ऐसे कथानकों का रूप ठीक उसी तरह है; जैसे, पत्थर की कसौटी पर जीवन के एक पक्ष प्रसंग-रूपी खरे सोने की एक लकीर, जो आरम्भ से अंत तक सीधी है, निश्चित है, और उसमें अपनी सच्चाई के तत्व भी हैं।

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के कथानक

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के धरातल पर खड़े हुए कथानक इस काल के उत्कृष्ट

कथानक हैं। इन कथानकों का मूल्य कथानकों के प्रकाश में बहुत ही कम है। यहाँ मनोभावों की रेखा ही स्वतः कहानी के रूप से निर्मित हो गयी है और मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही समूची कहानी को शिल्पविधि के पीछे तीव्र प्रेरणा बन गयी है। ऐसे कथानकों का अब अपना कोई निजत्व नहीं है, फिर इन्हें अध्ययन की सीमा में बाँधना बहुत कठिन है। 'कफन', 'मनोवृत्ति', 'नशा' और 'जादू' आदि कहानियों के कथानक अपने में कुछ नहीं हैं। इन कथानकों का पूरा धरातल क्रमशः इन कहानियों के चरित्रों के मनोभावों के ऊपर चला गया है तथा इन कथानकों में कोई कथानक नहीं पकड़ में आता। ये कथानक कोई स्थूल कथानक नहीं हैं, बस सूक्ष्मता से साधन मात्र हैं, या दूसरे शब्दों में मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ ही कथानक-सी लगने लगती हैं।

उदाहरणार्थ, 'कफन' कहानी की मूल आत्मा यह है कि आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में सर्वहारा कितना पतित हो सकता है। यही आत्मा इस कहानी की मनोवैज्ञानिक अनुभूति है और यही अनुभूतियाँ कहानी-भर में रेखाओं के रूप में फैली हुई हैं। 'मनोवृत्ति' में ये रेखाएँ और भी सूक्ष्म और बारीक हैं, उदाहरण-स्वरूप 'मनोवृत्ति' में एक सुन्दर युवती प्रातःकाल गांधी पार्क में बिल्लोर के बेंच के ऊपर गहरी नींद में सोयी पड़ी है। उस पार्क में सुबह विभिन्न प्रकार के पात्र घूमने आते हैं और सब पात्र अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार उस युवती के बारे में सोचते जाते हैं। फलतः यहाँ आकर कथानक निर्माण में मनोवैज्ञानिक अनुभूतियाँ प्रधान हो गयी हैं और इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का अपना विश्लेषण पूर्णतः सही उतरा है। "गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठता। उसका उद्देश्य स्थूल सौंदर्य नहीं, वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है; जिसमें सौंदर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके।"[१]

कथानक-निर्माण के विशिष्ट ढंग

विकास-काल के प्रकाश में प्रेमचंद ने यहाँ आकर कथानक-निर्माण के कुछ और नये ढंग प्रस्तुत किए हैं। ये ढंग पिछले कालों की भाँति जागरूक होकर नहीं निकाले गए हैं, वरन् जब कहानीकार को मानव-जीवन के बाह्य से उसके अन्तर्लोक में जाना पड़ा और वहाँ से संवेदनाओं को ढूँढ़ना पड़ा, तब उसे कथानक-निर्माण में और भी कुछ संश्लिष्टात्मक ढरों को अपनाना पड़ा।

(क) कथानक-सूत्र एक व्यक्ति के मनोभाव से प्रारम्भ होता है और विविध छोटी-छोटी घटनाओं के बीच से विकसित होता है और अंत में उस कथानक का अन्त भी उसके मनोभावों में हो जाता, जैसे—'नशा'।

---

१. मानसरोवर : भाग प्रथम, भूमिका, पृष्ठ ६।

(ख) कहानी-सूत्र का जन्म एक कारुणिक समस्या से होता है, लेकिन उसका विकास उस समस्या के अन्त में होता हुआ चरित्रों की मनोवृत्ति के तादात्म्य से जीवन के एक भयानक व्यंग पर समाप्त हो जाता है; जैसे 'कफन'।

(ग) कथानक का धरातल एक स्थूल व्यक्ति होता है, लेकिन इसका विकास उस स्थूल व्यक्ति को देखने वाले विभिन्न पात्रों के हृदयों में उनकी मनोवृत्तियों के माध्यम से होता है; जैसे—'मनोवृत्ति'।

(घ) कथानक का मूल सूत्र बिलकुल परोक्ष में छिपा रहता है। उसका परिचय अन्य दो व्यक्ति आपसी बातों में दे देते हैं। फिर विभिन्न पात्रों के माध्यम से वह परोक्ष मूल सूत्र सामने आता है और अन्त में उसकी परिसमाप्ति मूल-सूत्र से सम्बन्धित पात्रों के मनोभावों में होती है; जैसे 'कुसुम'।

(ङ) कथानक का आरम्भ, विकास और अन्त दो व्यक्तियों के कथोपकथन से होता है। यह ढंग नाटकीय ढंग से भी आगे है क्योंकि यहाँ घटना की न कोई व्याख्या है, न घटना की अवतारणा, बस दो व्यक्तियों के कथोपकथनों में उसकी परिसमाप्ति हुई है; जैसे 'जादू'।

(च) कथानक का जन्म, विकास और अन्त तीनों पात्रों के माध्यम से होता है, बीच में कोई स्थूल पात्र नहीं आता : जैसे 'दो सखियाँ'।

(छ) कथानक का आरम्भ वर्णन से, समस्याओं का सूत्र पात्रों के प्रयोग से और विकास विभिन्न घटनाओं से चरितार्थ होता है तथा अन्त मुख्य चरित्र के मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर होता है। कथानक निर्माण का यह ढंग जीवन के लम्बे भाग के आधार पर विकसित किए हुए कथानकों के संबंध में हुआ है; जैसे 'दो कब्रें', 'लैला', 'अलग्योझा', 'तीतर', 'नया विवाह', 'बेटों वाली विधवा', 'गुल्ली डंडा', 'शांति', 'ईदगाह', 'दिल की रानी' और 'नेउर' आदि।

चरित्र

विकास-काल में ही स्त्री-पुरुष दोनों का चरित्र अपने-अपने रूप में निश्चित हो चुका था। दोनों स्पष्ट रूप में अपनी निर्बलताओं और महानताओं के समय हमारे-सामने आ गए थे। यहाँ आकर दोनों चरित्रों में और भी अधिक विकास हुआ है। स्त्री-चरित्र अपने दोनों रूपों में आए है—अति आधुनिक भी और मर्यादावादी भी, लेकिन दोनों का धरातल पहले से भी यथार्थतम हो गया है। पुरुष-चरित्र के सम्बन्ध में यह सत्य पूर्णतः चरितार्थ हुआ।

स्त्री

विकास-काल की कहानियाँ,जैसे 'नैराश्य लीला', 'शंखनाद' और 'शान्ति' में

स्त्री-चरित्र का नितान्त क्रान्तिकारी रूप सामने आया है। ये सब स्त्री-चरित्र बिल्कुल सीधे और स्पष्ट हैं। इनमें स्त्री सुलभ चरित्र का लोच नहीं है। उत्कर्ष काल में आकर स्त्री के दोनों रूप समान मिलते हैं। 'मिस पद्मा' में स्त्री-चरित्र अति आधुनिक दृष्टिकोण से आया है। स्त्रियाँ संश्लिष्टात्मक मनोभावों और चरित्रों की अधिक हो गयी हैं, लेकिन प्रेमचन्द ने सर्वत्र उनका मनोविश्लेषण किया है। उनकी वास्तविकता भी देखी है। मिस पद्मा एम० ए० एल० एल० बी० पास होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती हुई वकालत कर रही हैं। इनमें रूप है, यौवन है और धन भी है। पद्मा को विवाह से तो घृणा थी नहीं, घृणा थी पराधीनता से, विवाह को जीवन का व्यवसाय बनाने से, क्योंकि इनके जीवन का दृष्टिकोण था कि भोग में कोई नैतिक बाधा नहीं, इसे वह देह की एक मूक व्यथा समझती थीं। यह व्यथा किसी भी साफ-सुथरी दूकान से शांत की जा सकती है। यह तो हुआ मिस पद्मा के चरित्र का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण, लेकिन इस व्यक्तित्व की स्पष्टता और स्वाभाविकता इसमें है कि यह प्रसाद नामक एक युवक से अपनी सारी कमजोरियों के साथ लिप्त हो जाती है और इसे वहाँ अपने सारे सिद्धान्त, सारे कानून भूल जाते हैं। वह फिर स्त्री बनकर पुरुष से पराजित होती है। उसका बहुत बुरा परिणाम होता है फलतः यहाँ आधुनिक चरित्र भी अपने पूर्ण स्वाभाविक और यथार्थ रूप में आया है।

दूसरी ओर 'कुसुम' में कुसुम एक अत्यन्त परम्परावादी, आदर्श पत्नी है, लेकिन उसका पति उससे घृणा करता है, और पति-उपेक्षिता कुसुम का दृष्टिकोण है—"मेरे देवता आप हैं, मेरे गुरु आप हैं, मेरे राजा आप हैं। मुझे अपने चरणों से न हटाइए, मुझे ठुकराइए नहीं। मैं सेवा और फूल के लिए कर्त्तव्य और व्रत की भेंट अंचल में सजाए आपकी सेवा में आयी हूँ।"[1] लेकिन जब पति अन्त तक उसकी उपेक्षा ही करता है, तब इस स्त्री में व्यावहारिकता का दूसरा दृष्टिकोण आता है, जो प्रतिक्रिया-स्वरूप नितान्त स्वाभाविक और यथार्थ है। वह क्रोधित होकर कह डालती है—"ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा है। जो आदमी इतना स्वार्थी, इतना दंभी, इतना नीच है उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा।"[2] इस तरह उत्कर्ष काल में आकर प्रेमचन्द के स्त्री-चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक और अत्यन्त यथार्थ हैं तथा मानव-सुलभ तमाम चढ़ाव-उतार, परिस्थितियों, मनोभावों से अनुप्राणित हैं। आरम्भिक काल के स्त्री-चरित्र जहाँ पूर्ण आदर्शवादी थे, विकास-काल में वे ही एकपक्षीय हो जाते हैं अर्थात् अगर वे क्रान्तिकारी हैं, तो अन्ततक क्रान्तिकारी हैं, प्रतिक्रियावादी या आदर्शवादी हैं, तो अन्त तक ये उसी रूप में रहेंगे। वे सीधे थे तने हुए, उनमें मानव-

१. मानसरोवर, भाग २, कुसुम, पृष्ठ १२।

२. मानसरोवर, भाग २, कुसुम, पृष्ठ २४।

सुलभ लोच कम था, लेकिन यहाँ स्त्री-चरित्र, विशुद्धस्त्री-मनोभाव-मनोविज्ञान के प्रतिनिधि हैं।

पुरुष

चरित्र का यही चित्र पुरुष-चरित्र पर भी चरितार्थ होता है। इनके चरित्र में वही उत्कर्ष है। आरम्भ की कहानियों में पुरुष-चरित्र सपाट था, एकांगी था, विकास-काल में वह यथार्थ की ओर झुका। उसमें अपने आदर्श का मोह था, अतः वह सच्चे रूप में हमारे सामने नहीं आ सका; जैसे 'आत्माराम' आदि से लेकर विकास तक यथार्थ है, लेकिन अन्त में वह आदर्शवाद के परदे में छिप जाता है। इस चरित्र का विकास हमें 'शतरंज के खिलाड़ी' के पुरुष में अवश्य मिला। इन चरित्रों का बहुत कुछ भाग हमारे सामने अवश्य आया, लेकिन अन्त में उनकी ऐतिहासिक मर्यादा उन्हें हमारे जीवन से बहुत दूर भगा ले जाती है। 'मुक्ति-मार्ग' के भी पुरुष-पात्र बहुत यथार्थ और हमसे बहुत नजदीक थे, लेकिन उनका भी अन्त आदर्शवाद के परदे में होता है। वस्तुतः यहाँ प्रेमचन्द का दृष्टिकोण ही जिम्मेदार था, लेकिन उत्कर्ष-काल में वही पुरुष, वही निम्न वर्ग का सर्वहारा चरित्र 'कफन' में आकर अपनी मृतक पतोहू और पत्नी के कफन के लिए चन्दे में मिले हुए पैसों से शराब पी डालता है, मजे उड़ा डालता है, और अन्त में अपने निम्नतम चरित्र के धरातल पर खड़ा होकर कहने लगता है—"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढकने का चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर क्या कफन चाहिए ? कफन तो लाश के साथ जल ही जाता है।"[१]

पुरुष-चरित्र की यह स्वाभाविकता, यह सच्चापन, प्रायः सब वर्गों के चरित्रों में मिलता है। 'गुल्ली डंडा' के इंजीनियर में भी, 'एक आँच की कसर' के उच्चकोटि के नेता में भी, 'पूस की रात' में हलकू किसान और 'खुचड़' के कुन्दन लाल में भी। ये सब पुरुष-पात्र अपने सच्चे मनोवैज्ञानिक रूप में हमारे सामने उपस्थित हुए हैं, इनमें हम अपनापन पाते हैं। लगता है कि उत्कर्ष-काल के ये पुरुष-चरित्र हमारे व्यक्तित्व के दर्पण हैं। हम ही वे चरित्र हैं जो इस काल की कहानियों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

चरित्र-चित्रण और मनोवैज्ञानिक अनुभूति

ऐसे समूचे चरित्र की अवतारणा के पीछे प्रेमचन्द की कला की केवल एक प्रेरणा कार्य कर रही है। उन्होंने जहाँ अपने आरम्भिक काल की कहानियों में व्यक्तित्व की अपेक्षा आचार को लिया था, वहाँ विकास-काल की कहानियों में आचरण की अपेक्षा चरित्रों को लिया तथा उनके मनोभावों की दुनिया में प्रवेश किया था। वहाँ,

१. कफन और शेष रचनाएँ, कफन, पृष्ठ १०।

उत्कर्ष-काल में आकर वे चरित्रों के स्थान पर उनकी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों पर उतर आये । चरित्र-विकास की दिशा में प्रेमचंद की प्रगति बाह्य जगत् से अन्तर्जगत् की ओर थी और वे क्रमशः स्थूलता से मनोभावों की सूक्ष्मता की ओर गये । यही कारण है कि उनके चरित्र आरम्भ से यहाँ अपने सच्चे यथार्थ रूप में हमारे सामने आ गये । इन चरित्रों को न अपने परिचय की आवश्यकता थी, न व्यवस्था की । इनकी आवश्यकता पूर्व काल में हुआ करती थी, जब चरित्र अपने सामने परदा रखकर हमारे सामने आते थे । यहाँ तो ये स्वयं अपने यथार्थतम रूप में हमारे सामने खड़े हो गये हैं । भूखे पात्र, कफन के चन्दे के रुपये से शराब पीने लगे, गोश्त खाने लगे । 'पूस की रात' में वस्त्र-हीन हलकू किसान जाड़े से काँपता हुआ अपने कुत्ते को अपने अंक में लेकर सो गया । यहाँ चरित्रों की आदर्शवादी मान्यताएँ सब बहुत पीछे छूट गयीं, क्योंकि वे सब झूठी थीं, उपदेशात्मक थीं । यहाँ के चरित्र कहानी के चरित्रों की भाँति अपने सच्चे रूप में आये ।

इस तरह उत्कर्ष-काल में आकर समूचे स्त्री-पुरुष-चरित्र, सच्चे मानव-हृदय, मानव-विज्ञान के दर्पण हो गये हैं । वे पूर्णतः सफल रूप से हमारी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों का प्रतिनिधित्व करने लगे । उनमें स्वाभाविक मानव-चरित्र का-सा आरोह-अवरोह आ गया । वे हमारी सारी निर्बलताओं, कुंठाओं के चित्र बन गये । यही कारण है कि उत्कर्ष-काल की कहानियाँ प्रायः चरित्र-प्रधान हुई हैं । इस प्रधानता में जहाँ एक ओर प्रेमचंद मानव-समाज, मानव-व्यक्तित्व के महान कहानीकार हुए हैं, वहाँ उनके चरित्र भी सजीव और अमर हुए ।

शैली

इस काल की प्रतिनिधि कहानियों में हमें तात्विक दृष्टि से पहले की भाँति, कहानी के तीनों भाग अलग-अलग नहीं मिलते । वैसे तो हर वस्तु का आरम्भ, विकास और अंत होता ही है, लेकिन शिल्पविधि की दृष्टि से इन कहानियों में इनका निरूपण कठिन हो गया है । ये कहानियाँ एक चित्र की भाँति हो गयी हैं, जिनमें उनका आरम्भ, विकास, अंत तीनों एक होकर आपस में मिल गये हैं ।

पहले की भाँति का आरम्भ-भाग यहाँ कहानियों में विकास-भाग से अलग नहीं है, एक में मिला हुआ है । वरन् आरम्भ ही यहाँ विकास के गर्भ में बोलने लगा, क्योंकि यहाँ प्रेमचंद के शब्दों में अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन गयीं । वस्तुतः अनुभूति या मनोवैज्ञानिक सत्य का कोई आरम्भ या उसका कोई भी रूप पकड़ में नहीं आ सका, फलतः इस काल की प्रतिनिधि कहानियों में कोई अलग आरम्भ ढूँढ़ना कठिन है । यहाँ कहानी अपनी शिल्पविधि में बहुत संयम और अत्यन्त

गठन के साथ आई है तथा कला के संयम में उसके सारे अंग एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करके एकात्म स्तर पर पहुँच गये हैं।

वैसे अध्ययन की दृष्टि से अगर हम यहाँ की कहानियों के बाह्य पक्ष को लें, तो हमें विकास-काल की कहानियों की भाँति यहाँ भी आरम्भ मिलेंगे—परिचय के साथ कहानियों का आरम्भ, जैसे 'अलग्योझा', 'प्रेरणा', 'ईदगाह', 'दिल की रानी' और 'घर जमाई' आदि। भूमिकारहित पात्रों और परिस्थितियों के आवश्यक परिचय के साथ, जैसे 'मिस पद्मा', 'खूचड़', 'पूस की रात', 'नशा' और 'गुल्ली डंडा'। यहाँ एक नवीनतम ढंग का आरम्भ मिलता है—पत्रों और डायरी के पृष्ठों से कहानी के आरम्भ; जैसे क्रमशः 'जादू', 'दो सखियाँ' और 'पंडित मोटे राम की डायरी' आदि।

विशुद्ध रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से आरम्भ-काल में कहानियों के आरम्भ भाग को छोड़कर हमने उनके विकास में पाँच अवस्था-क्रमों को देखा था—१. परिचय, २. घटना की तैयारी, ३. उत्तेजक घटना, ४. व्याख्या, ५. घात-प्रतिघात। वस्तुतः उत्कर्ष-काल की कहानियों में कलात्मक ढंग से सम्पूर्ण कहानी अपने में एक समूचा विकास-क्रम है। अतएव यहाँ विकास के अवस्था-क्रम अपेक्षाकृत संकुचित हो गये हैं, जैसे १. परिचय और घटना की तैयारी, २. उत्तेजक घटना, ३. घात-प्रतिघात। यहाँ की प्रतिनिधि कहानियों में विकास-क्रम की व्याख्या की आवश्यकता अब नहीं रही। इसके स्थान पर कहानी में व्यंजना आ गयी है, जो कहानी में सर्वत्र व्याप्त मिलेगी। उदाहरण में लिए हम विकास के इन अवस्था-क्रमों को 'कफन' नामक कहानी में देख सकते हैं।

(१) परिचय और घटना की तैयारी : "झोपड़ी के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे अलाव के सामने चुपचाप बैठे हैं और अन्दर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव पीड़ा से पछाड़ खा रही थी।········घीसू ने कहा—मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख आ। माधव चिढ़कर बोला—मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती? देखकर क्या करूँ?

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम घीसू एक दिन काम करता, तो तीन दिन आराम। माधव इतना कामचोर था कि आध घंटे काम करता, तो घंटे-भर चिलम पीता। इसीलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी।"[1]

(२) उत्तेजक घटना : "सबेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा तो उसकी स्त्री ठंडी हो गयी थी। माधव दौड़ा हुआ घीसू के पास आया, फिर दोनों जोर-जोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। मगर ज्यादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफन और लकड़ी की फिक्र करनी थी। एक घंटे में घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी

१. कफन और शेष रचनाएँ, कफन, पृ० १, २।

रकम जमा हो गयी। कहीं से अनाज मिला; कहीं से लकड़ी। और दोपहर को घीसू बाजार से कफन लाने चला, इधर लोग बाँस काटने लगे।"[१]

(३) घात-प्रतिघात : "बाजार में पहुँचकर घीसू बीच में बोला—लकड़ी तो उसे जलाने भर को मिल गयी है—क्यों माधव ?

माधव बोला—हाँ लकड़ी तो बहुत है, अब कफन चाहिए। तो चलो कोई हलका-सा कफन ले लें, हाँ और क्या ? लाश उठाते-उठाते रात हो जायगी। रात को कफन कौन देखता है।

कैसा बुरा रिवाज है कि जीते जी तन ढाकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।

कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है। और क्या रखा रहता है ? यही पाँच रुपये पहले मिले होते तो कुछ दवा-दारू कर लेते। दोनों एक दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज की दूकान पर गये, कभी उस दूकान पर। तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गयी।"[२]

चरमसीमा

इस सम्बन्ध में इस काल की प्रतिनिधि कहानियों में दो विशेषताएँ स्पष्ट हैं। मूलतः यहाँ की कहानियों की चरमसीमाएँ मनोवैज्ञानिक अनुभूति के सत्य पर प्रतिष्ठित हुई हैं। फलतः ये चरमसीमाएँ नितान्त कलात्मक हुई हैं। इनमें किसी भी तरह का उपसंहार या उपदेश नहीं जोड़ा गया है। कफन की चरमसीमा इसका स्पष्ट उदाहरण है।

"तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुँचे और जैसे किसी पूर्व-निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गये। वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा—साहु जी, एक बोतल हमें भी दे देना। इसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछलियाँ आयीं और दोनों बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे। कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गये।

घीसू बोला—कफन लाने से क्या मिलता ? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे। लोग पूछेंगे नहीं ? कफन कहाँ है ?

घीसू हँसा—अबे कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गये। बहुत ढूंढ़ा मिले

---

१. कफन और शेष रचनाएँ, कफन, पृ० ८, ९।

२. कफन और शेष रचनाएँ, कफन, पृ० १०।

नहीं। लोगों को विश्वास तो न आयेगा, लेकिन फिर वही रुपये देंगे। और दोनों खड़े होकर गाने लगे।

'ठगिनी क्यों नैना झमकाए।''''ठगिनी''''

फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बनाये, अभिनय भी किए। और आखिर नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।''

उपर्युक्त चरमसीमा का आधार न कोई घटना है, न कोई संयोग, बल्कि यह चरमसीमा मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। फलत: ऐसी चरमसीमाओं का विस्तार इतना फैल जाता है, नहीं तो एक पंक्ति में चरमसीमा प्रतिष्ठित हो जाती।

शैली के सामान्य पक्ष की दिशा में यहाँ और भी विकास हुआ है। विकास-काल में प्राय: छ: प्रकार की विभिन्न शैलियों की कहानियाँ मिली हैं। उत्कर्ष-काल में आकर उन छ: के अतिरिक्त और भी कुछ नयी शैलियों की कहानियाँ आयी हैं।

(क) डायरी शैली से लिखी हुई—जैसे, 'पंडित मोटेराम की डायरी'।

(ख) पत्रात्मक शैली में लिखी हुई—जैसे, 'दो सखियाँ'।

(ग) चिन्तन और पत्रों के संयोग से—जैसे, 'कुसुम'।

कहानी की इन शैलियों के अतिरिक्त उत्कर्ष-काल की प्रतिनिधि-कहानियों से परिस्थिति चित्रण और अवस्था-वर्णन का स्तर बहुत कलात्मक हो गया है। शैली में व्यंजना, वातावरण प्रस्तुत करने वाले वर्णन तथा चित्रण की रेखाएँ काफी साफ हो गयी हैं। वे सीधी तिरछी-टेढ़ी होकर परिस्थितियों के अन्तराल में बैठकर वर्णन उपस्थित करने लगी हैं। फलत: तमाम वर्णनों और चित्रणों में प्रभविष्णुता आ गयी है। अवस्था-वर्णनों में बाह्य जगत् के चित्रण के साथ वस्तुस्थिति की आन्तरिक अभिव्यक्ति बिल्कुल साफ हो आयी हैं, जैसे 'पिसनहारी का कुवाँ' में एक बालिका का अवस्था-चित्रण इतना सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक है, बालिका की वह भोली, दीन, याचनामय सतृष्ण छवि देखकर उसका मातृ-हृदय मानो सहस्र नेत्रों से रुदन करने लगा था। उसके हृदय की सारी शुभेच्छाएँ,सारे आशीर्वाद, सारी विभूति, सारा अनुराग मानो उसकी आँखों से निकलकर उस बालिका को उसी भाँति रंजित कर देता था, जैसे इंदु का प्रकाश पुष्प को रंजित कर देता है। पर उस बालिका के भाग्य में मातृ-प्रेमी के सुख न बदे थे।''[1]

दृश्य और छवि-वर्णनों में प्रेमचन्द ने विकास-काल ही में बहुत सफलता प्राप्त कर ली थी। उनमें इस दृष्टि से चित्रात्मकता तथा अत्यन्त सूक्ष्मता से तथ्यों की अभिव्यक्ति में कमाल हासिल हो गया था। यहाँ उनकी लेखनी में और तीव्रता, जोर और विश्वास आ गया है। अब उनके वर्णनों में रूप, प्रतीक और उपमाओं के सहज संयोग

१. मानसरोवर : भाग ५, पिसनहारी का कुआँ, पृष्ठ २००।

होने लगे हैं। इन रेखाओं में सुन्दर उभार आ गया है, और उस पर कल्पना तथा भिन्न रंगों के संयोग का सुन्दर अनुपात आ गया है। इसके उदाहरण हमें इस काल की सब प्रतिनिधि कहानियों में मिलेंगे। 'लैला' नामक कहानी में लैला के रूप-छवि का वर्णन "लैला के रूप-लालित्य की कल्पना करनी हो तो उषा की प्रफुल्ल लालिमा की कल्पना कीजिए, जब नील गगन स्वर्ण-प्रकाश से रंजित हो जाता है। बहार की कल्पना कीजिए बाग में रंग-रंग के फूल खिलते हैं और बुलबुलें गाती हैं। लैला के स्वर-लालित्य की कल्पना करनी हो तो—घंटों की अनवरत ध्वनि की कल्पना कीजिए जो निशा की निस्तब्धता में ऊँटों की गर्दनों में बजती हुई सुनाई देती हैं।"[1] यहाँ छवि-वर्णन अभिधात्मक शैली में न होकर पूर्णतः ध्वन्यात्मक और व्यंजनात्मक शैली में हुआ है। यहाँ की रेखाएँ उपमा, कल्पना, व्यंजना और विभिन्न रंगों में डूबकर सम्पूर्ण चित्र को उभार रही हैं। यही उत्कर्ष-काल की कहानियों की विशेषता और पहचान है।

दृश्य-वर्णनों में भी कल्पना-संकेत और व्यंजना से ही उनकी रेखाएँ उभारी गयी हैं, जैसे "सामने चंद्रमा के मलिन प्रकाश में ऊँची पर्वत-मालाएँ अनन्त के स्वप्न की भाँति गम्भीर, रहस्यमय, संगीतमय, मनोहर मालूम होती हैं। इन पहाड़ियों के नीचे जलधारा की एक रेखा ऐसी मालूम होती थी मानो उन पर्वतों का समस्त संगीत, समस्त गांभीर्य, सम्पूर्ण रहस्य इसी उज्जवल प्रवाह में लीन हो गया।"[2]

कथोपकथन

कथोपकथन की दिशा में विकास-काल की प्रतिनिधि-कहानियों में उत्कृष्ट ढंग के कथोपकथन के उदाहरण मिले हैं। फलतः शैली की दृष्टि से उसमें और विशेषता लाना और क्या हो सकता है। यह बात और है कि प्रेमचन्द के कथानकों में अधिक व्यंग, वाक्पटुता, सूक्ष्मता और ईमानदारी आ गयी है। कथोपकथन से कथोपकथन का निकलना, एक वाक्य का दूसरे वाक्य का पृष्ठभूमि बन जाना यहाँ के कथोपकथनों की विशेषता है। इस काल की प्रतिनिधि कहानियाँ, जैसे 'कफन', 'गुल्ली-डंडा', 'पूस की रात', 'मिस पद्मा', 'नशा', 'कामना तरु', 'लैला', 'कुसुम' आदि में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं, जैसे कफन में—

"घीसू बोला—कफन लगाने से क्या मिलता है? आखिर जल ही तो जाता है। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानो देवताओं को अपनी निस्पृहता का साक्षी बना रहा हो—दुनिया का दस्तूर है नहीं तो लोग बांभनों को हजारों रुपये

१. मानसरोवर : भाग ३, लैला, पृष्ठ १४८।
२. मानसरोवर : भाग ५, सुहाग का शव, पृष्ठ २०३।

क्यों देते। कौन देखता है, परलोक में मिलता है कि नहीं। बड़े आदमियों के पास धन हैं फूँकें। हमारे पास फूँकने को क्या है ?

लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे ? लोग पूछेंगे नहीं—कफन कहाँ है ?

घीसू हँसा—अबे कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढ़ा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आएगा, लेकिन वही देंगे रुपये।"[1]

वैसे इस काल की एकाध कहानी ऐसी भी है जो विशुद्ध ढंग से कथोपकथनात्मक है। उनका प्रारम्भ, विकास, अंत तीनों कथोपकथनों से ही हुआ है, जैसे—'जादू' आदि में।

लक्ष्य और अनुभूति

विकास-काल में प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के लक्ष्य के सम्बन्ध में कहा था—'हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है क्योंकि कुछ देर के लिए तो हमें इन कुत्सित व्यवहारों से अलग रहना चाहिए, नहीं तो साहित्य का मुख्य उद्देश्य ही गायब हो जाता है।"[2]

उत्कर्ष काल में आकर उनकी कहानियों के लक्ष्य में आमूल परिवर्तन हो गया—"वहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं, वरन् उसके चरित्र का एक अँग दिखाना है। यह परमावश्यक है कि हमारी कहानी के जो परिणाम या तत्व निकलें वह सर्वमान्य हों और उसमें बारीकी हो।"[3]

अतएव अपने-अपने लक्ष्यों के कारण क्रमशः विकास-कास की कहानियों को प्रायः घटना, संयोग तथा द्विपक्षता की ओर बढ़ना पड़ा और उत्कर्ष-काल की कहानियों को मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों की ओर। 'कफन', 'नशा', 'पूस की रात', 'मिस पद्मा', 'कुसुम' आदि कहानियाँ मनोवैज्ञानिक यथार्थ पर लिखी गयी हैं। प्रेमचंद को गरीबी, शोषण और पूस की रात की ठंडक की अनुभूति थी। उन्होंने उसी अनुभूति की प्रेरणा से 'कफन' और 'पूस की रात' के कथासूत्र को गढ़ा और उसमें उन्हीं सच्ची अनुभूतियों को वाणी दे दी अथवा अनुभूतियाँ ही घनीभूत होकर कहानी की रेखाओं में अभिव्यक्त हो गयीं और इन कहानियों के माध्यम से प्रेमचन्द ने मानवता के शाश्वत प्रश्नों को उठाया है। यहाँ इन कहानियों में न कोई बलवती घटना है न संयोग, बल्कि यहाँ प्रेमचन्द ने मानववाद और मानवता के चिरंतन संघर्षों और प्रतिक्रियाओं को मुखरित किया है। अतः यहाँ की कहानियों का लक्ष्य यथार्थ-चित्रण और मानव-हृदय का

१. कफन और शेष रचनाएँ : पृष्ठ ११, प्रारम्भ, संस्करण १९३७।
२. प्रेमप्रसून : भूमिका, पृष्ठ ६।
३. मानसरोवर : प्रथम भाग, भूमिका, पृष्ठ ६।

विश्लेषण है। जो भावनाएँ, जो संघर्ष, जो कुंठाएँ मनुष्य के मन में तैर रही हैं उन्हीं की अभिव्यक्ति इन कहानियों की आत्मा है।

यहाँ प्रेमचन्द की व्याख्या स्वयंसिद्ध हो जाती है : कहानी में कई रसों, कई चरित्रों और कई घटनाओं के लिए स्थान नहीं रहा। वह अब केवल एक आत्मा का, आत्मा की एक झलक का सजीव, स्पर्शी चित्रण है। गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है और सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर होता है।

समग्र रूप में यहाँ आकर हमें प्रेमचंद की कहानियों में वह अन्त, वह वाणी मिलने लगी जो हमारे यथार्थ जीवन का अन्त और वाणी है और इस वाणी तथा अन्त के पीछे वर्तमान आर्थिक, सामाजिक मान्यताओं के प्रति उनकी विद्रोही भावना कार्य कर रही है। इस विद्रोह की चेतना को उन्होंने कभी हलकू के मुख से कहलवाया है, "तकदीर की खूबी है ! मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें" और कभी घीसू के मुख से, "वह न बैकुण्ठ जायगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे जो गरीबों को दोनों हाथ से लूटते हैं, अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं ?" प्रेमचंद ने यहाँ जिन समस्याओं को लिया है उनको मुख्यतः आर्थिक धरातल पर चढ़ाकर देखा है। यहाँ आकर प्रेमचंद ने यह सिद्ध करके देख लिया था कि हमारे जीवन की सारी समस्याओं के पीछे आर्थिक व्यवस्था का मुख्य हाथ है। समस्या के भी प्रसंगों में प्रेमचंद ने यहाँ किसान, मजदूर, सेवक, प्रोफेसर आदि की समस्याओं को लिया है और सबके पीछे आर्थिक कुव्यवस्था के प्रश्नों को मुख्य रूप से उठाया है। विशुद्ध सामाजिक समस्याओं के प्रसंग में उन्होंने मुख्यतः विवाह और प्रेम की समस्याएँ ली हैं जिन पर 'मिस पद्मा', 'कुसुम', 'दो कब्रें', 'अलग्योझा' ऐसी अमर कहानियों की सृष्टि हुई है।

मनोवैज्ञानिक अनुभूति के आधार पर खड़ी हुई कहानियाँ इस काल की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध घटना या संयोग से न होकर मानवता से है। मानवता के चिर प्रश्नों और शाश्वत संवेदनाओं से है।

प्रेमचन्द की कहानियाँ : एक मूल्यांकन

पिछले पृष्ठों में प्रेमचन्द की कहानियों की शिल्पविधि के अध्ययन में, स्वतंत्र रूप से कहानी के दो पक्ष—१. भाव-पक्ष २. भाषा-पक्ष पर प्रकाश नहीं पड़ सका है। वस्तुतः कहानी के रूप-निर्माण में भाव-पक्ष और भाषा-पक्ष ही का सब हाथ है। एक उसकी आत्मा है, दूसरा उसका शरीर या अस्तित्व। इन दोनों का सम्बन्ध भी अन्योन्याश्रित है। भाव, भाषा के ही माध्यम से व्यक्त होता है और भाषा का अमूर्त्त रूप भाव है, और दोनों का कलात्मक समन्वय कहानी या कविता है।

भाव-पक्ष

प्रेमचन्द की कहानी में भाव-पक्ष की जितनी विविधता और गहनता है, उतनी हिन्दी के और किसी कहानीकार में नहीं है। मोटे रूप से इनका भाव-पक्ष ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, व्यक्तिगत स्तरों में फैला हुआ है।

ऐतिहासिक भाव-क्षेत्र में प्रेमचन्द जी बहुत सीमित थे। वस्तुतः उनकी कहानियों के भाव-पक्ष का मुख्य धरातल समाज और व्यक्ति था, इतिहास नहीं। प्रेमचन्द ने अपने प्रारम्भिक काल में 'रानी सारंधा', 'राजा हरदौल', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्नि-कुण्ड', 'जुगुनू की चमक' और 'धोखा' कहानियाँ ऐतिहासिक सामग्री और संवेदनाओं से लिखी थीं। इन कहानियों के भाव-पक्ष में ऐतिहासिक तथ्य ढूंढ़ना बिल्कुल अवैज्ञानिक है। 'रानी सारंधा' की सृष्टि तो निश्चित रूप से इतिहास, कल्पना और लोककथा के संयोग से हुई है। 'राजा हरदौल', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुण्ड', 'जुगुनू की चमक' और 'धोखा' का भाव-पक्ष इतिहास के राजपूत और सामंत-काल से संबंधित है। यहाँ इतिहास की गौरवपूर्ण संवेदनाओं को लेकर उन पर अपनी कल्पना और मर्यादा के पुट से प्रेमचन्द ने इन कहानियों में आदर्श की प्रतिष्ठा पूर्ण सफलता से की है। अतीत के भावों में जहाँ उत्साह और जीवन मिलता है, वहाँ स्वर्ण पृष्ठों से हमें फिर एक बार चैतन्य और जागरूक होना पड़ता है। इसके अनन्तर प्रेमचन्द ने इतिहास के मुसलमान-काल के वैभव, ऐश्वर्य और पतन के भाव-पक्ष से 'शतरंज के खिलाड़ी', 'वज्र-पात', 'दिल की रानी' और 'लैला' कहानियों की सृष्टि की। इन कहानियों में ऐतिहासिक मनोभावों और मर्यादाओं को व्यंग से अधिक प्रतिष्ठित किया गया है, कथा-वर्णन और प्रशंसा से कम। इन ऐतिहासिक कहानियों में पहले की अपेक्षा कलात्मकता अधिक है, भावों का ऐतिहासिक तथ्य कम, अर्थात् इन कहानियों में, कहानी का कला-पक्ष अधिक प्रधान और सबल है, भाव-पक्ष कम।

राष्ट्रीय भाव-धारा पर लिखी हुई कहानियाँ, प्रेमचन्द की सुन्दर और कलात्मक कहानियाँ हैं। प्रेमचंद-काल में राष्ट्रीय भाव-पक्ष का मूल स्रोत कांग्रेस और गाँधीवाद था। राष्ट्रीय भाव के इसी केन्द्र-बिन्दु पर 'सुहाग की साड़ी', 'सत्याग्रह', 'तावान', 'विचित्र होली', 'अनुभव', 'होली का उपहार' 'भाड़े का टट्टू', 'ब्रह्म का स्वांग', 'पंडित मोटेराम शास्त्री' और 'एक आँच की कसर' आदि कहानियाँ लिखी गई हैं। इन कहानियों में राष्ट्रीय भावों का समर्थन व्यंगात्मक शैली से हुआ है। प्रेमचन्द ने जहाँ एक ओर पात्रों के मनोभावों में पैठकर विदेशी वस्त्र का बहिष्कार, नशाखोरी की खिलाफत, खादी और चर्खे का समर्थन और सत्य-अहिंसा की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की है, वहाँ झूठे राष्ट्रवादियों की पोल खोल कर सुन्दर और व्यंगात्मक ढंग से मानव-चरित्र की गंभीरता, निष्कपटता और सत्य का पाठ पढ़ाया है।

इस दिशा में अछूतोद्धार की भी समस्या को प्रेमचन्द ने बहुत कलात्मक ढंग से उठाया है। 'ठाकुर का कुआँ', 'दूध का दाम', 'सद्‌गति' और 'मंदिर' आदि कहानियाँ ऐसे ही भाव-पक्ष पर लिखी हुई कहानियाँ हैं, जहाँ प्रेमचंद ने अत्यन्त समवेदना और व्यंग से अछूतोद्धार की आवाज उठाई है तथा अपनी समस्त राष्ट्रीय भावधारा की कहानियों में गाँधीवाद का समर्थन किया है। ऐसा लगता है, अपने जीवन के अंतिम समय में उनका दृष्टिकोण गाँधीवाद से हटकर अति यथार्थवाद की ओर उन्मुख हो गया था और आर्थिक पराधीनता के युद्ध को ही उन्होंने राष्ट्रीय मोर्चा माना था। 'कफन' इस भावपक्ष का ज्वलंत उदाहरण है।

भाव-पक्ष का सामाजिक धरातल ही प्रेमचन्द की कहानियों का मुख्य धरातल है। इस धरातल से प्रेमचन्द ने समकालीन समाज की प्रायः समस्त इकाइयों और समस्त समस्याओं को लिया है। सामाजिक रीति-रिवाज में जाति, धर्म और परम्परा वह ऊँची दीवार है जहाँ मानवता सदियों से बन्दी है। कोई अछूत के नाम पर बहिष्कृत है और कोई वेश्या या पतित के नाम से। इन भावों के ऊपर प्रेमचन्द की 'सद्‌गति', 'दुर्गा का मन्दिर', 'सफेद खून', वेश्या', 'दो कब्रें', 'आगा-पीछा', 'ठाकुर का कुआँ', 'दूध का दाम' और 'मंदिर' आदि सर्वोत्कृष्ट व्यंगात्मक और संवेदनात्मक कहानियाँ हैं। इन धरातलों से और कभी-कभी आर्थिक और वस्तुवादी धरातलों से भी हमारे समाज में कीचड़ उछाला जा रहा है। कहीं स्त्री-पत्नी का त्याग भटकने के कारण हो रहा है, कहीं दहेज और स्वार्थ के कारण; इन भाव-पक्षों पर प्रेमचन्द की, 'बहिष्कार', 'निर्वासन' 'कुसुम', 'दहेज', और 'मिस पद्मा' आदि उत्कृष्ट कहानियाँ हैं।

वैवाहिक भाव-पक्ष के धरातल से प्रेमचन्द ने पति-पत्नी, विधवा-विवाह, अंतर्जातीय विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह से सम्बन्धित क्रमशः 'शान्ति', 'धिक्कार' 'बालक', 'कायर', 'नरक का मार्ग' और 'सौत' कहानियाँ लिखी हैं। अंधविश्वास, पंडा और साधु-समस्या के विरोध में उन्होंने 'सुभागी', 'केसर', 'भूत', 'मनुष्य का परम धर्म', 'गुरु मन्त्र' और 'बाबा जी का भोग' कहानियाँ पूर्ण व्यंगात्मक शैली में लिखी हैं।

इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द ने सामाजिक भाव-पक्ष में समाज की व्यापक समस्याओं को लिया है। इनके दो वर्ग हैं—घर और संस्था। घर में इन्होंने संयुक्त परिवार की समस्या को बहुत प्रमुखता दी है और संस्था के अंतर्गत किसानी, मजदूरी पेशा, नौकरी, आदि संस्थाओं को लिया है।

घर के अंतर्गत प्रेमचन्द ने केवल छोटे-छोटे टूटते हुए जमींदारों के घर, गरीब किसान-नौकर आदि, निम्न मध्यम वर्ग के घरों को लिया है। इन घरों में संयुक्त परि-

वार का आर्थिक धरातल डाँवाडोल है। आपस में स्नेह-सौहार्द नहीं है, केवल मर्यादा के नाम पर ये टिके हैं।

निम्न कोटि के नौकर-चाकर, गरीब किसान के घरों की स्थिति इतनी चिन्त्य है—"उनके भी कुटुम्ब-परिवार हैं, शादी-गमी, तिथि-त्योहार यह सब उनके साथ लगे हुए हैं। बताओ उनका गुजर कैसे हो। अभी रामदीन चपरासी की घर वाली आई थी, रोते-रोते आँचल भीगा था। लड़की सयानी हो गई है, अबकी उसका ब्याह करना पड़ेगा। ब्राह्मण की जाति, हजारों का खर्च। बताओ उसके आँसू किसके सर पड़ेंगे।"[1]

घर-घर में झगड़ा, कलह, द्वन्द्व चल रहे हैं—कहीं बड़े घर की बेटी को लेकर, कहीं सौत को लेकर और कहीं बूढ़ी खाला की सम्पत्ति को लेकर। घर की दो इकाई, पति और पत्नी, में प्रेम-बलिदान की कमी आ गई है। पत्नी पति से रुपया चाहती है। उसे पति के सम्मान से कोई आकर्षण नहीं। 'सज्जनता का दंड' में पत्नी पति की असफलता, तनज्जुली को सुनकर निर्ममता से व्यंग बाण चलाती है। 'नमक का दरोगा' में पति की हार के उपरांत पत्नी ने कई दिन तक सीधे मुँह से बात नहीं की।

विकास और उत्कर्ष-काल की कहानियों से ऐसे भाव-पक्ष की दिशा में पूर्ण सच्चाई आ गई है। वहाँ 'शंखनाद' आदि कहानियों में संयुक्त परिवार टूट चुके हैं। गृहदम्पति की समस्या में आर्थिक समस्या सबसे ज्यादा उभर आई है।

संस्थाओं से सम्बन्धित समस्याओं में जमींदारी संस्था, पुलिस संस्था, न्यायालय संस्था, पटवारी और कानूनगो संस्था को प्रेमचन्द ने मुख्य रूप से लिया है, अर्थात् प्रेमचन्द ने उन संस्थाओं को लिया है जिनका सम्बन्ध सीधे धरती और गाँव से है। ये समस्याएँ कितनी पतनोन्मुख, अनैतिक और जर्जरित हैं, इनका चित्रण प्रेमचन्द ने अपूर्व सफलता से किया है। आरम्भिक काल की कहानियों के भाव-पक्ष में इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने अहलकारों की ओर से आदर्शवाद भी लादा था, लेकिन आगे की कहानियों में रिश्वतखोरी, शोषण, अत्याचार बिलकुल खुल्लम-खुल्ला बढ़ गया है। क्या जमींदार, क्या न्यायाधीश, क्या कोई भी अहलकार सब शोषक हो गये हैं और किसान, मजदूर, सर्वहारा वर्ग बुरी तरह पिस रहा है। वहाँ न कहीं 'नमक का दरोगा' ऐसा ईमानदार अहलकार है, न 'सज्जनता का दण्ड' ऐसा ऊँचा सरदार है, बल्कि सब का पतन हुआ है।

भाव पक्ष को सामाजिक दिशा में ही भाव-पक्ष का व्यक्तिगत स्वरूप भी पैदा होता है। व्यक्तिगत भाव-पक्ष की दिशा में नैतिकता और प्रेम दो समस्याओं को विशेष ढंग से उठाया गया है। 'विश्वास', 'उद्धार', 'रियासत का दीवान', 'परीक्षा', 'दीक्षा', 'मुक्तिमार्ग', 'सभ्यता का रहस्य', समस्या 'दो बहनें', दुर्गा का मन्दिर','गरीब की हाय',

१. सप्त सरोज: सज्जनता का दंड, पृ० ३४।

'सच्चाई का उपहार', 'रामलीला', 'मंत्र', 'ममता' आदि कहानियों का भाव-पक्ष व्यक्तिगत नैतिकता के धरातल से लिया गया है। यहाँ विभिन्न पहलुओं से नैतिकता और सच्चाई की परीक्षाएँ दी गई हैं।

व्यक्तित्व-धरातल पर प्रेम विभिन्न स्तर से आया है फलतः प्रेम की कितनी कोटियाँ बन गई हैं और सर्वत्र व्यक्ति की परीक्षा हुई है तथा प्रेम के रूपों का निरूपण हुआ है; जैसे 'कामना' में रोमांस के साथ प्रेम, 'सेवा-मार्ग' में प्रेम की अपेक्षा और सेवा में ही सात्विक प्रेम को देखना, 'धर्म-संकट' में स्त्री प्रेम के प्रति विश्वासघात, 'अभिलाषा' में प्रेम के स्थान पर रोमांस की चाह, भाग्य-द्वारा प्रेम का संयोग, 'सौभाग्य के कोड़े', 'कैदी' में प्रेम और विश्वासघात, 'मिस पद्मा' में पाश्चात्य प्रणाली का जीवन और स्वतन्त्र प्रेम, 'घास वाली', 'शिकार', 'दिल की रानी' में प्रेम मनुष्य के चरित्र को गम्भीर बना देता है, ये दृष्टि-बिन्दु लिए गये हैं।

इस तरह प्रेमचन्द की कहानियों के भाव-पक्ष में ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, सामाजिक और व्यक्तिगत भाव-धाराएँ अपने अपूर्व विस्तार और विभिन्नता में यहाँ फैली हुई हैं। इनके धरातलों पर प्रतिष्ठित प्रेमचन्द की कहानियाँ उन भावों के सत्य रूप हैं।

भाषा-पक्ष

प्रेमचन्द अपनी कहानियों में भाव पक्ष के इतने विस्तार और प्रसार में जाने से क्यों और कैसे समर्थ हुए ? इसका एक ही उत्तर है, प्रेमचन्द भाव और अनुभूति के साथ ही साथ भाषा के भी बहुत बड़े बादशाह थे। उनके भाषा पक्ष में अरबी, फारसी फिर इनके संयोग से उर्दू; दूसरी ओर हिन्दी, स्टैण्डर्ड हिन्दी, फिर बोल-चाल की हिन्दी और फिर उर्दू और हिन्दी के सुन्दर समन्वय से हिन्दुस्तानी, ये तीन दिशाएँ अपूर्व हैं। प्रेमचन्द का भाषा-पक्ष इतना समृद्ध और विशाल था कि उसमें पंडित भी अपने अनुकूल भाषा पा जाता था, मोलवी भी, जज-वकील भी और गाँव के गरीब किसान-मजदूर भी। अतः प्रेमचन्द की कहानी की भाषा में कहीं ठेठ उर्दू, कहीं फारसी-मिश्रित उर्दू, कहीं हिन्दी-मिश्रित उर्दू, कहीं हिन्दुस्तानी, कहीं संस्कृत-गर्भित हिन्दी, कहीं प्रान्तीय और प्रादेशिक शब्दों के सुन्दर समन्वय-युक्त भाषा मिलती है अर्थात् प्रेमचन्द वातावरण और पात्र के अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं।

'दिल की रानी' में उर्दू भाषा का रूप—"तुम कहते हो, खुदा ने तुम्हे ऐश करने के लिए पैदा किया है। मैं कहता हूँ, यह कुफ्र है। खुदा ने इंसान को बन्दगी के लिए पैदा किया है और इसके खिलाफ जो कोई कुछ कहता है वह काफिर है, जहन्नुमी है। रसूले पाक, हमारी जिन्दगी को पाक करने के लिए, हमें सच्चा इंसान बनाने के लिए आए थे, हमें हराम की तालीम देने के लिए नहीं। तैमूर दुनिया को इस कुफ्र से पाक कर देने का बीड़ा उठा चुका है। रसूले पाक के कदमों की कसम, मैं बेरहम नहीं

हूँ, जालिम नहीं हूँ, खूँखार नहीं हूँ, लेकिन कुफ्र की सजा मेरे ईमान में मौत के सिवा कुछ नहीं है।"

'रसिक संपादक' में हिन्दी भाषा का रूप—"और कविताएँ तो हृदय की हिलोरें, विश्व-वीणा की अमरतान, अनन्त की मधुर वेदना, निशा का नीरव गान होती थीं। प्रशंसा के साथ दर्शनी उत्कृष्ट अभिलाषा भी प्रकट की जाती थी। यदि कभी आप इधर से गुजरें तो मुझे न भूलिएगा। जिसने ऐसी कविता की सृष्टि की है, उसके दर्शन का सौभाग्य मुझको मिला तो, अपने को धन्य मानूँगा।"

'बेटों वाली विधवा' में, हिन्दुस्तानी भाषा का स्वरूप—"पर ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, उस पर हकीकत खुलने लगी। इस घर में उसकी वह हैसियत नहीं रही जो दस-बारह दिन पहले थी। सम्बन्धियों के यहाँ से न्योते में शक्कर, मिठाई, दही, अचार आदि आ रहे थे। बड़ी बहू इन वस्तुओं को स्वामिनी-भाव से सँभाल-सँभाल कर रख रही थी। कोई उससे पूछने नहीं आता।"

इस तरह प्रेमचन्द भाषा के बहुत बड़े धनी थे। जैसी आवश्यकता होती स्वाभाविकता लाने के लिए वे उसी तरह की भाषा का प्रयोग करते, वैसे प्रेमचन्द की भाषा, हिन्दुस्तानी है—स्वाभाविक बोल-चाल की भाषा की चुस्ती, मुहावरों की सजावट, कहावतों और सूक्तियों के अपूर्व समन्वय से अपना व्यक्तित्व डाल दिया है और इस अनोखी भाषा को लोगों ने 'प्रेमचन्दी भाषा' की संज्ञा दी है।

प्रेमचन्द और आदर्शवाद

प्रेमचन्द के तीनों कहानी-काल में आदर्शवाद के तीन पहलू मिलते हैं। अपने प्रारम्भिक काल में पूर्णतः आदर्शवादी थे। प्रेमचन्द की यह आदर्शवादिता यहाँ कर्त्तव्य, त्याग, प्रेम, न्याय, मित्रता, देश-सेवा आदि कई दिशाओं में प्रतिष्ठित हुई है। अतः आदर्शवादिता की इन्हीं विभिन्न इकाइयों, विभिन्न भाव-भूमियों पर प्रारम्भिक काल की कहानियाँ खड़ी की गई हैं। 'सप्त सरोज', 'नव निधि' और 'प्रेम पचीसी' संग्रह की कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। इस आदर्श भावना को चरितार्थ करने के लिए प्रेमचन्द ने कहानियों में द्विपक्षता—सत् और असत् दो विरोधी पक्षों को प्रतिष्ठित किया है तथा हमेशा असत् पर सत् की जीत दिखाकर आदर्श की प्रतिष्ठा दिखाई है। इसी सत्य के धरातल पर 'बड़े घर की बेटी', 'पंच परमेश्वर', 'नमक का दरोगा', 'उपदेश', 'परीक्षा', 'अमावस्या की रात्रि' और 'पछतावा' आदि कहानियाँ निर्मित हुई हैं तथा यहाँ सर्वत्र, किसी न किसी तरह असत् पर सत् की विजय दिखाई गई है।

विकास-काल में आकर प्रेमचन्द का आदर्शवाद यथार्थ की ओर झुक गया और दोनों के समन्वय से उनकी कहानियों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई। विकास-काल की कहानियों के लक्ष्य बिन्दु को बताते हुए प्रेमचन्द ने स्वयं 'प्रेम प्रसून' की

भूमिका में कहा है—"हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलने की चेष्टा की है।" 'ईश्वरी न्याय', 'महातीर्थ', 'धर्म-संकट', 'बौड़म', 'वैर का अन्त', 'सुहाग की साड़ी', 'मूढ़', 'लालफीता', 'आत्माराम' आदि कहानियों की भाषा-शैली पूर्णतः मनोवैज्ञानिक लक्ष्य लिये हुए यथार्थ पर आधारित है, लेकिन इन सब कहानियों के अन्त किसी न किसी तरह आदर्शोन्मुख हैं या पूर्ण आदर्श पर प्रतिष्ठित हुए हैं। 'सुहाग की साड़ी' में रतन सिंह एक विशुद्ध ढंग के कांग्रेसी हैं। वे सैद्धान्तिक रूप से विदेशी वस्त्रों के विरोधी हैं। गौरा उनकी धर्म-पत्नी साधारण ढंग की मर्यादावादी कुलवधू है, जो अपने सब विदेशी वस्त्र पति के माँगने पर जलाने को देती है, लेकिन अपनी सुहाग की साड़ी छिपा लेती है। गौरा का यह निर्णय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है, क्योंकि इसके पीछे भारतीय नारीत्व और पत्नीत्व दोनों की प्रेरणा और परंपरा की शक्ति है, लेकिन अन्त में गौरा आदर्श में आकर अपनी सुहाग की साड़ी को भी जलाने के लिये दे देती है। 'ईश्वरी न्याय' में मुंशी सत्य नारायन आदि से अंत तक भानुकुँवरि के विरोध में बेईमानी और नीचता करते हैं, लेकिन अंत में वे पूर्ण आदर्शवादी हो निकलते हैं। इनके पीछे कहानीकार न कोई मनोवैज्ञानिक समर्थन ही देता है, न चारित्रिक अंतर्द्वन्द्व हो, बस एकाएक चरित्र आदर्श पर प्रतिष्ठित हो जाता है। वस्तुतः इस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पीछे गाँधीवाद की निश्चित प्रेरणा है। प्रेमचन्द ने जितनी कहानियाँ गाँधीवादी समवेदना को लेकर लिखी हैं वे सब इसके अंतर्गत आती हैं। 'सत्याग्रह' में उन्होंने झूठे सत्याग्रही का चित्रण करके सच्चे सत्याग्रही की कल्पना की है। 'ब्रह्म का स्वांग' में खोखले पति के व्यक्तित्व विश्लेषण से जगती हुई नारी-स्वतन्त्रता की भावना का उन्होंने स्वप्न देखा है। 'महातीर्थ' में तीर्थों की अपेक्षा मानव सेवा को महान दिखाया है। 'जेल' में मृदुला के व्यक्तित्व में असहयोग और गाँधी-सत्याग्रह की ओर सफल संकेत है। 'मैकू' में शराब; ताड़ी आदि नशीली वस्तुओं के परित्याग की ओर आग्रह है।

लेकिन इस काल की कुछ कहानियाँ विशुद्ध यथार्थवाद पर लिखी गई हैं। कहानीकार ने जैसा संसार में जैसा हो रहा देखा है उसका वैसा ही चित्रण उसने अपनी कहानियों में किया है। 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'वज्रपात', 'शान्ति', 'दफ्तरी' आदि कहानियाँ यथार्थवाद के विशुद्ध प्रतीक हैं।

उत्कर्ष काल में आकर प्रेमचन्द का यह यथार्थवादी दृष्टिकोण और भी स्पष्ट हो गया है। 'कफन', 'नशा', 'पूस की रात', 'मिस पद्मा', 'कुसुम' आदि कहानियों में यथार्थता की प्रेरणा तीव्रतम हुई। 'कफन' में जीवन का नग्नतम यथार्थ अट्टहास कर उठा है। न जाने कब के सूखे पिपासित, आशान्वित और दुखी माधव और घीसू जब बुधिया के लिए चन्दे से बाजार में पाँच रुपये का कफन लेने जाते हैं वहाँ एकाएक

अपनी सारी झूठी मर्यादाओं-मान्यताओं को भूल कर अपनी आत्मा की यथार्थतम भूमि पर उतर पड़ते हैं।

इस तरह कहानीकार प्रेमचंद अपनी कहानियों के आरम्भ में विशुद्ध आदर्शवाद लेकर चले थे। उनके विकास-काल में वही आदर्शवाद यथार्थोन्मुख हो गया और उत्कर्ष-काल में प्रेमचंद पूर्ण यथार्थवादी हो गए। इस भाँति किसी एक कहानीकार में आदर्श-यथार्थ का सुन्दर समन्वय और इन दोनों से एकाएक दूर हट कर यथार्थ की प्रतिष्ठा देखना हिन्दी कहानी-साहित्य में एक अनोखी घटना है।

उपसंहार

प्रेमचंद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को एक दृष्टि में देखने से हमें प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी कहानी-साहित्य में सबसे बड़े और कृती व्यक्ति लगते हैं। उनमें हम एक ही बिंदु पर कल्पना, आदर्श, यथार्थ और लोक-मंगल भावना का सुन्दरतम समन्वय पाते हैं।

उनके कहानीकार-व्यक्तित्व-निर्माण से पश्चिम और पूर्व, प्राचीन और आधुनिक कहानी कला के समन्वय की सुन्दरतम प्राणप्रतिष्ठा हुई। पश्चिम के प्रतिनिधि कहानीकार जोला, मोपांसा, चेखव, टालस्टाय, हार्डी, स्टीवेंसन, बाल्जाक, गाल्सवर्दी, बेनेट और हेनरी आदि की कहानियों को उन्होंने पढ़ा था और उनसे कहानी कला सीखी थी तथा उस कहानी-कला में भारतीय आत्म-भाव और युग-मन को इतनी सफलता से पिरोया कि आश्चर्य होता है। फ्रांस का यथार्थवाद और टालस्टाय की आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद इनके व्यक्तित्व-निर्माण के विशिष्ट तत्व थे।

भारत का प्राचीन कथा-साहित्य 'पंचतन्त्र' और 'कथासरित्सागर' के अतिरिक्त उन्होंने अरबी, फारसी से 'दास्ताने अमीर हाम्जा' और 'बुस्ताने ख्याल' को खूब पढ़ा था और इनसे प्राचीन परम्परा की कथा शैली और कहानी-शिल्प को देखा था। पूरब की आधुनिक कहानी-कला की दिशा में टैगोर और आंशिक रूप में प्रभातकुमार जैसे कहानीकारों से प्रभावित हुए थे और उनकी कला से भी कुछ सीखा था, लेकिन अध्ययन की इन सारी श्रेणियों से प्रेमचंद अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व में सबसे महान और सबसे अलग थे। उन्होंने अपनी कहानियों में जिस निजत्व की प्रतिष्ठा की है कि वह हिन्दी कहानी-साहित्य की अमूल्य निधि है।

प्रेमचंद-संस्थान के कहानीकार

पिछले पृष्ठों में प्रेमचन्द की कहानी-कला के अध्ययन से स्पष्ट है कि इनकी शिल्पविधि कुछ मूलगत विशेषताओं से निर्मित हुई है। इस शिल्पगत विशेषताओं में इतनी सहज स्वाभाविक कलात्मक प्रेरणा और प्राणशक्ति रही है कि प्रेमचंद की धारा में प्रायः उनका समूचा युग प्रवाहित हुआ है। विकास-युग के अधिकांश कहानीकार निश्चित रूप से इसी शिल्पविधि के ही प्रकाश में कहानी-साहित्य की सृष्टि करते रहे।

वस्तुतः प्रेमचंद की कहानी-शिल्पविधि की वे मूलगत विशेषताएँ यथाक्रम यों गिनाई जा सकती हैं—कथानक-निर्माण में क्रमबद्धता, इतिवृत्तात्मकता तथा संयोग-घटनाओं की प्रेरणा, चरित्र अवतारणा में प्रायः यथार्थ और विरोधी तत्वों का समावेश, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा में मनोवैज्ञानिकता इनका मुख्य धरातल रहा है। शैली के व्यापक प्रकाश में प्रेमचंद की कहानियों का प्रारम्भ, विकास और चरमसीमा का निर्माण क्रमशः भूमिकात्मक और परिचयात्मक, घटनात्मक तथा वर्णनात्मक होता है। चरमसीमा सोद्देश्यता तथा संयोग-घटनाओं के धरातल में आती है, लेकिन इनकी स्वाभाविकता पर प्रायः शंका नहीं उपस्थित की जा सकती।

शैली की सामान्य दिशा में प्रेमचंद की कहानियाँ प्रायः वर्णनात्मक-कथात्मक ही हैं, यद्यपि उन्होंने अन्यान्य शैलियों को भी अपनाया है। प्रेमचंद के समूचे कहानी-साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि उन्होंने कभी भी जागरूक होकर कहानी शिल्पविधि को उतना महत्व नहीं दिया है, जितना कि इसके भाव-पक्ष को अर्थात् विशुद्ध शैली की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियाँ और उनकी शिल्पविधि उस राजपथ की भाँति है, जिससे कोई भी बेखटक सहज रूप से लक्ष्य तक पहुँच सकता है। लक्ष्य और अनुभूति की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियों की सृष्टि सदैव एक निश्चित लक्ष्य और सोद्देश्यता को लेकर हुई है। अनुभूति, वस्तुतः प्रेरणा-तत्व में न आकर चरित्र-चित्रण तथा चरित्र-निर्माण में प्रयुक्त हुई है। अतएव शिल्पविधि के इन तत्वों और अंगों से प्रेमचन्द की कहानी-कला के एक स्वतंत्र संस्थान की प्रतिष्ठा हुई है, और इस संस्थान में, प्रभाव प्रेरणा आदि की दृष्टि से, हिन्दी के अधिकांश कहानीकारों को शिल्पगत दिशा और अभिव्यक्ति का माध्यम मिला है।

विश्वम्भर नाथ जिज्जा

भाव-पक्ष की दृष्टि से जिज्जा की कहानियाँ 'प्रसाद'-संस्थान में आती हैं, लेकिन विशुद्ध शिल्प की दृष्टि से इनकी कहानियाँ प्रेमचन्द-संस्थान में ही आती हैं। इनकी प्रारम्भिक कहानियों में 'विदीर्ण हृदय'[1] तथा विकास की कहानियों में 'परदेशी'[2] आदि कहानियाँ ली जा सकती हैं। 'विदीर्ण हृदय' की कथा-वस्तु का निर्माण दो सखियों के संयोगात्मक मिलन से होता है। न जाने कब की बिछड़ी हुई सखी अपनी बीती हुई करुण कहानी कहती है और अन्त में विश्राम करके मर जाती है तथा अपनी सखी को विदीर्ण हृदया के रूप में तड़पती छोड़ जाती है। 'परदेशी' में विधवा जमुना के दरवाजे पर संयोगवश एक परदेशी, काशी, सूर्य-ग्रहण-स्नान के सम्बन्ध में आकर टिकता है।

१. इन्दु, १९१५ ई०, कला ६, खंड २, किरण १।
२. मधुकरी, प्रथम खण्ड।

जमुना भाववश उसे अपना हृदय दे डालती है, लेकिन एक दिन परदेशी एकाएक न जाने कहाँ चला जाता है, फिर कभी नहीं लौटता। इस तरह ये दोनों कहानियाँ वर्णनात्मक ढंग से कही गई हैं। इनके विकास-क्रम पर संयोग-घटना के तत्व स्पष्ट हैं तथा इनकी सोद्देश्यता भी उभरी हुई है।

जी० पी० श्रीवास्तव

हिन्दी में हास्यरस के कहानीकार जी० पी० श्रीवास्तव की कहानियाँ 'इन्दु' और 'गल्पमाला' के माध्यम से आईं। 'इन्दु' की 'पिकनिक' कहानी इनकी प्रारम्भिक कला के उदाहरण में रखी जा सकती है, जिसमें इन्होंने वर्णनात्मकता, घटनाओं, संयोगों द्वारा रोचकता और हास्य लाने का प्रयत्न किया है। 'गल्पमाला' की दो कहानियाँ, 'मैं न बोलूँगी'[1] और 'झूठमूठ'[2] में केवल घटनाओं के सहारे हास्य की निष्पत्ति हुई है। ये दोनों कहानियाँ इनकी विकसित कला के उदाहरण हैं। आगे चलकर 'लम्बी दाढ़ी' कहानी संग्रह में इनकी कला का पूर्ण प्रतिनिधित्व हो गया है, लेकिन इन समस्त कहानियों में सर्वथा संयोगों, विविध विरोधी परिस्थितियों के निर्माण में अवांछनीय कटाक्ष और अतिरंजित वर्णनों, प्रसंगों की अवतारणा हुई है। फलतः इनकी कला का स्तर कुछ गिर गया है। शिष्ट हास्य का सर्वथा अभाव रह गया है। इसका सबसे बड़ा कारण इनकी चरित्र-चित्रण-कला का दोष है। इन्होंने प्रायः टाइप चरित्रों, अप्रासंगिक और अस्वाभाविक प्रसंगों, परिस्थितियों में चलकर कहानी में हास्य, विनोद लाने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि इनके चरित्रों से हमारा न तो सामान्यीकरण हो पाता है, न हममें उनके प्रति संवेदना या सहानुभूति ही उत्पन्न हो पाती है। इस दिशा में प्रेमचंद की कुछ हास्य-प्रधान कहानियाँ; जैसे 'बूढ़ी काकी' और 'मोटेराम शास्त्री' आदि बहुत सफल कहानियाँ हैं।

राजा राधिकारमण सिंह

भाषा, शैली और वर्णन-प्रणाली में राजा राधिकारमण सिंह में बहुत प्रवाह है। शिल्पविधान में इनकी कहानियाँ प्रेमचन्द की कला से बहुत प्रभावित हैं। ये प्रेमचंद के आरम्भ काल से आज तक बराबर कहानियाँ लिखते आ रहे हैं, लेकिन कहानियाँ अपनी शिल्पविधि में प्रेमचन्द-संस्थान से बाहर नहीं जा सकी हैं। इसके उदाहरण में 'गाँधी टोपी' और 'कुसुमांजलि' कहानी-संग्रह से कहानियाँ ली जा सकती हैं। कथा-वस्तु के निर्माण में इन्होंने घटनाओं और इतिवृत्तात्मकता का बहुत सहारा लिया है। फलतः इनकी कहानियाँ बहुत लम्बी, विस्तृत हो गई हैं, जैसे 'गाँधी टोपी' कहानी ४५

१. हिन्दी गल्पमाला, भाग १, अंक २।
२. हिन्दी गल्पमाला, भाग २, अंक ४।

पृष्ठों की कहानी है। इनकी कहानियों की सोद्देश्यता और आदर्शवादिता सर्वत्र स्पष्ट है। 'दरिद्र' नारायण', 'इस हाथ से दे उस हाथ से ले', 'बिजली', 'मरीचिका' आदि कहानियाँ उसके उदाहरण हैं। निर्माण शैली में, कहानियों में बार-बार घटना-चक्रों का सहारा लिया गया है। इनकी कहानियों का प्रेरणा बिन्दु प्रायः सामाजिक समस्याएँ तथा सामाजिक स्थितियाँ रही हैं। इन्हीं की संवेदना से इनकी कहानियों का निर्माण होता है, जिनमें स्वभावतः वर्णनात्मकता, घटना-क्रमों को मुख्य साधन बनाना पड़ा है।

विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'

कौशिक जी की कहानी-कला में पूर्ण रूप से प्रेमचन्द-कला का प्रतिनिधित्व हुआ है। इसका अध्ययन हमें इनकी दो प्रतिनिधि कहानियों 'वह प्रतिमा' और 'ताई' के शिल्पविधान में मिल सकता है। 'वह प्रतिमा' और 'ताई' दोनों कहानियों की संवेदनाएँ पारिवारिक धरातल से ली गई हैं। इनमें पति-पत्नी दो चरित्रों को लिया गया है, लेकिन 'वह प्रतिमा' में जहाँ पति-पत्नी के सहज प्रेमनिष्ठा की समस्या है, वहाँ 'ताई' में पति-पत्नी में दूसरे के बच्चे के प्रति स्नेह-वात्सल्य की समस्या है। 'वह प्रतिमा' में कथानक-निर्माण चमेली और उसके पति के वैवाहिक जीवन को लेकर कथासूत्र के रूप में आरम्भ होता है, कथानक का विकास उनके गृहस्थी के विविध क्षेत्रों में होकर अंत में चमेली की मृत्यु पर जाकर समाप्त होता है। शैली के व्यापक रूप में कहानी की निर्माण-शैली दोनों में दो तरह की है। 'वह प्रतिमा' में प्रथमपुरुष में कहानी की अभिव्यक्ति हुई है तथा 'ताई' अन्यपुरुष शैली में, लेकिन दोनों कहानियाँ सर्वथा वर्णित और कथित हैं, व्यंजित नहीं। 'ताई' कहानी की समस्या अपेक्षाकृत मनोवैज्ञानिक समस्या है। रामजीदास अपने भतीजे मनोहर को शिशुवत् और पुत्रवत् प्यार देते हैं। इससे उनकी पत्नी रामेश्वरी को स्पर्द्धा होती है। यद्यपि वह भी अपने अवचेतन रूप में उसे मातृत्व और स्नेह की भावना देती रहती है, लेकिन इस पर ईर्ष्या-जलन की भावना का एक मोटा पर्दा डाले रहती है, फलतः संपूर्ण कहानी में स्पर्द्धा और सहज स्नेह का अंतर्द्वन्द्व होता रहता है, लेकिन शैली के सामान्य पक्ष में इस मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वन्द्व की भी अभिव्यक्ति वर्णनों द्वारा हुई है अर्थात् कहानी के विकास और निर्माण के लिये सब कुछ कहानीकार को ही कहना पड़ता है, वस्तुतः दोनों कहानियों में यथार्थ और आदर्श का संघर्ष सफलता से व्यक्त हुआ है और इन-दोनों कहानियों के अंत में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा भी स्पष्ट है। अतएव ये कहानियाँ एक ओर इतिवृत्तात्मक हुई हैं, दूसरी ओर इनका विकास संयोगों और कार्यों के माध्यम से हुआ है। कहानी का विकास-भाग और चरमसीमा के उपरान्त भी सोद्देश्यता भूमिका और उपसंहार के रूप में बार-बार उभर आई है। 'वह प्रतिमा' और 'ताई' दोनों में दो विरोधी भाव-धारा के

चरित्रों को अंत में आदर्शवादी दिखाया गया है। दोनों का आपस में समन्वय सिद्ध किया गया है। वस्तुतः इसी सोद्देश्यता की प्रेरणा से इनकी कहानी-कला में उपर्युक्त सभी तत्व आए हैं।

पंडित ज्वालादत्त शर्मा

पंडित ज्वालादत्त शर्मा की कहानियों में इनका कथाशिल्पी व्यक्तित्व समाज-सुधारक और जीवन-संघर्षों के चित्रीकरण में स्पष्ट है। इनकी समस्त कहानियाँ मुख्यतः वर्णनात्मकता के माध्यम से आई हैं जिसे हम शैली की दृष्टि से ऐतिहासिक शैली कह सकते हैं।

कहानियों के विकास तथा चरमसीमा में संयोगों और दैवी घटनाओं का उपयोग अप्रत्याशित ढंग से हुआ है। इन दोनों तत्वों के सहारे इन्होंने अपनी कहानियों में यथार्थ-संघर्ष और सामाजिक परिस्थितियों, रूढ़ियों के सम्मुख आदर्श की प्रतिष्ठा की है। 'विधवा', 'अनाथ बालिका' और 'दर्शन' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ इसके उदाहरण हैं।

गोविन्दवल्लभ पन्त

गोविन्दवल्लभ पन्त अपने भावात्मक पक्ष में वस्तुतः प्रसाद के व्यक्तित्व के समीप हैं। 'जूठा आम' और 'मिलन मुहूर्त' शीर्षक कहानियों में पन्त जी की कवित्व-पूर्ण शैली और भावुकता-प्रदर्शन से वातावरण बहुत काव्यमय हो गया है, लेकिन शिल्पविधि की दृष्टि से पन्त जी की कहानियाँ प्रेमचन्द-संस्थान के अंतर्गत आती हैं। 'जूठा आम' में कहानी के कथानक का विकास दैवगत संयोग से होता है। माया और कहानी के 'मैं' में सच्चा आकर्षण है, एक तरह से वे दोनों अव्यक्त ढंग से एक-दूसरे से प्रेम कर रहे हैं। एक दिन माया आम चूस रही थी। अचानक उसके मुँह से आम चूसते-चूसते उसकी गुठली मुँह से फिसल गई। माया को एकाएक यह ध्यान हुआ कि वह गुठली 'मैं' के चौके में गिरेगी। फलतः माया उसे पकड़ने के लिए दौड़ती है और गुठली के साथ वह भी चौके में गिरकर मर जाती है। 'मैं' उस गुठली को माया के प्रेम का प्रतीक मानकर, अपने जीवन से वैराग्य ले लेता है। कालान्तर में उसी गुठली द्वारा एक पेड़ खड़ा होता है और वह उसकी छाया तथा फल के सन्तोष से अपना जीवन व्यतीत करता है। कहानी सोद्देश्य लिखी गई है और कहानी के निर्माण में आदर्शवादिता का भी पुट स्पष्ट है। 'मिलन मुहूर्त' की संवेदना ऐतिहासिक है। इसमें उपगुप्त और वासवदत्ता को लेकर प्रेम की संवेदना, पूर्ण इतिवृत्तात्मक ढङ्ग से, कहानी में अभिव्यक्त हुई है। 'तैमूर लंग', 'सबसे बड़ा रत्न' आदि कहानियाँ भी इनकी कहानी-कला की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

सुदर्शन

प्रेमचन्द-संस्थान में सुदर्शन वस्तुतः प्रमुख प्रतिनिधि कहानीकार हैं। प्रेमचन्द की भाँति इनका भी उदय उर्दू से हुआ है। फलतः इनकी भी कला में स्वाभाविक भाषा-शैली, यथार्थ चरित्र-चित्रण और कहानी में वर्णनात्मकता के साथ ही विश्लेषण-तत्व भी सफलता से चरितार्थ हुए हैं। इनकी कहानी के धरातल में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और चरित्रों में व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा, दोनों विशिष्ट ढंग से प्रतिफलित हुए हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद संस्थान में प्रेमचंद के बाद सुदर्शन को सबसे अधिक लोकप्रियता मिली। इतना ही नहीं, बल्कि इन्होंने प्रेमचंद जी को कहानी-कला की धारा में अपनी ओर से प्राणशक्ति भी दी है। शिल्पविधि के प्रकाश में इन्होंने कई ढंगों से कहानियाँ लिखीं।

इनकी कुछ कहानियाँ मुख्यतः आदर्श-प्रतिष्ठा के धरातल से लिखी गई हैं, जिनमें कथानक यथार्थ जीवन के पहलुओं को छूता हुआ आगे बढ़ता है, आदर्श से परस्पर द्वन्द्व होता है तथा अन्त में आदर्श की स्थापना होती है। इसमें दो विरोधी भावधारा के चरित्रों का विश्लेषण, इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। 'हार की जीत' इस वर्ग की कहानियों की प्रतिनिधि कहानी है। कुछ कहानियाँ ऐतिहासिक संवेदना को लेकर निर्मित हुई हैं, जिसमें एक ओर राजा-महाराज, सम्राट आदि चरित्रों की कहानी मिलती है, दूसरी ओर उनके प्रकाश में सामान्य चरित्रों की विशिष्ट कहानियाँ मिलती हैं। पहली प्रकार की कहानियाँ अपने निर्माण और विकास में बहुत लम्बी कहानियाँ मिलती हैं। इन्हें विभिन्न प्रकरणों में विकसित लघु उपन्यास कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी; जैसे 'पत्थरों का सौदागर', 'फरऊन का प्रेम' ये दोनों कहानियाँ क्रमशः १८ व १२ अनुच्छेदों में समाप्त हुई हैं। ऐसी कहानियों की वर्णनात्मकता ही इनकी कलात्मक विशेषता है तथा मानव-हृदय की चिरंतर सत्यता के चित्र इनके भावात्मक आकर्षण हैं। 'एथेन्स का सत्यार्थी' इसका सुन्दर उदाहरण है। सुदर्शन की अधिकांश कहानियाँ दैनिक जीवन की विविध इकाइयों के धरातल से लिखी गई हैं। ऐसी कहानियों में व्यक्ति और समाज की सामान्य से सामान्य, नगण्य घटनाओं, समस्याओं तथा जीवन की विरोधी परिस्थितियों को अभिव्यक्ति मिलती है। वस्तुतः इन धरातलों से लिखी हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत छोटी और सूक्ष्म मनोविश्लेषण की ओर अग्रसर हुई हैं। इनमें कथावस्तु, चरित्र और उद्देश्य तीनों का सुन्दर तादात्म्य हुआ है। 'सूरदास', 'मास्टर', 'आत्माराम', 'संन्यासी' और 'हेर-फेर' इस वर्ग की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द-संस्थान के विकास में इन्होंने कुछ नये शिल्पगत प्रयोग भी किये हैं। विभिन्न पात्रों के मुख से आत्म-कथन करा कर तथा कहानी की विभिन्न घटनाओं, विकास-क्रमों आत्म-वर्णनों से सम्पूर्ण कहानी गठित-निर्मित होती है। इस कहानी-शिल्प में चरित्रों का आत्म-विश्लेषण, कथानक की सूक्ष्मता, कहानी की समस्या में द्वन्द्व का प्राधान्य आदि कलात्मक

विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। 'कवि की स्त्री' और 'दो मित्र' ये इस शिल्पविधान की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

वृन्दावन लाल वर्मा

प्रेमचन्द ने अपनी 'नवनिधि' की ऐतिहासिक कहानियों द्वारा जिस शिल्पविधान और आदर्शवादिता की प्रतिष्ठा की थी, उसका पूर्ण विकास वृन्दावन लाल वर्मा की कहानी-कला द्वारा हुआ। वर्मा जी की प्रारम्भिक कहानियाँ 'राखीबन्द भाई'[1] तथा 'तातार और एक वीर राजपूत' 'सरस्वती' के माध्यम से विशुद्ध द्विवेदी-युगीन कहानियाँ हैं। इन कहानियों की कला पूर्ण रूप से प्रेमचन्द की ऐतिहासिक कहानियों 'राजा हरदौल', 'रानी सारंधा' और 'मर्यादा की वेदी' आदि से मिलती है। वस्तुतः इसी कला का विकास उत्तरोत्तर वर्मा जी की ऐतिहासिक कहानियों में होता गया तथा इसका चरम विकास आगे चल कर वर्मा जी के 'कलाकार का दण्ड', 'जैनावादी बेगम', 'शेरशाह का न्याय', 'सौन्दर्य-प्रतियोगिता' और 'खजुराहो की दो मूर्तियाँ' आदि ऐतिहासिक कहानियों में मिलता है। इन समस्त कहानियों की शिल्पविधि पूर्ण रूप से प्रेमचन्द-संस्थान के अन्तर्गत है अर्थात् वही वर्णनात्मकता, वही इतिवृत्तात्मकता, वही विरोधी चरित्रों की अवतारणाजन्य द्वन्द्व और अन्त में आदर्श की प्रतिष्ठा।

यहाँ यह अवश्य उल्लेखनीय है कि वर्मा जी ने अपनी ऐतिहासिक कहानियों में प्रेमचन्द से बहुत आगे बढ़ कर ऐतिहासिक तथ्य और उसकी वस्तुनिष्ठा का प्रतिपालन अपूर्व ढंग से किया है। इन कहानियों में 'प्रसाद' की भाँति ऐतिहासिक वातावरण, केवल कल्पना-भावुकता और कवित्वपूर्ण शैली से नहीं किया गया है, बल्कि इसके वातावरण के पीछे कहानीकार ने सर्वत्र ऐतिहासिक तथ्य, खोज और स्वाभाविकता को अपनी कला का साधन बनाया है। अतएव इन कहानियों की कला में ऐतिहासिक संवेदनशीलता पूर्ण सफलता से व्यक्त हुई है। इधर वर्मा जी सामयिक समस्याओं तथा जीवन की प्रतिदिन की संवेदनाओं को लेकर सफल सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं। 'शरणागत', 'कटा-फटा झंडा', 'तिरंगे वाली राखी', 'हमीदा', 'मालिश', 'कौड़ी' और 'अपनी बीती' आदि कहानियाँ इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन कहानियों की शिल्पविधि ऐतिहासिक कहानियों से बिल्कुल भिन्न है। इनमें कथानक न वह विस्तार है, न इतिवृत्तात्मकता। चरित्रों के मनोविश्लेषण की ओर सफल प्रयत्न हुआ है, तथा ये कहानियाँ निश्चित रूप से चरित्र-प्रधान हो गई हैं। कहानियों की निर्माण-शैली में वर्णनों, घटनाओं की अपेक्षा कथोपकथनों, व्यंजनाओं तथा मनोवैज्ञानिक आरोह-अवरोह को साधन बनाया गया है। चरमसीमा भी संयोग-घटनाओं

१. सरस्वती : भाग १०, सितम्बर १९०९, संख्या ९।

से हट कर प्रायः स्वाभाविक स्थितियों पर आधारित हुई है, लेकिन इन कहानियों में भी वर्मा जी की आदर्शवादिता, चरित्र के प्रति महान् निष्ठा तथा मानवता की विराट भावना सर्वत्र व्यंजित है। इन कहानियों की भी सृष्टि में निश्चित रूप से सोद्देश्यता और आदर्शवादिता दो मुख्य प्रेरणाएँ हैं।

प्रेमचन्द की कहानी-कला की विकास-कालीन धारा में, आगे चलकर हिन्दी में, अनेक कहानीकार आए जिनकी कहानीकला के मुख्य धरातल में व्यक्तिगत, सामाजिक समस्या अथवा घटना-विशेष, मानसिक प्रवृत्ति-विशेष आदि इकाइयाँ मूल रूप से आती हैं। इन कहानीकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', ऋषभचरण जैन, सत्य जीवन वर्मा, श्रीराम शर्मा 'राम', अन्नपूर्णानन्द तथा परिपूर्णानन्द वर्मा, कृष्णानन्द, मोहनलाल महतो 'वियोगी' तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार मुख्य रूप से आते हैं। इनमें से भी भगवती प्रसाद वाजपेयी, श्रीराम शर्मा 'राम' और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार वर्तमान काल में अपनी इस कला के और प्रतिनिधि कहानीकार हैं। वाजपेयी जी और 'मस्त जी' की कहानी-कला इसके उदाहरण में सदैव रखी जा सकती है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी

वाजपेयी जी की कहानीकला उक्त सत्य के प्रकाश में सबसे पहले आती है। इनकी प्रारम्भिक और आज की कहानियों को पढ़ कर निश्चित रूप से लगता है कि इनके व्यक्तित्व का निर्माण एक ओर शरद्चन्द तथा दूसरी ओर प्रेमचन्द के व्यक्तित्व के सुन्दर सामंजस्य से हुआ है। इन्होंने हास्योन्मुख जीवन की विविध इकाइयों को अपनी उच्च कला में सँजो कर अपूर्व ढंग से मानव-संवेदना को स्पर्श किया है। 'खाली बोतल', 'अँधेरी रात', 'मैना', हार जीत', 'ट्रेन पर', 'इन्द्रजाल' आदि कहानियों की संवेदनाएँ हमारे सामाजिक क्षेत्र तथा उसकी विशिष्ट स्थितियों से चुनी गई हैं। यही कारण है कि इन संवेदनाओं से निर्मित कहानियाँ भावोद्रेक और लक्ष्य की तीव्रता के फलस्वरूप कहीं-कहीं प्रतीकात्मक हो गई हैं, जैसे 'खाली बोतल'। यह कहानी समाप्त होते हुए सामन्तशाही दृष्टिकोण और मनोभावों का प्रतीक है। वाजपेयी जी की शिल्पविधि इन कहानियों में अत्यन्त पुष्ट और पूर्ण है, अपनी सोद्देश्यता में इन कहानियों के शिल्पविधान पूर्ण सफल हैं।[1] 'इन्द्रजाल', 'मैना' की कहानियों में शिल्पविधि को सूक्ष्म और व्यंजनात्मक बनाने का प्रयत्न हुआ है। वाजपेयी जी की कहानियाँ

---

१. उनकी कहानियों की तुलना मुक्तक काव्य से की गई है जिसमें सोने की तौल जैसी सफाई और राई-रत्ती तुली हुई डाँड़ी होती है। आवश्यकता से अधिक एक शब्द नहीं होता। 'खाली बोतल' की भूमिका; वाजपेयी जी की कहानियाँ, लेखक नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ५।

प्रेरणा और निर्माण-कला दोनों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से विशेष रूप से प्रेरित हैं। 'अंधेरी रात' कहानी का निर्माण, वेश्या कजली के यथार्थ जीवन को मानव-संवेदनशीलता के प्रकाश में देखा गया है और ह्रासोन्मुख समाज को बहुत कारुणिक और भयानक चुनौती दी गई है। 'मैना', 'हारजीत', 'ट्रेन पर' आदि कहानियों के निर्माण के पीछे वही संवेदनशीलता आदर्श भावना के रूप में स्पष्ट हो गई है। वाजपेयी जी अपनी इधर की कहानियों में अपेक्षाकृत और मनोविश्लेषण-चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व के धरातल पर स्थिर होकर अपनी शिल्पविधि के सुन्दरतम उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

अन्य कहानीकार

सामाजिक परिस्थिति तथा मानसिक स्थिति-विशेष ही देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' की कहानियों का मूल धरातल है। 'अन्तर ज्वाला' और 'उलट-फेर' की कहानियाँ शिल्पविधि-विकास की दृष्टि से क्रमशः प्रारम्भ और विकास की कहानियाँ हैं। इन कहानियों में शिल्पविधान संयोग और कथात्मक वर्णन के ही माध्यम से चरितार्थ हुआ है। 'उलझन' की कथावस्तु में संयोग और इतिवृत्तात्मक दोनों तत्व सफलता से व्यक्त हुए हैं।

शैली में कथोपकथन तत्व को बहुत विशेषता दी गई है। फलतः मस्त जी की कहानी-कला में कहीं-कहीं सुन्दर नाटकीयता आ गई है। मानसिक अंतर्द्वन्द्व के स्फुट चित्र 'धूमिल स्मृति', 'घरौंदा', 'उपेक्षिता' आदि कहानियों में सफलता से मिलते हैं।

शिल्पविधान-वर्ग के मुख्य कहानीकार श्रीराम शर्मा 'राम' और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार भी हैं। श्रीराम शर्मा 'राम' शिल्पविधि में प्रेमचंद के विकास-कालीन कहानियों के आगे नहीं बढ़ सके हैं, यद्यपि उन्होंने हिन्दी कहानी-साहित्य की अपार सेवा की है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार इस वर्ग के समस्त कहानीकारों में अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक प्रतिभा के कहानीकार हैं। इन्होंने प्रेमचन्द-संस्थान में सुदर्शन की भाँति अपनी मौलिक प्रतिभा का सहयोग दिया है।

वस्तुतः प्रेमचन्द-संस्थान में आने वाले मुख्यतः उक्त कहानीकारों में अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा और सीमाएँ भी हैं। उन्होंने अपनी स्वतन्त्र प्रेरणाओं से भी कहानियाँ लिखी हैं। यही कारण है कि इनमें भावात्मक विभिन्नता और प्रसार दृष्टिगत हैं, लेकिन शिल्पविधान की सीमा में उक्त सभी कहानीकार किसी न किसी रूप में प्रेमचंद-संस्थान में हैं तथा यह हिन्दी कहानी की शिल्पविधि विकास और उन्नति का गौरवपूर्ण संस्थान है।

जयशंकर 'प्रसाद'

'प्रसाद' का बचपन भारतेन्दु की कीर्ति और उनके गौरवपूर्ण साहित्य की छाया में बीता। भारतेन्दु की मृत्यु के चार ही वर्ष बाद प्रसाद का जन्म हुआ। बारह वर्ष की अवस्था में, पिता के देहान्त के उपरान्त उन्हें स्कूल की पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी और घर ही पर उन्हें दीनबन्धु ब्रह्मचारी द्वारा संस्कृत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त उन्हें वेद, उपनिषद् और संस्कृत महाकाव्यों के पढ़ने को सर्वसुलभ परिस्थिति मिली। अतएव इनके हृदय में भारतीय संस्कृति की गरिमा और पुरातन की मर्यादा दोनों तत्वों ने अपूर्व स्थान प्राप्त किया। इन मनोभावों का सम्पर्क जब इनकी काव्य-प्रतिभा से हुआ, तो इनका काव्यात्मक दृष्टिकोण बहुत ऊँचे स्तर पर स्थापित हुआ।

प्रसाद के साहित्यिक संस्कार

काव्य के सम्बन्ध में इनकी अपनी अलग कसौटी बन गई, जिसमें इनके एक ओर साहित्यिक और शिक्षा के संस्कार कार्य कर रहे थे, तथा दूसरी ओर इनकी काव्य-प्रतिभा कार्य कर रही थी। इन दोनों ने इनमें एक अलग साहित्यिक संस्कार का जन्म दिया, जिसकी मान्यता बहुत ऊँचे स्तर की थी, "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है, वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान-धारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन-क्रिया जो वाङ्मय रूप से अभिव्यक्त होती है, वह निःसन्देह प्राणमय और सत्य के उभय लक्षण, प्रेय और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है। इसी कारण हमारे साहित्य का आरम्भ काव्यमय है। वह एक द्रष्टा कवि का सुन्दर है, दर्शन है।"[1] इस तरह प्रसाद के ऊँचे साहित्यिक संस्कार ने उनमें काव्य की परिष्कृत भावनाओं को जन्म दिया। साहित्य की समस्त विधाओं, नाटक, कहानी, काव्य, खंडकाव्य और महाकाव्य में इनका दृष्टिकोण विशुद्ध रसात्मक और दार्शनिक हो गया; क्योंकि इनके साहित्यिक संस्कारों ने इस सत्य से इनको अभिभूत कर दिया था।

---

१. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—प्रसाद; पृष्ठ १७; १८।

यह सत्य प्रसाद के मन में निश्चित हो गया था कि काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है और साहित्य का आरम्भ काव्यमय है, और काव्य-द्रष्टा कवि का सुन्दर दर्शन है। काव्य की इन्हीं परिष्कृत भावनाओं में प्रसाद की कहानियों का उद्गम होता है, अतएव इनकी कहानियाँ आज की कहानी-कला या उनकी शिल्पविधि पर सफलता से नहीं कसी जा सकतीं। इनका संस्कार बिल्कुल स्वतन्त्र और अपना है। इनका समूचा भावपक्ष काव्यात्मक है। इन कहानियों के पीछे जो प्रेरणा और भाव-बिन्दु है वह एक ओर गीत काव्य के समीप है, और दूसरी ओर नाटक के समीप। जो कहानियाँ छोटी हैं, उन सबके पीछे प्रसाद के गीत तत्व की प्रेरणा कार्य कर रही है। ऐसी छोटी कहानियाँ प्रायः कहानियाँ न होकर शिल्पविधि की दृष्टि से गद्यगीत हैं और 'प्रति-ध्वनि', 'प्रलय', और 'प्रतिमा' आदि विशुद्ध भाव-पक्ष की दृष्टि से प्रायः रहस्यवादी और रूपकात्मक भी हुई हैं।

प्रसाद की बड़ी कहानियाँ भाव-बिन्दु से प्रेरित न होकर विचार-बिन्दु या कार्य-बिन्दु से अंकुरित हुई हैं। 'इन्द्रजाल', 'स्वर्ग के खंडहर में' जैसी कहानियाँ एक विशिष्ट इतिवृत्त लिए हुए हैं। इन कहानियों के पीछे गीतकाव्य के आगे खंडकाव्य और महा-काव्य की प्रेरणा है।

दूसरी ओर प्रसाद की जितनी ऐतिहासिक कहानियाँ हैं; प्रायः उन सब के पीछे कहीं न कहीं नाटकीय प्रेरणा है। यही कारण है कि 'आकाश दीप', 'आँधी', 'सालवती' 'तिवरथ', 'पुरस्कार' और 'नूरी' आदि कहानियाँ पढ़ते समय नाटक अधिक लगती हैं। इन कहानियों का एकांत प्रभाव भी हमारे ऊपर पूर्ण नाटक-सा पड़ता है; क्योंकि इन कहानियों की संवेदनाएँ; सारी परिस्थितियाँ नाटकीय हैं। प्रसाद की जीवन-तिथियों को लेकर हम उक्त कहानियों से रचना-स्रोत ढूंढ़ें; तो हमें स्पष्ट हो जायगा कि इनका सम्बन्ध क्रमशः प्रसाद के गीत महाकाव्य और नाटक-रचना की प्रेरणा और उसके रचना-काल से है; जैसे १९३६ ई० में 'कामायिनी' महाकाव्य की सृष्टि और उसी 'समय इन्द्रजाल' कहानी की रचना। १९३१ ई० में 'चन्द्रगुप्त' नाटक और 'आँधी', 'पुरस्कार' कहानियों की सृष्टि। १९२९ ई० में 'एक घूंट' एकांकी नाटक की रचना तथा 'आकाश दीप' कहानी का निर्माण, १९१३ ई० में 'कानन कुसुम' तथा 'प्रेम पथिक' गीतकाव्यों की रचना तथा उसी समय 'प्रतिध्वनि', 'प्रलय', 'प्रसाद' कहानियों की सृष्टि।

इस तरह प्रसाद की कहानियों की सृष्टि और उनका उद्गम, काव्य और नाटक की परिष्कृत भावनाओं से हुआ है; कहानी-कला की सामान्य सीमा में नहीं। प्रसाद की कहानियों की शिल्पविधि के अध्ययन में हमें निश्चय ही इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा।

साहित्यिक परिस्थितियाँ

१६१० ई० तक हिन्दी मासिक पत्र-प्रकाशन अपने आरम्भिक काल में था। १६०० ई० से पूर्व के हिन्दी पत्रों, जैसे 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रायः किसी न किसी स्तर से कहानियाँ निकलती थीं, परन्तु उनमें स्वाभाविक जीवन से निकट सम्बन्ध रखने वाली कहानी-जैसी कोई कलात्मक वस्तु नहीं प्रकाशित हो रही थी, वस्तुतः तब तक न कोई हिन्दी में मौलिक कहानीकार था और न तब तक हिन्दी में कहानी का कोई निश्चित विकास हो सका था। १६०० ई० से 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ हुआ और इसी में सबसे पहले हिन्दी कहानियों का सूत्रपात हुआ। यह सूत्रपात, चाहे शेक्सपियर के नाटकों की आख्यायिकाओं के रूप में हुआ, चाहे संस्कृत नाटक के कथानकों के आधार पर, परन्तु यह सिद्ध है कि सबसे पहले कहानी-कला का विकास 'सरस्वती' द्वारा हुआ। इस भाँति १६०० ई० से सतत् आगे इसका प्रकाशन होने लगा और हिन्दी मासिक पत्रों में एकमात्र 'सरस्वती' का स्थान विशिष्ट हो गया।

सरस्वती-सम्पादक आचार्य द्विवेदी और प्रसाद में मतभेद होने के कारण सरस्वती-द्वारा प्रसाद को उतना प्रोत्साहन और सम्मान नहीं मिलता था जितना मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय और 'स्नेही' को। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप प्रसाद ने अपने स्वतन्त्र मासिक पत्र 'इन्दु' का प्रकाशन आरम्भ किया। १६०६ ई० में इसका प्रथम अंक प्रकाशित हुआ और एक ही वर्ष बाद 'इन्दु' उच्चकोटि का साहित्यिक मासिक घोषित हुआ। प्रसाद इसमें बराबर लिखने लगे। उनकी कविता, लेख और कहानियाँ उसमें आने लगीं। प्रसाद की सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' इसी में १६११ में प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त प्रसाद, 'हिन्दी गल्प-माला' (१६१८ ई०) के जन्म-काल से ही उसके लेखक और समर्थक भी रहे तथा उनकी कहानियाँ बराबर 'इन्दु', 'हिन्दी गल्प-माला' और 'माधुरी' के माध्यम से आने लगीं।

'प्रसाद' की समन्वयात्मक भावना

प्रसाद के व्यक्तित्व का मूल धरातल समन्वय है। कल्पना-वृत्ति ही प्रसाद के समस्त काव्य-रूपों का मूल स्रोत है, जहाँ भाव-पक्ष और शैली-पक्ष का संगम है। कल्पना की आधार-भूमि पर जब आदर्श तत्व के साथ संगीत का संयोग होता है तब प्रसाद की काव्य सृष्टि होती है, जब उस कल्पना में दर्शन और अतीत का संयोग होता है, तब नाटक की सृष्टि होती है तथा जब उसमें कौतुक और मनोविज्ञान का संयोग होता है, तब कहानी की सृष्टि होती है। प्रसाद का साहित्य—कल्पना, आदर्श, परिष्करण, संगीत, दर्शन, अतीत और मनोविज्ञान के समन्वयात्मक धरातल पर स्थिर है। इस तरह हम

देखते हैं कि प्रसाद के समस्त काव्य-रूपों के आधार-तत्व एकसे हैं; केवल उनके सामान्य पक्षों और रूपों में विभिन्नता है। यही कारण है कि प्रसाद की कहानियाँ कहीं उनके गीत तत्व से अधिक प्रेरित होकर गद्यगीत हो गई हैं, कहीं नाटकों के अधिक तत्व लेकर नाटकीय शैली में उतर आई हैं। वस्तुतः इन सबके पीछे प्रसाद की उदार साहित्यिक चेतना और उनकी समन्वयात्मक भावना कार्य कर रही है।

गीत में कल्पना और अनुभूति, खंडकाव्य अथवा महाकाव्य में कल्पना, अनुभूति और व्यापकता का तादात्म्य सर्वथा अपेक्षित है, लेकिन कहानी में कल्पना का प्राण-बिन्दु कहाँ तक उत्कृष्ट कहानी की सृष्टि में साथ देगा—यह चिन्त्य है। तभी प्रसाद की प्रायः समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गई हैं और कहानी का सर्वथा भावात्मक होना कहानी से दूर हट कर काव्य के पास पहुचने वाली बात हो जाती है। इस दिशा में भावात्मक कहानियों को कहानी-शिल्पविधि की कसौटी पर कसना, उन्हें कहानी-कला के माध्यम से देखना कठिन हो जाता है, क्योंकि इस तरह शिल्पविधि का रूप और अधिक अमूर्त्त और संवेद्य हो जाता है। दूसरी ओर यह सत्य है कि भावात्मक कहानियाँ अपेक्षाकृत समस्या को मूलाधार बनाकर नहीं लिखी जातीं, बल्कि ऐसी कहानियाँ विशेष वृत्ति या चित्तवृत्ति में लिखी जाती हैं, सामान्य स्थिति में, किसी भौतिक या यथार्थ समस्या को लेकर कम। सत्य तो यह है कि व्यावहारिक ढंग से भावात्मक कहानी में भावुक उत्तेजना, सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा कहानीकार में काव्योद्गार की लहरें पैदा करती हैं और इसी के प्रकट प्रवाह में कहानी का आरम्भ होता है; बाद में अन्य तत्व जैसे—कथानक, पात्र आदि साधन-स्वरूप स्वयं धीरे-धीरे आ जाते हैं और कहानी के निर्माण में अपना योग दे जाते हैं। वैसे सम्पूर्ण कहानी की अंतश्चेतना में यही काव्योद्गार और सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा कार्य करती रहती है। इसीलिए प्रसाद की समस्त कहानियों का आरम्भ केवल दो ढंगों से होता है या तो (१) सौन्दर्यानुभूति मे डूब कर प्रकृति-चित्रण के साथ, (२) दो पात्रों के कवित्वपूर्ण कथोपकथन के साथ। शैली की यही विशेषता प्रसाद की समस्त कहानियों के विकास-क्रमों में मिलती जाती है।

कहानियों की शिल्प-विधि का अध्ययन

प्रसाद का कहानी-काल १९११ ई० से आरम्भ होकर १९३७ ई० तक फैला हुआ है। इस छब्बीस वर्ष की लम्बी साहित्य-साधना में उन्होंने कुल उनहत्तर कहानियाँ लिखी हैं, जो क्रमशः 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाश-दीप', 'आँधी' और 'इंद्रजाल' कहानी-संग्रहों में संग्रहीत हैं। अध्ययन की दृष्टि से उन्हें हम तीन कालों में बाँट सकते हैं—

(१) प्रथम काल
(२) द्वितीय काल
(३) तृतीय काल

इन तीनों कालों
सापेक्षिक दृष्टि से इन क
और उत्कर्ष भी स्पष्ट है
कहानी 'सालवती' तक क
उनके भाव-पक्ष में। सच
प्रधान नहीं हैं, भावप्रधान
कहानीकार हैं जिनकी क
नहीं।

प्रथम काल :

प्रथम काल में "
आती हैं। ये सब कहानि
त्मक, प्रतीकात्मक और
और रहस्य-भावना को
और तृतीय काल की
स्तरगत अन्तर है।

कथानक

'छाया' और 'प्रतिध्वनि
दोनों तरह की कहानिय
चित्र और गद्यगीत के
बनकर रह गया है। य
(१) रेखाचित्र-सी कह
भी एक भाव ही उसक
ही कहानी की आत्मा
विभिन्न भावचित्रों के
प्रमुख है। 'अघोरी का
के कथानकों में यह स
अलग प्रसंग हैं और उ
नहीं। फिर भी व्यंज

(१) प्रथम काल १९११ से १९२२ ई० तक
(२) द्वितीय काल १९२३ से १९२९ ई० तक
(३) तृतीय काल १९३० से १९३७ ई० तक

इन तीनों कालों में कहानियों का धरातल क्रमशः बदलता गया है और सापेक्षिक दृष्टि से इन कहानियों में 'प्रसाद' की कहानी-कला का आरम्भ, विकास और उत्कर्ष भी स्पष्ट है। 'प्रसाद' की पहली कहानी 'ग्राम' से लेकर उनकी अन्तिम कहानी 'सालवती' तक कहानियों की शिल्पविधि में वस्तुतः उतने मोड़ नहीं हैं जितने उनके भाव-पक्ष में। सच तो यह है कि प्रसाद जी की कहानियाँ अपेक्षाकृत शिल्पविधि-प्रधान नहीं हैं, भावप्रधान हैं और हिन्दी कहानी-साहित्य में केवल प्रसाद जी एक ऐसे कहानीकार हैं जिनकी कहानी भावों की अनुवर्तिनी रही है, शिल्पविधि की अनुवर्तिनी नहीं।

प्रथम काल :

प्रथम काल में 'प्रसाद' के 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' कहानी-संग्रहों की कहानियाँ आती हैं। ये सब कहानियाँ छब्बीस हैं तथा शैली की दृष्टि से एक ओर जहाँ वर्णनात्मक, प्रतीकात्मक और ऐतिहासिक हैं, वहाँ दूसरी ओर विषय की दृष्टि से प्रेम, सौन्दर्य और रहस्य-भावना को लिए हुए हैं। कहानियों का यही रूप क्रमशः इनके द्वितीय और तृतीय काल की कहानियों में मिलता है, लेकिन तीनों कालों की कहानियों में स्तरगत अन्तर है।

कथानक

'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की कुछ कहानियाँ ऐतिहासिक हैं तथा कुछ काल्पनिक, और दोनों तरह की कहानियों का धरातल भावुकतापूर्ण है। फलतः काल्पनिक कहानियाँ रेखाचित्र और गद्यगीत के समीप आ गई हैं। भावुकता के प्राधान्य से कथानक इतिवृत्त-मात्र बनकर रह गया है। यदि हम इतिवृत्त का अध्ययन करें, तो हमें तीन तथ्य मिलेंगे—(१) रेखाचित्र-सी कहानियों के इतिवृत्त केवल प्रसंग के रूप में आते हैं और प्रसंगों में भी एक भाव ही उसका प्राण होता है, स्थूल समस्या नहीं; जैसे 'प्रतिध्वनि' में भावना ही कहानी की आत्मा है, (२) कहानियों के कथानक अत्यन्त सूक्ष्म हुए हैं क्योंकि वे विभिन्न भावचित्रों के माध्यम से ही चरितार्थ होते हैं। अतः इनमें संकेत और व्यंजना प्रमुख है। 'अघोरी का मोह', 'गुदड़ी में लाल' और, 'करुणा की विजय', आदि कहानियाँ के कथानकों में यह सत्य पूर्णतः स्पष्ट है। इन कहानियों के कथानक जीवन के अलग-अलग प्रसंग हैं और उन प्रसंगों में भी एक विशिष्ट भावना की प्रधानता है, घटना का नहीं। फिर भी व्यंजना के माध्यम से इन कहानियों की संवेदनाएँ स्पष्ट हो जाती हैं

और उनमें गुँथे हुए भाव चित्र भी सार्थक प्रतीत होते हैं। कहानी के इतिवृत्त में गद्य-गीत की शैली प्रभाव डालने वाली बन जाती है। (३) गद्यगीत के उदाहरण में 'प्रलय', 'प्रतिमा', 'दुखिया', 'कलावती की शिक्षा, आदि कहानियाँ आती हैं।

इनके कथानकों को अध्ययन की रेखाओं में बाँधना बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि ये पूर्णतः दोनों तथ्यों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म हैं। 'कलावती की शिक्षा' में कथानक के नाम पर केवल इतना ही है :—श्यामसुन्दर और कला एक ही टेबुल पर पढ़ रहे हैं। श्यामसुन्दर अपना उपन्यास लिखने में निमग्न हो जाता है और कला पलंग पर बैठकर एक चीनी पुतली लेकर स्वगत कथन करने लगती है—"और कृतज्ञ होना दासत्व है। चतुरों ने अपना कार्य प्रधान करने का इसे अस्त्र बनाया है। इसी-लिए इसकी ऐसी प्रशंसा की है कि लोग इसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं, किन्तु है यह दासत्व। यह शरीर का नहीं, किन्तु अन्तरात्मा का दासत्व है। इस कारण कभी-कभी लोग बुरी-बुरी बातों का भी समर्थन करते हैं। प्रगल्भता, आज जो बड़ी बाढ़ पर है, बड़ी अच्छी वस्तु है, उसके बल से मूर्ख भी पंडित समझे जाते हैं, इसका अच्छा अभ्यास करना, जिसमें तुमको कोई मूर्ख न कह सके, कहने का साहस ही न हो। पुतली, तुमने रूप का परिवर्तन भी छोड़ दिया है, यह और भी बुरा है। सोने के कोर की साड़ी तुम्हारे मस्तक को भी अभी ढके है, तनिक इसको खिसका दो। बालों को लहरा दो। लोग लगें पैर चूमने, प्यारी पुतली, समझी न!" इसके बाद श्यामसुन्दर और कला दोनों प्रेम से गले मिल जाते हैं।

वस्तुतः यह गद्यगीत है और कहने के लिए ढाई पृष्ठों की कहानी, जिसमें हमें यही कला का स्वागत कथन मिलता है, शेष कुछ नहीं। ज्ञात होता है कि प्रसाद के मन में एक सूक्ष्म भाव उठा, उसे उन्होंने कला के मुख से उसमें स्वगत कथन में अभिव्यक्त कर दिया और उसे कहानी के नाम पर एक अन्य स्थिर चरित्र श्यामसुन्दर से जोड़ दिया। इस वर्ग की कुछ लम्बी कहानी, जैसे 'प्रलय' में कथानक अनेक भाव-चित्रों के माध्यम से आगे बढ़ा हुआ है, वहाँ कथानक और भी दुर्बोध हो गया है, क्योंकि प्रसाद ने इसे संश्लिष्ट बना कर अपने दर्शन और रहस्यवाद को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। 'प्रलय' का कथानक इतने भाव-चित्रों के अन्तराल में चलता है—(क) हिमावृत चोटियों की श्रेणी, अनन्त आकाश के नीचे क्षुब्ध समुद्र, उपत्यका की कन्दरा में, प्राकृतिक उद्यान में खड़े हुए एक युवक और एक युवती। (ख) सूर्य का अज्ञात चक्र के समस्त शून्य में भ्रमण और उसके विस्तार का अग्नि-स्फुलिंग-वर्षा, करते हुए आश्चर्य-संकोच, हिमटीलों का नवीन महानदों के रूप में पलटना, भयानक ताप से शेष प्राणियों का कलपना, महाकापालिक के चिताग्नि-साधन का वीभत्स दृश्य, प्रचण्ड आलोक और उनका अन्धकार। (ग) भयानक शीत; दूसरे क्षण असह्य ताप; वायु के प्रचंड झोंकों में एक के

बाद दूसरे की अद्भुत
रूप में अनन्त द्रवराशि,
कर उन्हें तरल परमाणु
स्थित है। प्रभंजन के
युवती। (घ) युवती के
एक रमणीय तेज-पुंज
कितना अमूर्त है।

इसके विषय मे
और युवती माया का
प्रलय लाता है और इ
वस्तुतः भाव-चित्रों से
इनका मूल्य और इनक
की नहीं।

ऐतिहासिक क
जैसे 'सिकन्दर की शप
को ले सकते हैं। इन
मध्य, अन्त तीनों भाग
मोड़ों से हुआ है। इस
स्पष्ट हो जायगा—(
को घेरे हुए पड़ा है; (
सिकन्दर ने उसे मार
पर चढ़ जाता है और
पति को मृत्यु से पत्नी
है। सन्धि में सिकन्दर
जायँ; (घ) लेकिन सि
छोड़ता और उन्हें मृत्
यहाँ कथानक
दोनों निश्चित हैं। प्र
साथ केवल भावों को
तिक होते हुए भी गद्
कथा—इकाई और उ
की विजय' आदि के

बाद दूसरे की अद्‌भुत परम्परा; घोर गर्जन, ऊपर कुहासा और वृष्टि; नीचे महर्णव के रूप में अनन्त द्रवराशि, पवन, उच्छ्वासों गतियों से समग्र पंचमहाभूतों को आलोड़ित कर उन्हें तरल परमाणुओं के रूप में एक वट-वृक्ष केवल एक नुकीले शृंग के सहारे स्थित है। प्रभंजन के प्रचंड आघातों से सब अदृश्य हैं। एक डाल पर वही युवक और युवती। (घ) युवती के मुखमंडल का स्पष्ट प्रतिबिम्ब-मात्र रह जाना और युवक का एक रमणीय तेज-पुंज बनना उपर्युक्त भाव-चित्रों के अन्तराल में चला हुआ कथानक कितना अमूर्त है।

इसके विषय में हम इतना ही कह सकते हैं कि पुरुष, जो ब्रह्म का रूपक है, और युवती माया का प्रतीक है, दोनों एक स्थान पर खड़े हैं। ब्रह्म सृष्टि के लिए प्रलय लाता है और इस प्रलय के उपरान्त ब्रह्म और माया एकात्म-रूप हो जाते हैं। वस्तुतः भाव-चित्रों से निर्मित इन गद्यगीतों को कहानी कहना ही अवैज्ञानिक है। इनका मूल्य और इनकी कला के पीछे भाव की प्रधानता है; घटनाओं की तारतम्यता की नहीं।

ऐतिहासिक कहानियों के कथानक के उदाहरण में हम 'छाया' की कहानियाँ, जैसे 'सिकन्दर की शपथ', 'जहानारा', 'अशोक', 'गुलाम' और 'चित्तौर-उद्धार' आदि को ले सकते हैं। इन कहानियों के कथानकों में एकसूत्रता तथा इनके विकास का आदि, मध्य, अन्त तीनों भाग मिलते हैं। 'सिकन्दर की शपथ' में कथानक का विकास कई मोड़ों से हुआ है। इसमें कथा-प्रवाह और एकसूत्रता दोनों का समन्वय इन मोड़ों से स्पष्ट हो जायगा—(क) सिकन्दर भारतीय वीरों के साथ अफगानिस्तान के एक दुर्ग को घेरे हुए पड़ा है; (ख) रात को दुर्ग के नीचे एक प्रहरी सरदार टहल रहा था, सिकन्दर ने उसे मार डाला और दुर्ग से नीचे गिराई हुई एक डोर के सहारे वह दुर्ग पर चढ़ जाता है और वह सरदार की पत्नी के प्रकोष्ठ में पहुंच जाता है; (ग) अपने पति की मृत्यु से पत्नी का दुखी होना; लेकिन शीघ्र ही दोनों में प्रेम-सन्धि हो जाती है। सन्धि में सिकन्दर इस बात की शपथ लेता है कि भारतीय सैनिक अपने देश लौट जायँ; (घ) लेकिन सिकन्दर अपनी शपथ के विरुद्ध उन भारतीय सैनिकों को नहीं छोड़ता और उन्हें मृत्यु के घाट उतार देता है।

यहाँ कथानक की रेखाएँ बहुत ही स्पष्ट हैं। इसकी एकसूत्रता और इतिवृत्त दोनों निश्चित हैं। प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियों में जितनी कहानियाँ समस्या के साथ केवल भावों को आधार मानकर लिखी गई हैं; उनके कथानक छोटे और सांकेतिक होते हुए भी गद्यगीतों के कथानकों की अपेक्षा स्पष्ट हैं और उनकी निश्चित कथा—इकाई और उनकी संवेदना भी स्पष्ट है; जैसे 'अघोरी का मोह'; और 'करुणा की विजय' आदि के कथानक; परन्तु जो कहानियाँ केवल भाव-दर्शन के धरातल पर

भाव-चित्रों के माध्यम से लिखी गई हैं; उनके कथानक अमूर्त; अस्पष्ट और संश्लिष्ट हुए हैं; जैसे 'प्रलय' का कथानक। जो ऐतिहासिक या सामाजिक कहानियाँ किसी निश्चित संवेदना और विषय को लेकर लिखी गई हैं; उनके कथानक सबसे अच्छे ढंग से निर्मित हुए हैं। उनमें एकसूत्रता; प्रवाह आदि तत्व पूर्ण सफलता से आ गये हैं; जैसे 'जहानारा'; 'अशोक'; 'चन्दा' और 'ग्राम' आदि कहानियों के कथानक।

चरित्र

प्रसाद की कहानियों का धरातल बहुत ही ऊँचा है और इस धरातल की ऊँचाई मुख्यत: उनके चरित्रों के व्यक्तित्व की ऊँचाई है। इस व्यक्तित्व की ऊँचाई में हमें जहाँ उत्तम कोटि के चरित्रों के दर्शन होते हैं, वहाँ सबसे बड़ी बात उनके चरित्रों में यह है कि प्रसाद जी इनके माध्यम से मानव-तत्व के चिर प्रश्नों की अवतारणा कर देते हैं। यहीं प्रसाद की कहानियों का धरातल बहुत ऊँचा उठ जाता है।

प्रसाद के व्यक्तित्व पर सबसे गहरा प्रभाव बौद्ध दर्शन का था और वे स्वयं स्वभावत: भावुक, सौन्दर्यनिष्ठ और प्रेमी थे, फलत: इनके चरित्र-बोध पर क्रमश: दो प्रभाव पड़े। एक ओर बौद्ध दर्शन के प्रभाव से इनके चरित्र अत्यन्त कारुणिक हो गए और दूसरी ओर भावुक और प्रेमी। पहला प्रभाव मुख्यत: स्त्री-चरित्र पर है और दूसरे प्रभाव के अतर्गत प्राय: पुरुष-पात्र आते हैं। समग्र रूप में प्रसाद की कहानियों के चरित्र प्रेम, करुणा, आदर्श, बलिदान, विद्रोह, क्षमा आदि रेखाओं से निर्मित हैं। वस्तुत: यह सत्य प्रसाद के समूचे कहानी-साहित्य के चरित्रों के सम्बन्ध में हैं। वैसे हम तीनों कालों के चरित्रों के विकास-क्रम को अलग-अलग देखेंगे और उनमें हम मूल्य-स्तर की विभिन्नता पाएँगे।

स्त्री

प्रसाद की कहानियों में स्त्री-चरित्र की तीन दिशाएँ हैं। पहली दिशा में वे स्त्री-पात्र आते हैं, जो हमारे अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शों के प्रतीक हैं। दूसरी दिशा के स्त्री-पात्र वे हैं जो आधुनिक परिस्थितियों के जीते-जागते उदाहरण हैं और जिनके हृदय में सामाजिक बन्धनों और मान्यताओं के प्रति तीव्र विद्रोह है। तीसरी दिशा में वे स्त्री-पात्र आते हैं जो प्रेमाख्यान के विस्तार से प्रेम के नशे में सदा डूबे रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रसाद के स्त्री-चरित्रों की दो मूलगत विशेषताएँ हैं। प्राय: स्त्रियाँ रूप और यौवन के आदर्श की अनुगामिनी होती हैं तथा अपने रूप की मादकता से सर्वत्र जादू डालती चलती हैं। वे स्वभावत: त्याग, बलिदान-प्रिय होती हैं और अपने अंतर में सर्वदा प्रेम, करुणा, वेदना की मौन कराह लिए रहती हैं।

कलात्मक दृष्टि से प्रसाद के स्त्री-चरित्रों के सम्बन्ध में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके नाटकों तथा काव्यों की भाँति स्त्रियाँ ही यहाँ की प्रतिनिधि कहानियों

की नियामिका और संचालिका हैं। यहाँ वे मुख्यतः पुरुषों की अपेक्षा अधिक जागृत और जीवनपूर्ण हैं। प्रायः इनके व्यक्तित्व की परिधि में पुरुष-पात्र ही गतिमान हैं, लेकिन ये स्त्री-शक्तियाँ कभी पुरुष को पतन की ओर नहीं ले जातीं, वरन् पुरुषों को सर्वथा कर्त्तव्य का ज्ञान कराती हुई उनमें जीवन फूँकती चलती हैं।

प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियों में स्त्री-चरित्र की उपर्युक्त विशेषताएँ अपने बीज-रूप में मिलती हैं। 'जहानारा' की जहानारा, 'अशोक' की तिष्यरक्षिता, 'चित्तौर-उद्धार' की राजकुमारी आदि स्त्रियाँ हमारे अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शों के प्रतीक हैं। इनमें चरित्र का उत्कर्ष और बलिदान दोनों क्षमताएँ स्पष्ट हैं। यहाँ सर्व-प्रथम हमें अपनी परिस्थितियों से विद्रोह करने वाली स्त्री चन्दा मिलती है। नारी के कोमल हृदय में इस तरह कठोरता और क्रान्ति की ज्वाला का दर्शन होता है। चन्दा ने कहा—"हाँ, लो, मैं मरती हूँ। इसी छूरे से तूने हमारे सामने हीरा को मारा था, यह वही छूरा है, यह तुझे दुःख से निश्चय छुड़ाएगा।" इतना कह कर चन्दा ने रामू के बगल में छूरा उतार दिया, वह छटपटाया। इतने ही में शेर को मौका मिला, वह रामू पर टूट पड़ा और उसकी इति कर आप भी वहीं गिर पड़ा।"[1] भावुक स्त्रियाँ प्रेम के नशे में झूमती हुई प्रेमी के गले में बाँहें डालती हैं, "अभिमान होता तो प्रयास करके तुमसे क्यों मिलती ? जाने दो, तुम मेरे सर्वस्व हो। तुमसे अब यह माँगती हूँ कि अब कुछ न मागूँ, चाहे इसके बदले मेरी समस्त कामना ले लो।" युवती ने गले में हाथ डालकर कहा।

समस्त कहानियों की स्त्रियाँ युवती हैं और अपने रूप-यौवन से पुरुषों को आकर्षित कर रही हैं; जैसे 'तानसेन' की सौसन, 'चन्दा' की चन्दा, 'ग्राम' की ग्राम-बालिका, 'रसिया बालम' की सुमुखि, 'पाप की पराजय' की नीना, ये सब स्त्रियाँ अपूर्व सुन्दरी और नवयौवना हैं। ये इन्द्रनील की पुतली फूलों से सजी हुई झरने के उस पार पहाड़ी से उतर कर बैठी हैं। उनके सहज कुंचित केश से वन्य कुरुवक की कलियाँ कूद-कूद कर जल-लहरियों से क्रीड़ा कर रही हैं। यद्यपि रंग कंचन के समान नहीं, फिर भी गठन साँचे में ढली हुई है, आकर्षक विस्तृत नेत्र नहीं, तो भी उनमें एक स्वाभाविक राग है।

इन स्त्री-चरित्रों में करुणा का पुट भी स्पष्ट है। 'दुखिया' की नायिका, 'करुणा की विजय' की रामकली, 'चन्दा' की चन्दा, 'जहानारा' की जहानारा, 'रसिया बालम' और 'सिकन्दर की शपथ' की क्रमशः राजकुमारी और सरदारनी सब, किसी न किसी भाँति करुणा की आह में डूबी हुई हैं।

१. छाया : चन्दा, पृष्ठ २७, तृतीय संस्करण, संवत् १९८६।

पुरुष

प्रसाद के कहानी-साहित्य में, उनके पुरुष-चरित्र भी स्त्री-चरित्रों की भाँति अपनी कुछ मूलगत विशेषताओं के साथ आते हैं। दो बातों में पुरुष-चरित्र प्राकृतिक स्तर से स्त्री-चरित्रों के पूर्णतः अनुकूल हैं, अर्थात् पुरुष का एक वर्ग यहाँ भी अत्यन्त भावुक और प्रेमनिष्ठ है तथा यहाँ भी पुरुष-चरित्र प्रायः युवक और सुन्दर व्यक्तित्व के हैं। उनमें भी प्रेम और त्याग की भावना स्पष्ट है, लेकिन पुरुष-चरित्रों की सबसे बड़ी विशेषता है उनके चरित्र का अनोखापन। इस अनोखेपन के प्रकाश में, प्रसाद की कहानियों में कुछ ऐसे प्रतिनिधि पुरुष मिलते हैं जो समस्त हिन्दी कहानी-साहित्य में अद्‌भुत हैं; जैसे नूरी का प्रेमी याकूब, बेला का उपासक गोली, लैला का रामेश्वर, चम्पा का बुद्धगुप्त और सालवती का अभय। इन पुरुष-चरित्रों का अनोखापन इनके व्यक्तित्व में है तथा इनके व्यक्तित्व की विशेषता तीन धरातलों पर है। वे धरातल हैं—(१) चारित्रिक दृढ़ता (२) संवेदनशीलता और (३) उनके व्यक्तित्व की अंतर्मुखी भाव-धारा जिसमें विद्रोह, तड़प और कोई न कोई ऐसी स्वस्थ कुंठा अवश्य स्थान किए रहती है, जिसमें करुणा की बहुत हल्की-हल्की रेखाएँ छिपी होती हैं।

प्रारम्भिक कहानियों में पुरुष-पात्र उक्त रेखाचित्र की दिशा में अपने प्राथमिक रूप में मिलते हैं। 'तानसेन' का तानसेन, 'रसिया बालम' का युवक, 'कलावती की शिक्षा' का श्यामसुन्दर आदि चरित्र भावुक और प्रेमी हैं। 'रसिया बालम' की भावुकता और राजकुमारी के प्रति उसका प्रेम कितना नाटकीय है! युवक अपनी उँगली के खून से पत्र लिख कर राजकुमारी के पास ले जाता है। हरदम राजकुमारी की खिड़की की ओर देखता हुआ पागल बना है। अंत में उस प्रेम की बलि की वेदी पर वह अपने को उत्सर्ग कर देता है। इस सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि ऐसे युवक भी बहुधा एकाकी और प्रेम के नशे में झूमते मिलेंगे-कहीं तालाब के किनारे वंशी बजाते हुए, कहीं खंडहर में कोई चित्र देखते हुए और कहीं नीले आकाश की ओर निहारते हुए। वे ऐसे लगते हैं, जैसे उनकी दुनिया में प्रेम है और वे एकमात्र प्रेम के पुजारी हैं। अतएव ये पुरुष-चरित्र बहुधा काव्य-प्रेमी हो गए हैं और अपनी कोमल प्रवृत्तियों के कारण ये चारों ओर से संवेदना और श्रद्धा के पात्र बनते गए हैं क्योंकि इन पुरुष-पात्रों में आरम्भ ही से मानवीय संवेदना और शील का इतना विस्तार मिलता है कि उनमें अजीब आकर्षण उपस्थित हुआ है। 'रसिया बालम' का रसिया, 'तानसेन' का रामप्रसाद, 'चन्दा' का प्रेमी, 'गुलाम' का कादिर, 'पत्थर की पुकार' का शिल्पी, 'उस पार का योगी' का नन्दलाल, 'खंडहर की लिपि' का युवक आदि पुरुष-चरित्र हैं, लेकिन इन काल्पनिक चरित्रों में भी प्रसाद जी इस कला से मानवीय संवेदना और शील की प्रतिष्ठा की है कि ये सब पुरुष-चरित्र हमें आकर्षक लगते हैं।

इनका सबसे बड़ा रहस्य यही है कि प्रसाद जी अपने इन पात्रों में किसी न किसी भाँति निश्चय ही भाव-मंडल उपस्थित कर देते हैं और उस भावमंडल में करुणा की एक अदृश्य लीक खींच देते हैं ।

प्रारम्भिक कहानियों के स्त्री-पुरुष-चरित्रों में दो वर्ग हैं । जो कहानियाँ सर्वथा काल्पनिक, प्रतीकात्मक अथवा रहस्यवादी ढंग की हैं; जैसे 'प्रलय', 'प्रतिमा', 'खंडहर की लिपि', 'उस पार का योगी' और 'प्रसाद' आदि उन कहानियों के स्त्री-पुरुष-पात्र अधिक छायावादी ढंग के हो गए हैं । फलतः उन चरित्रों की व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा नहीं हो सकी है, लेकिन जिन चरित्रों की अवतारणा यथार्थ और कल्पना के संयोग से हुई है, उनमें अपेक्षाकृत व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा के अतिरिक्त उनके स्पष्ट मनोभावों के उदाहरण मिलते हैं ।

इस तरह इन प्रारम्भिक कहानियों में चरित्र अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में नहीं मिलते, वे सर्वथा एकांगी दिखते हैं । इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इस काल की प्रायः अधिकांश कहानियाँ कल्पना के धरातल से लिखी गई हैं ।

फिर भी यहाँ की कहानियाँ चरित्रों के बाह्य पक्ष के धरातल पर बहुत कम टिकी हैं । यहाँ की कहानियों का मूल धरातल चरित्रों के मनोभाव हैं और इन मनोभाव का केन्द्र-बिन्दु प्रेम है । इसी प्रेम के किनारे मानव-संवेदना और शील मिलता रहता है । इसके उदाहरण में 'ग्राम', 'गूदड़ी', 'साई', 'अघोरी का मोह', 'पत्थर की पुकार', 'मुखिया', 'जहानारा', 'शरणागत' आदि कहानियों के चरित्र स्मरणीय हैं ।

शैली

प्रसाद की कहानियों की निर्माण-शैली भारतीय नाटक-प्रणाली के प्रकाश में है अर्थात् प्रसाद की कहानियों में बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठा हुई है । यह सत्य एक ओर जहाँ प्रसाद की लम्बी कहानियों में विशेषकर उनकी प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियों में मुखरित मिलता है, वहाँ दूसरी ओर यही सत्य उनकी छोटी और भावपूर्ण कहानियों में बहुत स्पष्ट और सूक्ष्म हो गया है । इन कहानियों में सर्वत्र आदि से लेकर अंत तक प्रश्न और कौतूहल बिखरा हुआ मिलता है तथा कहानी के अंत में फिर वही प्रश्न उभर पड़ता है जो कहानी में बीज-रूप से विकसित होता हुआ फलागम की ओर आ रहा था । यही कारण है कि प्रसाद की ये छोटी कहानियाँ गद्य-गीत का रूप लेकर रहस्यात्मक हो गई हैं ।

प्रथम तथ्य प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियों में नहीं मिलेगा और मिलेगा भी तो अविकसित रूप में । वस्तुतः यहाँ की कहानियों का आरम्भ, विकास और चरम-सीमा प्रसाद की कहानी-कला के आरम्भिक रूप का उदाहरण है । अपेक्षाकृत छोटी कहानियों के सम्बन्ध में उपर्युक्त द्वितीय तथ्य अवश्य चरितार्थ होता है ।

आरम्भ

प्रसाद की समस्त कहानियों का आरम्भ प्राय: दो शैलियों से हुआ है, या तो उनका आरम्भ प्रकृति-चित्रण या दृश्यों के वर्णन से होता है, या दो पात्रों के नाटकीय कथोपकथन से।

यहाँ प्रारम्भिक कहानियों में इनके उदाहरण स्पष्ट हैं। 'दुखिया' नामक कहानी का आरम्भ—"पहाड़ी, देहात, जंगल के किनारे गाँव और बरसात का समय। वह भी ऊषा काल। बड़ा मनोरम दृश्य था। रात की वर्षा से आम के वृक्ष सराबोर थे। अभी पत्तों पर से पानी ढुलक रहा था। प्रभात के स्पष्ट होने पर भी धुँधले प्रकाश में सड़क के किनारे आम्र वृक्ष के नीचे एक बालिका कुछ देख रही थी। टप से शब्द हुआ, बालिका उछल पड़ी, गिरा हुआ आम उठा कर अंचल में रख लिया।"[1] "यह छोटा-सा सरोवर क्या ही सुन्दर है! सुहावने जामुन के वृक्ष चारों ओर से घेरे हुए हैं। × × × संध्या हो चली है। विहंग-कुल कोमल कलरव करते हुए अपने नीड़ की ओर लौटने लगे हैं। अंधकार अपना आगम सूचित करता हुआ वृक्षों की ऊँची टहनियों के कोमल किसलयों को धुँधले रंग का बना रहे हैं, पर सूर्य की अंतिम किरणें अभी अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहतीं। वे हवा के झोंकों से हटाई जाने पर भी अंधकार का विरोध करती हुई सूर्यदेव की उँगलियों की तरह हिल रही हैं।"[2]

इस तरह के प्राकृतिक चित्रण और दृश्य-वर्णन शैली के आरम्भ 'चन्दा', 'ग्राम'; 'रसिया बालम'; 'शरणागत'; 'गुलाम'; 'प्रसाद'; 'उस पार का योगी' आदि कहानियों में मिलते हैं। दूसरे प्रकार की आरम्भ-शैली में कथोपकथन आरम्भ में आते हैं; जैसे 'अघोरी का मोह' का आरम्भ—

"आज तो भैया, मूँग की बरफी खाने को जी नहीं चाहता, यह साग तो बड़ा ही चटकीला है, मैं तो……"

"नहीं-नहीं जगन्नाथ, उसे दो बरफी तो जरूर ही दे दो।"

"न-न क्या करते हो, मैं गंगा जी में फेंक दूँगा।"

"लो तब तो मैं तुम्हीं को उलटे देता हूँ", ललित ने कह कर किशोरी की गर्दन पकड़ ली। दीनता से मोती और प्रेम-भरी आँखों से चन्द्रमा की ज्योति में किशोरी ने ललित की ओर देखा।

इसी भाँति 'पत्थर की पुकार' का आरम्भ : नवल और विमल दोनों बात करते हुए टहल रहे थे। विमल ने कहा—

१. प्रतिध्वनि : दुखिया, पृ० ५५।

२. छाया : तानसेन, पृ० १-२।

"साहित्य-सेवा भी एक व्यसन है।"

"नहीं मित्र, यह तो विश्व-भर की एक मौन सेवा-समिति का सदस्य होना है।"

"अच्छा तो फिर बताओ, तुमको क्या भला लगता है ? कैसा साहित्य रुचता है ?"

"अतीत और करुणा का जो अंश साहित्य में है वह मेरे हृदय को आकर्षित करता है।"

तात्विक दृष्टि से कहानी के इन आरम्भों में मूल संवेदना तथा कथासूत्र का बीज निहित होना चाहिए, लेकिन इन कहानियों की आरम्भ-शैली में प्रायः वह बीज निश्चित रूप से हर कहानी में नहीं मिलता, वरन् कुछ ही कहानियों में आ सका है; जैसे 'तानसेन' के आरम्भ में कहानी की मूल संवेदना के बीज हैं : "संध्या हो गई। कोकिल बोल उठा। एक सुन्दर कोमल कण्ठ से निकली हुई रसीली तान ने उसे भी चुप कर दिया।" कथोपकथनात्मक आरम्भ-शैली की दिशा में कहानी का बीज 'पत्थर की पुकार' में मिल जाता है—"अतीत, और करुणा का जो अंश साहित्य में है, वह मेरे हृदय को आकर्षित करता है।"

वस्तुतः आरम्भ में कहानी के बीज की निश्चित प्रतिष्ठा द्वितीय और तृतीय काल की कहानियों में मिलती है। यहाँ बीज की प्रतिष्ठा अपने प्रयोग-काल में है।

विकास

इस काल की कहानियों में प्रायः अधिकांश कहानियाँ बहुत छोटी और कला की दृष्टि से गद्यगीत की भाँति हैं। ऐसी कहानियों में विकास-क्रम का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से नहीं हो सकता। इसके पीछे मुख्य कठिनाई तो यह है कि ये गद्यगीत हैं, कहानी नहीं। इनका धरातल केवल एक भाव है, एक अनुभूति है, समस्या या संवेदना नहीं तथा यही एक भाव, एक अनुभूति समूची कहानी में इस तरह से गुँथी रहती है, जैसे गीत में एक वृत्ति या संगीत, जिसका आरम्भ, विकास सब एक ही में होता है, अलग से नहीं देखा जा सकता।

कहानी की शिल्पविधि की दृष्टि से जो कहानियाँ हैं उनमें भी विकास-क्रम का कोई वैज्ञानिक रूप नहीं है। यह बात दूसरी है कि इन कहानियों में समस्या का आरंभ, द्वन्द्व, आरोह-अवरोह आदि मोटे ढंग से मिल जाता है, वस्तुतः प्रसाद जी अपनी कहानियों के इस काल में प्रयोगवादी थे। उनकी दृष्टि में स्वयं कहानी की कोई निश्चित शिल्प-विधि या कला स्थिर नहीं हो सकी थी। फलतः इन कहानियों को एक निश्चित विकास-क्रम की कसौटी पर कसना अनुचित होगा। इस दृष्टि से हम उनकी कहानियों के द्वितीय काल से एक निश्चित और वैज्ञानिक विकास-क्रम पाते हैं।

चरमसीमा

समग्र रूप में प्रसाद की कहानियों की चरमसीमा अत्यन्त भावपूर्ण और ध्वन्यात्मक होती है। इसमें कभी-कभी कलात्मकता का इतना सुन्दर पुट मिलता है कि मन सहसा झकझोर दिया जाता है। तभी प्रेमचन्द जी ने कहा था कि प्रसाद की कहानियों का अन्त, अपने ढंग का निराला होता है, बड़ा ही भावपूर्ण, ध्वन्यात्मक और सहगा पाठक का मन झकझोर देता है, वह एक समस्या को पुनः सुलझाने लगता है।

चरमसीमा की यह कलात्मक प्रवृत्ति हमें प्रसाद के प्रथम काल की कहानियों में ही मिलने लगती है। इस काल की प्रायः अधिकांश कहानियों की चरमसीमा चरित-उत्कर्ष और मनोवैज्ञानिक सत्य पर प्रतिष्ठित हुई है, जैसे 'तानसेन', 'ग्राम', 'प्रसाद', 'पत्थर की पुकार', 'अघोरी का मोह' आदि कहानियों की चरमसीमाएँ, लेकिन यहाँ गद्यगीत-सी कहानियों की चरमसीमाएँ और भी रहस्यात्मक और कलापूर्ण हुई हैं। इनमें चरमसीमा पर वही प्रश्न बार-बार मिलता है, जिसे लेकर कहानी का प्रारम्भ हुआ था। इसके उदाहरण में 'प्रलय' और 'कलावती की शिक्षा' आदि कहानियाँ स्मरणीय रहेंगी। व्यापक रूप से प्रसाद की कहानियों में उनकी चरमसीमाएँ निम्नलिखित रेखाओं में व्यक्त हो सकती हैं :—

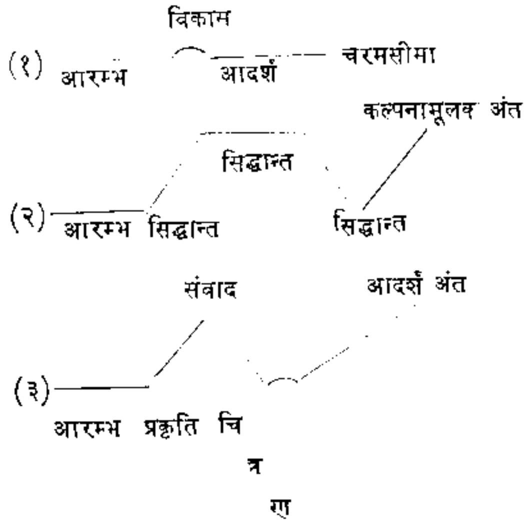

कथोपकथन

शैली के सामान्य पक्ष में कथनोपकथन का अध्ययन मुख्य स्थान ग्रहण करता है क्योंकि कहानी में व्यावहारिक दृष्टि से वर्णन और कथोपकथन के ही माध्यम से

समूची कहानी अपनी अभिव्यक्ति पाती है। प्रारम्भिक काल की कहानियों में कथनोपकथन का रूप अपने समुचित कलात्मक स्तर पर है। प्रसाद जी मुख्यतः नाटककार और कवि थे, अतः उनकी कहानियों में आरम्भ ही से किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं होने पाई थी। प्रसाद के कथोपकथन तीन रूप ग्रहण करते हैं : स्वतन्त्र कथोपकथन, कार्यों के रूप से कथोपकथन और मनोभावों के संकेतों के साथ कथोपकथन, 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की कहानियों में मिलते हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

प्रसाद की कहानियों का मुख्य लक्ष्य सत्य-दर्शन, त्याग, उत्सर्ग और करुणा है, क्योंकि उनके व्यक्तित्व पर बौद्ध दर्शन और भारतीय संस्कृति का विशेष प्रभाव था। दूसरी ओर स्वभावतः प्रसाद भावुक और संवेदनशील व्यक्ति थे। यही कारण है कि उनके व्यक्तित्व का अणु-अणु दया, क्षमा, स्नेह और प्रेमादि तत्वों से अभिभूत था। तत्कालीन समाज की गरीबी, निरीहता और दुःख को पल-पल पर देखकर उनका हृदय भर आता था और वे उसकी अभिव्यक्ति अतीत काल में जाकर वहाँ की कारुणिक संवेदनाओं, प्रसंगों के माध्यम से या कल्पना-लोक के कथा-प्रसंगों के माध्यम से करते थे, जिसमें सदैव करुणा का पुट रहता था।

प्रथम काल की कहानियों में करुणा के साथ-साथ सत्य-दर्शन का लक्ष्य स्पष्ट है, लेकिन सामाजिक कहानियों में यह करुणा अपने स्थायी भाव शोक से आगे नहीं बढ़ पाई है 'ग्राम' में मुख्य संवेदना का अंत इसी लक्ष्य पर समाप्त होता है—"स्त्री की कथा को सुनकर मोहनलाल को बड़ा दुःख हुआ। रात विशेष बीत चुकी थी, अतः रात्रि-यापन करके प्रभात में मलिन तथा पश्चिमगामी चन्द्र का अनुसरण करके बताए हुए पथ से वह चले गए। कारण यह था कि स्त्री की जमींदारी-हरण करने वाले तथा उसके प्राणप्रिय पति से उसका विच्छेद कराकर इस भाँति दुःख देने वाले कुन्दनलाल मोहनलाल के ही पिता थे।" लक्ष्य की यही स्थिति 'अघोरी का मोह', 'पाप का पराजय', 'पत्थर की पुकार', 'उस पार का योगी' और 'दुखिया' आदि कहानियों में मिलती है, लेकिन अपवाद-स्वरूप 'रसिया बालम' और 'करुणा की विजय' में कारुणिक लक्ष्य सफलता से स्पष्ट है। रसिया बालम, राजकुमारी के प्रेम में विष पी लेता है और उसके ऐसे प्रेम के उत्कर्ष पर राजकुमारी भी उसके हाथ से अवशेष विष को पी लेती है।

यहाँ की ऐतिहासिक कहानियों को पढ़ने से अवश्य प्रकट है कि इनका निर्माण प्रायः कारुणिक लक्ष्य को ही लेकर हुआ है। इसका पूर्ण विकास हमें द्वितीय और तृतीय काल की ऐतिहासिक कहानियों में मिलता है, लेकिन प्रारम्भ की ऐतिहासिक कहानियों में करुणा की प्रतिष्ठा आगे की ऐतिहासिक कहानियों में करुणा की प्रतिष्ठा

से भिन्न हैं। यहाँ प्रारम्भिक कहानियों में करुणा की निष्पत्ति की कहानी की चरम-सीमा पर किसी घटना के घटने में अधिक होती है और आगे की कहानियों में सम्पूर्ण वातावरण आदि से विकास तक, करुणा से अभिभूत रहती है, चाहे उनका अंत अथवा चरमसीमा संयोगात्मक ही क्यों न हो। इस सम्बन्ध में इस काल की ऐतिहासिक कहानियों में 'सिकन्दर की शपथ', 'गुलाम', 'अशोक' आदि कहानियों के चरम लक्ष्य स्मरणीय हैं।

प्रसाद की अधिकांश कहानियाँ केवल एक अनुभूति के धरातल पर लिखी गई हैं अर्थात् उनके निर्माण में एक निश्चित अनुभूति की ही प्रेरणा है, 'लक्ष्य की नहीं। प्रसाद की इस अनुभूति का केन्द्र-बिन्दु सौन्दर्यानुभूति और प्रेमानुभूति है। तभी प्रसाद की कहानियों में प्रेम की पीड़ा इतनी प्रबल हो गई है कि इसका रूप हमें सूरदास के प्रेमगीतों और जायसी के प्रेमाख्यानकों के समीप ले जाता है। मुख्यतः प्रसाद ने जितनी कहानियाँ इस प्रेम की गहरी अनुभूति से और सौन्दर्य-मन्थन के बीच से लिखी हैं, उनमें अपेक्षाकृत अधिक प्रभविष्णुता और गहराई आ गई है। इस दृष्टि से 'आँधी', 'ग्राम गीत', 'दासी', 'नूरी', 'सालवती' और 'आकाश दीप' प्रसाद की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं।

यहाँ प्रथम काल की कहानियों में जितनी भी कहानियाँ काल्पनिक हैं, उनमें अपेक्षाकृत अनुभूति की ही प्रेरणा है, जिससे वे कहानियाँ इतनी सुन्दर लगती हैं, जैसे 'तानसेन', 'प्रलय', 'मदन', 'मृणालिनी' और 'रसिया बालम' आदि कहानियाँ।

समीक्षा

प्रसाद की प्रथम काल की कहानियाँ परिस्थिति-प्रधान हैं। अर्थात् यहाँ कहानियों का धरातल मुख्यतः परिस्थितियों का विभिन्न प्रसंग है, अतः यहाँ संवेदना और मनोविज्ञान गौण हैं और परिस्थितियों का चित्रण प्रधान हो गया है। इस काल की गद्यगीत जैसी कहानियों को छोड़कर शेष कहानियाँ विभिन्न परिस्थितियों के प्रसंगों की प्रतिकृति-मात्र है। 'चन्दा', ग्राम 'सिकन्दर की शपथ', 'जहानारा', 'अघोरी का मोह' और 'करुणा की विजय' इन समस्त कहानियों का चित्रण है और इन्हीं विभिन्न परिस्थितियों के चित्रण में इन कहानियों की विशेषता है।

'चन्दा' में प्रेम-परिस्थिति है, जहाँ चन्दा की भावना-परिधि में दो प्रेमी रामू और हीरा हैं। चन्दा और हीरा एक दूसरे से प्रेम करते हैं और दोनों एक दूसरे से शादी करने वाले हैं, लेकिन रामू इस बीच में खलनायक का काम करता है और सारी परिस्थिति कारुणिक हो जाती है। 'ग्राम' आर्थिक परिस्थिति के धरातल पर लिखी

१. छाया : ग्राम, पृ० ४०।

हुई कहानी है। य
मुख जमींदार ने
लड़का मोहनलाल
तीव्रता आ जाती
जहाँ सिकन्दर औ
पहुँचाते हैं। 'अघो
स्थिति और दारि
अपने विभिन्न रूपों
है कि इस काल
लिया गया है।

द्वितीय काल

प्रथम का
'छाया' में ऐतिहा
प्रसाद की कला
प्रायः कहानियाँ
घटनाओं की भा

'आकाश
में कुल उन्नीस है
का धरातल अप
के खंडहर में', '
चिन्ह' और 'बि
प्रेम-कहानियाँ
इन कहानियों के
रेखाचित्रों के लि
'समुद्र-संतरण',
कहानियाँ 'प्रति
अतः समग्र में
क्रम की दिशा
और 'प्रतिध्वनि
यद्यपि यहाँ प
में विकास हुअ

हुई कहानी है। यहाँ एक ग्राम में दो निरीह किसान हैं जिनकी सारी सम्पत्ति और सुख जमींदार ने हड़प लिया है। एक दिन परिस्थितिवश उसी जमींदार का उदार लड़का मोहनलाल उसी गाँव में उसी किसान के घर आ पहुँचता है और परिस्थिति में तीव्रता आ जाती है। 'सिकन्दर की शपथ' और 'जहानारा' में नैतिक परिस्थिति है जहाँ सिकन्दर और औरंगजेब क्रमशः भारतीय हिन्दू योद्धाओं और जहानारा को यातना पहुँचाते हैं। 'अघोरी का मोह' और 'करुणा की विजय' में क्रमशः मनोभावों की परिस्थिति और दारिद्रिक परिस्थिति का चित्रण है जो आदि से अन्त तक हमारे सामने अपने विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होता रहता है। शिल्पविधि की दृष्टि से यही कारण है कि इस काल की कहानियों के विकास में संयोग और घटनाओं का सहारा बहुत लिया गया है।

द्वितीय काल :

प्रथम काल में 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की कहानियाँ एक दूसरे से भिन्न थीं। 'छाया' में ऐतिहासिक और प्रेम-कथाएँ हैं तथा कहानी-कला की दृष्टि से ये कहानियाँ प्रसाद की कला की प्रारम्भिक अवस्था के उदाहरण हैं। 'प्रतिध्वनि' की कहानियाँ प्रायः कहानियाँ न होकर गद्यगीत और रेखाचित्र हैं। इनमें जीवन के विभिन्न प्रसंगों, घटनाओं की भावात्मक झाँकियाँ हैं।

'आकाश दीप' की कहानियाँ प्रसाद के द्वितीय काल की कहानियाँ हैं। ये संख्या में कुल उन्नीस हैं। ये सारी कहानियाँ प्रेम के प्रसंगों के साथ आई हैं, लेकिन यहाँ प्रेम का धरातल अपनी पूर्ण विशालता और गम्भीरता के साथ है। 'आकाश दीप', 'स्वर्ग के खंडहर में', 'ममता', 'सुनहला साँप', 'देवदासी', 'बनजारा', 'चूड़ीवाली', 'प्रणय चिन्ह' और 'बिसाती' आदि प्रेम की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। अध्ययन की दृष्टि से ये प्रेम-कहानियाँ 'छाया' संग्रह की कहानियों की विकास-दिशा में रखी जा सकती हैं। इन कहानियों के अतिरिक्त 'आकाश दीप' की और शेष कहानियाँ पुनः गद्यगीतों और रेखाचित्रों के विकास-क्रम में आई हैं; जैसे 'हिमालय का पथिक', 'प्रतिध्वनि', 'कला', 'समुद्र-संतरण', 'वैरागी', 'अपराधी' और 'रूप की छाया'। अध्ययन की दृष्टि से ये कहानियाँ 'प्रतिध्वनि' संग्रह की कहानियों की विकास-दिशा में रक्खी जा सकती हैं। अतः समग्र में 'आकाश दीप' की कहानियों में दो दिशाएँ आई हैं। 'छाया' के विकास-क्रम की दिशा में आने वाली कहानियाँ कहानी-शिल्पविधि की दृष्टि से उत्कृष्ट हुई हैं और 'प्रतिध्वनि' के विकास-क्रम में आने वाली कहानियाँ साधारण ही रह गई हैं। यद्यपि यहाँ पहले की अपेक्षा कहानी के तत्व अधिक आए हैं और उनकी सम्पूर्ण कला में विकास हुआ है।

कथानक

इस काल की कहानियों में दो तरह के कथानक मिलते हैं; अर्थात् 'आकाश दीप', 'स्वर्ग के खंडहर में', 'ममता', 'सुनहला साँप', 'बनजारा', 'चूड़ीवाली', 'प्रणय चिन्ह' और 'बिसाती' कहानियों के कथानक लम्बे और नाटकीय तत्व के साथ आए हैं। दूसरी ओर 'हिमालय के पथिक', 'प्रतिध्वनि', 'कला', 'समुद्र-संतरण', 'वैरागी', 'अपराधी' और 'रूप की छाया' कहानियों के कथानक छोटे और प्रासंगिक हुए हैं।

यहाँ लम्बे कथानकों में दो प्रकार के कलात्मक सौन्दर्य उपस्थित हुए हैं। इन कथानकों में अपेक्षाकृत बड़ी संवेदनाएँ अपने कई प्रसंगों के साथ गुँथी हुई आई हैं। फिर भी इन कथानकों की सबसे बड़ी विशेषता इसमें है कि इनमें भाव की इकाई और एक-सूत्रता सर्वत्र है। 'आकाश दीप' की मुख्य इकाई है प्रेम और कर्तव्य का संघर्ष और इस संघर्ष में इसी कहानी की एकसूत्रता भी है तथा इसी के किनारे-किनारे ये जितने प्रसंग आए हैं, वे संकेत और व्यंजना के माध्यम से हमारे सामने प्रगट हुए हैं; जैसे चंपा, चंपा नगरी की एक बालिका थी। उसके पिता मणिभद्र के यहाँ प्रहरी थे। चम्पा माता के देहावसान के उपरान्त अपने पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। एक दिन चम्पा के पिता दस्युओं के आक्रमण से मारे गए और युवती चम्पा से मणिभद्र ने घृणित प्रस्ताव किया, जिसके विद्रोह में चम्पा बन्दी हुई। वस्तुतः इतने प्रसंग मुख्य संवेदना और कथासूत्र की पृष्ठभूमि में आए हैं। मुख्य संवेदना के साथ इतने प्रसंग आए हैं : बुद्धगुप्त ही वह दस्यु था जिसने चम्पा के पिता की हत्या की और इधर चम्पा और बुद्धगुप्त से प्रेम होता है तथा इसके फलस्वरूप प्रेम और कर्त्तव्य में संघर्ष छिड़ता है। बुद्धगुप्त का जावा, सुमात्रा, बाली का अधिकारी होना। वस्तुतः ये प्रसंग मुख्य संवेदना में और भी तनाव और गम्भीरता उपस्थित करते हैं तथा सबसे बड़ी बात इन प्रसंगों में यह है कि इनके माध्यम से मुख्य संवेदना में अन्तर्द्वन्द्व और घात-प्रतिघात की अवतारणा हुई है तथा समग्र रूप से प्रसाद की कहानी-कला में नाटकीय तत्व की प्रतिष्ठा हुई है। फलतः ऐसे कथानकों की इकाई एकसूत्रता इतनी बलवती और कलात्मक हुई है कि कहानियों के आरम्भ ही से पाठक की जिज्ञासा-वृत्ति पर कहानी की संवेदना, पूर्ण अधिकार प्राप्त कर, अंत तक पाठक को कौतूहल से अभिभूत किए रहती है। पाठक कहानी के अन्त पर भी पहुंच कर उस इकाई से छुट्टी नहीं पाता, वरन् उसके सामने एक नई समस्या आ जाती है और वह स्वयं उसके सुलझाने में लग जाता है।

ऐसे कथानकों का अन्यतम सौन्दर्य इसमें है कि एक लम्बी-सी संवेदना और कथासूत्र को एक छोटे-से इतिवृत्त में समेट देना तथा उसमें भी कौतूहल का चमत्कार पैदा करते रहना। प्रत्यक्ष रूप से 'आकाश दीप' के कथानक का सूत्र इतना ही है। एक

महाजलपोत से सम्बन्धित एक अन्य नाव में चम्पा और बुद्धगुप्त दोनों बन्दी हैं। दोनों अपनी कुशलता और पराक्रम से बन्धन-मुक्त हो जाते हैं और उनकी नाव एक दिन एक नये द्वीप पर पहुंचती है। चम्पा और बुद्धगुप्त एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं, लेकिन इसी बीच चम्पा को स्पष्ट हो जाता है कि बुद्धगुप्त ही वह दस्यु है जिसने उसके पिता की हत्या की है। चम्पा में अंतर्द्वन्द्व बढ़ते हैं और बुद्धगुप्त अंत में चम्पा को अप्राप्य समझ कर निस्सहाय भारत लौट आता है, लेकिन इतने से इतिवृत्त में 'आकाश दीप' की और भी बड़ी संवेदना और कथासूत्र समस्या हुआ है।

ऐसे कथानकों के निर्माण में प्रसाद ने बिल्कुल नये कथानक-तन्त्र की सहायता ली है। इस तन्त्र-निर्माण में नाटकीय अनुक्रमों, वर्णनात्मकता, व्यंजना और संदर्भ की सामूहिक सहायता ली गई है। इस दिशा में सबसे बड़ी विशेषता इस बात में है कि ये कथानक न तो अधिक इतिवृत्तात्मक हो सके हैं, न वर्णनात्मक। वस्तुत: ऐसे कथानकों का निर्माण प्रसाद जी ही द्वारा संभव था, क्योंकि प्रसाद के व्यक्तित्व में एक ही साथ नाटककार, गीतकार और उपन्यासकार की प्रतिभा समन्वित थी। उन्हें जिस कथानक का आरम्भ समस्या और द्वन्द्व के साथ करना हुआ, वहाँ उन्होंने अपनी नाटकीय प्रतिभा से कथोपकथन की अवतारणा कर दी और कथानक का आरम्भ समस्या को तीव्रता से हुआ; जैसे 'आकाश दीप', 'सुनहला साँप' और 'चूड़ीवाली' के आरम्भ में कथानक का आरम्भ। उन्हें जिस 'कथानक का आरम्भ समस्या की पृष्ठ-भूमि-सौन्दर्य के साथ करना हुआ ता उन्होंने काव्यात्मक वर्णनों से कथानक का आरंभ किया; जैसे 'ममता' 'स्वर्ग के खंडहर में' और 'बिसाती'। ऐसे कथानकों के निर्माण में प्रसाद जी ने दो शैलियाँ अपनायी हैं। कथोपकथनों से कहानी आरम्भ करके कथानक में द्वन्द्व पैदा करना और इसके उपरान्त वर्णन द्वारा वस्तुस्थिति को व्याख्या द्वारा नहीं, बल्कि संकेतों द्वारा स्पष्ट करते चलना; फिर कथोपकथनों द्वारा अंतर्द्वंद्वों की अभिव्यक्ति और सांकेतिक वर्णन से कथानक को चरमसीमा पर पहुँचा देना। कथानक-निर्माण का यह अवस्था-क्रम 'आकाश दीप', 'सुनहला साँप', 'बिसाती' और 'चूड़ी-वाली' आदि कहानियों में मिल जायगा। दूसरी शैली है, वर्णन और चित्रण से कथानक का आरम्भ करना और समस्या का प्रवेश तथा कथोपकथनों द्वारा उसके अन्तर्द्वन्द्वों को उभारते हुए कथासूत्र को चरमसीमा पर पहुंचा देना। कथानक-निर्माण का यह अवस्था-क्रम 'ममता', 'स्वर्ग के खंडहर में' और 'बनजारा' आदि कहानियों में मिलेगा।

इन दोनों शैलियों से निर्मित कथासूत्रों में बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठा पूर्ण सफलता से हुई है। इन कथानकों में भारतीय नाटक प्रणाली का अनु-

मोदन भी हुआ है। प्रसाद मूलतः अपने नाटकों के कथानक-निर्माण में इसी प्रणाली से प्रायः आकर्षित थे। उन्होंने अपने समस्त नाटकों में इसका सक्रिय अनुमोदन किया है।

उपर्युक्त तथ्य की परीक्षा के लिए हम 'आकाश दीप' और 'चूड़ीवाली' कहानी को ले सकते हैं। 'आकाश दीप' में दोनों बंदियों का आपस में टकराना और एक दूसरे को बंधन-मुक्त कर देना बीज है। चम्पा द्वीप में उन दोनों का पाँच वर्ष का रहना और चंपा का प्रेम-कर्तव्य के धरातल पर अपने से संघर्ष करना कहानी का विकास है और चंपा का उस द्वीप पर अकेली रह जाना और बुद्धगुप्त का 'भारतवर्ष लौटना फलागम है। 'चूड़ीवाली' में चूड़ीवाली का बहू जी को चूड़ी पहनाते समय बहू के पति के संबंध में विनोद में यह कहना—"आप तो कहती थीं न कि सरकार को ही पहनाओ तो जरा उनसे पहनने के लिए कह दीजिए।" यह बीज है। सरकार का चूड़ीवाली वेश्या-पुत्री से प्रेम हो जाना और चूड़ीवाली का इन्हें पति के रूप में पाने के लिए उसकी साधना, त्याग आदि विकास है तथा चूड़ीवाली और सरकार का अंत में संयोग हो जाना फलागम है।

दूसरे ढंग के कथानकों में दो विशेषताएँ स्पष्ट हैं। यहाँ कथानकों का निर्माण व्यंजनाओं से हुआ है, घटनाओं से नहीं तथा इन कथानकों का मूल्य रूपकात्मक अधिक है, कथात्मक कम। ऐसे कथानकों के उदाहरण में हम 'कला' नामक कहानी के कथानक को देख सकते हैं। इसका कथानक इन व्यंजनाओं से निर्मित हुआ है—कला एक युवती है, कालेज में पढ़ती है तथा रूपनाथ और रसदेव इसके प्रेमी हैं। एक दिन कला अपनी पढ़ाई समाप्त कर कालेज छोड़ देती है और इधर रूपनाथ तथा रसदेव कला के प्रेम में क्रमशः चित्र और गीत बनाने लगते हैं। सहसा एक दिन कला अभिनेत्री के रूप रंग-मंच पर दिखाई देती है। रूपनाथ उसे देख कर अपनी चित्रकला को भूल जाता है और कला से पराजित होकर भाग जाता है। रसदेव सुनता है कि कला उसी का बनाया हुआ एक गीत गा रही है, फिर दोनों का संयोग हो जाता है। वस्तुतः यह इतिवृत्त पूर्ण रूपकात्मक है। इसकी संवेदना को लेकर कहानी को कथा बनाया जा सकता है, लेकिन यहाँ प्रसाद जी ने जान-बूझ कर इसे अस्पष्ट और अमूर्त्त बनाने की चेष्टा की है। ऐसी कहानियों के पीछे प्रसाद के व्यक्तित्व का गीत-तत्व अधिक प्रधान हो गया है, यही कारण है कि ये कहानियाँ गद्यगीत हो गई हैं और इनके कथानक टूटे हुए, विशृंखलित और रूपकात्मक हो गए हैं।

इस काल की कहानी—'देवदासी' में प्रसाद ने कथानक-निर्माण पत्रात्मक शैली में किया है, लेकिन कथानक-निर्माण की यह शैली बहुत सफल नहीं है और आगे फिर कभी इस शैली का दर्शन नहीं हुआ है।

चरित्र

पिछले पृष्ठों में चरित्र-अवतारणा के सम्बन्ध में हमने बौद्ध दर्शन और प्रसाद के सौन्दर्यनिष्ठ और भावुक व्यक्तित्व की चर्चा की थी। वह तथ्य यहाँ की कहानियों की चरित्र-अवतारणा पर पूर्णतः स्पष्ट है। यहाँ के चरित्रों का गम्भीर और कारुणिक व्यक्तित्व सुन्दरता से प्रतिष्ठित हो गया है तथा चरित्रों की सौन्दर्यनिष्ठा और उनका प्रेमतत्व दोनों अपनी सीमा पर पहुँच गये हैं। यहाँ चरित्र अपने भाव-जगत्, अपनी आंतरिकता में अधिकाधिक एक दूसरे के समीप हैं अर्थात् प्रायः समस्त चरित्र अन्तर्द्वन्द्वों से अभिभूत हो गये हैं। उनकी बाह्य क्रियाशीलता उनके आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्वों की अपेक्षा बहुत ही सीमित हैं। चरित्र प्रायः अपने अन्तर्लोक में जितने महान्, जितने संघर्ष-रत हैं, उतने अपने बाह्य पक्ष में नहीं। इसका सबसे प्रधान कारण यह है कि यहाँ की कहानियों में प्रायः समस्त प्रतिनिधि चरित्र अपने कारुणिक व्यक्तित्व में मौन हैं, वे तिल-तिल कर घुलते रहते हैं और अपने अन्तर्लोक के छायाचित्रों में ही अपना सन्तोष ढूँढ़ते रहते हैं। यही एकमात्र कारण है कि चम्पा, ममता, मीना, गुल और देवपाल, रसदेव, सुदर्शन, बिसाती और बनजारा, आदि चरित्र काव्य और नाटक के चरित्र अधिक हो गये हैं, कहानी के कम।

स्त्री

जैसा कि पहले कहा गया है मूलतः प्रसाद के स्त्री-चरित्र सदैव युवा, सुन्दर और आकर्षक होते हैं। इसका प्रमाण हमने प्रथम काल की कहानियों में ही पा लिया है। इस काल की भी स्त्रियाँ सुन्दर, आकर्षक, नवीन इन्दुकला-सी, आलोकमयी, आँखों की प्यास बुझाने वाली तो हैं ही, लेकिन इनके व्यक्तित्व के दोनों पक्ष करुणा और भावुकता यहाँ अपूर्व ढङ्ग से प्रतिष्ठित हुए हैं अर्थात् प्रसाद के ही शब्दों में यहाँ की सभी स्त्रियाँ अपने मन में वेदना, मस्तिष्क में आँधी, शरीर में यौवन और आँखों में पानी की बरसात लिए हुए आई हैं।

'ममता' कहानी में मुख्य स्त्री-पात्र ममता युवती है। उसका यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा है, उसके लिये कुछ अभाव होना असम्भव है, क्योंकि वह रोहतास दुर्गपति के मन्त्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता है, परन्तु वह विधवा है। हिन्दू विधवा, संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय प्राणी, लेकिन इस स्त्री-चरित्र की करुणा यहीं नहीं समाप्त होती, बल्कि यह कारुणिक व्यक्तित्व और भी कारुणिक होता है। इसके एकमात्र पिता की हत्या होती है, ममता भिक्षुणी हो जाती है, महल से निकलकर झोपड़ी में रहने लगती है और अन्त में अपूर्व करुणा से भर जाती है। 'स्वर्ग के खंडहर' में बालिका का शुभ्र शरीर मलिन वस्त्र में दमक रहा था। नासिका मूल से

कानों के समीप तक भ्रू-युगल प्रभाव-शालिनी रेखाएँ और उसकी छाया में दो उनींदे कमल संसार से अपने को छिपा लेना चाहते थे, लेकिन उसका विरागी सौन्दर्य, शरद के शुभ्र घन के हलके आवरण में पूर्णिमा के चन्द्र-सा आप ही लज्जित था ।

इस तरह यहाँ स्त्री-चरित्र की अवतारणा अनुपम सौन्दर्य, विराग और करुणा के सन्धि-बिन्दु पर हुआ है और अधिकांश स्त्री पात्र साधना-रत, एकाकी जीवन व्यतीत करते हुए हमारी समस्त संवेदना और पूरी सहानुभूति को स्वतः अपने में खींच लेते हैं । यहाँ की कहानियों में स्त्रियाँ ही मूलरूप से केन्द्र-बिन्दु बनकर उपस्थित हुई हैं, जिनके किनारे-किनारे कहानी की समस्त रेखाएँ, समस्त क्रियाएँ घूमती रहती हैं । इनमें इतनी प्रभविष्णुता आ गई है कि पुरुष-चरित्र इनकी छाया-से लगने लगते हैं। इस प्रभविष्णुता और बलशाली स्त्री-व्यक्तित्व के पीछे प्रसाद ने तीन रहस्य छिपाया है फलतः ये कहानियाँ स्त्री-प्रधान हैं और अधिकांश रूप में इनका नायकत्व स्त्रियों को ही मिला है । यहाँ स्त्री पात्रों में प्रसाद ने मुख्यतः चरित्र को लिया है, आचरण को नहीं। कहीं-कहीं चरित्र में ही डूब कर, उन्होंने स्त्री की आन्तरिकता को लिया है तथा इस आन्तरिकता में उन्होंने उन अन्तर्द्वन्द्वों तथा घात-प्रतिघातों को लिया है, जो शाश्वत हैं; जैसे प्रेम और कर्त्तव्य, प्रतिशोध और क्षमा ।

"विश्वास ? कदापि नहीं बुद्धगुप्त; जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ; मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ । अंधेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ" चम्पा रो पड़ी ।"

लेकिन यहाँ स्त्रियाँ अपने समस्त प्रतिशोधों, कटु अनुभूतियों और अन्तर्द्वन्द्वों के बावजूद भी चारित्रिक रूप में महान सिद्ध हुई हैं । चम्पा कहती है—"बुद्धगुप्त, मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है, कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित नहीं । सब मिला कर मेरे लिए एक शून्य है । प्रिय नाविक, तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो, इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए ।" मीना अपनी भावुकता में कितनी ऊँची बातें करती है—"वही स्वर्ग तो नरक है, जहाँ प्रिय-जनों से विच्छेद है । वही रात्रि प्रलय की रात्रि है, जिसकी कालिमा में विरह का संयोग है । वह यौवन निष्फल है जिसका हृदयवान् उपासक नहीं । वह मदिरा हलाहल है, पाप है, जो उन मधुर अधरों की उच्छिष्ट नहीं ! वह प्रणय विषाक्त छुरी है, जिसमें काट है ।"

इन स्त्री-चरित्रों की प्रतिष्ठा इतनी रंगीन, भावुक और कोमल रेखाओं से हुआ है कि हम इनके सामूहिक व्यक्तित्व को कभी नहीं भूल सकते, क्या इनके शौर्य रूप में, क्या कोमल और कारुणिक रूप में—"मैं एक भटकी हुई बुलबुल हूँ, मुझे किसी टूटी

डाल पर अंधकार बिता लेने
जाऊँगी ।" फिर भी ये स्त्रियाँ
कहीं प्रतिहिंसा के लिए प्रस्तुत
साधिका बन गई हैं और अपन

यहाँ स्त्री-चरित्रों में
मूलतः सब स्त्रियाँ एक-सी
कुमारी, चाहे साधिका, जा
बालाएँ, वेश्या-पुत्री, कोल-कुम
आदि अनेक प्रकार से स्त्री-च

पुरुष

प्रथम काल की कह
और अन्तर्मुखी भावधारा में
बहुत आगे बढ़ आये हैं, लेकि
इसके दो कारण हैं । मूलतः
यहाँ केन्द्र-बिन्दु हैं, कार्यों अ
हैं और उनका चरित्र गंभ
प्रधानता भी मिली है वे कह
पात्रों की व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा
तो 'हिमालय के पथिक'
'हिमालय का पथिक' में प
काल के पुरुष-पात्रों में बहु
संवेदनशील है ! वह तूफान
करता है, एक नये द्वीप क
राज्य बनाता है और स्वय
है । 'हिमालय का पथिक'
के निर्माल्य की ओर भी
उसे तुम देवता को अर्पण
जाने लगा और भयानक

यहाँ के पुरुष-चरि
काल में यह धरातल बहुत
साथ ही साथ कर्त्तव्य औ
प्रति युवक-हृदय उत्तेजि

डाल पर अंधकार बिता लेने दो। इस रजनी-विश्राम का मूल्य अन्तिम तान सुनाकर जाऊँगी।" फिर भी ये स्त्रियाँ स्थान-स्थान पर कर्म-प्रधान हैं। अपनी क्रियाशीलता में कहीं प्रतिहिंसा के लिए प्रस्तुत हुई हैं, कहीं पुरुष को पाने के लिए चूड़ीवाली-सी अपूर्व साधिका बन गई हैं और अपनी साधना-तपस्या से पुरुष को पा गई हैं।

यहाँ स्त्री-चरित्रों में जातिगत और वर्गगत विभिन्नता अवश्य आई है, लेकिन मूलतः सब स्त्रियाँ एक-सी तरुण, आकर्षक और सुन्दरी हैं चाहे वे विधवा हों, चाहे कुमारी, चाहे साधिका, जातिगत और वर्गगत प्रभेदों में, कुमारियाँ, रानियाँ, धीवर-बालाएँ, वेश्या-पुत्री, कोल-कुमारी, मालिन, सँपेरिन, देवदासी, दासी, भिक्षुणी, भिखारिन आदि अनेक प्रकार से स्त्री-चरित्र आये हैं।

पुरुष

प्रथम काल की कहानियों में पुरुष-चरित्र अपनी संवेदनशीलता, चारित्रिक दृढ़ता और अन्तर्मुखी भावधारा में प्रारम्भिक अवस्था में थे। यहाँ इन दिशाओं में पुरुष-पात्र बहुत आगे बढ़ आये हैं, लेकिन फिर भी पूर्ण रूप से उनका प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है। इसके दो कारण हैं। मूलतः 'आकाश दीप' की कहानियाँ स्त्री-प्रधान हैं—अर्थात् स्त्री यहाँ केन्द्र-बिन्दु है, कार्यों और घटनाओं की प्रेरणा है, अतः यहाँ पुरुष-पात्र दब-से गए हैं और उनका चरित्र गौण हो गया है। जिन दो-तीन कहानियों में पुरुष-पात्रों को प्रधानता भी मिली है वे कहानियाँ प्रायः रहस्यात्मक और अस्पष्ट रह गईं। फलतः पुरुष-पात्रों की व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा उचित ढंग से नहीं हो सकी है, और अगर कहीं हुई भी है तो 'हिमालय के पथिक' की भाँति पुरुष-पात्र मनुष्य न रहकर देवता हो गए हैं। 'हिमालय का पथिक' में पथिक को देवता बनाया है, फिर भी यहाँ के पुरुष-पात्र प्रथम काल के पुरुष-पात्रों से बहुत आगे हैं। 'आकाश दीप' का बुद्धगुप्त कितना साहसी और संवेदनशील है! वह तूफानी समुद्र की लहरों में बन्दी चम्पा और अपने को बन्धन-मुक्त करता है, एक नये द्वीप की सृष्टि करता है, नये प्रजा-वर्ग की प्रतिष्ठा करता है, नया राज्य बनाता है और स्वयं महानाविक बनकर चम्पा को उन द्वीपों की महारानी बनाता है। 'हिमालय का पथिक' में पथिक नूरी के प्रति कितना ईमानदार है—"मैंने देवता के निर्माल्य को और भी पवित्र बनाया है, उसे प्रेम के गंध से सुरभित कर दिया है। उसे तुम देवता को अर्पण कर सकते हो, इतना कहकर पथिक उठा और गिरिपथ से जाने लगा और भयानक शिखर पर चढ़ने लगा उत्सर्ग के लिए।"

यहाँ के पुरुष-चरित्रों का निर्माण विशुद्ध प्रेम के धरातल पर हुआ है। प्रथम काल में यह धरातल बहुत ही रूमानी और काल्पनिक था, यहाँ इस धरातल में प्रेम के साथ ही साथ कर्त्तव्य और दायित्व भी विशिष्ट ढंग से जुड़ गया है। भिखारिणी के प्रति युवक-हृदय उत्तेजित हो उठा, बोला—"यह क्या भाभी, मैं तो इससे ब्याह करने

के लिए प्रस्तुत हो जाऊँगा, तुम व्यंग कर रही हो ?'' 'बिसाती' का प्रेमी अपनी प्रेमिका को एक सरदार-पत्नी के रूप में देखकर सदा के लिए वहाँ से दूर चला जाता है और सब तरह से प्रेम तथा कर्त्तव्य दोनों के प्रति अपने दायित्व को पूरा करता है।

यहाँ पहले की अपेक्षा पुरुष-पात्र अधिक जीवन-रत हुए। प्रथम काल के प्रेमी भावुक पुरुष प्रायः एकाकी और उदास थे, यहाँ जीवन-प्रांगण में उन्होंने प्रेम की बाजियाँ लगाई हैं और अपना सर्वस्व बलिदान किया है। निष्कर्ष रूप में यहाँ आकर पुरुष-चरित्र अधिक स्वाभाविक और सजीव हुए हैं तथा उनके चरित्रों के अन्तर्लोक के भाव-मंडल अधिक उभर कर मानव-सुलभ हुए हैं। अब यहाँ पुरुष-पात्र एकांगी नहीं रह गए हैं। वे भावुक होने के साथ ही साथ क्रियाशील भी हैं, और इस काल की कहानियाँ इन पात्रों के बाह्य और आन्तरिक दोनों धरातलों के सन्धि-बिन्दु पर टिकी हुई हैं। फलतः इस काल के स्त्री-पुरुष-चरित्र पहले की अपेक्षा अधिक व्यक्तित्व-प्रधान और स्मरणीय हैं; जैसे 'आकाश दीप' का बुद्धगुप्त, 'स्वर्ग के खंडहर में', 'बनजारा' और 'बिसाती' के तीनों प्रेमी। वस्तुतः ऐसे व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा और मनोविश्लेषण उन्हीं कहानियों में हो सका है जो 'छाया' की कहानियों की विकास-दिशा में यहाँ अपने विस्तृत रूप में आई हैं।

शैली

यहाँ के कथासूत्र में भारतीय नाटक प्रणाली का बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठा हुई है। इसका प्रभाव इस काल की कहानियों के निर्माण में दो तरह से पड़ा है। यहाँ की कहानियाँ अपने आरम्भ, विकास और अंत में संतुलित और गठित हैं, तथा यहाँ की कहानी शैली में कहानी के तत्व पहले की शैली में। सामान्य दिशा में यहाँ की कहानियाँ वर्णन, कथोपकथन, व्यंजना और अंतर्कथाओं के साधन से निर्मित हुई हैं। इनमें अधिक से अधिक कथा-सामग्री और वर्णन लाने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी इन कहानियों में संयम और गठन का प्रयत्न है।

आरम्भ

'आकाश दीप' कहानी-संग्रह में केवल 'देवदासी' को छोड़कर समस्त कहानियों का आरम्भ उन्हीं दो शैलियों, कथोपकथनात्मक और प्रकृति चित्रण या दृश्य-वर्णन से हुआ। ये दोनों शैलियाँ वहाँ पूर्णतः सबल और कलात्मक सिद्ध हुई हैं। 'आकाश दीप' का कथोपकथनात्मक आरम्भ कितना नाटकीय और कौतूहलपूर्ण हुआ है :

''बन्दी !''

''क्या है ? सोने दो।''

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं। निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बड़ी शीत है, कहीं से एक कम्बल डाल कर कोई शीत-मुक्त करता।"

"आँधी की संभावना है। यही अवसर है। आज मेरे बंधन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?"

"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा ?"

"मिल जायगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?"

"हाँ।"

इसी भाँति 'चूड़ीवाली' का आरम्भ :

"अभी तो पहना गई हो !"

"बहू जी बहुत अच्छी चूड़ियाँ हैं। सीधे बम्बई से पारसल मँगाया है। सरकार का हुक्म है, इसलिए नई चूड़ियाँ आते ही चली आती हैं।"

"तो जाओ सरकार को ही पहनाओ, मैं नहीं पहनती।"

"बहू जी जरा देख तो लीजिए।"

ऐसे आरम्भ में प्रसादजी की कहानी-कला की दो विशेषताएँ बहुत ही स्पष्ट हैं। यहाँ कहानी के प्रारम्भ में आकर्षण और कौतूहल-वृत्ति की प्रतिष्ठा सबसे प्रमुख विशेषता के रूप में आती है। दूसरे, ऐसे आरम्भ में समस्या, चरित्र और द्वन्द्व की प्रतिष्ठा हो जाती है। वस्तुतः प्रसाद के नाटकों में जो कार्य उनके प्रथम अंक देते हैं वही कार्य इन्होंने अपनी कहानियों में ऐसे आरम्भों से लिया है। यहाँ कहानी के मुख्य पात्र, मुख्य द्वन्द्व आदि के संकेत का सांकेतिक परिचय मिल जाता है। 'आकाश दीप' के उपर्युक्त आरम्भ के उतने ही कथोपकथनों में, कहानी के प्रमुख पात्र चम्पा और बुद्धगुप्त का प्रवेश है; दोनों की समस्त परिस्थितियों का परिचय है तथा दोनों के चरित्रों की ओर संकेत है और सबसे बड़ी विशेषता इन उक्त कथोपकथनों में यह है कि इनके अक्षर-अक्षर में कौतूहल, जिज्ञासा व्याप्त है।

दूसरी आरम्भ-शैली पिछली ही शैली का विकसित रूप है। यहाँ 'कला' नामक एक स्वतन्त्र कहानी में इस शैली जी दिशा में चित्रण और वर्णन के स्थान पर परिचयात्मक शैली आई है। उसके पिता ने बड़े दुलार से उसका नाम रखा था, कला। नवीन इन्दु-कला-सी वह आलोकमयी और आँखों की प्यास बुझाने वाली थी। विद्यालय में सबकी दृष्टि उस सरल बालिका की ओर घूम जाती थी, परन्तु रूपनाथ और रस-

देव उसके विशेष भक्त थे। कला भी कभी-कभी उन दोनों से बोलती थी, अन्यथा वह एक सुन्दर नीरवता ही बनी रहती थी।[1]

विकास

'आकाश दीप' की प्रतिनिधि कहानियों में प्रसाद ने चार अवस्था-क्रमों को रखा है—(१) समस्या-प्रवेश, (२) परिचय, (३) द्वन्द का जन्म, (४) घात-प्रतिघात। वस्तुतः ये विकास-क्रम उन छोटी कहानियों में नहीं मिलेंगे जो रहस्यात्मक हैं और गद्यगीत की शैली में लिखी गई हैं।

ये विकास-क्रम 'आकाश दीप', 'ममता', 'स्वर्ग के खंडहर में', 'बनजारा', 'चूड़ीवाली' और 'बिसाती' आदि कहानियों में स्पष्ट रूप से मिलेंगे। 'आकाश दीप' में समस्या-प्रवेश : समुद्र में हिलोरें उठने लगीं, दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे। पहले बन्दी ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया, दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक दूसरों को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा, स्नेह का असम्भावित आलिंगन; दोनों ही अंधकार में मुक्त हो गए। दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से उसे गले से लगा लिया, सहसा उस बन्दी ने कहा—"यह क्या तुम स्त्री हो ?"

"क्या स्त्री होना पाप है ?" अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

"शस्त्र कहाँ है ? तुम्हारा नाम ?'

"चम्पा।"

इसके उपरान्त परिचय-क्रम आता है। इस क्रम में परिस्थिति-परिचय, पात्र-परिचय, दोनों मुख्य रूप से आते हैं और दोनों परिचय प्रायः एक में मिले हुए आते हैं; जैसे :

"तुम्हें इन लोगों ने बन्दी क्यों बनाया ?"

"वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"जाह्नवी के तट पर। चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मार कर जलसमाधि ली। एक मास हुआ, मैं इसी नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाई। उसी दिन से बन्दी बना दी गई।" चम्पा रोष से जल रही थी।

---

१. आकाश दीप : कला, पृ० ८४।

"मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ चम्पा; परन्तु दुर्भाग्य से जल-दस्यु बन-कर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी ?"

इसके उपरान्त द्वन्द्व के जन्म का क्रम आता है :

"तो चम्पा; अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।" "नहीं नहीं तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी, परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश दीप का व्यंग कर रहे हो। नाविक, उस प्रचंड आँधी में प्रकाश की एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे ! मुझे स्मरण है जब मैं छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे, मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती—भगवन ! मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते—साध्वी तेरी प्रार्थना से भगवान ने भयानक संकटों में मेरी रक्षा की है। वह गद्गद हो जाती। मेरी माँ ! आह नाविक, यह उसी की पुण्य स्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु करके····निष्ठुर जलदस्यु, हट जाओ।" सहसा चम्पा का मुख क्रोध से और भी अरुण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठा कर हँस पड़ा।

"यह क्या चम्पा ? तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।" कहता हुआ चला गया। चम्पा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही।

और इसके उपरान्त घात-प्रतिघात का क्रम आता है :

"विश्वास ? कदापि नहीं बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी। उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ।" चम्पा रो पड़ी।

"चुप रहो महानाविक; क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जान कर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा है ?"

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चम्पा ! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती ! बुद्धगुप्त वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय ! आह ! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते !"

"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चम्पा ! यहाँ रह कर मैं अपने हृदय पर अधि-कार रख सकूँ इसमें सन्देह है। आह ! किन लहरों में मेरा विनाश हो जाय।" महा-नाविक के उच्छ्वास में विकलता थी, फिर उसने पूछा—"तुम अकेली यहाँ क्या करोगी ?"

"पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप-स्तंभ पर से आलोक जला कर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी, किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश दीप।"

चरमसीमा

अधिकांश कहानियों की चरमसीमाएँ मनोवैज्ञानिक अनुभूति और मनोभावों के उत्कर्ष पर प्रतिष्ठित हुई हैं, जैसे 'आकाश दीप', 'मुनहला साँप', 'चूड़ीवाली', 'भिखारिन', 'प्रतिध्वनि', 'कला', 'बिसाती', 'बनजारा' आदि। इस काल में दो ही एक कहानियाँ, जैसे 'हिमालय का पथिक' और 'स्वर्ग के खंडहर में' ऐसी हैं जिनकी चरमसीमा संयोग या घटना पर आधारित हैं।

पहले प्रकार की चरमसीमा में मनोभावों के चरम उत्कर्ष के साथ-ही-साथ प्रसाद जी ने अंत में दो-एक प्रतियाँ और जोड़ कर नाटकीयता लाने का प्रयत्न किया है; जैसे 'आकाश दीप', 'ममता' और 'स्वर्ग के खंडहर में'। विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से कुछ चरमसीमाएँ नितान्त रहस्यवादी ढंग से अस्पष्ट और अनिश्चित-सी हो गई हैं, जैसे 'रमला', 'ज्योतिष्मती' की चरमसीमाएँ। कुछ चरमसीमाएँ व्यंजनात्मक और ध्वनि-प्रधान हुई हैं, जैसे 'बिसाती', 'देवदासी' और 'प्रतिध्वनि' आदि। इनके अतिरिक्त अधिकांश चरमसीमाएँ ऐसी भी हैं जो जिज्ञासा और प्रश्न-बिन्दु पर समाप्त हुई हैं, जहाँ से पाठक को फिर से एक नए सिरे से एक नई समस्या को सुलझाना पड़ता है; जैसे 'बनजारा', 'हिमालय का पथिक' और 'स्वर्ग का खंडहर में।'

शैली का सामन्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष में प्राकृतिक दृश्य और शोभा-वर्णन यहाँ पहले की अपेक्षा उत्कृष्ट ढंग से हुआ है। वस्तुत: इन दोनों की अवतारणा कहानी के प्राय: प्रत्येक क्रम पर होती है और इस तरह सम्पूर्ण कहानी में सुन्दर वातावरण प्रस्तुत करने के लिए दृश्य-चित्रण और शोभा-वर्णन बार-बार आया है। इससे कहीं-कहीं कहानियों में व्यंजना और लाक्षणिकता आ गई है। 'स्वर्ग के खंडहर में', प्राकृतिक दृश्य कितना अनुपम है—"वन्य कुसुमों की झालरें सुख-शीतल पवन से विकम्पित होकर चारों ओर झूल रही थीं, छोटे-छोटे झरनों की कुल्याएँ कतराती हुई बह रही थीं। लता-वितानों से ढकी हुई प्राकृतिक गुफाएँ शिल्प-रचना-पूर्ण सुन्दर प्रकोष्ठ बनातीं जिसमें पागल कर देने वाली सुगन्ध की लहरें नृत्य करती थीं। स्थान-स्थान पर कुंजों और पुष्प-शाखाओं का समारोह, छोटे-छोटे विश्राम-गृह, पान-पात्रों में सुगंधित मदिरा, भाँति-भाँति के सुस्वादु फल-फूल वाले वृक्षों के झुरमुट, दूध और मधु की नहरों के किनारे गुलाबी बादलों का क्षणिक विश्राम। चाँदनी का निभृत रंगमंच, पुलकित वृक्ष-फूलों पर मधुमक्खियों की

भन्नाहट, रह-रह कर पक्षियों की हृदय में चुभने वाली तान, मणि-दीपों पर लटकती हुई पुलकित मालाएँ।"

इन प्राकृतिक चित्रणों में प्रसाद की काव्यमयी रेखाओं ने कल्पना के पंख लगा कर और कितने विभिन्न रंगों के अनुपात से अनुपम चित्रों को उपस्थित किया है। यहाँ प्राकृतिक चित्रण सम्पूर्ण चित्रात्मकता और व्यंजना के साथ प्रस्तुत हुआ। इसमें वातावरण-निर्माण की अद्भुत शक्ति चरितार्थ हुई है। कहानी में ऐसे प्राकृतिक चित्रण जहाँ एक ओर घटनाओं, क्रिया-कलापों के लिए पृष्ठभूमि और वातावरण प्रस्तुत करते हैं, वहाँ कहानी में इनकी अवतारणा कथासूत्र के आरम्भ और विकास-क्रमों के लिए सुन्दर पीठिका के लिए भी हुआ है। यही कारण है कि एक-एक कहानी में ऐसे प्राकृतिक चित्रण बार-बार आए हैं।

शोभा-वर्णनों में ये रेखाएँ और सूक्ष्म तथा अन्तर्मुखी हुई हैं! ये रेखाएँ शोभा-रूप के वर्णनों में वस्तुस्थिति के केवल बाह्य स्तर को छूकर नहीं लौट आतीं, वरन् उसके अन्तरतम में पैठ कर उसके शाश्वत और चिरंतन रूप की अभिव्यक्ति करती हैं—"एक धीवर-कुमारी समुद्र-तट से कगारों पर चढ़ रही थी, जैसे पंख फैलाये तितली नील भ्रमरी-सी उसकी दृष्टि एक क्षण के लिए कहीं नहीं ठहरती थी। श्याम-सलोनी-सी गोधूली-सी वह सुन्दरी सिकता में अपने पदचिन्ह छोड़ती हुई चली जा रही थी। सायंकाल का समुद्र-तट उसकी आँखों में दृश्य के उस पार की वस्तुओं का रेखा-चित्र खींच रहा था, जैसे वह जिसको नहीं जानता था, उसको कुछ-कुछ समझने लगा हो, और वही समझ, वही चेतना एक रूप रखकर सामने आ गई। उसके अधरों में मुसकान, आँखों में व्रीड़ा और कपोलों पर यौवन की आभा खेल रही थी, जैसे नील मेघ-खंड के भीतर स्वर्ण-किरण अरुण का उदय!"

यह रूप-सौन्दर्य कितनी काव्यात्मक और सुन्दर रेखाओं से बाँधा गया है, इसमें भावभूमि, कल्पना और भाव किस स्तर से घनीभूत हैं, कहा नहीं जा सकता! यही कारण है कि प्रसाद की कहानियों के सारे चरित्र, मुख्यतः स्त्री-चरित्र, परम सुन्दर और अद्भुत रेखाओं से निर्मित हुए हैं, फलतः ये चरित्र महाकाव्य-खंडकाव्य के चरित्र अधिक लगते हैं, कहानी के कम।

कथोपकथन

कलात्मक दृष्टि से 'आकाश दीप' की कहानियों में कथोपकथन का मूल्य बहुत है। प्रायः समस्त कहानियाँ मुख्यतः इसी के माध्यम से विकसित की गई हैं, यही कारण है कि कुछ कहानियों में बहुत लम्बे-लम्बे कथोपकथन आ गए हैं; जैसे 'स्वर्ग के खंडहर में', 'बिसाती' और 'आकाश दीप' आदि में। यहाँ की प्रतिनिधि कहानियों का आरम्भ भी कथोपकथन से ही हुआ है और प्रायः समस्त कहानियों की मुख्य

संवेदनाएँ वर्णनों या चित्रणों के माध्यम से अभिव्यक्ति न पाकर सर्वथा कथोपकथनों के ही माध्यम से निर्मित हुई हैं।

शिल्प की दृष्टि से इन कथोपकथनों की शैली विशुद्ध ढंग से नाटकीय है। यही कारण है कि 'आकाश दीप', 'समुद्र-संतरण', 'स्वर्ग के खंडहर में', 'बनजारा', 'बिसाती' आदि कहानियों के कथोपकथनात्मक अंश पढ़ते समय ऐसा लगने लगता है कि हम कोई प्रसाद जी के नाटक को पढ़ रहे हैं, कहानी को नहीं; जैसे "मैं भूल जाता हूँ। मीना ! हाँ मीना ! मैं तुम्हें मीना नाम से कब तक पुकारूं, और मैं तुम्हें तुमको गुल कहकर क्यों बुलाऊँ ?"

"क्यों मीना ! यहाँ भी तो हम लोगों को सुख ही है, है न ! अहा क्या ही सुन्दर स्थान है, हम लोग जैसे स्वप्न देख रहे हैं, कहीं दूसरी जगह न भेजे जायँ, तो क्या ही अच्छा हो !"

"नहीं गुल, मुझे पूर्व-स्मृति विकल कर देती है। कई बरस बीत गए वह माता के समान दुलार, उस उपासिका की स्नेहमयी, करुणा-भरी दृष्टि आँखों में कभी-कभी चुटकी काट लेती है, मुझे तो अच्छा नहीं लगता बन्दी होकर रहना तो स्वर्ग में भी। अच्छा, तुम्हें यहाँ रहना नहीं खलता ?"

"नहीं मीना ! सबके बाद जब मैं तुम्हें अपने ही पास पाता हूँ तब और किसी आकांक्षा का स्मरण ही नहीं रह जाता, समझता हूँ कि तुम गलत समझते हो।"

वस्तुतः कहानी में कथोपकथन की उक्त शैली कोई अच्छी शैली नहीं है, इनकी उत्कृष्टता नाटकों में ही चरितार्थ होती है, कहानी में नहीं क्योंकि नाटक मूलतः दृश्य काव्य है, लेकिन कहानी में कार्य, घटना और वर्णन के बीच से कथोपकथनों को प्रस्तुत करना पड़ता है क्योंकि कहानी मूलतः पठन-पाठन की वस्तु है। इस शैली से कहानी में प्रवाह, चित्रात्मकता, व्यंजना तो बनी ही रहती है, इसके अतिरिक्त कहानी में गढ़न और स्वाभाविकता रहती है। पात्र अपने कथोपकथनों के समय किन-किन भावभंगिमाओं में बदलते रहते हैं, उनमें क्या-क्या क्रियाएँ हो रही हैं, आदि सबका उल्लेख कथोपकथनों के साथ होते रहना चाहिए, फलतः इस भाँति स्वतन्त्र कथनोपकथनों की अवतारणा केवल नाटकों में ही शोभा पाती है, कहानी में नहीं।

लक्ष्य और अनुभूति

लक्ष्य-बिन्दु पर यहाँ बौद्ध दर्शन का प्रभाव बहुत सुन्दरता से मुखरित हो आया है। प्रारम्भिक कहानियों के लक्ष्य-बिन्दु पर प्रायः करुणा की वृत्ति थी, अर्थात् अधिकांश कहानियाँ करुणा-प्रतिष्ठा के लक्ष्य से लिखी गयी थीं। वस्तुतः बौद्ध दर्शन से प्रसाद जी ने दो महान् सत्य ढूंढ़ निकाला : नारी-शक्ति की महानता और उनका सम्मान तथा मानव-जीवन की करुणा और मानव के प्रति क्षमा, दया और प्यार।

इन्हीं सत्यों के ऊपर प्रसाद जी की कहानियों के लक्ष्य-बिन्दु का निर्माण हुआ है और इसी लक्ष्य-बिन्दु से 'आकाश दीप' की सारी कहानियाँ लिखी गई हैं। 'आकाश दीप', 'चूड़ीवाली', 'देवदासी', 'स्वर्ग के खंडहर में' इन कहानियों की सृष्टि नारी-चरित्र की महानता और उसकी आत्मा के कारुणिक धरातल पर हुई है। स्वतंत्र रूप से मानव-जीवन की करुणा दिखाने के लिए 'ममता', 'बनजारा' और 'बिसाती' कहानियों की रचना हुई है। मानव के प्रति क्षमा, दया और प्यार के लक्ष्य को लेकर 'भिखारिन', 'अपराधी', 'वैरागी' कहानियाँ लिखी गई हैं।

इनके अतिरिक्त 'आकाश दीप' की कुछ कहानियाँ विशुद्ध मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों के धरातल पर निर्मित हुई हैं। उस अनुभूति का मुख्य केन्द्र है—प्रेम, इसी प्रेमानुभूति की ही प्रेरणा से रची हुई कहानियाँ यहाँ प्रायः गद्यगीत हुई हैं; जैसे 'समुद्र-संतरण', 'प्रणय-चिन्ह', 'रूप की छाया', 'ज्योतिष्मती', 'रमला', 'समुद्र-संतरण' की प्रेमानुभूति स्पष्ट ढंग से छायावादी गीत की प्रेरणा-सी लगने लगती है—"बेला से दूर चारों ओर जल। आँखों में वही धवल पात्र, कानों में अस्फुट संगीत, सुदर्शन तैरते-तैरते थक चला था। × × × छोटी मछली पकड़ने की एक नाव आ रही थी। पास आने पर देखा, धीवर वंशी बजा रहा है और नाव अपने मन से चल रही है।

धीवर-बाला ने कहा—"आओगे ?"

लहरों को चीरते हुए सुदर्शन ने पूछा—"कहाँ ले चलोगी ?"

"पृथ्वी से दूर जल-राज्य में, जहाँ कठोरता नहीं, केवल शीतल-कोमल और तरल आलिंगन है; प्रवंचना नहीं, सीधा आत्मविश्वास है; वैभव नहीं, सरल सौन्दर्य है।"

अतः ऐसी कहानियों में गीत-तत्व अधिक आ गए हैं और कहानी-तत्व जैसे लुप्त हो गए हैं। उत्कृष्ट कहानी अवश्य अनुभूतियों पर आधारित होती है, लेकिन वह मनोवैज्ञानिक अनुभूति किसी समस्या-सूत्र के साथ आती है। वैसे यह सर्वथा स्पष्ट है कि केवल अनुभूति और भाव-संयोग से गीत की सृष्टि होती है, कहानी की नहीं।

समीक्षा

'आकाश दीप' की कहानियाँ मुख्य रूप से संवेदनात्मक कहानियाँ हैं, यहाँ परिस्थितियाँ गौण हैं और संवेदना की तीव्रता सबसे अधिक है। संवेदनाएँ मुख्य रूप से प्रेम के केन्द्र-बिन्दु से चारों ओर फैली हैं। फलतः यहाँ कहीं प्रेमी-प्रेमिका को लेकर नारी-पुरुष के प्रेम के चिरन्तन सत्य और प्रश्न हुए हैं, कहीं उपेक्षिता के प्रति प्रेम दिखा कर प्रेमियों को सदा के लिए अलग करके उन्हें मूक रहने की शिक्षा दी है। इस तरह प्रेम के धरातल पर चारों ओर बिखरी हुई संवेदनाएँ आकाशदीप की कहानियों को

आत्माएँ हैं जो 'ममता' ऐसी विधवाओं, भिखारिन, सँपेरिन, धीवर-बाला और चूड़ी-वाली विलासिन ऐसी उपेक्षिताओं को अपने में समेटे हुए हैं।

ऐसी संवेदना-जन्य कहानियाँ प्रसाद के कहानी-साहित्य की एक अमूल्य निधि है, जिसमें विशुद्ध प्रेमजन्य कहानियाँ; जैसे 'आकाश दीप', 'बनजारा', 'स्वर्ग के खंडहर में', 'बिसाती' आदि उत्कृष्ट हैं।

तृतीय काल :

यह काल प्रसाद की कहानी-कला का चरम उत्कर्ष-काल है। इसलिए नहीं कि इस काल में अपेक्षाकृत बहुत कहानियाँ लिखी गई हैं, बल्कि इस काल में प्रसाद जी ने अपनी सृष्टि के प्रयोग-काल (१९२९ ई०) से आगे बढ़ कर जीवन को जितनी गहराई से देखा है, जीवन के अनेकानेक भाव-भंगिमाओं का जितना गंभीर और पूर्ण चित्र उपस्थित किया है, वह स्तुत्य है। इस काल की लिखी हुई कुल कहानियाँ पच्चीस हैं, और इन पच्चीस कहानियों में प्रसाद जी ने मानव-दर्शन, मनोभावों, अनुभूतियों को अपनी कला में जितनी ईमानदारी से सँजोया है, वह अमूल्य है। 'छाया', 'प्रतिध्वनि' की कहानियाँ तरुण रोमांटिक कवि के भाव-चित्र हैं। 'आकाश दीप' की कहानियाँ विकसित होकर जीवन के प्रति एक जागरूक भावात्मक दृष्टिकोण उपस्थित करती हैं, लेकिन इस काल की कहानियों में जीवन-दर्शन की पैठ और कलात्मक स्तर की ऊँचाई, दोनों का संयोग अपूर्व है।

कथानक

यहाँ की भी कहानियाँ दो तरह की हैं। कुछ कहानियाँ लम्बी और विस्तृत हैं। ये प्रायः ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक संवेदनाओं को लेकर लिखी गई हैं और अपने समग्र रूप में बहुत लम्बी कहानियाँ हो गई हैं; जैसे 'आँधी', 'पुरस्कार', 'नीरा', 'दासी', 'इन्द्रजाल', 'नूरी', 'गुंडा', 'देवरथ' और 'सालवती'। इन कहानियों के कथानक बहुत लम्बे और अनेकानेक मोड़ों के साथ निर्मित हुए हैं। इनके रूप को देख कर, ये नाटक की कथावस्तु लगते हैं, और वस्तुतः इनकी संवेदनाएँ नाटक-सृष्टि लिये अधिक उपयुक्त और स्वाभाविक हैं। यहाँ दूसरी प्रकार की कहानियाँ वे हैं जो यथार्थ भाव-भूमि पर, स्केच की शैली में लिखी गई हैं। उनके कथानक अत्यन्त छोटे और आधुनिक शिल्पविधि की दृष्टि से अत्यन्त सफल कथासूत्र हैं। 'मधुआ', 'घीसू', 'ग्रामगीत', 'विजया', 'अमिट स्मृति', 'छोटा जादूगर', 'परिवर्तन', 'संदेह', 'भीख', 'चित्र मन्दिर', 'अनबोला' में कथासूत्र की लघुता और प्रासंगिकता ने इनमें बहुत कलात्मकता ला दी है।

पहले प्रकार के लम्बे कथासूत्रों के पीछे, प्रसाद जी की एक मुख्य प्रेरणा कार्य कर रही थी। वे एक समूचे युग, एक समूची भावधारा के बाँधने में अपनी संवेदनाओं

को इतना विस्तृत कर देते थे कि कहानी की भावभूमि बहुत लम्बी-चौड़ी हो जाती थी। यह सत्य, देश-काल-परिस्थिति तीनों दिशाओं में चरितार्थ होता है। उदाहरण के लिए 'सालवती' में पूरा एक युग समाया हुआ है। वज्जियों के कुल की मर्यादा और गरीबी, सालवती और उसके वृद्ध पिता धवलयश की दयनीय स्थिति, कर्मकांडियों की महत्ता, विदेह, वज्जि, लिच्छिवि और मल्लों की कीर्तिरेखा, धवलयश और उसका वस्तुवादी दृष्टिकोण, कुलअभिमान, उसकी मौत, सालवती और उससे कुल-पुत्रों की भेंट, जनपद और वसंतोत्सव, सुन्दर निर्वाचन युद्ध, सालवती और अभय प्रेम, द्वन्द्व युद्ध, अभिमान, सालवती की पुत्रोत्पत्ति, नवजात शिशु की उपेक्षा, अभय का शिशु पाना और आठ वर्ष बाद अभय और सालवती का संयोग। इन मोटी रेखाओं के बीच में कथासूत्र का विस्तार अपने दार्शनिक प्रवचन, वादविवाद, अभिसंधि को समेटे हुए हैं। इसी तरह 'आँधी'; 'इन्द्रजाल' और 'पुरस्कार' में कथासूत्र विभिन्न रेखाओं में फैलकर समूचे युग का दर्पण बन गया है, लेकिन यहाँ इतिवृत्तात्मकता में प्रासंगिकता अधिक प्रधान है, कथा की पूर्णता नहीं। यही कारण है कि ये कहानियाँ इतने लम्बे कथासूत्र के रहते भी आकर्षक और कलात्मक हैं क्योंकि इनके विकास में कौतूहल और जिज्ञासा के बीच बहुत कलात्मक ढंग से कथासूत्र पिरोए गए हैं।

छोटे कथानकों में यह भावभूमि बहुत सीमित और अति सांकेतिक हो गयी है। यहाँ कथासूत्र आधुनिक कहानियों-जैसा है और इसमें जीवन की यथार्थ समस्याओं को लिया गया है। इन कथासूत्रों में एक ओर गठन है और दूसरी ओर कलात्मक तेजी। ऐसे कथासूत्रों में प्रायः सामाजिक संवेदनाएँ ही पिरोई गई हैं। इन कथासूत्रों में प्रसाद जी ने पहले की भाँति नाटक-प्रणाली की दिशा में बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठा नहीं की है।

प्रसाद ने लम्बे ऐतिहासिक इतिवृत्तों में कहीं-कहीं पूर्व कथा, पूर्व सूत्र को पृष्ठ-भूमि में छिपा कर, सूत्र को बहुत आगे से उठाया है और कथासूत्र को विकासावस्था पर पहुँच कर उन्होंने पृष्ठभूमि में डाले हुए कथासूत्र का कलात्मक लाभ उठाया है; जैसे 'आँधी' के कथासूत्र में लैला, एक बिलोची तरुणी एक हिन्दू तरुण रामेश्वर से प्रेम करती है। वस्तुतः यह प्रेम दोनों में कब, कैसे, किन परिस्थितियों में पैदा हुआ, कैसे इसका इस भाँति विकास सम्भव हुआ, इसका सूत्र हमें कहानियों में कहीं नहीं मिलता, वरन् कथासूत्र बहुत आगे बढ़ कर विकसित प्रेम के धरातल पर चलने लगता है। कथानक-निर्माण में प्रसाद जी की यह शैली परम सुन्दर और कलात्मक है। छोटे कथासूत्रों में यह शैली कहीं नहीं है। यहाँ कथासूत्र बिल्कुल सीधा और स्पष्ट है।

चरित्र

यहाँ चरित्र अपनी पिछली पूर्ण प्रवृत्तियों और व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताओं

में परम स्पष्ट हैं और अपनी चारित्रिक सीमाओं पर कलात्मक ढंग से प्रतिष्ठित हुए हैं। स्त्री-पात्रों का अपूर्व आकर्षण, परम सौन्दर्य तथा उनका कारुणिक व्यक्तित्व बहुत ही उत्कृष्ट है। पुरुष-पात्र अपनी भावुकता, सौन्दर्य-निष्ठा के साथ-साथ कर्मवादिता पर भी स्थिर हैं अर्थात् प्रसाद के बौद्ध दर्शन, कवि-दर्शन और जीवन-दर्शन के पूर्ण समन्वय पर, यहाँ के चरित्रों की अवतारणा हुई है।

स्त्री

यहाँ स्त्री-चरित्र रूप, यौवन और विकास के सुन्दरतम संधि-बिन्दु पर प्रतिष्ठित हुए हैं। 'इन्द्रजाल' की बेला का व्यक्तित्व रूप और यौवन की कितनी रंगीन और मादक रेखाओं से निर्मित है—"बेला साँवली थी। जैसे पावस की मेघमाला में छिपे हुए आलोक-पिंड का प्रकाश निखरने को अदम्य चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था। गोली के स्नेह की मदिरा से उसकी कजरारी आँखें लाली से भरी रहतीं। वह चलती तो थिरकती हुई, बातें करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारों ओर बिखरी रहती।" 'नूरी' में नूरी स्त्री-चरित्र में प्रसाद की ये रेखाएँ और भी बलवती हुई हैं—"और भी आज पहला ही अवसर था, जब उसने केशर, कस्तूरी और अम्बर से बसा हुआ यौवनपूर्ण उद्वेलित आलिंगन पाया था। उधर किरणें भी पवन के एक झोंके के साथ किसलयों को हिला-कर घुस पड़ीं। नूरी कश्मीर की कली थी। सिकरी के महलों में उसके कोमल चरणों की नृत्यकला प्रसिद्ध थी। उस कलिका का आमोद-मकरन्द अपनी सीमा से मचल रहा था।"

इसके साथ ही साथ यहाँ स्त्रियों में कर्मशीलता, शौर्य और निर्भीकता भी आई है। ये सतेज और भावुक स्त्रियाँ जहाँ एक ओर भावुकता और प्रेम में डूबी हुई हैं, वहीं दूसरी ओर प्रेम, चरित्र और आदर्श की बलि-वेदी पर अपने को उत्सर्ग भी किया है। यह सत्य सब तरह की सब देश-काल-परिस्थिति की स्त्रियों के प्रति चरितार्थ हुआ है, चाहे वह ईरानी, चाहे वह बलूची युवती हो, या गजनी की सुरबाला, या कोहकाफ की परी हो।

प्रसाद ने क्यों स्त्री-चरित्र की अवतारणा में इतने विभिन्न देश-काल की स्त्रियों को लिया है? प्रसाद ने अपने स्त्री-दर्शन में दुनिया की सारी स्त्रियों को स्त्रीत्व के एक ही धरातल से देखा है और सबके व्यक्तित्व-निर्माण में सर्वत्र वही प्रेम, त्याग, क्षमा, भावुकता, सौन्दर्य और मादकता है क्योंकि प्रसाद ने यहाँ अन्यान्य देश, जाति, वर्ग की स्त्रियों को कला और मूर्ति की दृष्टि से देखा है, यहाँ सर्वत्र समन्वय ही समन्वय है, और जो भारतीय स्त्री-मूर्ति सौंदर्य का ही एक रूप है फलतः उससे कभी अलग नहीं है—"मैं उसके मुख को कला की दृष्टि से देख रहा था। कला की दृष्टि, ठीक बौद्ध

कला, गांधार कला, द्रविड़ की कला इत्यादि नाम से भारतीय मूर्ति-सौंदर्य के अनेक विभाग जो हैं।"[1]

यहाँ स्त्री-चरित्र की अवतारणा और स्त्री के समग्र रूप की व्यवस्था प्रायः एक ही धरातल से हुई है, और वह धरातल है, अंतर्द्वन्द्व। इसी अंतर्द्वन्द्व के केन्द्र-विन्दु से उसके चारों ओर प्रतिशोध, उत्सर्ग, क्षमा, दया, प्रेम, बलिदान और सहनशीलता की रेखाएँ बिछी हुई हैं। इसके उदाहरण में 'आँधी' की लैला, 'दासी' की फिरोजा, 'ग्राम-गीत' की रोहिणी, 'नीरा' की नीरा, 'पुरस्कार' की मधूलिका, 'इन्द्रजाल' की बेला, 'देवरथ' की सुजाता और 'सालवती' ज्वलंत उदाहरण हैं।

पुरुष

द्वितीय काल की कहानियों में पुरुष-चरित्र के व्यक्तित्व की पूर्ण-प्रतिष्ठा और उनके निजत्व का प्रतिनिधित्व नहीं हो सकाथा। उसका मुख्य कारण था कि 'आकाश दीप' तक की कहानियाँ स्त्री-प्रधान हैं। उनके चरित्र के ही केन्द्र-विन्दु से ही सारी कहानियाँ विकसित हुई हैं।

इस काल में भी, यद्यपि स्त्री-चरित्र ही उभरा हुआ है, लेकिन यहाँ पुरुष-चरित्र को भी समानता दी गई है। 'आँधी', 'पुरस्कार', 'सालवती', 'देवरथ' और 'इन्द्रजाल' में स्त्री-चरित्र के समान ही पुरुष-चरित्र को प्रधानता मिली है।

'पुरस्कार' में राजकुमार अरुण मधूलिका का प्रकाश है, उसका पुरस्कार है, फलतः उसकी कर्मशीलता, चारित्रिक दृढ़ता और संवेदनशीलता अपूर्व है। 'सालवती' का अभय, उसका पुरुष-व्यक्तित्व, उसका प्रेम, उसका अभिमान, विजय, वैशाली आगमन में शिशु-स्त्रीक्रांति और उसकी अन्य चारित्रिक महानता—सब ने एक बिन्दु पर मिल कर, पुरुष-चरित्र को परम उत्कृष्ट बनाया है, तभी यह सत्य बार-बार मस्तिष्क में घूमता है कि इस काल के पुरुष-चरित्र, यहाँ के स्त्री-चरित्र के समान ही अपने निजत्व और व्यक्तित्व को स्वयं प्रतिष्ठित करके प्रेम, त्याग, बलिदान और अपनी चारित्रिक दृढ़ता में अनोखे सिद्ध हुए हैं। नूरी का प्रेमी याकूब, बेला का उपासक गोली, सालवती का प्रेमी अभय, सुजाता का प्राण आर्यमित्र, मधूलिका का स्वर्ग अरुण आदि पुरुष-चरित्र इन दिशाओं में सदा अमर रहेंगे।

इसके पूर्व की कहानियों के पुरुष-चरित्र अपेक्षाकृत भावुक और तरुण रोमांटिक तथा केवल प्रेम-स्वप्नों में दृढ़ थे। यही कारण है कि उनके पुरुषगत व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा पिछली कहानियों में नहीं हो सकी है, परन्तु यहाँ 'गुंडा' का ननकू सिंह ऐसा प्रतिनिधि पुरुष-चरित्र है कि इससे पुरुषत्व और पुरुष के दायित्व को गर्व हो सकता है :

---

१. आँधी, पृष्ठ ६-७।

"कितनी विधवाएँ उसकी दी हुई धोती से अपना तन ढकती हैं, कितनी लड़कियों की ब्याह-शादी होती है, कितने अनाथ हुए लोगों की इसके द्वारा रक्षा होती है। अंत में अंग्रेजों से काशी के सम्मान की रक्षा तथा चेतसिंह को बचाने में वह बीसों तिलंगों की संगीन में अविचल खड़ा, तब तक तलवार चलाता है जब तक उसके शरीर का एक-एक अंग कट कर जमीन पर नहीं गिर जाता। इसके अतिरिक्त यहाँ 'मछुआ', 'घीसू', 'बेड़ी', 'विजया', 'भीख', 'संदेह' आदि में कहानियाँ मूलतः पुरुष-चरित्र की कहानियाँ हैं। यहाँ पुरुष के मनोभावों, उसकी सीमाओं, उसकी निरीहता और संघर्षों को लेकर ये कहानियाँ निर्मित हुई हैं।

अतएव इस काल में आकर प्रसाद के पुरुष-चरित्र में वह व्यक्तित्व, वह निजत्व तथा चरित्र की पूर्णता प्रतिष्ठित हो सकी है, जिसकी कमी इसके पूर्व की कहानियों में खटक रही थी। स्त्री-पुरुष-चरित्र की समान अवतारणा और सृष्टि से इस काल की कहानियों में प्रसाद की कहानी-कला का चरम उत्कर्ष सिद्ध हो सका है, नहीं तो शिल्प-विधि की दृष्टि से प्रसाद जी का मूल्य, एक कहानीकार की दृष्टि से बहुत नीचे चला जाता है।

शैली

शैली के व्यापक पक्ष में यहाँ की भी ऐतिहासिक, काल्पनिक और भावुक कहानियों का रूप पिछली ही शैली के अंतर्गत है। यहाँ केवल यथार्थवादी कहानियों की आरम्भ-शैली में नवीनता आई है। 'घीसू', 'बेड़ी', 'भीख', 'संदेह', 'विजया' और 'परिवर्तन' आदि में कहानी का आरम्भ बिलकुल स्वाभाविक और यथार्थ गति से हुआ है और ऐसे आरम्भों में कहानी-शैली के तत्व अधिक निखर सके हैं, जैसे 'भीख' का आरम्भ—

"खपरैल की दालान में, कम्बल पर मिन्ना के साथ बैठा हुआ बृजराज मन लगा कर बातें कर रहा था। सामने ताल में कमल खिल रहे थे। उस पर से भीनी-भीनी महक लिए पवन धीरे-धीरे उस झोपड़ी में आता और चला जाता। माँ कहती थी''''मिन्ना ने केशों को बिखराते हुए कहा—क्या कहती थी?"

'विजय' का आरम्भ—"कमल का सब रुपया उड़ चुका था, सब संपत्ति बिक चुकी थी। मित्रों ने खूब दलाली की, न्यास जहाँ धरा वहीं धोखा हुआ। जो उसके साथ मौज-मंगल में दिन बिताते थे, रातों को आनन्द लेते थे, वे ही उसकी जेब टटोलते थे। उन्होंने कहीं पर कुछ भी बाकी नहीं छोड़ा, सुख-भोग के जितने आविष्कार थे, साधन-भर सबका अनुभव लेने का उत्साह ठंडा पड़ चुका था। बच गया था एक रुपया।"

इसके अतिरिक्त यहाँ प्रथ
कहानियों का आरम्भ हुआ है। '
"मैं संगमहल का कर्मच
उजाड़ स्थान में सरकारी काम से
कर एक छोटी-सी डाक बंगलिया
एक प्रकार का रंगीन पत्थर निक
कटाई बन्द करने के लिए गया थ

विकास

विकास-क्रम में यहाँ की
अवस्था-क्रम रखे गये हैं—समस्य
लेकिन यहाँ की कहानियों में पह
है। 'सालवती' 'आँधी', 'देवरथ
शेष विकास की ओर अवस्थाएँ
में घात-प्रतिघात को भी स्पष्ट
देख सकते हैं।
'आँधी' में समस्या का
भोली-भाली युवती होना। द्वन्द्व
करने लगना। घात-प्रतिघात में
आती हैं। आरोह में अन्तर्द्वन्द्व
जो हिन्दी में पत्र भेजा था, उ
अस्वीकार किया था, लेकिन लै
के विश्वास की रक्षा के लिए थ
करता हूँ। अब यह द्वन्द्व दो दि
प्रेम में पागल रहती है। पत्र-प
धर्मपत्नी मालती तथा उसके त
सुखी और प्रसन्न हैं, इसे भी व
बलूची युवती को जब इस झूठ
उनसे चाहे जो प्रतिशोध ले सक
वार के साथ वायु-परिवर्तन के
हृदय में और बढ़ता है तथा इ
पत्र-पाठक लैला से सत्य का उ
"उस चिट्ठी में लैला;

इसके अतिरिक्त यहाँ प्रथमपुरुष के वर्णनों से 'बेड़ी' और 'चित्रवाले पत्थर' कहानियों का आरम्भ हुआ है। 'चित्रवाले पत्थर' का आरम्भ :

"मैं संगमहल का कर्मचारी था। 'उन दिनों मुझे विंध्य शैल-माला के एक उजाड़ स्थान में सरकारी काम से जाना पड़ा। भयानक वनखंड के बीच पहाड़ी से हटकर एक छोटी-सी डाक बंगलिया थी। मैं उसी में ठहरा था। वहीं की एक पहाड़ी में एक प्रकार का रंगीन पत्थर निकलता था। मैं उसकी जाँच करने और तब पत्थर की कटाई बन्द करने के लिए गया था।"

विकास

विकास-क्रम में यहाँ की भी प्रतिनिधि कहानियों में वही द्वितीय काल के अवस्था-क्रम रखे गये हैं—समस्या-प्रवेश, परिचय, द्वन्द्व का जन्म और घात-प्रतिघात, लेकिन यहाँ की कहानियों में पहले की अपेक्षा घात-प्रतिघात पर अधिक बल दिया गया है। 'सालवती' 'आँधी', 'देवरथ' आदि कहानियों का लक्ष्य-बिन्दु घात-प्रतिघात है, शेष विकास की और अवस्थाएँ बस, साधन या प्रयोजन-मात्र हैं। फलतः इन कहानियों में घात-प्रतिघात को भी स्पष्ट रूप से हम दो स्थितियों आरोह, अवरोह में बाँट कर देख सकते हैं।

'आँधी' में समस्या का प्रवेश लैला का पत्र है। परिचय है लैला का बलूची भोली-भाली युवती होना। द्वन्द्व का जन्म है बिना समझे-बूझे लैला का रामेश्वर से प्रेम करने लगना। घात-प्रतिघात में दो स्थितियाँ समान रूप से पूर्ण मुख्यता लिए हुए आती हैं। आरोह में अन्तर्द्वन्द्व इन क्रमों से आगे बढ़ता है। लैला के पास रामेश्वर ने जो हिन्दी में पत्र भेजा था, उसमें लैला के प्रेम को अपनी असमर्थता प्रकट करके अस्वीकार किया था, लेकिन लैला ने उस पत्र को जिस व्यक्ति से पढ़वाया, उसने लैला के विश्वास की रक्षा के लिए झूठ बोल दिया कि उसने लिखा है कि मैं तुम को प्यार करता हूँ। अब यह द्वन्द्व दो दिशाओं में विकास पाने लगता है। लैला उधर अपने प्रेम में पागल रहती है। पत्र-पाठक रामेश्वर का दोस्त है, वह रामेश्वर और उसकी धर्मपत्नी मालती तथा उसके तीन बच्चों को खूब जानता है। वे सब आपस में कितने सुखी और प्रसन्न हैं, इसे भी वह खूब जानता है। उसे यह भी मालूम है कि उस बलूची युवती को जब इस झूठ का पता चलेगा, तब मालती का क्या होगा। लैला उनसे चाहे जो प्रतिशोध ले सकती है। उसी स्थान पर रामेश्वर संयोगवश अपने परिवार के साथ वायु-परिवर्तन के लिए आता है। अन्तर्द्वन्द्व का आरोह पत्र-पाठक के हृदय में और बढ़ता है तथा इस अन्तर्द्वन्द्व के आरोह का चरमबिन्दु वहाँ होता है जहाँ पत्र-पाठक लैला से सत्य का उद्घाटन करता है :

"उस चिट्ठी में लैला; मैंने उसमें कुछ झूठ कहा था।"

"झूठ !" लैला की आँखों से बिजली निकलने लगी थी ।

"हाँ लैला ! उसमें रामेश्वर ने लिखा था कि मैं तुमको नहीं चाहता, मुझे बाल-बच्चे हैं ।"

"ऐं तुम झूठे ! दगाबाज !" कहती हुई लैला अपनी छूरी की ओर देखती हुई दाँत पीसने लगी । इसके उपरान्त विकास-क्रम में अवरोह की स्थितियाँ आती हैं । लैला रामेश्वर से भेंट करती है, लैला रामेश्वर ही से अपने प्रेमपत्र को पढ़ाती है । रामेश्वर से उस पत्र को फाड़ने के लिए कहती है और रामेश्वर उसे सचमुच फाड़ देता है, लेकिन लैला का चरित्र अपनी सच्चाई, अपनी दृढ़ता, विश्वास, त्याग, क्षमा के मिलन-बिन्दु पर आकर महान हो जाता है । घात-प्रतिघात की यही स्थितियाँ 'सालवती', 'देवरथ' और 'पुरस्कार' आदि कहानियों में मिलेंगी ।

यहाँ कुछ कहानियों में विकास-क्रम के अनुपात में असन्तुलन आ जाने से कहानी के पूर्वार्द्ध में इसकी इकाई नष्ट हो गई है, इन्द्रजाल इसका उदाहरण है । यह विकास-क्रम गठित न होने के कारण कहानी में आकस्मिकता उत्पन्न हो गई है । इसके अतिरिक्त यहाँ की प्रतिनिधि कहानियाँ कथानक-प्रधान और प्रसंग-विस्तार के कारण संयोग और घटना के सहारे विकसित हुई हैं ।

चरमसीमा

यही कारण है कि यहाँ की प्रतिनिधि कहानियों की चरमसीमाएँ घटना अथवा संयोग पर प्रतिष्ठित हुई हैं, जैसे 'आँधी' की चरमसीमा—"आँधी रुक गई थी । मैंने देखा कि पीपल की बड़ी-सी डाल कटी पड़ी थी, और लैला उसके नीचे दबी हुई अपनी भावनाओं की सीमा पार कर चुकी है ।" 'देवरथ' की चरमसीमा—"देवरथ विस्तीर्ण राजपथ से चलने लगा । उसके दृढ़ चक्र धरणी की छाती में गहरी लीक तुलते हुए आगे बढ़ने लगे । उस जन समुद्र में सुजाता आन पड़ी और एक क्षण में उसका शरीर देवरथ के भीषण चक्र से पिस उठा ।"

कुछ कहानियों की चरमसीमा के उपरान्त छोटे-छोटे उपसंहार भी जुड़े मिलते हैं; जैसे "चित्र-मन्दिर में मानव-जीवन के उस काल का वह स्मृति-चिह्न जब कि उसके अपने हृदय-लोक में संसार के दो प्रधानों की प्रतिष्ठा की थी आज भी सुरक्षित हैं ।"

उस प्रान्त के जंगली लोग उसे राजा-रानी की गुफा और ललित कला के खोजी उसे पहला चित्र-मन्दिर कहते हैं । 'आँधी' में : "आज भी मेरे हृदय में आँधी चला करती है और उसमें लैला का मुख बिजली की तरह कौंधा करता है ।"

शैली का सामान्य पक्ष

प्राकृतिक दृश्य का वर्णन और चित्रण पहले की अपेक्षा यहाँ और गम्भीरता

से हुआ है । इसमें सूक्ष्मता, चित्रात्मकता और भावाभिव्यंजना आई है । चित्रण और वर्णन की दोनों रेखाएँ अलग-अलग कल्पना और भावों को समेटने में समर्थ हुई हैं । प्राकृतिक चित्रणों की अवतारणा यहाँ भी मुख्यतः कहानियों में वातावरण प्रस्तुत करने के लिए हुई है । इसके अतिरिक्त यहाँ प्राकृतिक वर्णन मानव-मनोभावों की व्यंजनाओं के लिए भी हुआ है । यही कारण है कि यहाँ चित्रण की रेखाएँ कल्पना-संकेतों और व्यंजनाओं से अभिभूत हो गई हैं । "सदा-नीरा अपनी गम्भीर गति से, उस घने साल के जंगल से कतरा कर चली जा रही है । सालों की श्यामल छाया उसके जल को और भी नीला बना रही है, परन्तु वह इस छाया-दान को अपनी छोटी-छोटी वीथियों से मुस्करा कर टाल देती हैं, उसे तो ज्योत्स्ना से खेलना है । चैत की मतवाली चाँदनी परिमल से लदी थी । उसके वैभव की यह उदारता थी कि उसकी कुछ किरणों को जंगल के किनारे की फूस की झोपड़ी पर बिखरना पड़ा ।"

मुख्यतः यह प्राकृतिक चित्रण कहानी की गम्भीर पृष्ठभूमि के लिए किया गया है तथा इस चित्रण में स्थिति की स्वाभाविकता और दृश्य की झाँकी भी सुन्दरता से प्रस्तुत की गई है ।

शोभा-वर्णन में यहाँ आकृति-शोभा और रूप-शोभा दोनों का वर्णन अपूर्व ढंग से हुआ है । 'सालवती' में कुल-पुत्रों की आकृति-शोभा—"कुछ गम्भीर विचारक-से वे युवक देव, गंधर्व की तरह रूपवान थे, लम्बी-चौड़ी हड्डियों वाले व्यायाम से सुन्दर शरीर पर दो-एक आभूषण और काशी के बने हुए बहुमूल्य उत्तरीय, रत्न-जटित कटि-बन्ध में कृपाणी । लच्छेदार बालों के ऊपर सुनहरे पतले पटबन्ध और बसंतोत्सव के प्रसाद-चिन्ह-स्वरूप दुर्वामधूक-पुष्पों की सुरचित-मालिका । उनके मांसल भुजदंड, कुछ-कुछ आसवपान से अरुण नेत्र, ताम्बूल-रंजित सुन्दर अधर रूप-शोभा का वर्णन भी इसी प्रकार नितान्त कलात्मक है । सुजाता की रूप-शोभा—"दो-तीन रेखाएँ भाल पर काली पुतलियों के समीप मोटी और काली बरौनियों का घेरा, घनी आपस में मिली रहने वाली भौंहें और नासा-पुट के नीचे हल्की-हल्की हरियाली उस तापसी के गोरे मुँह पर सबल अभिव्यक्ति की प्रेरणा प्रकट करती थी ।"

कथोपकथन यहाँ और विकसित होकर पूर्ण कलात्मक और सफल हुए हैं । उनमें नाटकीयता के साथ-ही-साथ कहानीपन की भी कला आ गई है । यद्यपि नाटकीयता यहाँ प्रधान है ।

लक्ष्य और अनुभूति

यहाँ की कहानियों के लक्ष्य-बिन्दु पर करुणा, त्याग और बलिदान की भावनाएँ अपूर्व ढंग से व्यक्त हुई हैं । इस काल की प्रायः समस्त ऐतिहासिक कहानियाँ ऐसी कारुणिक संवेदनाओं को लेकर लिखी गई हैं कि वे अपने लक्ष्य-बिन्दु पर न जाने कितनी

करुणा-उत्सर्ग की सुगंधि बिखेर देती हैं। यहाँ की कहानियाँ जो मुख्यतः किसी समस्या के धरातल पर लिखी गई हैं; जैसे—'आँधी', 'सालवती' और 'देवरथ'—ऐसी कहानियों में वस्तुतः लक्ष्य ही ने कथासूत्र को जन्म दिया है। यही कारण है कि प्रसाद जी ने करुण-उत्सर्ग और त्याग को दिखाने के लिए बार-बार इतिहास से कथासूत्र को ढूढ़ निकाला है, और अगर इतिहास-पृष्ठों में उन्हें कोई उचित संवेदना नहीं मिल सकी है, तो उन्होंने अपनी कल्पना में उन संवेदनाओं की सृष्टि की जिनसे उनके लक्ष्य प्रतिष्ठित हो सकें। इस सम्बन्ध में प्रसाद की सबसे बड़ी कला यह है कि उनकी ऐसी कहानियाँ मुख्यतः समस्या और अंतर्द्वन्द्व-प्रधान हो जाती हैं और समूची कहानी से एक मूक विद्रोह, चरित्र की महानता और उत्सर्ग की आवाज गूँजने लगती है। अतः यहाँ की प्रतिनिधि कहानियाँ 'आँधी', 'पुरस्कार', 'इन्द्रजाल', 'देवरथ', 'सालवती', 'नूरी' आदि के निर्माण के पीछे करुणा, उत्सर्ग नारी-चरित्र की महानता का लक्ष्य-बिन्दु है, जो क्रमशः अलग-अलग लोकों से अपने अनुरूप कथा-सूत्रों को जुटा लेती है और कथा-सूत्रों से चरित्र और चरित्र की कर्मशीलता तथा अन्तर्द्वन्द्वों से सम्पूर्ण कहानी बन जाती है।

फलतः यहाँ की कहानियाँ समस्या-प्रधान कथा-सूत्रों के होते हुए भी मूलतः अनुभूति-प्रधान हैं, क्योंकि इन कहानियों की सृष्टि का एकमात्र कारण प्रसाद की तद्-विषयक अनुभूतियाँ ही थीं।

समीक्षा

इस काल की कहानियों का व्यापक धरातल मनोविज्ञान हुआ है और संवेदनाएँ तथा परिस्थितियाँ इसकी अनुवर्तिनी हुई हैं। केवल एक कारण से ऐसा संभव हो सका है, जहाँ मनोविज्ञान जीवन के विस्तृत क्षेत्र से तादात्म्य स्थापित करके आया है, वहाँ हमारे समाज, इतिहास और संस्कृति तीनों का संधि-स्थल प्रतिष्ठित हुआ है।

सामाजिक मनोविज्ञान के धरातल से लिखी 'मधुआ', 'घीसू', 'बेड़ी', विजया', 'अमिट स्मृति', 'भीख' आदि कहानियों में आधुनिक समाज, इसका मनोविज्ञान और व्यक्ति की विरोधी स्थितियों में जीवन स्वयं अपनी जैसी अभिव्यक्ति देता रहता है—"मार तो रोज ही खाता हूँ। आज तो खाना ही नहीं मिला। कुँवरसाहब की ओवर कोट के लिए खेल में दिन भर साथ रहा। सात बजे लौटा तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पड़ा। आटा नहीं रख सका था। रोटी बनती तो कैसे ?" यही धरा-तल हमारे इतिहास के मनोविज्ञान के पीछे और स्पष्ट शब्दों में रो लेता है। 'सालवी' का वृद्ध पिता कहता है—"आर्थिक पराधीनता ही संसार में दुःख का कारण है। मनुष्य को इससे मुक्ति पानी चाहिए, इसलिए मेरा उपास्य स्वर्ण है।" हमारी संस्कृति

तथा मनोविज्ञान के तत्व दया, त्याग, क्षमा, सत्य आदि हैं और इनकी परीक्षा क्रमशः 'देवरथ', 'सालवती', 'दासी', 'पुरस्कार' आदि कहानियों में सफलता से हुई है।

'प्रसाद' का आदर्शवाद

'प्रसाद' के सम्पूर्ण कहानी-साहित्य में आदर्श की प्रतिष्ठा उनके लक्ष्य की सबसे बड़ी विशेषता है। यह आदर्शवाद समाज, दर्शन और व्यक्ति तीनों क्षेत्र में समान रूप से व्यंजित हुआ।

सामाजिक क्षेत्र में 'प्रसाद' का आदर्शवाद अपनी दो विशेषताओं में मिलता है, कहीं पुरातन की मर्यादा का समर्थन और कहीं सामाजिक मान्यताओं के प्रति क्रान्ति, लेकिन इन दोनों विशेषताओं में 'प्रसाद' सदैव अपने दृष्टिकोण में उदार और प्रगतिशील रहे हैं। पुरातन मर्यादाओं में उन्होंने अपने आदर्शवाद के अंतर्गत केवल प्रेमतत्व को लिया है, जो वस्तुतः एक महान और चिरंतन आदर्श का प्रतीक है। 'रसिया-बालम', 'तानसेन' और 'सुनहला साँप' में इन्होंने स्वतंत्र प्रेम को इस प्रकार महान और शाश्वत बताया है कि उसमें स्वस्थ, प्राकृतिक प्रेरणा और स्वर्गिक आकर्षण है। जो प्रेम ऐसे वासना-रहित धरातल से चरितार्थ होता है वह सदैव महान होता है। वस्तुतः प्रेम-विवाह की यह स्वस्थ कसौटी हमारे पुरातन समाज की कसौटी है। इस धरातल पर 'प्रसाद' की कहानियों में कितने स्त्री-पुरुष-पात्र एक-दूसरे को सामाजिक रूप से पाने के लिए अपने आप को उत्सर्ग कर देते हैं। 'चन्दा' की चन्दा, रसिया बालम' की राजकुमारी, 'आँधी' की लैला और 'देवरथ' की सुजाता इस परम्परा के महान प्रतीक हैं। सामाजिक मान्यताओं के विद्रोह में प्रसाद जी ने प्रेम और अर्थ दोनों को बराबर महत्व दिया। 'चूड़ीवाली' और 'नीरा' में समाज की झूठी मान्यताओं के विरुद्ध सफल विद्रोह है। 'चूड़ीवाली' एक विलासिनी नर्त्तकी की कन्या थी, लेकिन वह सच्चे प्रेम-हृदय के लिए समाज की गृहस्थी में वह किसी की वधू बनकर रहना चाहती है, तथा वह विजयकृष्ण के चरित्र से मुग्ध होकर उन्हें ही अपना पति बनाना चाहती है। इसलिए वह चूड़ीवाली के रूप में अपने को छिपाकर विजयकृष्ण से प्रेम करती है और अंत में दोनों समाज के विरुद्ध एक-दूसरे से शादी कर लेते हैं। 'नीरा' में एक धनी रूपवान व्यक्ति एक अकिंचन, वयोवृद्ध, अपाहिज व्यक्ति की एकमात्र लड़की नीरा से विवाह कर लेता है। इस तरह समाज के क्षेत्र में 'प्रसाद' का आदर्शवाद प्रेम और विवाह के दो केन्द्र-बिन्दुओं से प्रतिष्ठित हुआ।

दर्शन के क्षेत्र में प्रसाद का आदर्शवाद वैदिक और बौद्ध दर्शन के धरातल पर प्रतिष्ठित हुआ है। वैदिक दर्शन में ब्रह्म और माया के पारस्परिक सम्बन्ध का आदर्श 'प्रलय' कहानी में चरितार्थ हुआ है, जहाँ शाश्वत, निरंकार और अद्वैत ब्रह्म अपने अस्तित्व के लिए सर्वदा स्वयं अपने को व्यक्त करता रहता है। ब्रह्म का तांडव नृत्य

होता है और माया उनमें विश्व की प्राचीनता और रमणीयता, स्वर्ग और प्रलय सब एक साथ देखती है और अंत में नयी सृष्टि के आरम्भ के लिए ब्रह्म और माया का आनन्दमय मिलन होता है : अखंड शान्ति, आलोक-आनन्द।

इसके अतिरिक्त वैदिक दर्शन के अन्य अंग भी हैं : प्रकृति और नियति। इसी नियति की शक्ति में सारी प्रकृति, सारा ब्रह्मांड संचालित है। इसी को कामायनी में प्रसाद जी ने इस तरह कहा है—"कर्म-चक्र-सा घूम रहा है, यह गोलक, वह नियति प्रेरणा।" वस्तुतः इसी नियति से आदर्श को प्रतिष्ठित करने के ही फलस्वरूप 'प्रसाद' की कहानियों में स्थान-स्थान पर अप्रत्याशित संयोग और दैवी घटनाएँ आई हैं तथा पात्र मरते गए हैं, क्योंकि 'प्रसाद' का विश्वास है कि सब एक परोक्ष सत्ता, नियति के हाथ के कन्दुक हैं, मानव-चरित्र स्वयं अपने में कुछ नहीं है।

बौद्ध दर्शन का सारभूत तत्व है करुणा, सत्य और उत्सर्ग। बौद्ध दर्शन का यह आदर्श मुख्यतः प्रसाद की समस्त कहानियों की आत्मा है। 'आँधी', 'आकाश दीप', 'देवरथ', 'नूरी', 'दासी', 'ग्रामगीत' आदि कहानियाँ तो इस आदर्श की अमर प्रतीक हैं।

व्यक्ति के क्षेत्र में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा पुरुष-पात्रों की अपेक्षा नारी-पात्रों में अधिक हुई है। प्रसाद के समस्त कहानी-साहित्य में उनके नारी-पात्र क्षमा, दया, प्रेम और उत्सर्ग की आदर्शमयी प्रतिमाएँ हैं, जो संसार के किसी भी कहानी-साहित्य में नहीं मिल सकतीं। 'आकाश दीप' की चम्पा, 'पुरस्कार' की मधूलिका और 'सालवती' की सालवती जनहित-लोकमंगल-भावना से अभिभूत प्रेम की अमर देवियाँ भी हैं।

पुरुष-पात्र के माध्यम से आदर्शवाद की प्रतिष्ठा हुई है, उसमें पुरुष का शौर्य, बलिदान और चारित्रिक सृढ़ता मुख्य तत्व हैं। पुरुष-पात्रों के चरित्र ये तत्व बार-बार प्रसाद की कहानियों में आदर्श पर प्रतिष्ठित हुए हैं। पुरुष-पात्रों में आदर्श के एक नवीन सम्प्रदाय की सृष्टि हुई है। वीरता, जिसका धर्म, प्राण-भिक्षा माँगने वाली, वाले कायरों तथा चोट खाकर गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वी पर शस्त्र न उठाना, सताये हुए निर्बलों को सहायता देना और प्रत्येक क्षण प्राणों को हथेली पर लिए घूमना उनका बाना था। आदर्श के इस प्रकाश में 'गुंडा' का ननकू सिंह, 'सालवती' का अभय, 'पुरस्कार' का अरुण, 'नूरी' का याकूब, 'इन्द्रजाल' का गोली, और 'दासी' का बलराज और अहमद प्रतिनिधि पुरुष-पात्र हैं, जिनके निर्माण में 'प्रसाद' ने व्यक्ति के क्षेत्र में अपने आदर्शवाद को प्रतिष्ठित किया है।

'प्रसाद' की भाषा

'प्रसाद' के कहानी-साहित्य में इनकी भाषा का अध्ययन दो धरातलों में बाँट कर किया जाता है। प्रथम, 'प्रसाद' की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कहानियों की

भाषा, और द्वितीय 'प्रसाद' की सामाजिक कहानियों की भाषा। वस्तुतः इन दोनों दिशाओं की भाषा दो स्तरों की है।

'प्रसाद' एक ऐसे कहानीकार हैं जो भाषा-शैली के बहुत धनी थे। कहानी की संवेदना के समान और उसमें वातावरण प्रस्तुत करने के अनुरूप उनके पास परम समृद्धिशाली भाषा थी। संस्कृत के तत्सम शब्दों से लेकर हिन्दी प्रदेश के ग्रामीण शब्द तक उनकी भाषा-शैली में फैले थे। अतएव उनकी ऐतिहासिक या सांस्कृतिक कहानियों में भाषा की काव्यात्मकता सूक्ष्म अंतर्दृष्टि और कलात्मक ऐश्वर्य विशेष रूप से मिलता है। इसमें एक ओर भाषा की लाक्षणिकता, व्यंजकता के साथ ही साथ उपमा-रूपक की प्रचुरता मिलती है तथा दूसरी ओर विभिन्न रंगों और रसों में डूबे हुए शब्दजाल मिलते हैं। 'आकाश दीप' की भाषा —"सामने शैल-माला की चोटी पर हरियाली में विस्तृत जल-देश में, नील-पिंगला सध्या, प्रकृति की एक सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्न-लोक का सृजन करने लगी। उस मोहनी के रहस्यपूर्ण जल का कुहुक फुट हो उठा, जैसे मदिरा से सारा अंतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नीलकमलों से भर उठी। उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिंधु का। किन्तु उस परिरम्भ में सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाला।"

इस गद्यांश में रस-स्निग्ध भाषा अपने स्वाभाविक और सरल रूप से प्रयुक्त हुई है। इसमें कलात्मक संयम और भाषा-शैली की सजीवता से प्रसाद जी ने हमारी सामाजिक संवेदनाओं, समस्याओं और अनुभूतियों को कितनी सजीव और सूक्ष्म अभि-व्यक्ति दी है! 'मधुआ' में माया का रूप कितना स्वाभाविक और सजीव है—"शराबी उसका हाथ पकड़ कर घसीटता हुआ गली में ले गया। एक गन्दी कोठरी का दरवाजा ढकेल कर बालक को लिए हुए भीतर पहुँचा। टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जला कर वह फटे कम्बलों के नीचे से कुछ खोजने लगा।"

इस तरह 'प्रसाद' की भाषा-शैली में एक ओर प्रतिदिन की बोली जाने वाली सजीव भाषा का संयोग है और दूसरी ओर उसमें 'प्रसाद' के कवि, नाटककार और निबन्धकार-व्यक्तित्व की भाषा-शैली की प्रतिभा आ मिली। फलतः 'प्रसाद' की कहानी; भाषा-शैली में कवि की कल्पना, नाटककार का विश्लेषण और निबन्धकार के चिंतन, तीनों तत्वों का सुन्दर समन्वय है।

'प्रसाद' की मौलिकता

कहानीकार 'प्रसाद' का व्यक्तित्व आधुनिक हिन्दी-कहानीकारों में सर्वथा अनूठा है। कुछ आलोचकों का तो कहना है कि 'प्रसाद' की कहानियाँ निश्चित कहानी-शिल्प-विधि से बहुत दूर हटकर लिखी गई हैं। यह बात सर्वथा अवैज्ञानिक है। वस्तुतः

कहानीकार 'प्रसाद' के व्यक्तित्व में दो आधारभूत चेतनाएँ बहुत शक्तिशाली ढंग से कार्य कर रही थीं। उनकी आत्मा की सच्ची आवाज उनकी 'पत्थर की पुकार' नामक कहानी में स्पष्ट ढंग से मुखरित है—"अतीत और करुणा का जो अंश साहित्य में है, वह मेरे हृदय को आकर्षित करता है।" प्रसाद जी अपनी आत्मा की इस पुकार से बहुत ही पिपासित और प्रेरित थे। फलतः उन्होंने अपनी कहानियों में सहज प्रेरणा के प्रति विश्वासघात नहीं किया; वरन् सर्वदा इस प्रेरणा से वे कहानियों की सृष्टि करते गए। दूसरी बात प्रसाद जी ने कहानी को कहानी के तात्विक धरातल से बहुत कम लिखा। उनके मन में जो भी जैसी भावनाएँ उठीं, उसके अनुरूप या तो उन्होंने इतिहास से कोई कथासूत्र ढूँढ़ निकाला या अपने कल्पना-लोक से उसकी सृष्टि कर ली और उसमें अपनी सहज अनुभूतियों और भावनाओं को पिरो दिया। यही कारण है कि उनकी प्रायः समस्त कहानियाँ भावात्मक हो गई हैं और भावात्मक कहानियों की अपनी स्वतन्त्र शिल्पविधि होती है। वे सर्वथा अपने एक-एक रूप में स्वतन्त्र और मौलिक होती हैं। अतएव 'प्रसाद' कहानियों में घटना के प्रस्तुत करने में, चरित्र-चित्रण और चरित्र-निर्माण में, सिद्धान्त-प्रतिपादन और वातावरण की अवतारणा में बिल्कुल मौलिक सिद्ध हुए हैं।

घटना को प्रस्तुत करने में प्रसाद जी की तीन विशेषताएँ हैं—घटना की अवतारणा के पहले उसके ही अनुरूप वर्णन या चित्रण की एक पीठिका प्रस्तुत होती है। दूसरी विशेषता यह है कि घटनाओं के ही माध्यम से प्रसाद जी अपनी कहानियों में नाटकीयता और अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि करते हैं; जैसे 'आकाश दीप', 'इन्द्रजाल', और 'नूरी' की घटनाएं।

चरित्रों का निर्माण 'प्रसाद' ने सदैव कल्पना, अनुभूति और आदर्श के तादात्म्य से किया है। फलतः 'प्रसाद' के चरित्र एक ओर भावुक, परम सौन्दर्यनिष्ठ, आकर्षक और प्रायः यथार्थ मानव से कुछ ऊपर उठे हुए हैं तथा दूसरी ओर उनमें अन्तर्द्वन्द्व, करुणा और उत्सर्ग के तत्व इतने घनीभूत रहते हैं कि उन्हें पूर्ण रूप से समझना मुश्किल हो जाता है। उनके चरित्र की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति ही उन्हें अमर बना देती है तथा समस्त चरित्रों में बहुत समानता भी आ जाती है। चरित्र-चित्रण की प्रमुख शैली प्रसाद जी ने नाटकीय शैली रखी है, अर्थात् घटना और कथोपकथन के माध्यम से पात्रों का चरित्र-चित्रण।

प्रसाद जी की कहानियों में दो शैलियों से सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है। मुख्यतः उन्होंने पात्रों के मुख से सिद्धांतों को कहलवाया है तथा कहीं-कहीं स्वतंत्र वर्णनों में भी इसका प्रतिपादन हुआ है; जैसे 'सालवती' के वर्णनों में।

वातावरण का निर्माण 'प्रसाद' की कहानी-कला की सबसे बड़ी मौलिकता है।

मुख्यतः ऐतिहासिक और भावात्मक कहानियों में वातावरण का निर्माण आश्चर्यजनक हुआ है। 'प्रसाद' ने दो शैलियों से वातावरण का निर्माण किया है। कहानी की मुख्य संवेदना आरंभ होने के पूर्व, कहानी के आरंभिक वर्णनों द्वारा और पात्रों के नाटकीय कथोपकथनों द्वारा वातावरण की सृष्टि करना प्रसाद जी की प्रधान कला है। इसके अतिरिक्त दृश्य-विधान, रूप-वर्णन और भाव-चित्रों के भी माध्यम से इन्होंने वातावरण की सृष्टि की है।

इस तरह प्रसाद जी की मौलिकता कहानी के भाव-पक्ष में ही सीमित न रह कर कहानी के कलापक्ष में विशेष रूप से अपनी प्रेरणा दे रही थी। प्रसाद जी की कहानियाँ हिन्दी कहानी-साहित्य में सबसे अलग और स्वतन्त्र शिल्पविधि के रूप में हैं। इसके मूल में प्रसाद जी के व्यक्तित्व के कवि, नाटककार और उपन्यासकार तीनों रूपों का सुन्दरतम तादात्म्य स्थापित हुआ है। इस अपूर्व सन्धि-बिन्दु से जितनी कहानियों की सृष्टि हुई है, उन पर दर्शन, कल्पना और अनुभूति की गहरी छाप है।

प्रसाद-संस्थान के कहानीकार

कहानी-कला की जिन शिल्पगत विशेषताओं से प्रेमचंद-संस्थान की प्रतिष्ठा हुई है, उससे कुछ अन्तर पर कला के नये मूल-स्तर पर 'प्रसाद' की कहानी-कला निश्चित हुई है। मूलतः 'प्रसाद' की कहानी-कला के तत्व वे ही हैं, जिनके माध्यम से प्रेमचंद-संस्थान बना है, लेकिन अन्तर इतना ही है कि 'प्रसाद' की कला की दिशा, लक्ष्य और स्तर विभिन्न हैं। यह कलात्मक विभिन्नता 'प्रसाद' और प्रेमचंद के जीवन-दर्शन अथवा जीवन के प्रति दृष्टिकोण के अन्तर के कारण उत्पन्न हुई है। प्रेमचंद आदर्शोन्मुख यथार्थवादी तथा जन-जीवन के प्रतिनिधि कहानीकार थे। उनकी कला का लक्ष्य जीवन था। इसकी वर्तमान सभ्यता वर्तमान परिस्थितियों और संस्कारों का संघर्ष था। प्रसाद जी भी इसी धरातल पर खड़े थे, लेकिन जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भिन्न था। उनके जीवन-दर्शन में करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द और आदर्श की भावना अत्यन्त तीव्र थी। फलतः इनकी भावना में, संस्कार में, अतीत की अपूर्व प्रेरणा, इतिहास और संस्कृति का इतना आग्रह था कि इसके फलस्वरूप उन्हें करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द और आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए बार-बार वर्तमान से अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों में जाना पड़ा है। कभी-कभी अपनी प्रेरणा की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें काल्पनिक सृष्टि करनी पड़ी है। इस तरह इनकी कहानी-कला का लक्ष्य करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, आदर्श-प्रतिष्ठा तथा पाठक के सामने जीवन के किन्हीं ऐसे विशिष्ट प्रकरणों को रख देना था, जिनमें उनके जीवन-दर्शन की कोई न कोई इकाई अवश्य ही प्रतिफलित होती है। अतएव जहाँ प्रेमचंद-संस्थान में कथानक-निर्माण यथार्थ जीवन की इतिवृत्तात्मकता, क्रम-बद्धता तथा संयोग-घटनाओं के द्वारा होता है, वहाँ प्रसाद-संस्थान में कथानक-निर्माण इन्हीं

तत्वों के माध्यम से कल्पना, अतीत और रागात्मकता के धरातल से होता है। चरित्र-अवतारणा और चरित्र-चित्रण में भी इसी तरह जहाँ प्रेमचन्द ने जीवन के सामान्य और यथार्थ धरातल को लिया है, वहाँ प्रसाद ने विशिष्ट और काल्पनिक चरित्रों को लिया है, जिनमें एक ही साथ सौन्दर्यनिष्ठा, भावुकता तथा आदर्श और बलिदान आदि चारित्रिक इकाइयों का सुन्दर समन्वय और तादात्म्य रहता है। इन चरित्रों के व्यक्तित्व में चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व और आन्तरिक संघर्ष प्रेमचन्द से भी अधिक होते हैं, लेकिन यथार्थ जीवन और चरित्र के सूक्ष्म मनोविश्लेषण में प्रेमचन्द का स्थान विकास-युग में अनन्य है।

शैली के व्यापक प्रकाश अर्थात् रचना-विधान में, प्रायः प्रेमचंद की भाँति इनकी कहानियों का भी आरम्भ, विकास और चरमसीमा का निर्माण परिचायक, घटनात्मक और वर्णनात्मक होता है, लेकिन इस दिशा में अन्तर केवल दो बातों में होता है। 'प्रसाद' की शैली में भूमिका नहीं होती और परिचयात्मक वर्णन की अपेक्षा इनमें कथोपकथन की मात्रा सबसे अधिक होती है। सम्पूर्ण कहानी के विकास-क्रम में नाटकीय सन्धियाँ और नाटकीय परिस्थितियों का अद्भुत प्रयोग होता है। प्रसाद की कहानियों के आकर्षण का सबसे बड़ा रहस्य यही है। प्रायः कहानियों का आरम्भ कथोपकथन से होता है तथा इसी शैली से कहानियों में कौतूहल-जिज्ञासा की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है। यहाँ चरमसीमा आदर्श बिन्दु पर प्रतिफलित होने के कारण प्रायः घटनात्मक-योगात्मक हुई हैं, लेकिन इसके पीछे सर्वथा प्रभाव की दृष्टि से चरित्र और मनोविज्ञान की प्रेरणा मुख्य रूप से रही है। शैली के सामान्य पक्ष में इन कहानियों में कवित्वपूर्ण वर्णन हुआ है। रूप-छवि के चित्रण अन्य ढंग से हुए हैं। वर्णनों, चित्रणों द्वारा निर्माण की कला इस संस्थान की अनन्य देन है। लक्ष्य और अनुभूति की दृष्टि से ये कहानियाँ यद्यपि लक्ष्यात्मक अवश्य हैं, लेकिन इनके निर्माण की प्रेरणा में अनुभूति का ही स्थान मुख्य है। अतएव शिल्पविधि की दृष्टि से प्रसाद-संस्थान में भावात्मक विशिष्टता मुख्य रही है। यही कारण है कि इस संस्थान में बहुत कम कहानीकार आ सके हैं। जो आ भी सके हैं, उनमें कलात्मक और भावात्मक अभिरुचि तथा इसकी क्षमता भी थी—कोई संगीत का प्रेमी था, कोई चित्रकला, मूर्तिकला तथा अतीत का उपासक था और कोई मस्त स्वच्छन्द और आनन्दवादी था।

चतुरसेन शास्त्री :

प्रसाद-संस्थान के कहानीकारों में चतुरसेन शास्त्री का नाम सबसे पहले आता है। इन्होंने 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'नूरजहाँ का कौशल', 'सिंहगढ़ विजय', 'वसंत', 'पूर्णाहुति' और 'झण्डा' आदि अपनी प्रतिनिधि कहानियों का निर्माण, कल्पना और इतिहास के इतने रूमानी धरातल से किया है कि ये कहानियाँ सदा अमर रहेंगी।

इन कहानियों के कथानक-निर्माण में क्रम-बद्ध स्वाभाविक घटनाओं के घटने का प्रमुख हाथ है। 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' में कथानक का आरम्भ बेगम सलीमा और उसकी प्यारी बाँदी को लेकर होता है। इसका विकास इस घटना से होता है कि बाँदी सलीमा को शराब पिलाती है और जब बेगम नशे में बेहोश हो जाती है, तब उसके भरे यौवन को वह बाँदी जो स्त्री के वेश में वस्तुतः उसका प्रेमी था, चुम्बन लेता है। उसी समय संयोगवश वहाँ बादशाह उपस्थित हो जाते हैं और सब कुछ देख लेते हैं। इस संयोग से कथानक में नाटकीय विकास होता है। चरित्र-अवतारणा में बाँदी और सलीमा इतिहास के पर्दे में पूर्ण काल्पनिक हैं, जिनकी सृष्टि सौन्दर्य, प्रेम और बलिदान की रेखाओं से हुई है। इनमें बाँदी का व्यक्तित्व चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व का प्रतीक है। कहानी का आरम्भ पूर्ण सफल और स्वाभाविक शाही वातावरण के साथ होता है तथा इसकी चरमसीमा पर आदर्श की प्रतिष्ठा स्पष्ट है। सामाजिक कहानियाँ, जैसे 'दे खुदा के राह पर', में भी इसी तरह कल्पना, नाटकीय स्थितियों, संयोग और आदर्श आदि तत्वों का आपस में अद्भुत तादात्म्य उपस्थित हुआ है।

रायकृष्ण दास :

कल्पना और भावुकता की प्रेरणा से रायकृष्ण दास ने इतिहास और अतीत के धरातल से कहानियाँ लिखी हैं। 'अन्तःपुर का आरम्भ' की संवेदना प्रागैतिहासिक काल से ली गयी है और कल्पना के प्रकाश में यह चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है कि वस्तुतः स्त्री-पुरुष में स्वाभाविक भेद कैसे हुआ, जिसके फलस्वरूप अन्तःपुर का आरम्भ हुआ। कथानक-निर्माण जंगल-निवासी स्त्री-पुरुष के बीच में एक सिंह को देख कर होता है। उस दिन पुरुष स्त्री को गुफा में ही रोक कर सिंह के शिकार को चलने लगा, लेकिन उस दिन अकेला क्यों? कथानक का विकास इसी द्वन्द्व को लेकर होता है, जिससे कहानी में नाटकीयता उत्पन्न हो जाती है :

"क्यों ? मुझे ले चलने में हिचकते हो ?"
"नहीं, तुम्हारी रक्षा का ख्याल है।"
"क्यों, आज तक किसने मेरी रक्षा की है ?"
"हाँ, मैं यह नहीं कहता कि तुम अपनी रक्षा नहीं कर सकती।"
"पर····?"
"मेरा जी डरता है।"
"क्यों ?"
"तुम सुकुमारी हो !"

अतएव पुरुष अपनी प्रिया को उस दिन सर्वप्रथम गुफा के अन्तःपुर में छोड़ कर अकेले शिकार पर जाकर सिंह को मारता है और नारी गुफा-द्वारा के सहारे खड़ी रहती है। उसका आधा शरीर लता की ओट में था। वहीं से वह अपने पुरुष के पराक्रम को देख रही थी, आनन्द की कूकें लगा रही थी। हाँ, उसी दिन अन्तःपुर का आरम्भ हुआ था। कहानी-निर्माण का उद्देश्य इससे स्पष्ट है। 'गहुला' कहानी में कथानक का निर्माण इतिहास के पृष्ठों और कल्पना के रंगों से हुआ है। इसके विकास में घटना और संयोगों का परम कलात्मक सम्बन्ध जुड़ा है। हूण-अधिपति तोमारल के राज्य में मंदसौर के क्षत्रप हेमनाभ और राजकुमारी गहुला में प्रेम था। गहुला उसे हर विदा-क्षण में एक नीलकमल देती। हेमनाभ उसे एक सुगन्धित रेशमी कपड़े में लपेट कर, सुवर्ण-सूत्र से बाँध कर सुन्दर मंजूषा में रखता जाता था। प्रत्येक पर स्वर्ण की एक मुद्रा भी बनवा कर ग्रन्थित कर देता। इन मुद्राओं पर पाने की तिथि और संवत् अंकित होते। संयोगवश एक बार हूण राजा ने मंदसौर प्रान्त का कर न देने के कारण दमन किया, लूटा, मारा तथा इसी में हेमनाभ की भी मृत्यु हो गई। सब लूट का सामान राजा के सामने उपस्थित होता है। सामान में हेमनाभ की वह स्वर्ण-मंजूषा भी थी, जिसे गहुला ने देखते ही अपने लिए पसन्द किया, लेकिन जब वह उसे खोलती है और पूर्व स्मृति तथा हेमनाभ के अव्यक्त पवित्र प्रेम से बेहोश हो जाती है। 'प्रसन्नता की प्राप्ति' में कथावस्तु अत्यन्त सूक्ष्म और भावात्मक है। इसमें एक मूर्ति-निर्माता के चरित्र का सुन्दर विश्लेषण हुआ है। चित्रकार कितने वर्षों से अपने चित्र में प्रसन्नता को अभिव्यक्ति देने के प्रयत्न में लगा था, पर बार-बार असफल हो रहा था। अन्त में वह अपने बच्चे में सच्ची प्रसन्नता को पा लेता है। 'अन्तःपुर का आरम्भ', 'गहुला' और 'प्रसन्नता की प्राप्ति' इन तीनों कहानियों में चरित्र-अवतारणा भावुकता और कल्पना के धरातल पर हुई है। इनमें मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व का आकर्षण सफलता से व्यक्त हुआ है। इन कहानियों के विकास और अन्त में नाटकीय तत्व विशेष रूप से आये हैं।

बेचन शर्मा 'उग्र'

उग्र का कहानीकार-व्यक्तित्व प्रसाद-संस्थान में सबसे अधिक आकर्षक है। इनकी कला में नवीन भाषा-शैली-प्रयोग और सर्वत्र स्वच्छन्दता है। इन्होंने प्रसाद जी की भाँति तीन तरह की कहानियाँ लिखी हैं। प्रथम, कल्पना और भावुकता के आधार पर व्यंजनात्मक एवं प्रतीकात्मक कहानियाँ। द्वितीय, केवल भावुकता के आधार से गद्यगीत से मिलती-जुलती कहानियाँ तथा नाटकीय स्थिति के प्रकाश में जीवन को किसी सूक्ष्म पहलू के रेखाचित्र में बाँधना। इनके उदाहरण में क्रमशः 'देशभक्त' तथा

'मुक्ता', 'संगीत', 'समाधि' तथा 'मोको चुनरी की साध' और 'चौड़ा छूरा' तथा 'रेशमी' आदि 'उग्र' की प्रतिनिधि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। 'देशभक्त' और 'मुक्ता' में कथानक-निर्माण कल्पना और रागात्मक तत्वों से हुआ है, दैवी अमूर्त शक्तियों के माध्यम से। 'संगीत', 'समाधि' तथा 'मोको चुनरी की साध' में कथानक-निर्माण, घटनाओं तथा मूर्त स्थितियों के साथ हुआ है। 'मोको चुनरी की साध' में तुलसा एक आठ साल की लड़की की शादी होती है और वह अनजान मँड़वे में चुनरी पाकर गाती फिरती है—

मोको चुनरी की साध।
मोको चुनरी की साध॥

संयोगवश बारात में दुलहे को साँप डस लेता है, भोली तुलसा विधवा हो जाती है। उसके सुहाग के सब वस्त्रादि छीन लिए जाते हैं। वह बीमार पड़ती है और चुनरी-चुनरी रटती रहती है। माँ समाज की परवाह न करके उसे चुनरी पहना देती है, लेकिन फिर भी तुलसा मर जाती है। ऐसी कहानियों की सृष्टि के पीछे सोद्देश्यता सबसे अधिक तीव्र ढंग से अभिव्यक्त हुई है। पहली प्रकार की कहानियों में जीवन के प्रति आदर्शवाद की प्रेरणा है। दूसरी प्रकार की कहानियों का धरातल व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याएँ हैं, लेकिन इनके भी निर्माण में कल्पना-भावुकता के फलस्वरूप ये कहानियाँ अविकसित रह गई हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है, उग्रजी के व्यक्तित्व का स्वच्छंद होना। चरित्र-अवतारणा में उग्रजी की भावुकता, काल्पनिकता तथा भाषा-शैली और रूप-छवि के वर्णन में इनकी मौलिकता और कवित्व-शक्ति पूर्ण आकर्षक है। 'मुक्ता' में माया के चरित्र की अवतारणा और उसके व्यक्तित्व-वर्णन में इन तत्वों का सौंदर्य एक ही साथ व्यक्त हुआ है—"प्रवालद्वीप की राजकुमारी का नाम था माया। प्रियतम द्वारा चोरी से चुने जाने पर मुग्धा के कपोलों पर जो तप्त सुवर्ण लज्जा बिखर जाती है, वह वैसे ही सुन्दर थी। बसंत के मंद-मदिर मलयानिल के मधुर झोंकों से मुग्ध होकर जो मुकुल-मंडली चिटख पड़ती है, खुल और खिल कर नाच उठती है; वह वैसी ही भोली थी।" फलतः शिल्पविधि की दृष्टि से उग्रजी का स्थान प्रसाद-संस्थान में सदा अमर रहेगा, क्योंकि उन्होंने प्रसाद की कहानी-कला के तत्वों से पूर्ण प्रेरणा लेकर, उनसे अपने व्यक्तित्व की सफल अभिव्यक्ति की है।

वाचस्पति पाठक

कलात्मक दृष्टि से पाठक जी का कहानीकार-व्यक्तित्व प्रेमचंद और प्रसाद-संस्थान के संधि-बिन्दु पर आधारित है। इनमें प्रसाद की भावुकता, संवेदनशीलता और प्रेमचंद की यथार्थवादिता और मनोविज्ञान का इतना सुन्दर तादात्मय स्थापित हुआ है कि इनकी

कहानी-कला में एक अलग आकर्षण है। 'कागज की टोपी', 'सूरदास', 'कल्पना' आदि कहानियाँ पाठक जी की कला की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। इनमें कथानक-निर्माण मुख्यतः घटनाओं, संयोगों के धरातल पर न होकर मानव-हृदय की संवेदनाओं और अनुभूतियों से हुआ है। चरित्र-चित्रण को ही लेकर इनकी कहानियों का आरम्भ होता है। चरित्र के मनोवेगों और चारित्रिक द्वन्द्व के विकास में इनकी कहानी की सृष्टि होती है। चरित्र-अवतारणा में संवेदनशीलता और अनुभूति दोनों को मुख्य प्रेरणा रहती है। यही कारण है कि इनकी प्रायः समस्त कहानियाँ चरित्र-प्रधान हैं तथा चरित्र-विश्लेषण और विकास में परिस्थितिजन्त कसक, टीस, करुणा का इतना वेग रहता है कि प्रत्येक कहानी के अंत पर पहुँच कर पाठक का हृदय मानव-संवेदना, अनुभूति से अभिभूत हो जाता है। इसके उदाहरण में 'सूरदास', 'कल्पना', 'कागज की टोपी' और 'फेरीवाला' कहानियाँ कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। इन्होंने प्रायः उपेक्षित कारुणिक और दुखी चरित्रों को लेकर कहानियों का निर्माण किया है।

विनोदशंकर व्यास :

प्रसाद जी की भावुकता का पूर्ण प्रभाव विनोदशंकर व्यास के कहानी-शिल्प-विधान पर पड़ा है। इनकी छोटी-छोटी भावपूर्ण कहानियों में गद्यगीत, रेखाचित्र और कहानी, तीनों के तत्व मिलते हैं। प्रायः अधिकांश कहानियाँ करुणा और मानवीय संवेदना को लक्ष्य बना कर लिखी गई हैं तथा कहानियों के विकास में अनुभूति की प्रेरणा मुख्य है। इनकी शिल्पविधि की प्रतिनिधि कहानियाँ 'कल्पनाओं का राजा', 'विधाता' और 'अपराधी' आदि में कथानक-निर्माण घटना-संयोग से न होकर स्वाभाविक भाव-विकास और चरित्र-विश्लेषण के आधार पर हुआ है। अतएव पाठक जी की भाँति व्यास जी की भी कहानियाँ चरित्र-प्रधान हैं, कथानक-प्रधान नहीं। चरित्र-अवतारणा में भी चारित्रिक द्वन्द्व की तीव्रता इनकी कहानियों में मुख्य रूप से है। 'कल्पनाओं के राजा' कहानी की सृष्टि इसके नायक के मानसिक द्वन्द्व के आधार पर हुई है। कहानी का आरम्भ नायक के परिचयात्मक परिच्छेद से होता है। इसका विकास एक क्रिया-कलाप से होता है कि नायक एक वेश्या के कोठे पर जाता है। उसे खूब शराब पिलाता है और स्वयं भी पीता है और अपने मानसिक आवेग की कथा कह कर वापस लौट आता है। अतः इस कहानी का अंत वेश्या की मानसिक प्रतिक्रिया पर होता है। व्यास जी ने प्रायः अपनी कहानियों में सामान्य चरित्रों को न लेकर विशिष्ट चरित्रों को लिया है, लेकिन उनमें व्यास जी ने पूर्ण कलात्मकता से मानवीय संवेदना और अनुभूति की प्रतिष्ठा की है। विशुद्ध शैली के प्रकाश में इन्होंने प्रायः कथोपकथनात्मक, ऐतिहासिक, पत्रात्मक आदि शैलियों में कहानियाँ लिखी हैं।

इसके अतिरिक्त प्रसाद-संस्थान में चंडी प्रसाद 'हृदयेश' और कमला कान्त वर्मा, यमुनादत्त वैष्णव का भी नाम उल्लेखनीय है। उक्त समस्त कहानियाँ प्रसाद-संस्थान में आती हैं। इनकी कला पर प्रसाद की शिल्पविधि का प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष प्रभाव है, लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि इन कहानीकारों का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही नहीं है। वस्तुतः सबमें अपना-अपना व्यक्तित्व और मौलिक प्रतिभा है। यह सत्य प्रेमचन्द और प्रसाद दोनों संस्थानों के कहानीकार के सम्बन्ध में लागू है।

संक्रान्ति-युग

प्रेमचन्द और 'प्रसाद' हिन्दी कहानी-कला की दो मुख्य प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि कृती कहानीकार हैं। इनके विभिन्न संस्थानों ने कहानी-शिल्पविधि के विकास में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। प्रसाद की भावमूलक कला और प्रेमचन्द की यथार्थमूलक कला-प्रवृत्ति में सामाजिक कुरीतियों के प्रति सुधार का आग्रह, पराजय-पतन के प्रति आदर्श की प्रतिष्ठा और दुखी-पीड़ित मानवता के प्रति अथाह संवेदना आदि इनके भाव-पक्ष की मुख्य विशेषताएँ थीं। दूसरी ओर कथा-विधान में इतिवृत्त का स्पष्ट रूप, घटना का प्राधान्य, शैली की सरलता, सुगमता, सोद्देश्यता और लक्ष्य का स्पष्ट होना उनकी शिल्पगत कसौटी थी। अतएव प्रेमचन्द और 'प्रसाद' की कला केवल दो प्रवृत्तियों की प्रतीक हैं और समूचे विकास-युग का प्रतिनिधित्व इन्हीं दोनों की धाराएँ करती रहीं।

लेकिन संक्रान्ति-युग में अनेक प्रवृत्तियाँ प्रस्फुटित हुईं। कारण, संक्रान्ति-युग में हिन्दी-कहानी के क्षेत्र में अपूर्व विस्तार और प्रसार हुआ, फलतः युग की अनेकानेक प्रवृत्तियों का इसमें स्थायी होना स्वाभाविक था। विकास-युग में साधारण मनोविज्ञान और गाँधीवाद ही दो मुख्य प्रवृत्तियाँ थीं। प्रेमचन्द अपनी-कला के अंतिम वर्षों में अवश्यमेव कुछ और युगीन प्रवृत्तियों के सम्पर्क में आए, लेकिन उनका प्रतिनिधित्व उनमें न हो सका। संक्राति-युग में इन नवीन प्रवृत्तियों ने जीवन-दर्शन और व्यक्ति विश्लेषण में सर्वथा नूतन अध्याय उपस्थित किया तथा इनसे कहानी-कला में अपूर्व विस्तार, परिवर्तन हुआ और विविध प्रयोगों के लिये मार्ग प्रशस्त हुआ।

कहानी-कला में युगीन प्रवृत्तियाँ

युगीन प्रवृत्तियाँ मुख्यतः दो क्षेत्रों में बाँटी ,जा सकती हैं : सांस्कृतिक और सामयिक। सांस्कृतिक क्षेत्र में जीवन दर्शन और सामयिक क्षेत्र में, साम्यवाद (द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद) मनोविश्लेषण अथवा यौनवाद दो प्रवृत्तियाँ हैं। वस्तुतः ये समस्त प्रवृत्तियाँ इतनी शक्तिशाली क्रान्तिमूलक और युग-सापेक्ष्य हैं कि इनके प्रभाव और इनकी प्रेरणा से हिन्दी कहानी साहित्य का स्वर्ण युग-द्वार खुलता है।

जीवन-दर्शन

यहाँ जीवन-दर्शन का अभिप्राय तात्विक अर्थ में न होकर व्यावहारिक जीवन-

दर्शन से है, अर्थात् नैतिक प्रश्नों, मापदंडों और भारतीय आदर्शवादिता का वह रूप जो इस युग में कहानी-कला का उपजीव्य रहा। प्रेमचन्द में यह जीवन-दर्शन मुख्यतः गाँधीवाद से प्रेरित था और 'प्रसाद' के जीवन-दर्शन में बौद्ध धर्म की करुणा और प्राचीन संस्कृति की आदर्शमूलक स्फूर्ति थी। इस युग में गाँधीवाद के विकसित रूप मानववाद ने जीवन-दर्शन को सर्वग्राही, व्यापक और महान् बनाया। वस्तुतः यही मानववाद युग-दर्शन का मूल धरातल बन गया, जिसमें बुद्ध की करुणा, जैन की अहिंसा, पुरातन का आदर्शवाद और गाँधीनीति का सुन्दर तादात्म्य स्थापित हुआ था। इस मानववाद में अब पुरातन पंगुता, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों की समस्या न रही, बल्कि इसकी समस्या अपेक्षाकृत व्यक्तिपरक, चरित्रपरक और भावपरक हो गई। नैतिक मान्यताओं और आदर्शों में व्यापकता आई, क्योंकि समाज की अपेक्षा ये व्यक्ति-सापेक्ष्य अधिक हुए। प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण, व्यक्तित्व के आधार से इसके विषय में अपने-अपने मंतव्य स्थिर करने लगा।

सियारामशरण गुप्त ने अपने वैष्णव व्यक्तित्व के प्रकाश में व्यक्ति के संस्कारों को प्रमुखता दी और इन संस्कारों के माध्यम से चरित्र की महानता और आदर्शवाद की स्थापना की। जैनेन्द्रकुमार ने अपने चिंतन और गाँधीवादी व्यक्तित्व से एक ओर चरित्र के निर्माण और विकास में जीवन की नैतिकता को ही विधेयक माना। अर्थात् जैनेन्द्र के चिंतक मस्तिष्क ने नैतिक मान्यताओं पर ही चरित्र की सापेक्ष्यता सिद्ध की। दूसरी ओर उन्होंने गाँधीवाद और पुरातनवाद के जीवन-दर्शन से आध्यात्मिकता और आदर्शवाद का आग्रह स्वीकार किया। परोक्ष रूप से उन्होंने बुद्ध की करुणा, महावीर की अहिंसा और गाँधी के सत्य से प्रेरणा ग्रहण की। अज्ञेय का व्यक्तित्व विद्रोह और करुणा के तत्वों से निर्मित है, लेकिन उनकी दृष्टि मूलतः कवि की दृष्टि है। फलतः उनके जीवन-दर्शन में व्यक्ति की करुणा के प्रति संवेदना तथा आदर्शवाद का पुट है। इलाचन्द्र जोशी का व्यक्तित्व चिंतन और विश्लेषण-प्रधान है, अतः इनके अनुसार व्यक्ति का अहं ही समस्त विकृतियों और अनाचारों का मूल है। फलतः इनके जीवन-दर्शन की गति अहं से ऊपर उठ कर समाज की ओर जाती है। भगवतीचरण वर्मा के अनुसार मनुष्य के लिए पाप-पुण्य कोई वस्तु नहीं है, ये सब परिस्थिति-जन्य हैं, मनुष्य-जन्य नहीं। इस तरह इस युग का जीवन-दर्शन समाज-सापेक्ष्य से अधिक व्यक्तिसापेक्ष्य है। इसकी मान्यताएँ विभिन्न और व्यापक हो गई हैं, लेकिन सबका संधि-स्थल मानववाद ही है तथा इस मानववाद में चरित्र-निष्ठा और मानव-संवेदना दो मुख्य तत्व हैं।

मनोविज्ञान

विकास-युग में जिस मनोविज्ञान का सहारा लिया गया था, वह चरित्र के

साधारण मनोविज्ञान से सम्बन्धित था । पात्र-रचना-प्रक्रिया और उनके चरित्रांकन की दृष्टि से प्रसाद के चरित्रों का घात-प्रतिघात और प्रेमचन्द के चरित्रों का अंतर्द्वन्द्व मूलतः बाह्य घटनाओं से अधिक संबद्ध थे, मानव की आन्तरिक प्रेरणाओं से कम । संक्रान्ति-युग में मनोविश्लेषण के विकास ने आश्चर्यजनक उन्नति की । जिस तरह बाह्य जगत् में हम इतने मानव-व्यापार, इतनी जटिलताएँ और समस्याएँ देख रहे हैं, इस विज्ञान ने इसी तरह यह सिद्ध कर दिखाया है कि मनुष्य का एकअंतर्जगत् भी है और यह अंतर्जगत् बाह्य जगत् से कहीं अधिक शक्तिशाली और जटिल है । यह सारा बाह्य जीवन-चक्र से प्रेरित और निर्देशित है । अतएव अन्तर्प्रवृत्तियाँ ही मनुष्य के व्यक्तित्व में प्रधान हैं । समस्त बाह्य कार्य-व्यापार उन्हीं अन्तर्प्रवृत्तियों की बाह्याभिव्यक्ति है । मनोविश्लेषण ने इसके भी आगे यह सिद्ध किया है कि मानव अन्तर्जगत् में चेतन मन से भी आगे अवचेतन जगत् है तथा यह अवचेतन जगत् चेतन से भी अधिक शक्तिशाली है । मनुष्य के चेतन और अवचेतन के असामंजस्य ने उसे कितना रहस्यमय, असाध्य और दुर्बोध बना दिया है, इसे मनोविज्ञान-शास्त्र ने व्याख्या करके स्पष्ट कर दिया । मनुष्य की इच्छाशक्ति किस भाँति बाह्याभिव्यक्ति न पाकर अन्तर्मुखी हो जाती है, और अवचेतन जगत् में अक्षुण्ण रह कर कुंठाओं, अस्पष्ट-अमूर्त स्वप्नचित्रों को जन्म देती रहती हैं ।

मनोविश्लेषण ने हमें इनके अध्ययन के लिए एक नई पद्धति भी दी है—कि मनुष्य के बाह्य संकेतों, कर्म-प्रेरणाओं और भाव-भंगिमाओं द्वारा हम मनुष्य के संश्लिष्ट-गूढ़ अन्तर्जगत् को समझ सकें, उसके मन के उलझे हुए सूत्रों को सुलझा सकें । गहरी दृष्टि और विश्लेषण-पद्धति ने संक्रान्ति युग की कहानी-कला को अपूर्व और मौलिक दिशा दी है । इसके प्रकाश में नये दृष्टिकोणों से सामाजिक प्रश्नों को देखा गया । विद्रोह, पाप और अपराध के विश्लेषण हुए तथा पापी, विद्रोही, अपराधी के प्रति करुणा, दया की भावना लाई गई । स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का नये सिरे से अध्ययन हुआ और स्त्री के प्रति अपूर्व संवेदना प्रकट की गयी । संक्रान्ति-युग के प्रायः समस्त कहानीकारों ने मनोविज्ञान के इन्हीं पहलुओं को अपनाया । जैनेन्द्रकुमार ने मनोवैज्ञानिक विशिष्ट चरित्रों को लेकर परम सफल कहानियाँ लिखीं । उन्होंने चरित्रों की अवतारणा और उनका विकास मनोविश्लेषण-पद्धति पर किया । उनकी कहानियों में घटनाओं और कार्यों की अपेक्षा मानसिक ऊहापोह और विश्लेषण को प्रमुखता मिली, लेकिन इस दिशा में जैनेन्द्र से आगे अज्ञेय की दृष्टिकोण का विकास हुआ । जहाँ जैनेन्द्र के चरित्रों में सामाजिकता अधिक है, वहाँ अज्ञेय के चरित्रों में वैयक्तिकता उत्कृष्ट ढंग हैकी ।

अज्ञेय की कहानियाँ चरित्र की कर्म-प्रेरणाएँ और मानसिक स्थिति के सूक्ष्म

विश्लेषण के धरातल से लिखी गई हैं। इलाचन्द्र जोशी का भी प्रायः यही दृष्टिकोण है, लेकिन जहाँ अज्ञेय अपने मनोविश्लेषण में अहं से अधिक प्रेरित होने के कारण मानवीय पहलुओं और उसकी संवेदनाओं के चित्रण में अधिक आकर्षक और प्रभावशाली हैं, वहाँ जोशी अहं का ही मनोविश्लेषण उपस्थित कर एक चिंतक के रूप में अपेक्षाकृत भौतिक धरातल पर कहानियों की सृष्टि करने में सफल हुए हैं।[1]

मनोविज्ञान ने प्रमुखतः स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी मूल्यों और समस्याओं को अपना धरातल बनाया है, क्योंकि फ्रायड ने अपने मनोविश्लेषण के समस्त सिद्धान्तों और पद्धतियों को स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्धी (Sex relation) आधारों पर प्रतिष्ठित किया है। फलतः फ्रायड के यौनवाद के सिद्धान्तों, विश्लेषण-पद्धतियों को इस युग के कहानीकारों ने अपनाया है और उससे उनकी अन्तर्दृष्टि को अपूर्व बल मिला है।

यौनवाद

फ्रायड के अनुसार हमारी समस्त मनःस्थितियों, मनोद्वेगों और मनोविकारों का मेरुदण्ड यौन-भावना ही है अर्थात् फ्रायड ने मानव-जीवन की पूर्ण व्याख्या यौन (Sex) के केन्द्र से की है। उनकी व्याख्या के अनुसार मनुष्य का अवचेतन जगत् चेतन जगत् की अपेक्षा अत्यन्त शक्तिशाली होता है। समस्त इन्द्रिय-जन्य इच्छाओं में उन्होंने यौन-इच्छा को ही सबसे महत्वपूर्ण माना है। इसी को जीवन का मूल केन्द्र सिद्ध किया है। चेतन-अवचेतन के जागरण और सुषुप्ति का भेद इन्होंने निश्चित किया है। यौन-इच्छाएँ किस तरह तृप्ति अथवा अभिव्यक्ति न पाकर अवचेतन जगत् में एकत्र होकर स्वप्नों में परिणत हो जाती हैं, फ्रायड ने इसका पूर्ण विकास दिखाया है।[2] इसी आधार पर उन्होंने स्वप्न-सिद्धान्त (Dream Theories) और स्वप्न-विश्लेषण (Dream Analysis) की विधियों को निश्चित किया है।[3]

इस प्रकाश में फ्रायड ने यह सिद्ध किया है कि प्रेम-वासना और इनके आधार

---

१. उसी बाह्य जीवन-चक्र का चित्रण सच्ची सफलता पा सकता है जो अंतर्जीवन-चक्र पर आधारित हो, उसी प्रकार अंतर्जीवन की वही प्रगति श्रेयोन्मुखी हो सकती है जो बाह्य जीवन की प्रगति से निश्चित सम्बन्ध स्थापित किए हो। बाह्य और अंतर दोनों जीवनों की प्रगतियाँ एक-दूसरे से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रखती हैं।—इलाचन्द्र जोशी, विवेचना : आधुनिक साहित्य में मनोविज्ञान, पृ० ११७।

2. The Drems as Wishfulfilment—The Interpretaion. P. 33. by Sigmund Freud.

3. The Psychology of Dreams—Processes—The Interpretation of Dreams, P. 368. by Sigmund Freud.

पर नीति, अनीति, सच्चरित्र और दुश्चरित्र आदि ऐसी कोई मान्यताएँ सत्य नहीं हैं, सब भ्रम हैं; मनुष्य-जन्य हैं, प्रकृति-जन्य नहीं। इनको लेकर यौनवाद ने आगे प्रेम-वासना तथा इनकी समस्त विकृतियों का विश्लेषण किया है। मनुष्य के स्वप्नों और चेतन उद्‌गारों, भाव-भंगिमाओं तथा नित्यप्रति के जीवन के पहलुओं की सहायता से फ्रायड ने यौन-सम्बन्धी अध्ययन का पथ प्रशस्त किया है।

प्रस्तुतः कहानी-कला में फ्रायड के सिद्धान्तों का सर्वप्रथम प्रभाव उर्दू कहानीकारों पर पड़ा। यहाँ किशन चन्दर और ख्वाजा अहमद अब्बास ने इसके स्वस्थ पक्ष को ग्रहण किया, तथा सआदत हसन मंटो और असमत चुगताई ने इसके अस्वस्थ और अति गोपनीय रूप को भी अपनी कहानी-कला में स्थान दिया, लेकिन शिल्पविधि की दृष्टि से असमत और मंटो की इस दिशा की कहानियाँ उच्च कोटि की हैं। इस युग के हिन्दी कहानीकारों ने भी इसके दोनों रूपों को अपनाया है। अज्ञेय, जोशी आदि ने इसके स्वस्थ रूप को अपनाया है। मुख्यतः विज्ञान के रूप में, साधन-स्वरूप इन्होंने अपनी कला में स्थान दिया है, और यौनजन्य अस्वस्थ कुंठाओं, भ्रान्तियों, उलझनों और विकृतियों को सुलझाने का प्रयत्न किया है। कभी आदर्श के पुट से तथा कभी मानवीय निष्ठा के धरातल से। यशपाल और पहाड़ी ने इसके दूसरे रूप को अपनाया है। विशेषकर पहाड़ी ने नग्न वर्णन और भोंड़ेपन को अधिक प्रश्रय दिया है। उर्दू में असमत और मंटो इसके कुशल शिल्पी और सूक्ष्म मनोविश्लेषण के कहानीकार हैं। उनमें यौनवाद का अतियथार्थ पक्ष, कलात्मकता में सँवर उठा है, लेकिन इस दिशा में पहाड़ी और यशपाल को असफलता मिली है और उनकी कहानियों में अनीति, नंगेपन, उच्छृङ्खलता को प्रश्रय मिला है। मंटो, असमत में जहाँ यौनवाद के प्रकाश में समाज-व्यक्ति पर व्यंग के छींटे कसे गए हैं, बदसूरतें बेनकाब की गई हैं, वहाँ पहाड़ी में अनीति-कुमर्म की व्याख्या की गई है। वस्तुतः यौनवाद के आधार पर कोई भी क्रिया उसकी विकृति और अनीति आदि सब मनुष्य की स्वाभाविक गतियाँ सिद्ध की गई हैं। इनमें किसी तरह के पाप-पुण्य की कल्पना करना अनुचित है।

साम्यवाद

फ्रायड ने जिस तरह यौन को ही सारभूत और मूल केन्द्र मान कर व्यक्ति और समाज की व्याख्या की है, ठीक उसके विपरीत मार्क्स ने अर्थ वस्तु (Matter) को परम सत्य मान कर उसके प्रकाश में समाज, व्यक्ति और उसके इतिहास, संस्कृति और नैतिकता, मूल्यस्तर आदि की व्याख्या की है। जहाँ फ्रायड ने आन्तरिक जगत् को सर्वशक्तिमान मान कर आन्तरिक विश्लेषण किया है, वहाँ मार्क्स ने बाह्य जगत् को सारभूत मान कर, बाह्य जगत् अर्थात् वस्तु की ही व्याख्या की है। इस तरह मार्क्स और फ्रायड आपस में सम्पूर्ण सत्य के पूरक हैं। मार्क्स के वस्तुवादी दर्शन का

मूल केन्द्र द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। राजनीति में जहाँ इसके आधार पर साम्यवाद की प्रतिष्ठा हुई है, वहाँ साहित्य में उससे प्रगतिवाद की स्थापना हुई है। वस्तुतः बातें सब एक ही हैं, अर्थात् व्यापक रूप से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में दो सत्य हैं, भौतिकता और द्वन्द्वात्मकता। मार्क्स के अनुसार समस्त दृश्य और सूक्ष्म-जगत्-वस्तु-पदार्थ से निर्मित है। यहाँ तक कि मेधा भी इसी तत्व से निर्मित है। अतएव इस संसार में केवल एक ही आदि सत्ता है : वह है भौतिकता ! इसके अतिरिक्त आध्यात्मिकता, मन आदि सब प्रायः भ्रम और कल्पना हैं। पदार्थ में दो परस्पर-विरोधी तत्व होते हैं, जिनके परस्पर संघर्ष से उसका विकास होता रहता है। अतएव मार्क्स के अनुसार इस जगत् का एकमात्र सत्य भौतिक जीवन है और कुछ नहीं। व्यावहारिक रूप से समाज में अर्थ-पदार्थ-व्यवस्था ही परमसत्य है और यह समाज दो विरोधी वर्ग पूँजीपति और सर्वहारा से बना है। उन्हीं के परस्पर संघर्ष से समाज का विकास होता चल रहा है। फलतः मार्क्सवादी लेखक के दो चरम लक्ष्य हैं। अर्थ के प्रकाश में समाज की आलोचना और मूल्यांकन करना तथा भौतिक शक्तियों को ही कला का उपजीव्य बनाना। इन भौतिक शक्तियों में जो वर्ग पतनोन्मुखी हो, उसे अपनी कला द्वारा हेय सिद्ध करना तथा उसे नष्ट करने का सतत प्रयत्न करना; जैसे आज का पूँजीवाद; तथा जो वर्ग विकासोन्मुख हो उसे सर्वथा प्रश्रय देना, सहज सहानुभूति देना; जैसे सर्वहारा वर्ग।

निस्सन्देह इस वस्तुवादी दर्शन ने हिन्दी कहानी-कला को एक नई दृष्टि और समाज-व्याख्या की एक नई कसौटी दी है। अनेक चरित्रों के अध्ययन इस वस्तुवादी धरातल से हुए। व्यक्ति की अपेक्षा सामाजिक शक्तियाँ ही कला की उपजीव्य बनीं। अहं का समाजीकरण हुआ क्योंकि मार्क्स के अनुसार साहित्य सामाजिक और सामूहिक चेतना है, वैयक्तिक नहीं। कला के इस दृष्टिकोण को मुख्यतः प्रगतिवादी कहानीकारों ने अपनाया है। यशपाल इसके प्रतिनिधि कहानीकार हैं। व्यक्ति की नैतिकता तथा सामाजिक प्रश्नों का अध्ययन इन्होंने निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियों के प्रकाश में किया, जिसमें आर्थिक पक्ष और वर्ग-संघर्ष ही दो मुख्य तत्व मान्य हुए।

इस तरह कहानी-कला के संक्रान्ति-युग में दर्शन, मनोविज्ञान, यौनवाद और साम्यवाद, चार प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं जिन्होंने इस युग को अपूर्व प्रेरणा, चिन्तन और विश्लेषण की नई दृष्टि दी। इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार से इस युग के कहानीकार स्वभावतः अलग-अलग वर्गों में बाँटे गए और उनके ही आधार पर उनकी कहानी-शिल्पविधि का विकास हुआ।

युगीन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कहानीकार और उनकी विशिष्ट कहानी-शैली

उक्त प्रवृत्तियों के अध्ययन के साथ, जैसा कि संकेत किया गया है, प्रत्येक संक्रांति-कालीन कहानीकार एक विशिष्ट प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। जैनेन्द्र-कुमार सांस्कृतिक दिशा में दर्शन और मनोविज्ञान के कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में एक ओर आदर्श के पुट से भारतीय जीवन-दर्शन का आग्रह है और दूसरी ओर इनकी कहानियों की मुख्य प्रेरणा चरित्र-विश्लेषण और मानसिक ऊहापोह में है। जीवन-दर्शन तथा जीवन-आलोचना के प्रकाश में भगवतीचरण वर्मा और सियारामशरण गुप्त भी आते हैं। विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति में अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी का नाम लिया जा सकता है। इनकी कला में मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण की समस्त काव्योचित पद्धतियों का अनुसरण किया गया है। 'अश्क' की कला मनोविज्ञान और समाजालोचन के युग्म पर आधारित है। यौनवाद और साम्यवाद की प्रवृत्तियों में यशपाल और पहाड़ी आते हैं, लेकिन यशपाल में मनोविश्लेषण का तीव्र आग्रह है। व्यक्ति की कर्म-प्रेरणाओं का अध्ययन इन्होंने अत्यन्त सूक्ष्म और व्यंगात्मक ढंग से किया है।

इन सब प्रवृत्तियों के अतिरिक्त संक्रान्ति-युग में एक स्वतन्त्र प्रवृत्ति हिन्दी कहानी-लेखिकाओं की है। होमवती, उषादेवी मित्रा, महादेवी वर्मा, सत्यवती मल्लिक, चन्द्रकिरण सौनरैक्शा आदि ने साधारण घरेलू जीवन के चित्रण की प्रवृत्ति अपनायी है।

प्रवृत्तियों के आधार पर इन कहानीकारों की शिल्पविधि का अध्ययन सर्वथा एक-दूसरे से भिन्न है। सब ने अपनी-अपनी प्रवृत्ति के पूर्ण प्रतिनिधित्व के लिए शिल्प-विधान में विशिष्ट प्रयोग किये हैं। इसके फलस्वरूप अनेक शैलियों, रचना-विधानों के रूप सामने आते हैं और संक्रान्ति-युग में कहानी शिल्पविधि में आश्चर्यजनक विविधता दृष्टिगोचर होती है।

जैनेन्द्रकुमार :

जैनेन्द्र की कहानी-कला का मूलाधार जीवन-दर्शन और मनोविज्ञान है। इन्हीं दोनों के व्यापक धरातल से इन्होंने अपनी कहानियों की सृष्टि की है। 'एक रात' (१९३५) से लेकर, 'जय संधि' (१९४८) तक इनके ये दोनों धरातल समान रूप से मिलते हैं। इनकी प्रारंभिक कहानियों में अपेक्षाकृत उनका दार्शनिक धरातल पूर्ण स्पष्ट और सशक्त है। प्रारम्भ में जैनेन्द्र की इस दार्शनिकता की हिन्दी-जगत् में बड़ी आलोचना हुई थी, क्योंकि कहानी-कला में यह दार्शनिक तत्व पूर्ण मौलिक और क्रान्तिकारी

था। वस्तुतः विकास-युग में ही यह सिद्ध हो चुका था कि कहानी की आत्मा स्वाभाविकता है, यथार्थ सामाजिक समस्याओं की प्रतिष्ठा है, लेकिन इस नूतन प्रयोग की दिशा में स्वयं जैनेन्द्र ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है—"मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता जो मात्र लौकिक हो, जो सम्पूर्णता से शारीरिक धरातल पर ही रहता हो, सबके भीतर हृदय है, जो सपने देखता है। सबके भीतर आत्मा है, जो जगती रहती है, जिसे शस्त्र छूता नहीं, आग जलाती नहीं। सबके भीतर वह है जो अलौकिक है। मैं वह स्थल नहीं जानता जहाँ 'अलौकिक' न हो। कहाँ वह कण है, जहाँ परमात्मा का निवास नहीं है? इसलिए आलोचक से मैं कहता हूँ कि जो अलौकिक है, वह भी कहानी तुम्हारी ही है, तुमसे अलग नहीं है। रोज के जीवन में काम आने वाली, तुम्हारी जानी-पहचानी चीजों का और व्यक्तियों का हवाला नहीं है तो क्या, उन कहानियों में तो वह अलौकिक है, जो तुम्हारे भीतर अधिक तहों में बैठा है। जो और भी घनिष्ठ और नित्य रूप में तुम्हारा अपना है।"[1] अतएव जैनेन्द्र ने अपने दार्शनिक व्यक्तित्व की सहज प्रेरणा से विशुद्ध दार्शनिक कहानियाँ लिखीं। दार्शनिक संवेदनाओं में संस्कृत आख्यान, आख्यायिका, पौराणिक कथा और कल्पना के आधार से कहानियों की सृष्टि की।

शिल्पविधि की दृष्टि से ये दर्शनगत कहानियाँ जिनमें धर्म, शिक्षा, नीति और आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है, साधारण कहानियों के शिल्प से दूर हट गई हैं। इनमें स्पष्ट रूप से वार्ता, दृष्टान्त और कथा के तत्व आ गए हैं। स्वयं जैनेन्द्र के शब्दों में—"दार्शनिक तत्व के रूप में सत्य अत्यन्त गरिष्ठ है, उस रूप में वह सत्य अपरोक्षित भी है। वह अधिकांश के लिए अग्राह्य है। उसको दृष्टान्तगत, चित्रगत और कथा के रूप में परिवर्तित करो, तभी वह रुचिकर और कार्यकारी बनता है।"[2] इस तरह इन दर्शनगत कहानियों में इनके शिल्पगत तत्व परम अनूठे ढंग से प्रयुक्त हुए हैं।

कथानक

दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियाँ मुख्यतः चार प्रकार की संवेदनाओं से निर्मित हुई हैं:

(१) पृथ्वी के मानव तथा पौराणिक चरित्रों को लेकर प्रायः काल्पनिक इतिहास से; जैसे 'नारद का अर्घ्य', 'बाहुबली', 'देवी-देवता', 'ऊर्ध्व बाहु', 'अनबन', 'भद्रबाहु' और 'गुरु कात्यायन'।

(२) ऐतिहासिक संवेदना से; जैसे 'जय सन्धि', 'राजरानी', 'साधू', 'वैरागी', 'राज्यकन्या' और 'युवराज' आदि।

---

१. जैनेन्द्र, 'एक रात', की भूमिका, पृष्ठ ४।
२. जैनेन्द्र, 'एक रात', की भूमिका, पृष्ठ १।

(३) काल्पनिकता तथा लौकिकता से संवेदना-निर्माण करके; जैसे 'रानी', 'महामाया', 'राजपथिक', 'नीलमदेश की राजकन्या', 'हवामहल', 'लाल सरोवर' और 'जनार्दन की रानी'।

(४) तथा अंतिम भाँति की वह संवेदना है, जो पशु-पक्षी और वृक्षादि को लेकर निर्मित हुई है; जैसे वह विचारा साँप', 'चिड़िया की बच्ची' और 'तत्सत्'।

प्रथम प्रकार की संवेदना से कथानक-निर्माण पूर्ण कलात्मक हुआ है। इसका आरम्भ प्रायः समस्या-उद्‌घाटन के बीच से हुआ है। वर्णनों के माध्यम से; जैसे 'भद्रबाहु' में पृथ्वी के मानव भद्रबाहु और स्वर्ग के इन्द्र के बीच स्पर्धा की समस्या है। कथानक के विकास में घटनाओं को क्रमिक अवतारणा हुई है और इसका अंत दार्शनिक ध्येय की परिसमाप्ति पर होता है; जैसे नारद द्वारा बताई हुई विधि के अनुसार इन्द्र और शची का स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरना ऐतिहासिक संवेदना से भी कथानक का निर्माण इसी पद्धति पर हुआ है। तीसरी प्रकार की संवेदना से कथा-विधान अत्यन्त सरल और प्रायः कलात्मक ढंग से हुआ है।

कुछ कहानियों में कथानक-निर्माण कथात्मक तत्व, कार्य-व्यापार और घटनाओं के तादात्म्य से हुआ है; जैसे 'हवामहल', 'रानी महामाया' और 'जनार्दन की रानी' के कथानक। इन तीनों प्रकार के कथानक मुख्यतः सुस्पष्ट और अपने कथातत्व में पूर्ण रहते हैं। इतिवृत्त में कलात्मकता का आग्रह मुख्य रूप से रहता है। चतुर्थ प्रकार की संवेदना से कथानक-निर्माण मुख्यतः कथात्मक ढंग से ही हो जाता है, क्योंकि प्रायः इस धरातल को कहानियाँ अन्यपुरुष में कथित हुई हैं; जैसे 'तत्सत्' और 'बिचारा साँप' आदि, लेकिन इस दिशा की जो कहानियाँ विशुद्ध रूप में प्रतीकात्मक हैं, उनके कथानक-निर्माण में कार्य-व्यापार और घटनाएँ मुख्य रूप से आई हैं; जैसे 'तत्सत्'।

चरित्र

दार्शनिक धरातल की कहानियों में कथानक-निर्माण में बहुत कम कला है, क्योंकि इनका कथा-विधान प्राचीन शैली-वार्त्ता, कथा-दृष्टान्त आदि के प्रकाश में निर्मित हुआ है, लेकिन इन कहानियों में जैनेन्द्र की कला की वास्तविकता शिल्पविधान में स्पष्ट हुई है। उन्होंने यहाँ चरित्र-निर्माण, चरित्र-चित्रण और उनके व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा में आश्चर्यजनक शिल्प-कौशल का परिचय दिया है। वस्तुतः यहाँ चरित्र-निर्माण में कल्पना तत्व है। फिर भी प्राचीन वार्त्ताओं, कथाओं और दृष्टान्तों के चरित्रों की भाँति यहाँ के चरित्रों में अपना अलग-अलग आकर्षण है। यहाँ के चरित्र मुख्यतः छः वर्गों में बाँटे जा सकते हैं—

(१) ऐतिहासिक चरित्र; जैसे यशोविजय, वसन्ततिलका, जयवीर, जयसन्धि;

(२) पौराणिक चरित्र; जैसे शंकर, पार्वती, इन्द्र आदि;

(३) लौकिक; जैसे राजा, रानी, योगी, वैरागी आदि;
(४) आध्यात्मिक चरित्र,
(५) विशुद्ध भावात्मक और काल्पनिक चरित्र, तथा
(६) प्रतीकात्मक, पशु-पक्षी चरित्र ।

ऐतिहासिक चरित्र

'जयसन्धि' ऐतिहासिक संवेदना की प्रतिनिधि कहानी है। इसमें केवल चार चरित्र हैं। दो पति-पत्नियों के जोड़े; जैसे यशोविजय और वसन्ततिलका तथा जयवीर और यशस्तिलका ये सब चरित्र किसी न किसी अज्ञात प्रेरणा और अन्तर्द्वन्द्व से अभिभूत हैं। इनके व्यक्तित्व में एक विचित्र रहस्यात्मक प्रेरणा है। यशोविजय से वसन्त-तिलका ने वसन्त से इसलिए विवाह किया है कि वह समाज की विषमताओं को चुनौती दे। दूसरी ओर यशस्तिलका ने जयवीर को इसलिए अपना पति बनाया है कि वह अपने पति को यशोविजय के सामने पराजित करे क्योंकि यशस्तिलका यशो-विजय से प्रेम करती है। सब किसी न किसी रहस्यात्मक शक्ति से प्रेरित हैं और सब अपनी-अपनी सीमा में महान और आदर्श हैं।

पौराणिक चरित्र

यहाँ शंकर-पार्वती, इन्द्र-शची, नारद, कामदेव-रति और गुरु कात्यायन आदि मुख्य चरित्र हैं, लेकिन इन पौराणिक चरित्रों की अवतारणा निरपेक्ष ढंग से न होकर धरती और मानव-सापेक्ष्य हुई है। 'नारद का अर्घ्य' में शंकर-पार्वती कैलाश पुरी में बैठकर नीचे धरती के आदिमानव की धनराज और जनराज के रूप में अपनी लीला देखते हैं। इनमें नारद पृथ्वी आदि अन्य ग्रहों का भ्रमण करते हुए यहाँ पहुँचते हैं। धरती के मानव की स्थिति की चर्चा होती है। नारद का कहना था कि धरती त्वरा चाहती है कुछ और आगे कुछ अप्राप्त, कुछ निषिद्ध। पार्वती ने सहसा अपने आपा-दलम्बित केशों से एक लट को निचोड़ते हुए कालकूट अमृत की एक बूँद को पृथ्वी की धुरा में चुवा दिया, फलतः पृथ्वी पर धन-राशि, आनन्द, सुसम्पत्ति बिखर गई और पृथ्वी पर कलह मच गया। मानव में 'अपना-मेरा का' कीड़ा पैठता है तथा संयुक्त प्रेम विनष्ट हो जाता है। 'भद्रबाहु' में इन्द्र, कामदेव के सामने धरती के भद्रबाहु और ऊर्ध्वबाहु को रखकर दोनों के चारित्रिक बल और व्यक्तित्व की तुलना की गई है। इनकी परस्पर अवतारणा से यह दर्शन प्रतिपादित किया गया है कि सदा सबका कारण पृथ्वी है, उस पर मनुष्य परम बलिष्ठ और महान् है। 'अनबन' में बुद्धि और धृति की अवतारणा से नीति और दर्शन पर अपेक्षाकृत निरपेक्ष ढंग से प्रकाश डाला गया है।

लौकिक राजा-रानी

लौकिक राजा-रानी के प्रकाश में जिन चरित्रों का निर्माण हुआ है, उनमें मुख्य रूप से चारित्रिक निष्ठा तथा जीवन-नीति का स्तर सबसे उज्ज्वल और सशक्त है। 'रानी महामाया', 'जनार्दन की रानी' और 'राजपथिक' का राजकुमार, ये तीनों चरित्र भावुकता, चारित्रिक निष्ठा और आदर्श के प्रतीक हैं। यहाँ के स्त्री-पात्र अनन्य श्रद्धा-भक्ति के प्रतीक हैं, तथा राजा चरित्र और दार्शनिकता के प्रतीक हैं।

जनार्दन राजा यह कहकर कि ब्रह्मांड अनन्त है और ग्रह-मंडल में अनेक आवागमन तो लगा ही है, राज्य छोड़ कर विरक्ति-पथ पर चल देते हैं। राजपथिक का राजकुमार और वैजयन्त भी परोक्ष सत्ता के अन्वेषण और संयोग के लिए अपना-अपना राज्य छोड़ कर चल देते हैं।

आध्यात्मिक चरित्र

लौकिक धरातल पर कुछ आध्यात्मिक चरित्रों की भी अवतारणा हुई है। 'लाल सरोवर' का वैरागी इसका प्रतिनिधि है। मानवता की सेवा, आदर्श पर अपार निष्ठा, वस्तु के प्रति उत्कट उपेक्षा, ईश्वर में अनन्य भक्ति इसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस चरित्र को निश्चित सुस्पष्ट रूप देने के लिए इसके व्यतिरेक में जैनेन्द्र ने एक अधम चरित्र की अवतारणा की है। यह वैरागी की चारित्रिक विशेषताओं से बिल्कुल उलटा है, वैरागी में इतना अध्यात्म-बल है कि वह मानवता की सेवा में अथवा वैसे ही जहाँ कहीं जाता है, उसके प्रत्येक पग पर एक-एक अशर्फी उत्पन्न होती रहती है, लेकिन यह वैरागी सोना पदार्थ का परम उपेक्षक है, और उसे अपने अध्यात्म-बल का कुछ पता भी नहीं है। इसके विपरीत मंगलदास अतुल स्वर्ण की लालच से वैरागी का भक्त हो जाता है। वैरागी को अन्यान्य जीवन-परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं, लेकिन अन्त में वैरागी को जब अशर्फी के रहस्य का पता चलता है, तब वह ईश्वर से उसकी परिसमाप्ति की प्रार्थना करता है और अपने अभीष्ट को प्राप्त होता है। वैरागी के व्यक्तित्व से परोक्ष सत्ता की महिमा, अध्यात्म-बल की निष्ठा, वस्तु से ऊपर उठकर रहस्यात्मक शक्ति की ओर प्रेरित होने का हमें संदेश मिलता है।

भावात्मक चरित्र

दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियों में कुछ ऐसे भी चरित्रों की अवतारणा हुई है जो विशुद्ध रूप से भावात्मक और काल्पनिक हैं। 'नीलम देश की राजकन्या' उसकी सखियाँ तथा नीलम देश पहुँचने वाले राजकुमार इसके प्रतीक हैं। राजकुमार की रानी माँ राजकुमार को खाना खिलाते, रात को सुलाते समय अपनी कल्पना से

नीलम देश की छोटी-सी र
'सात समुन्दर पार नीलम
नीलम देश की रानी रहती
तरह-तरह के फल-फूल ला
है। वहाँ की हवा स्वच्छ
सपनों के कपड़े पहनती है
अकेली उस द्वीप की रानी
अकेलापन काट रही है।''

वस्तुतः यह भाव
की दार्शनिक व्याख्या है
परस्पर ब्रह्म और आत्मा

प्रतीकात्मक चरित्र

प्रतीकात्मक चरि
हैं। 'वह बिचारा साँप' में
बच्ची' में चिड़िया आदि
से मानव दर्शन-सापेक्ष है
हार तथा इसके जीवन-द
लिए जैनेन्द्र ने स्वाभाविक
किया है।

वस्तुतः चरित्र-नि
प्राण हैं, इसके ही माध्य

शैली

शैली के व्यापक
के रूप में है। आधुनिक
इसका सबसे बड़ा कारण
गई हैं। स्वयं जैनेन्द्र के
है। उस रूप में वह अप
उसको दृष्टान्तगत, चित्र
तत्व ग्राह्य हो सके।''

कहानियाँ विशे
जैनेन्द्र का दृष्टिकोण इ
दिया सत्यं वद, लेकिन

नीलम देश की छोटी-सी रानी के भावात्मक व्यक्तित्व से उसका परिचय कराती है—'सात समुन्दर पार नीलम का देश है, वहाँ लाल पन्नों का महल है। उसमें अकेली नीलम देश की रानी रहती है। समुद्र के नीचे से पानी की परियाँ सीप के पात्रों में तरह-तरह के फल-फूल लाती हैं। फूलों को वह सूँघ लेती है, फलों का रस पी लेती है। वहाँ की हवा स्वच्छ दूध की-सी है। उसको वह पीती है। वह चाँदनी से बारीक सपनों के कपड़े पहनती है। ऐसी है वह रानी जो सोने के महलों में सहस्रों वर्षों से अकेली उस द्वीप की रानी है और आदि से प्रतापी राजकुमार के आने की प्रतीक्षा में अकेलापन काट रही है।''

वस्तुतः यह भावात्मक चरित्र किसी परोक्ष सत्ता का प्रतीक है। इसमें अध्यात्म की दार्शनिक व्याख्या है। राजकुमार भी इसी प्रकाश में आता है और दोनों में परस्पर ब्रह्म और आत्मा के व्यक्तित्व का संकेत है।

प्रतीकात्मक चरित्र

प्रतीकात्मक चरित्र के प्रकाश में मुख्यतः पेड़-पौधे, जीव-जंतु आदि प्रयुक्त हुए हैं। 'वह बिचारा साँप' में साँप, 'तत्सत्' में वट, पीपल, शीशम, बबूल तथा 'चिड़िया की बच्ची' में चिड़िया आदि चरित्रों को दिया गया है। ये प्रतीकात्मक चरित्र विशुद्ध रूप से मानव दर्शन-सापेक्ष्य हैं। इनके माध्यम से मनुष्य-जीवन-इसकी नीति, उसके व्यवहार तथा इसके जीवन-दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। इसमें स्वाभाविकता लाने के लिए जैनेन्द्र ने स्वाभाविक परिस्थिति और वातावरण उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है।

वस्तुतः चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा ही इन दार्शनिक कहानियों के प्राण हैं, इसके ही माध्यम से कहानीकार ने अपना अभीष्ट पूरा किया है।

शैली

शैली के व्यापक पक्ष में इन कहानियों की निर्माण-शैली वार्ता तथा दृष्टान्त के रूप में है। आधुनिक कहानी-शैली में इन कहानियों का निर्माण क्यों नहीं हो सका, इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि ये कहानियाँ विशुद्ध दार्शनिक धरातल से लिखी गई हैं। स्वयं जैनेन्द्र के ही शब्दों में—''दार्शनिक तत्व के रूप में सत्य अत्यन्त गरिष्ट है। उस रूप में वह अपरीक्षित भी है। वह अधिकांश के लिए अग्राह्य है। फलतः उसको दृष्टान्तगत, चित्रगत और कथा-रूप में परिवर्तित करना पड़ा तभी वे दार्शनिक तत्व ग्राह्य हो सके।''

कहानियाँ विशेषकर दृष्टान्त के रूप में क्यों लिखी गईं? इसके उत्तर में जैनेन्द्र का दृष्टिकोण इसके सम्बन्ध में सबसे अधिक वैज्ञानिक है—''शास्त्र ने तो कह दिया सत्यं वद, लेकिन असली जिन्दगी में सत्यं वद सीधी-सादी चीज नहीं रह जाती।

सत्यं वद पर जब चलना आरम्भ करते हैं तो पेंच पर पेंच पैदा होते हैं। उस सीधे-सादे कथन में शंकाएँ निकलती जाती हैं। जब आदमी कहता है शास्त्र का सत्यं वद हमको मत दो, दुनिया के सामने रख कर दृष्टान्त से हमें दिखलाओ, सत्यं वद क्या है, कैसे यह टिकता है।"[1] फलतः ये कहानियाँ दृष्टान्त शैली में लिखी गई हैं। सबमें कोई न कोई संसार-घटित कथा के दृष्टान्त से दार्शनिक तत्व की प्रतिष्ठापना हुई है। वार्ता-शैली में लिखी हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत छोटी और रेखाचित्र के रूप में निर्मित हुई हैं; जैसे 'नारद का अर्घ्य', 'बाहुबली', 'तत्सत्' और 'गुरु कात्यायन' आदि वार्ता में वस्तुतः किसी की महिमा वर्णित होती है या किसी के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना कही जाती है। इन कहानियों में भी व्यक्तियों के विषय में बातें कही गई हैं। इनमें कथा-विधान सामान्य रह कर व्यक्तियों के विषय में दार्शनिकता की निष्पत्ति सफल रूप से हुई है। कथात्मक शैली में आई हुई कहानियाँ अपेक्षाकृत लम्बी और सबसे अधिक आकर्षक सिद्ध हुई हैं, जैसे 'लाल सरोवर' और 'नीलम देश की राजकन्या'। इन कहानियों की शैली बिल्कुल उसी तरह है, जैसे कोई कथावाचक या नानी-दादी कहानियाँ सुनाती हैं, उदाहरण के लिए 'लाल सरोवर' कहानी इस तरह कथित है—"कमल के फूलों से भरे इस लाल सरोवर की कथा, भाई, प्राचीन है और परम्परा के अनुसार सुनता हूँ। बहुत पहले यहाँ से उत्तर-पूरब की तरफ एक नगर बसा हुआ था। उसके बाद खंडहर की हालत में एक शिवाला था।"[2] आदि। 'रानी महामाया' कहानी की निर्माण-शैली कथा और नाटक शैली के बीच से है। वस्तुतः किसी भी कहानी का आरम्भ भूमिका को लेकर नहीं हुआ है तथा 'रानी महामाया' को छोड़कर किसी भी कहानी के अन्त में उपसंहार नहीं है और यह उपसंहार भी विवशता का परिणाम था। शैली के सामान्य पक्ष में इन कहानियों में देश-काल-परिस्थिति और व्यक्ति आदि का चित्रण, वर्णन सबल और सशक्त हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

दार्शनिक धरातल के कारण इन कहानियों के निर्माण में एक निश्चित दार्शनिक नैतिक धारणा सर्वत्र व्याप्त है। यही धारणा लक्ष्य-रूप में इन कहानियों के सृजन की मुख्य प्रेरणा रही है। लक्ष्य को हम स्पष्ट रूप से तमाम कहानियों में ढूंढ़ सकते हैं; जैसे 'जनार्दन की रानी' कहानी में लक्ष्य की प्रेरणा—"ब्रह्मांड अनन्त है, और इस ब्रह्मांड में आवागमन तो लगा ही है।" 'लाल सरोवर' में लक्ष्य की प्रेरणा—"अनेकानेक अनर्थों का मूल यह स्वर्ण है भौतिकता, लेकिन फिर भी प्रभु सब

१. जय संधि : लाल सरोवर, पृष्ठ २०।
२. जैनेन्द्र, प्रस्तावना, एक रात, पृष्ठ २।

में तुम्हीं हो, तुम्हीं हो।" इस
रहता है, कृत्य ही में वह व्यक्त
'जयसंधि' और 'नीलम देश की
लक्ष्य के साथ ही साथ अनुभूति
वस्तुतः दार्शनिक धर
की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इ
कला के इस चरम विकास-युग
का मूल्य वस्तुतः भावगत अ
रहस्य की उन शाश्वत प्रेरणा

मनोवैज्ञानिक धरातल

मनोवैज्ञानिक धरातल
कहानियाँ हैं। यहाँ शिल्पविधि
प्रसाद-युग से हमारे अध्ययन
इतिवृत्त के विस्तार और बाह
बढ़ कर स्थूल से सूक्ष्म की अ
आग्रह पूर्ण सफलता से स्पष्ट
के नये-नये कौशल, नये-नये प्र
लाघव का परिचय मिलता है

कथानक

मनोवैज्ञानिक धरातल
वर्गों में बाँट सकते हैं—
प्रथम प्रकार की कह
आधार पर लिखी गई हैं; जै
दूसरे प्रकार की कह
आधार पर निर्मित होकर म
जैसे 'एक रात'।
तीसरे प्रकार की वे
गई हैं। वे जीवन के किन्हीं
'क्या हो ?'
चौथी प्रकार की क
पर लिखी गई हैं; जैसे 'मि

में तुम्हीं हो, तुम्हीं हो।" इस तरह 'बिचारा साँप' में तो—"परमात्मा सदा मौन रहता है, कृत्य ही में वह व्यक्त है। जगत् की घटना ही जगदीश्वर की वाणी है।" 'जयसंधि' और 'नीलम देश की 'राजकन्या' जैसी कहानियों के निर्माण की प्रेरणा में लक्ष्य के साथ ही साथ अनुभूति की भी तीव्रता स्पष्ट है।

वस्तुतः दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियों में जैनेन्द्र के चिंतक व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इन कहानियों का धरातल इतना ऊँचा है कि कहानी-कला के इस चरम विकास-युग में परम्परागत प्राचीन शैलियों में लिखी हुई कहानियों का मूल्य वस्तुतः भावगत अधिक है, शिल्पगत कम। ये कहानियाँ अध्यात्म-दर्शन और रहस्य की उन शाश्वत प्रेरणाओं से लिखी गई हैं जिनका मूलाधार हमारी संस्कृति है।

मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियाँ

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी हुई कहानियाँ जैनेन्द्र की शिल्पविधि की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। यहाँ शिल्पविधान का वह चरमोत्कर्ष सर्वथा स्पष्ट है, जो प्रेमचन्द, प्रसाद-युग से हमारे अध्ययन को बहुत आगे बढ़ाता है। शिल्पविधान घटना के प्राधान्य, इतिवृत्त के विस्तार और बाह्य संघर्षों और परिस्थितियों के चित्रण, वर्णन से आगे बढ़ कर स्थूल से सूक्ष्म की ओर गया है। इसमें बाह्य से अंतर की ओर जाने का आग्रह पूर्ण सफलता से स्पष्ट है। अतएव जैनेन्द्र की कहानी-कला में उन्हें कथा-विधान के नये-नये कौशल, नये-नये प्रयोग करने पड़े हैं तथा इनमें उनके आश्चर्यजनक हस्त-लाघव का परिचय मिलता है।

कथानक

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी हुई समस्त कहानियों को हम स्पष्टतः चार वर्गों में बाँट सकते हैं—

प्रथम प्रकार की कहानियाँ वे हैं, जो किसी के जीवन के एक लम्बे भाग के आधार पर लिखी गई हैं; जैसे 'मास्टर जी'।

दूसरे प्रकार की कहानियाँ वे हैं, जो एक रात या कुछ घंटों के जीवन-चक्र के आधार पर निर्मित होकर मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन उपस्थित करती हैं; जैसे 'एक रात'।

तीसरे प्रकार की वे कहानियाँ है, जो केवल विशिष्ट रूपों के आधार पर लिखी गई हैं। वे जीवन के किन्हीं विशिष्ट चित्रों की द्रुत झाँकी उपस्थित करती हैं; जैसे 'क्या हो?'

चौथी प्रकार की कहानियाँ मात्र चरित्र-विश्लेषण और अध्ययन के आधार पर लिखी गई हैं; जैसे 'मित्र विद्याधर'।

प्रथम प्रकार में कथानक सुस्पष्ट तथा अपने निश्चित इतिवृत्त के साथ आया है। यहाँ कथानक का निर्माण चरित्र के विकास-क्रमों के माध्यम से हुआ है। दूसरे प्रकार के कथानक अपेक्षाकृत सबसे अधिक सबल और कथा-विधान के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कथानक-निर्माण में वर्तमान स्थितियों का पूर्व स्थितियों से तादात्म्य स्थापित कर इसके विधान में इतना कलात्मक चमत्कार उत्पन्न किया गया है कि इनमे निर्मित कहानियाँ जैनेन्द्र की सर्वोत्कृष्ट कहानियाँ हैं। फिर भी यहाँ कथानक-निर्माण में घटना-चक्रों और संयोगों का बहुत कम सहारा लिया गया है। इसके विकास में मानसिक सूत्रों का अवलम्ब बहुत ही लिया गया है।

यही कारण है कि ये कथानक जहाँ शिल्प-विधान के उत्कृष्ट उदाहरण हैं वहाँ इन्हें हृदयंगम करने के लिए पाठक को भी पूर्ण जागरूक, बौद्धिक और सशक्त रहना होगा, तभी पाठक से संवेदना का पूर्ण साधारणीकरण हो सकता है। तीसरे प्रकार के कथानक अपेक्षाकृत सूक्ष्म तत्वों से निर्मित हुए हैं। ये कुछ क्षणों की मनःस्थिति की आधार-शिला से मनःउद्वेगों के घात-प्रतिघातों के साधनों से व्यक्त हुए हैं। केवल नाममात्र के लिए कथानक ऐसे लगते हैं कि जैसे कोई मात्र भाव ही फैलकर कहानी बन गया है और उसमें कथा-चरित्र आदि इस तरह से संगुंफित हो गये हैं कि सभी तत्वों की अपनी स्वतंत्र सत्ता ही एक दूसरे में खो गई है। 'क्या हो' में सब कुछ स्मृति-चिन्तन द्वारा ही व्यक्त किया गया है, लेकिन फिर भी कथातत्व सूक्ष्म स्वरूप में होता हुआ भी, इतना शक्तिशाली और वेगवान है कि इससे सम्पूर्ण कहानी कोई अग्निशिखा-सी प्रतीत होती है, जो किसी तूफान की गति में जलती-जलती सहसा टूट जाती है। चौथे प्रकार में कथानक और भी सूक्ष्मतर हो गया है। इसमें एक तरह से कथातत्व का सर्वथा लोप हो गया है क्योंकि ये कहानियाँ चरित्र की आन्तरिकता के रेखाचित्र हैं और यहाँ सूक्ष्म भावों, मनोविकारों को स्थूल कथातत्व में समेटना असंगत क्रिया हो गई है।

उक्त चारों प्रकार के कथानक तथा उनके शिल्प-विधान में मूलतः कहानी की संवेदना और मनोविज्ञान के स्तर का विभेद है। जहाँ मनोविज्ञान स्थूल संवेदना को लेकर चला है, वहाँ कथानक, उसका इतिवृत्त, उसका स्वरूप उतना ही स्पष्ट और निश्चित है, लेकिन जहाँ मनोविज्ञान केवल चरित्रों को लेकर कहानियों में प्रतिष्ठित हुआ है, वहाँ कथानक सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते गए हैं।

चरित्र

वस्तुतः इस धरातल की कहानियाँ चरित्रों की कहानियाँ हैं। इसमें कथातत्व केवल साधन-स्वरूप में आए हैं, साध्य यहाँ चरित्र-विश्लेषण है। जैनेन्द्र ने अपनी

कहानी-कला में चरित्र
कोण' और अध्ययन
यहाँ समस्त
जैनेन्द्र ने प्रायः साधा
प्रकार के चरित्र अपने
निधि हुआ करते हैं।

विशिष्ट चरित्र

जैनेन्द्र के अ
बड़ी कसौटी यह है
द्वन्द्व, घात-प्रतिघात
प्रेरित रहते हैं कि उ
असाधारण न होकर
अजेय पर्वत खड़ा है,
जैसे मोम के पुतले।
दिशा से एक अव्यक्त
अभाव और सबसे ब
स्त्री-पुरुष-चरित्रों पर
का जयराज और सु
बाबू, और श्याम क
'नादिरा' की नादिर

प्रतिनिधि चरि

जैनेन्द्र के प्र
जातिगत, व्यक्तिगत
अपने दृष्टिकोण को
एक टाइप के प्रतिनि
ही मूल्य के द्योतक

१. यह बा
बढ़ना बनावट से
और आडंबर से प्र
प्रगतिशील जगत् में
इसी का नाम विक

कहानी-कला में चरित्र को क्यों इतना महत्व दिया, इसका कारण उनके सूक्ष्म दृष्टि-कोण[1] और अध्ययन का आग्रह है।

यहाँ समस्त कहानियों में चरित्र-अवतारणा केवल दो दृष्टिकोणों से हुई है। जैनेन्द्र ने प्रायः साधारण चरित्रों के स्थान पर विशिष्ट चरित्रों को लिया है। दूसरे प्रकार के चरित्र अपने में स्वयं व्यक्ति नहीं होते, वरन् व्यक्ति के 'टाइप' अथवा प्रतिनिधि हुआ करते हैं।

विशिष्ट चरित्र

जैनेन्द्र के अधिकांश चरित्र प्रायः इसी वर्ग में आते हैं। इन चरित्रों की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि ये अन्तर्मुखी अधिक होते हैं। सबके-सब किसी न किसी अन्तर्द्वन्द्व, घात-प्रतिघात से अनुप्राणित रहते हैं तथा ये कुछ ऐसी रहस्यात्मक शक्ति से प्रेरित रहते हैं कि उन्हें पूर्ण रूप से समझना कठिन कार्य है फिर भी ये चरित्र असाधारण न होकर पूर्ण मानव होते हैं। देखने से लगता है, जैसे सामने कोई विशाल अजेय पर्वत खड़ा है, लेकिन प्रत्येक मानवीय स्थितियों में इस तरह पिघल जाते हैं, जैसे मोम के पुतले। इनके चरित्र का आकर्षण भी अपूर्व है। इनमें किसी न किसी दिशा से एक अव्यक्त करुणा की लय, व्यक्त कसक, टीस का अभिशाप, अनिर्दिष्ट अभाव और सबसे बड़ी विशेषता, इनका निस्पंद, निश्चेष्ट होना है। यह सत्य इनके स्त्री-पुरुष-चरित्रों पर समान रूप से चरितार्थ होता है। इसके उदाहरण में, 'एक रात' का जयराज और सुदर्शना, 'राजीव की भाभी' का राजीव, 'मास्टर जी' में घोषाल बाबू, और श्याम कला, 'क्या हो' का बन्दी और सुषमा, 'जान्हवी' की जान्हवी, 'नादिरा' की नादिरा आदि सदा अमर रहेंगे।

प्रतिनिधि चरित्र

जैनेन्द्र के प्रतिनिधि चरित्र अपने में स्वतन्त्र व्यक्ति न होकर किसी वर्गगत, जातिगत, व्यक्तिगत व्यक्तित्व की इकाई होते हैं। जैनेन्द्र ने 'एक टाइप' कहानी में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट भी किया है—"कुछ लोग अपने में व्यक्ति नहीं होते; वे एक टाइप के प्रतिनिधि हुआ करते हैं। × × ये सब जगह सब नामों के नीचे एक ही मूल्य के द्योतक हैं। कामादिक प्राणी की हैसियत से अमुक ही उनके जीवन की

---

१. यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी होगी कि शरीर से प्राणों की ओर बढ़ना बनावट से स्वाभाविकता की ओर बढ़ना होगा, सजावट से रुचिरता की ओर और आडंबर से प्रसाद की ओर बढ़ना होगा। स्थूल वासना के नीचे धरातल पर इस प्रगतिशील जगत् में टिकना नहीं हो सकेगा, सूक्ष्म की ओर अग्रसर ही होना होगा। इसी का नाम विकास है। जैनेन्द्र, 'एक रात', भूमिका, पृ० ३।

नीति है, वस्तुओं का अमुक मूल्य और विचारों की वही एक काठ की बनावट, वे अपना निज का व्यक्तित्व बनाने की झंझट से आरम्भ ही से बचे होते हैं और अपने विश्वास आप गढ़ने का कष्ट भी उन्हें उठाना नहीं होता।"[1] ऐसे चरित्रों की अवतारणा प्रायः साधारण ढंग की कहानियों में हुई है।

जहाँ कोई घर-परिवार-सम्बन्धी अथवा किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में कहानी लिखनी पड़ी है, प्रायः वहाँ प्रतिनिधि चरित्रों ही को लिया गया है; जैसे 'ग्रामोफोन का रिकार्ड' की विजया, 'पत्नी' की सुनन्दा, प्रियव्रत, और 'टाइप' आदि।

व्यापक रूप से जैनेन्द्र के समस्त चरित्रों में अपने-अपने ढंग से व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है। विशिष्ट चरित्रों में यह सत्य अपने उत्कृष्ट ढंग से चरितार्थ हुआ है। वस्तुतः चरित्रों की व्यक्तित्व प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व-विश्लेषण मुख्यतः चार साधनों से हुआ है—

(अ) आत्म-विश्लेषण

(आ) मानसिक ऊहापोह

(इ) अवचेतन विज्ञप्ति

(ई) संकेत, कार्य

आत्म-विश्लेषण

"क्या मुझमें कृतज्ञता है? क्या मुझमें खुशी है? तब मैंने वह झूठा आचरण किया कि मैंने जज को धन्यवाद दिया, धन्यवाद मुझमें न था, लेकिन यह क्या है कि रोऊँ नहीं, इसलिए हँसा? मैं समझता हूँ यह भी ठीक बात नहीं है। रोने की भी जरूरत इस समय मेरे भीतर नहीं है।"

—क्या हो, पृष्ठ २०७

मानसिक ऊहापोह

"उसके मन को स्थिरता नहीं थी। वह अपने को कहाँ बाँधे? उस मन के भीतर पढ़ाई भी है, प्रेम भी है, लेकिन वह मन अपने को जैसे अस्वीकृत पाता है। किसने उसे ले लिया है? किसके लिए इसका वह मन रहता? तीनों लोकों में जो उसका अधीश्वर है आदमी तो एकदम उसे सोने में और ऐश्वर्य में डुबा देना चाहता है। वह इसे ऐसा प्यार करता है, पर उसके क्या वह योग्य है?"

—'ग्रामोफोन का रिकार्ड', पृष्ठ ६१

---

१. एक रात : एक टाइप, पृ० १५६।

अवचेतन विज्ञप्ति

अन्त में टहलते-टहलते वह मेज पर आ बैठा और पेन से ब्लाटिंग पैड पर लिखा—लिखा कहें कि खींचा—

Swaraj	Independence
Love	Marriage

× × × × × × God made Love. Did God make marriage also ? No, the man did the making of it and I say a Love is not choose. It is never thatnever. never ! Ah ! how slavish of me thus unwillingly to use English but write Hindi ! हिन्दी, हिन्दी ! हिन्दी हमारा देश, हिन्दुस्तानी है, हम, हिन्दी हमारी भाषा, हिन्दी हमारा बाना, भाइयो ! हरीपुर, २३ मील, सवेरे की गाड़ी में नहीं जा सकता । Oh ! Damn it all ! Why make a misery of it—Dear Jairaj !

—'एक रात', पृष्ठ १२

संकेतों और कार्यों द्वारा

"कहते-कहते कमरे में फिर मास्टर वापस लौट पड़ते, हिस्ट्री में आर्य जाति की विजय और उनकी सौम्यता, खूब याद करना चाहिए ! कौन-कौन लोगों ने भारत पर चढ़ाई किया ! ओह ! तुम लोग सोओ ! हम चला जाता है…………

ऊपर दरवाजे की तरफ बढ़ते और गणित तथा अंग्रेजी या भूगोल-इतिहास की कोई बहुत जरूरी बात बतलाते-बतलाते फिर लौट पड़ते । वास्तव में उनका अभ्यन्तर उस अपने मकान में इस रात्रि के अँधेरे में अपने को अकेला पाने से बचाता था ।"

—'मास्टर जी', पृष्ठ ५७

शैली

जैनेन्द्र की कहानियों की निर्माण-शैली अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने मनोविज्ञान और दर्शन के विभिन्न स्तरों और धरातलों से अपनी कहानियाँ लिखी हैं ।

अतएव कहानियों की रूपशैली अनेक प्रकार की हो गई हैं; जैसे पत्रात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, सम्वाद-शैली, स्वगत भाषण-शैली और विशुद्ध नाटक शैली, तथा इन समस्त शैलियों के तादात्म्य से ऐतिहासिक शैली । इन समस्त शैलियों में उन्हें समान रूप से आश्चर्यजनक सफलता मिली ।

उक्त शैलियों के उदाहरण में निम्नलिखित प्रतिनिधि कहानियाँ सर्वथा उल्लेखनीय हैं :

१. पत्रात्मक शैली —'परावर्तन'
२. आत्मकथात्मक शैली—'नादिरा'
३. सम्वाद शैली—'बीएट्रिस'
४. स्वगत भाषण शैली—'क्या हो'
५. नाटक शैली—'परदेशी'
६. वर्णनात्मक अथवा कथात्मक शैली—'मास्टर जी'

उपर्युक्त समस्त शैलियों में केवल कथात्मक शैली को छोड़कर किसी भी शैली में भूमिका और उपसंहार की योजना नहीं हुई है। फलतः कहानियों के निर्माण में अर्थात् उनके आरम्भ, विकास और अन्त में केन्द्रैक्य तथा कलात्मक संगुंफन की सबसे अधिक प्रेरणा है। उनमें कहीं भी अस्वाभाविक विकास तथा उपकथाओं, अंतर्कथाओं को नहीं जोड़ा गया है। कथात्मक शैली से निर्मित कहानियों में नाटकीय तत्व परम सफलता से आए हैं। इनके विकास में घटनाओं की क्रमिक अवतारणा और नाटकीय परिस्थितियों का उत्पन्न होते जाना, दूसरी ओर चरित्रों के आंतरिक पक्ष में भावों का क्रमिक उदय, मनःस्थिति का स्वाभाविक विश्लेषण और कहानी को लक्ष्य की ओर प्रेरित करते जाना—कहानियों के विकास को अद्भुत गति और प्रवाह देता है। इन्हें पढ़कर ऐसा लगता है, जैसे हमारी संवेदनशीलता पर किसी ने बहुत तेजी से कोई लकीर खींच दी है, ऐसी लकीर जिसके आदि-अन्त का पता नहीं चलता और पाठक कहानी में उसे ढूँढ़ता-ढूँढ़ता थक जाता तथा बार-बार कहानियों को पढ़ता रहता है। प्रायः हमेशा पाठक कहानी के अन्त पर रोक कर एक बार पुनः उसी कहानी की समस्या का कुछ और समाधान ढूढ़ने लगता है, क्योंकि इन कहानियों से हमें शंका, उद्वेलन और अतृप्ति मिलती है, संतोष नहीं। वस्तुतः आधुनिक कहानी-कला की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि कहानी की समस्या वहाँ पैदा होती है जहाँ कहानी का अन्त होता है।

शैली के सामान्य पक्ष में यहाँ वर्णन और चित्रण में क्रमशः चित्रात्मकता और विश्लेषण-पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है। जहाँ व्यक्ति-विश्लेषण और मूर्ति-प्रतिष्ठा की चेष्टा हुई है वहाँ कहानियाँ रेखाचित्र के उत्कृष्ट उदाहरण हो गई हैं। देश-काल-परिस्थिति के चित्रण में बहुधा व्यंजना का सहारा लिया गया है क्योंकि यहाँ शैली व्यक्ति और उसके मनोविज्ञान को केन्द्र बना कर व्यक्त हुई हैं। अतएव सामान्य शैली के मुख्य पक्ष वर्णन और चित्रण में सूक्ष्मता और व्यंजना आई है। जैनेन्द्र की भाषा-शैली इनके शिल्प-विधान की प्रमुख विशेषताओं में से है। इसमें इतनी स्वाभाविकता और प्रवाह है कि कहानियाँ अपनी संवेदना के साथ पाठक के अंतस्थल को स्पष्ट करती चलती हैं। जहाँ व्यक्ति-विश्लेषण हुआ है वहाँ की भाषा गद्य-शिल्पी की हुई है। जहाँ मानसिक

ऊहापोह दिखाया गया है व
चित्र-मूर्ति की प्रतिष्ठा करन
शिल्पी की भाषा है। अतए
शब्द-चयन और शब्द-विस्त
में सफलता प्राप्त की है।
दिया है कि आधुनिक हिन्दी

लक्ष्य और अनुभूति

मनोवैज्ञानिक धरा
समान प्रेरणा है, लेकिन
लिखी गई हैं अर्थात् वे कह
कहानियाँ जीवन के एक ल
सम्पूर्ण व्यक्तित्व के अध्यय
को लेकर लिखी गई हैं। उ
'मास्टर जी' कहानी एक
है और उसमें सबसे अधिक
रात' में यह लक्ष्य और भ
इतनी गहरी प्रेरणा है कि
लेते हैं। जो कहानियाँ जी
केवल अनुभूति की प्रेरणा
आदि कहानियाँ अनुभूतिपू
आरोह और अवरोह की ग
कहीं-कहीं आदर्शवाद का
बिखेरा गया है, वह वस्तुत
व्यक्ति-विश्लेषण अथवा रे
टाइप', 'त्रिवेणी' 'जान्हवी
प्रेरणा में अनुभूति और
बार कहानीकार के चिन्त
इन कहानियों में उतर अ

जैनेन्द्र मानव-जी
तल से उन्होंने मुख्यतः व्य
विधि द्वारा इन्होंने जीवन
नैतिक प्रश्नों को लिया है

ऊहापोह दिखाया गया है वहाँ की भाषा चिन्तक को भाषा हुई है और जहाँ कहीं किसी चित्र-मूर्ति की प्रतिष्ठा करनो है, वहाँ की भाषा कवित्वपूर्ण भावुक और एक चतुर शिल्पी की भाषा है। अतएव जैनेन्द्र की भाषा में भावोचित शब्द-निर्माण, स्वाभाविक शब्द-चयन और शब्द-विस्तार इतना है कि उन्होंने सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में सफलता प्राप्त की है। भाषा की लक्षणा और व्यंजना-शक्ति को इन्होंने इतना बल दिया है कि आधुनिक हिन्दी-कहानी की भाषा उनकी सदैव कृतज्ञ रहेगी।

लक्ष्य और अनुभूति

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी कहानियों की सृष्टि में लक्ष्य और अनुभूति की समान प्रेरणा है, लेकिन फिर भी कुछ कहानियाँ तो विशुद्ध अनुभूति की प्रेरणा से लिखी गई हैं अर्थात् वे कहानियाँ कहानीकार के अनुभूति की अभिव्यक्ति हैं। जो कहानियाँ जीवन के एक लम्बे भाग अथवा जीवन के कुछ घंटों के प्रकाश में मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर लिखी गई हैं, वे निश्चित रूप से एक लक्ष्य को लेकर लिखी गई हैं। उनमें अनुभूति का सहारा, उनके विकास में, लिया गया है, जैसे 'मास्टर जी' कहानी एक व्यक्ति-विशेष के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लक्ष्य से लिखी गई है और उसमें सबसे अधिक एक जीवन-दर्शन और आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। 'एक रात' में यह लक्ष्य और भी स्पष्ट हो गया है और इसके विकास में अनुभूति की भी इतनी गहरी प्रेरणा है कि इसके चरित्र हमारी संवेदनशीलता में सदा के लिए घर कर लेते हैं। जो कहानियाँ जीवन की द्रुत झाँकी अथवा रेखाचित्र उपस्थित करती हैं उनमें केवल अनुभूति को प्रेरणा है। 'क्या हो', 'पाजेब', 'पत्नी', 'ग्रामोफोन का रिकार्ड' आदि कहानियाँ अनुभूतिपूर्ण हैं। इनके निर्माण में मानव-संवेदनशीलता, मनोभावों के आरोह और अवरोह की गति मिलाई गई है। इन कहानियों की चरमसीमा पर जो कहीं-कहीं आदर्शवाद का पुट दिया गया है और उस पर जीवन-दर्शन का आलोक बिखेरा गया है, वह वस्तुतः जैनेन्द्र के सांस्कृतिक व्यक्तित्व की छाया है। जो कहानियाँ व्यक्ति-विश्लेषण अथवा रेखाचित्र के रूप में लिखी गई हैं, जैसे 'मित्र विद्याधर', 'एक टाइप', 'त्रिवेणी' 'जान्हवी', 'एक कैदी', 'उर्वशी', 'प्रतिमा' आदि की भी सृष्टि की प्रेरणा में अनुभूति और भाव-अध्ययन अधिक है। इनमें जीवन-दर्शन की झाँकी बार-बार कहानीकार के चिन्तक और दार्शनिक व्यक्तित्व की झाँकी है जो अवचेतन रूप से इन कहानियों में उतर आई हैं।

जैनेन्द्र मानव-जीवन-दर्शन के सबसे बड़े कहानीकार हैं। मनोविज्ञान के धरातल से उन्होंने मुख्यतः व्यक्ति का जो अध्ययन दिया है वह अनुपम है। कहानी-शिल्प-विधि द्वारा इन्होंने जीवन के व्यापक रूप और दार्शनिक पक्ष और व्यक्ति के उन मूल नैतिक प्रश्नों को लिया है जो हमारी संस्कृति और उसके विकास के मेरुदंड हैं।

सियारामशरण गुप्त :

सियारामशरण गुप्त की विशुद्ध दार्शनिक धरातल से लिखी हुई कहानियाँ केवल तीन हैं—'मानुषी', 'त्याग' तथा 'कोटर और कुटीर'। 'मानुषी' की संवेदना शंकर-पार्वती तथा धरती के मानव के प्रतीक मनोहर और उसकी पत्नी श्यामा को लेकर निर्मित हुई है। इनमें भारतीय आदर्शवाद और परम्परा की प्रतिष्ठा हुई है। 'त्याग' गांधीवादी दर्शन की संवेदना लेकर इससे एक बच्चे का त्याग दिखाया गया है। 'कोटर और कुटीर' में चारित्रिक महानता और निष्ठा की प्रेरणा से लिखी हुई कहानी है। वस्तुतः यह कहानी सूत्र और भाष्य के ढंग से लिखी गई है। 'कोटर और कुटीर' में दो प्रतीकात्मक चरित्रों की अवतारणा करके चारित्रिक निष्ठा और आदर्श की प्रतिष्ठापना हुई है। 'कोटर' का चातक अपने पिता से लड़ कर पृथ्वी का पानी पीने के लिए निकल पड़ा। उड़ते-उड़ते वह एक गरीब किसान की कुटी पर बैठता है, वहाँ उसे चारित्रिक महानता की दीक्षा मिलती है और पुनः अपने कोटर पर लौट जाता है। ये तीनों कहानियाँ अपने संपूर्ण शिल्पविधान में कथा, दृष्टान्त और वार्ता-शैली के अंतर्गत आती हैं। दार्शनिक प्रेरणा भी इनमें पूर्णतः स्पष्ट है।

मनोवैज्ञानिक धरातल से लिखी हुई कहानियाँ; जैसे 'पथ में से', 'काकी' 'मुंशी जी', 'झूठ-सच' आदि में साधारण ढंग का मनोविश्लेषण है। इन्होंने कुछ निबंधों को भी कहानी-शैली में लिखने का प्रयत्न किया है, जैसे साहित्य और राजनीति साहित्य में क्लिष्टता आदि, लेकिन ये कहानियाँ अपने शिल्पविधान में बिल्कुल साधारण हैं। गुप्त जी मुख्यतः कवि हैं, इनकी विचारधारा वैष्णव मत की महानता और गांधीवादी दर्शन दोनों का सुन्दर सामंजस्य है।

अज्ञेय

अज्ञेय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। उनकी कहानी-कला का मूल धरातल व्यक्ति-चरित्र है। इसका सबसे बड़ा, लेकिन सहज कारण यह है कि अज्ञेय की दृष्टि मूलतया कवि की दृष्टि है, समाज-सुधारक की दृष्टि नहीं, जो सामाजिक अव्यवस्थाओं के इतिवृत्त उपस्थित करता चलता है। इन्होंने केवल व्यक्तिगत पहलू को मुख्य केन्द्र बना कर अपनी सब तरह की कहानियाँ लिखी हैं।

अध्ययन की दृष्टि से इन कहानियों को हम स्पष्टतः चार भागों में रख सकते हैं—

(१) सोद्देश्य सामाजिक आलोचना-संबंधी
(२) राजनीतिक बंदी-जीवन-संबंधी
(३) चरित्र-विश्लेषण-संबंधी और
(४) प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्षों के अध्ययन-संबंधी।

इन चारों धरातल की कहानियाँ अपने दृष्टिकोण और देश-काल-परिस्थिति में इतनी विस्तृत, व्यापक और गंभीर हैं कि मानववाद अपने अधिक-से-अधिक रूपों में इनका उपजीव्य बन गया है। इसके लिए अज्ञेय की कहानी-कला में असाधारण विधान-कौशल और शिल्पविधि का परिचय मिलता है। चरित्र-विधान और शैली-निर्माण में इनकी मौलिकता और हस्तलाघवता अपूर्व है।

कथानक

कहानियों के उक्त चार धरातलों के फलस्वरूप कथानक-विधान भी चार रूपों में व्यक्त हुए हैं। जो कहानियाँ सोद्देश्य सामाजिक, नैतिक आलोचना की दृष्टि से लिखी गई हैं उनमें कथानक का रूप सुनिश्चित, स्पष्ट इतिवृत के साथ है; जैसे 'रोज', 'सभ्यता का एक दिन', 'परम्परा एक कहानी', 'जीवन-शक्ति', 'शरणदाता', 'लेटर बक्स', 'बसंत' और 'कविप्रिया' आदि कहानियों के कथानक के निर्माण में दो साधनों का समान रूप से सहारा लिया गया है—प्रथम आन्तरिक साधन, द्वितीय बाह्य साधन। आन्तरिक साधन जहाँ अपने अमूर्त रूप में चरित्रों के माध्यम से कथानक के निर्माण करते हैं, वहाँ बाह्य साधन अपने मूर्त रूप में क्रमिक घटनाओं, कार्य विधानों के माध्यम से इसे सुनिश्चित रूप देते हैं। 'शरणदाता' के कथानक-निर्माण में देवेन्द्रलाल के आन्तरिक संघर्ष, रफीकउद्दीन, शेख अताउल्ला के संपर्क से इनके मन में सारा आरोह-अवरोह कथा-विकास में स्वाभाविक गति-प्रेरणा देता है। दूसरी ओर सांप्रदायिक दंगे के भय से देवेन्द्रलाल का रफीकउद्दीन के घर से उसके दोस्त अताउल्ला की शरण पाना। अताउल्ला द्वारा विष देने का प्रयास, बिलार की मृत्यु, देवेन्द्रलाल का वहाँ से भागना आदि बाह्य घटनाएँ और कार्य-चक्र कथानक को सुनिश्चित रूप देते हैं। राजनीति तथा बंदी-जीवन से सम्बन्धित कहानियों में वे दोनों उपकरण और भी विस्तृत और व्यापक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अतएव ऐसी कहानियों में कथानक का रूप और भी विराट तथा सुदृढ़ हो गया है। विराट इस अर्थ में कि कथानक में कथा-तत्व सापेक्ष्य होते हुए भी मानवता की आत्मा को अपार संवेदना, निष्ठा और विद्रोह से अपने में संगुंफित कर लेता है। 'पगोडा वृक्ष', 'छाया' 'कैसेन्ड्रा का अभिशाप' और 'एक घंटे में' आदि कहानियाँ इस दिशा में परम उल्लेखनीय हैं।

इन कहानियों में राजनीति, प्रेम, घृणा और विद्रोह आदि को कहानी की संवेदना बनाने के कारण कथानक-निर्माण में मुख्यतः दो तत्व आए हैं : अंतर्कथाएँ और अंतरानुभूतियों का तादात्म्य कथा-बिन्दु से सदैव रहा है। अतएव कथानक के केन्द्रैक्य में अद्भुत ढंग से गंभीरता उपस्थित हुई है। 'छाया' कहानी की मूल संवेदना एक बंदी के कारुणिक जीवन और मनोभावों पर आधारित है। इसमें निर्मित कथासूत्र केवल इतना ही है—बंदी अरुण जिस जेल में है, संयोगवश, उसी जेल में उसकी बहन

सुषमा भी आती है और सुषमा की फाँसी अरुण के सामने होती है। कथानक के इस मूल केन्द्र के किनारे इतनी अंतर्कथाएँ और अंतरानुभूतियाँ आती हैं—

(क) जेल के वार्डर और उसकी पत्नी, मेट्रन की संवेदना

(ख) अरुण के बंदी-जीवन की अनुभूतियाँ, उपकथाएँ,

(ग) सुषमा के राजनीतिक जीवन-चरित्र की अंतर्कथा और उसकी फाँसी, लेकिन इन समस्त अंतरानुभूतियों और उपकथाओं से मूल कथा का इतना कलात्मक तादात्म्य उपस्थित हुआ है कि समूची कहानी की कथा-वस्तु जैसे कोई सीधी छोटी रेखा हो, जिस पर कहानी के समस्त पात्र समस्त वर्णन-चित्रण घनीभूत हो गए हैं। 'कंसेन्ड्रा का अभिशाप' में यह विधान और भी सफलता से चरितार्थ हुआ है।

जो कहानियाँ चरित्र-विश्लेषण के धरातल से लिखी गई हैं, उनमें कथानक-निर्माण दो तरह से हुए हैं अर्थात् अगर चरित्र संश्लिष्ट हैं, उनकी मनःस्थिति में गूढ़ ग्रन्थियाँ हैं तो ऐसे चरित्रों के लिए उन कहानियों की रचना हुई है, जिनके विधान में उस व्यक्ति से संबंधित अनेक अंतःप्रेरणाओं के विवरण दिये गए हैं।

'पुरुष का भाग्य' में एक ऐसे स्त्री-चरित्र का विश्लेषण किया गया है, जो केवल इस नगण्य संयोग से काँप कर गिरने लगी थी कि उसका पैर एक बच्चे के गीले पैर की छाप पर पड़ गया था। ऐसे गूढ़ और संश्लिष्ट चरित्र के मनोविश्लेषण से उसके अनेक कर्म-प्रेरणाओं की अवतारणा हुई। वह स्त्री कभी जेल के कठिन कारावास में थी, उसका पति फाँसी पर लटका दिया गया था। वह स्वयं स्कूल में अध्यापन-कार्य करती हुई बंदी बना ली गई थी और उसे सात वर्ष की कड़ी सजा मिली थी। इसी बीच में वह स्त्री से माँ बन गई, लेकिन वह पुरुष शिशु उसकी गोद से खींच कर न जाने कहाँ विलुप्त कर दिया गया। वह स्त्री जेल से कभी बाहर आई होगी और उसके चेतन-अवचेतन मन में सतत् उस शिशु-पुरुष की अनन्त खोज, उसके भाग्य की दुश्चिन्ताएँ सर्वदा चुभती रही होंगी। जो चरित्र अपेक्षाकृत साधारण मनो-ग्रन्थियों और मनोरहस्यों के हैं, उनके मनोविश्लेषण के लिए एक सीधा-सादा, एक सूत्रात्मक कथानक लिया गया है और उसके आधार पर चरित्र की मनःस्थिति, स्वभाव से सम्बन्धित घटनाओं की अवतारणा हुई है। 'हीली वोन् की बत्तखें' इस विधान की प्रतिनिधि कहानी है।

प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्षों के चित्र की कहानियों में भी कथानक विधान दो ढंगों से हुआ है। प्रथम, व्यक्ति के आत्म-चिन्तन तथा उससे सम्बन्धित भूत, वर्तमान और भविष्य की अनेक स्फुट संवेदनाओं के तादात्म्य से। द्वितीय चिन्तन और छोटी-छोटी घटनाओं के मेल से 'पठार का धीरज', 'सिगनेलर' और 'नम्बर दस' पहले ढंग

की कथा-विधान की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं, तथा 'साँप', 'कोठरी की बात' और 'पुलिस की सीटी' दूसरे ढंग के कथा-विधान की।

वस्तुतः अज्ञेय की कहानियों में शिल्प-विधि की इतनी विभिन्नता तथा इसमें इतने प्रयोग हैं, कि इनमें कथा-निर्माण के प्रकार, कथा-शिल्प के विधानों को एक-एक करके ढूँढ़ना पूर्ण मनोरंजक अध्ययन है। कथा-विधान की इतनी पटुता, इतना हस्त-लाघव हिन्दी के अन्य किसी कहानीकार में सम्भवतः नहीं है, लेकिन कहानी के भाव-पक्ष की दिशा में कथा-विधान की इतनी जटिलता, इतने प्रयोग बहुत श्रेयस्कर नहीं। इससे कहीं-कहीं कहानी की आत्मा में अस्पष्टता आ गई है।

चरित्र

अज्ञेय की कहानी-कला की आत्मा व्यक्ति-चरित्र के केन्द्र-बिन्दु से निर्मित हुई है अर्थात् चरित्र-अवतारणा, चरित्र-विश्लेषण, चरित्र मनोविज्ञान इनकी वे आधार-शिलाएँ हैं, जिन पर कहानीकार अज्ञेय के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हुई है। उन्होंने अपनी कहानियों में जितने भी सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक समस्याओं-प्रश्नों को उठाया है, उन सबका अध्ययन उन्होंने व्यक्तिगत पहलुओं से किया है। अज्ञेय का यह व्यक्तिगत पहलू चाहे कवि के दृष्टिकोण से अनुशासित हो, चाहे एक दार्शनिक दृष्टिकोण से, लेकिन यह तो निश्चित है कि वे सर्वत्र अपने व्यक्ति के चरित्र के अध्ययन से एक सफल मनोवैज्ञानिक रहे हैं, जिस पर उनके आदर्शवाद तथा मानववाद का गहरा और प्रत्यक्ष प्रभाव है।

व्यापक दृष्टि से चरित्र-अवतारणा विशुद्ध मनोवैज्ञानिक धरातल से हुई है और इनके निर्माण में प्रायः तीन प्रकार की प्रेरणाएँ कार्य करती हैं :

(क) अहं रूप
(ख) विद्रोहात्मक
(ग) विश्लेषणात्मक रूप

वस्तुतः यही तीनों प्रेरणाएँ चरित्र-निर्माण, चरित्र-विश्लेषण तथा व्यक्तित्व-प्रतिष्ठापना में समान रूप से कार्य करती हैं अर्थात् एक तरह से अज्ञेय का प्रत्येक चरित्र व्यक्तिवादी है। उसमें किसी-न-किसी पक्ष से विद्रोहात्मक प्रेरणा कार्य कर रही है और चरित्रों के विकास उनके अहं रूप ही के माध्यम से किया गया है, लेकिन फिर भी चरित्रों की संपूर्ण आधार-शिला मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही है।

अहं रूप

व्यक्ति-चरित्र को ही कहानी-कला का मूलाधार बनाने के कारण अज्ञेय के चरित्र मुख्यतः व्यक्तिवादी हो गए हैं। यह व्यक्तिवादिता कई रूपों में उनके चरित्रों में

व्यक्त है। प्रायः चरित्र सामान्य न होकर विशिष्ट हो गए हैं। पात्रों में बाह्य विभिन्नता होते हुए भी प्रायः सभी चरित्र अंतर्मुखी हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अज्ञेय के चरित्रों का विकास उनके अहं रूप 'मैं' में ही दिखाया गया है अर्थात् अज्ञेय का 'मैं' उनके चरित्रों का प्रतिनिधि रूप है, और समूची कहानी की शिल्पविधि का सूत्रधार प्रायः यही 'मैं' ही है। इसी के चिन्तन, मनन और स्मृतियों से एक ओर 'मैं' का विकास व्यक्त होता है, दूसरी ओर अन्य चरित्र भी इसी के प्रकाश में विकसित होते हैं।

इस तरह अज्ञेय के चरित्र का यह अहं रूप कहीं संकीर्ण अथवा उथला नहीं है। यह इतना उदात्त और समुन्नत है कि वह अपने में सर्वदा मानववाद को समेट कर चलता है। इनकी कहानियों में इनका व्यक्तिवाद ही मानववाद का प्रतीक है। इसलिए जो आलोचक अज्ञेय के चरित्रों पर यह दोषारोपण करते हैं कि अज्ञेय अपने से बाहर कुछ नहीं देखते, वे सर्वथा अवैज्ञानिक हैं। वस्तुतः चरित्र का यह रूप मुख्यतः तीन तरह से उनकी कला में व्यक्त हुआ है। प्रथम, चिन्तक के रूप में; जैसे 'छाया' का वार्डन, जो अपने अहं रूप से कहानी को आरम्भ करता है। अरुण और सुषमा के अलग-अलग अहं रूप इस कहानी की आत्मायें हैं। 'कोठरी की बात' में कोठरी के प्रतीक से अलग-अलग सुशील और दिनमणि के चरित्र उनके अहं रूप से व्यक्त हुए हैं। द्वितीय रूप में चरित्र का यह अहं रूप स्वतः नायक के रूप में अभिव्यक्त होता है। 'बिचारा साँप' का मैं इसका सुन्दर उदाहरण है। इस मैं का स्वरूप इतना शक्तिशाली और सुदृढ़ है कि इसकी सीमा में कहानी का सब कुछ आ गया है, वह, जङ्गल, और साँप, सब। तृतीय रूप में यह अहं भाव पहले अन्यपुरुष के रूप में आता है, वर्णित होता है, इसका परिचय दिया जाता है, लेकिन फिर वह अन्यपुरुष अपने अहं-रूप में इतना व्यापक हो जाता है कि उसके माध्यम से अन्यान्य चरित्रों का आविर्भाव होता चलता है। 'द्रोही' इसका उदाहरण है। इसमें द्रोही चरित्र का आविर्भाव और विकास यों होता है :

१. अन्यपुरुष में :—वह बुद्धिमान था या मूर्ख, दुर्बल या हृष्ट, साहसी था या कायर, हम नहीं कह सकते। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह द्रोही था, सिर से पैर तक द्रोही।[3]

२. अहं-रूप में :—आँखें बन्द करके सोचता हूँ भविष्य के क्रोड में क्या है, जो

---

१. कोठरी की बात : द्रोही, पृ० ३१।
२. कोठरी की बात : द्रोही, पृ० ३।
३. कोठरी की बात : द्रोही, पृ० ३३।

मुझसे छिपा हुआ है ? बहुत सोचता हूँ, पर एक प्रशस्त अंधकार के अतिरिक्त कुछ नहीं दीखता ।[1]

३. व्यापक रूप में :—अर्थात् जब इसके माध्यम से अन्य चरित्रों की अवतारणा होती है—

एक स्मृति आती है एक व्यक्ति कठघरे में खड़ा है ।

कमला''''कमला तुम्हें कैसे पाऊँगा ।

मैंने पूछा विमल : तुम तो बहुत कष्ट में हो ।

वह बोला, आपका परिचय क्या है ? मैं तो आपको जानता ही नहीं ।

देखो रघुनाथ व्यर्थ की चिन्ता में क्यों पड़े हो ? ऐसे व्याख्यान करने लगोगे, तो पागल हो जाओगे । मन तुम्हारा सच्चा मित्र है, उसको प्रेरणा का तिरस्कार मत करो ।[2]

अज्ञेय के चरित्र-निर्माण और विधान में अहं-रूप की सबसे बड़ी प्रेरणा है । इसका प्रयोग उन्होंने सब रूपों और प्रकारों में किया है और इसी की सहायता से उन्हें अपने अनेक शिल्पगत प्रयोगों में आश्चर्यजनक सफलता मिली है ।

विद्रोह

विद्रोह के धरातल से आविर्भूत चरित्र सामाजिक, राजनीतिक तथा व्यक्तिगत प्रश्नों और मूल्यों को लेकर आये हैं । कुछ कहानियाँ ऐसे भी चरित्रों को लेकर लिखी गई हैं जिनमें विद्रोह केवल एक पहलू को लेकर व्यक्त हुआ है; जैसे 'रोज' की मालती, 'दुःख और तितलियाँ' का शेखर, 'सूक्ति और भाषा' की जसुमती, 'परम्परा—एक कहानी' का[3] दरबान और 'सभ्यता का एक दिन' का नरेन्द्र आदि सामाजिक विद्रोह की भावना के चरित्र हैं । राजनीतिक विद्रोह की प्रेरणा में आने वाले अज्ञेय के चरित्र सबसे अधिक हैं और ये चरित्र अज्ञेय के महान चरित्र हैं; जैसे 'पगोडा वृक्ष' की सुखदा और युवक, 'छाया' का अरुण और सुषुमा, 'कोठरी की बात' के सुशील और दिनमणि और 'एक घंटे' का प्रभाकर और रजनी आदि । व्यक्तिगत प्रश्नों और मूल्यों में विद्रोह की गति लिए हुए-से चरित्र आते हैं जो अपनी अनन्य करुणा और शोषण को अपने में छिपाये उस भावी विद्रोह के प्रतीक-से लगते हैं, जिनकी विद्रोहात्मक आवाज भविष्य में सबसे ऊँची उठेगी । इसके उदाहरण में 'एकाकी तारा' का लूनी,

---

१. कोठरी की बात : द्रोही, पृ० ४० ।

२. कोठरी की बात : द्रोही, पृ० ४८ ।

३. द्रोह मेरे हृदय में है, मेरी अस्थियों में है, मेरी नस-नस में है, मैं द्रोही हूँ ।—कोठरी की बात : द्रोही, पृ० ५७ ।

'हरसिंगार' का गोविन्द, 'शान्ति हँसी थी' का जानकी दास और शान्ति, 'जीवन-शक्ति' की मातरा और दामू आदि उत्कृष्ट चरित्र हैं।

वस्तुत: अज्ञेय की परम सफल कहानियाँ वे हैं, जिनमें कुछ ऐसे चरित्रों की अवतारणा हुई है, जो सामूहिक रूप से राजनीतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत मूल्यों और समस्याओं के प्रति विद्रोही हैं; जैसे 'शत्रु' का ज्ञान, 'नम्बर दस' का रतन, 'द्रोही' का मैं और कमला, 'कैसन्ड्रा का अभिशाप' की कर्मेन और मेरिया ये सब चरित्र वस्तुत: विद्रोह के प्रतीक हैं। इनके व्यक्तित्व का निर्माण करुणा, शोषण और मूक बलिदान के तत्वों को लेकर हुआ है। उक्त तथ्य स्त्री-पुरुष दोनों चरित्रों में समान रूप से स्पष्ट हैं, दोनों शोषित हैं और विद्रोही भी। दोनों कर्म-प्रधान हैं। जीवन को सर्वदा हथेलियों पर लिए हुए मिलते हैं। ये सदैव कठिनाइयों से आकृष्ट होते हैं, सरलता से नहीं। इनके विद्रोही चरित्र अपनी प्रकृति की साक्षी देते हैं—"मैं यदि विद्रोही हूँ तो इसलिए कि मेरी प्रकृति यह माँगती है। मेरी जीवन-शक्ति की वही निष्पत्ति।"

विश्लेषण

विश्लेषण का आग्रह अज्ञेय के चरित्रों में सबसे अधिक है। इसी धरातल से समस्त चरित्रों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा है। इनकी कर्म-प्रेरणाओं, मन:स्थितियों स्वभावों का सूक्ष्म आकलन और विश्लेषण हुआ है। यह विश्लेषण कई भूमिकाओं से हुआ है; यथा मनोविश्लेषण, आत्मविश्लेषण तथा संकेतों और सूक्ष्म हाव-भावों के सहारे मनुष्य की कर्म-प्रेरणाओं और मन:स्थितियों का अध्ययन।

मनोविश्लेषण

मनोविश्लेषण में भी अज्ञेय ने दो विधियों का सहारा लिया है। प्रथम, सीधे चरित्र-विश्लेषण; द्वितीय, मानसिक संघर्षों द्वारा मनोविश्लेषण।

पहले के उदाहरण में—"चिन्तन से उसे पीड़ा होती थी, किन्तु पीड़ा उसे चिंतन का आधार देती थी और इसलिए वह पागल नहीं, इसलिए जब तूफान आकर उसे अशांत करके चला जाता था, तब वह उन्मत्त दानव की भाँति उस छोटी-सी कोठरी में टहलने लगता था। एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक, दो, तीन, चार, पाँच कदम फिर वापस एक, तीन, चार, पाँच फिर लौटकर एक, दो, तीन और इसी तरह वह सारी रात बिताता था, तब उसकी टाँगें थक जातीं, वह एकाएक रुक कर भूमि पर बैठ जाता और चुपचाप मन ही मन रोने या कविता करने लगता। उसका एक शब्द भी बाहर नहीं निकलता, एक छाया भी उसके मुख पर व्यक्त नहीं होती। वह मानो

१. कोठरी की बात : पृ० १३२।

किसी अदृश्य समुद्र के भाटे की भाँति धीरे-धीरे उतर जाती और निश्चल हो जाती, उस समय तक जब कि दूसरा तूफान पुनः उसे न उठाये।"[1]

दूसरे के उदाहरण में—"नालायक वह ?"

चौंक कर रतन उठ बैठा, क्या उसने कुछ देखा, या कुछ याद आ गया ? कोड़े की मार से आहत-सा वह उठ बैठा। नालायक वह। अगर मैं नहीं नालायक, जिसने एक तो चोरी की, दूसरे अपनी बहन को बुलाया और तीसरे हाथ आई हुई दौलत फेंक दी ? चोर ! दस नम्बर का बदमाश ! और बेवकूफ ?"[2]

आत्म-विश्लेषण

अज्ञेय के चरित्रों में हम इस प्रवृत्ति की प्रेरणा सबसे अधिक पाते हैं। उनकी कुछ उत्कृष्ट कहानियाँ तो चरित्र के आत्म-विश्लेषण को ही लेकर निर्मित हुई हैं; जैसे 'द्रोही', 'साँप' और 'सिगनेलर'। आत्म-विश्लेषण की स्थिति में चरित्र अपनी स्मृतियों, चिन्तनों, आत्म-कथाओं और अन्तर्कथाओं द्वारा इसको चरितार्थ करता है। 'द्रोही' का नायक समूची कहानी में आत्म-विश्लेषण की समस्त सम्भावनाओं, स्थितियों और संवेदनाओं को उपस्थित करता है और कहानी के अन्त में उसके सम्पूर्ण आत्म-विश्लेषण की निष्पत्ति होती है—

"मैं द्रोही हूँ, रहूँगा। द्रोह मेरे हृदय में है, मेरी अस्थियों में है, मेरी नस-नस में है, मैं द्रोही हूँ। पहली बार मैंने सरकार से द्रोह किया था, किसी की मुखश्री से आकृष्ट होकर। दूसरी बार मैंने देश से द्रोह किया, किसी के शरीर की लालसा से। तीसरी बार मैंने धर्म से द्रोह किया, किसी से ईर्ष्या करके। फिर अपनी नीचता का परिणाम जब मैं जान पाया तब मैं प्रायश्चित करने लग गया, पर फल क्या हुआ, प्रायश्चित भी नहीं किया और अपनी अन्तरात्मा के प्रति भी द्रोही बनकर लौट आया।"[3]

संकेतों तथा सूक्ष्म हाव-भावों के सहारे मनुष्य की कर्म-प्रेरणाओं और मनःस्थिति के अध्ययन में 'पुरुष का भाग्य' कहानी परम उल्लेखनीय है। यह कहानी केवल इस मनोदशा से प्रारम्भ होती है कि एक औरत पैर धूल के ऊपर दो गीले पैरों की छाप पर पड़ता है और वह विक्षिप्त हो जाती है और वह गिरने से बचती है। ऐसा क्यों है, किन कर्म-प्रेरणाओं से उसकी यह मनःस्थित है इसी के अध्ययन में पूरी कहानी निर्मित हुई है। 'पुलिस की सीटी' में कहानी के नायक सत्य को सीटी की

---

१. कोठरी की बात : पृ० १३४।
२. नम्बर दस : परम्परा, पृ० १०६।
३. कोठरी की बात : द्रोही, पृ० ५७।

आवाज सुनते ही जान पड़ा मानो अभी संसार में अंधेरा हो जायगा, पृथ्वी स्थापना-च्युत हो जायगी। उसने सहारे के लिऐ हाथ आगे बढ़ाया। हाथ कुछ थाम नहीं सका। मुट्ठी-भर उड़ती हुई हवा को अंगुलियों में से फिसल जाने देकर खाली ही रह गया, तब सत्य ने समझ लिया कि वह गिरेगा, गिरकर रहेगा। उसने आँखें बन्द कर लीं।[1] ऐसा क्यों हुआ ? एक साधारण लड़के की सीटी की आवाज सुन कर सत्य की मनो-दशा क्यों बिगड़ गई ? क्योंकि उसके अवचेतन जगत् में एक बहुत बड़ा 'आप्रेशन' था, जिसे हम मनोवैज्ञानिक शब्दावली में दण्ड विक्षिप्तता (Prosecution Manica) कह सकते हैं।

चरित्र की दिशा में उक्त जितने भी विधान प्रयुक्त हुए हैं उन सबका मूल आधार मनोविज्ञान ही है। यह मनोविज्ञान चाहे आत्मविश्लेषण के रूप में स्थापित हुआ है, चाहे विद्रोह के रूप में। चरित्र की मनोवैज्ञानिक अवतारणा, चरित्र-विश्लेषण और व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा ये तीनों भूमिकाएँ बहुत ऊँची और महत्वपूर्ण हैं, लेकिन चरित्र की दिशा में इतनी ऊँची भूमिका के कारण कहानी पर इसके दो प्रभाव पड़े हैं। प्रायः चरित्र असाधारण और विशिष्ट हुए हैं तथा इनको समझने या साधारणीकरण के लिये विद्वान और जागरूक पाठक की अपेक्षा है, साधारण कहानी-पाठक की नहीं। लेकिन दूसरी ओर इन चरित्रों की दो महान विशेषताएँ भी हैं, ये चरित्र चाहें राजनीतिक हों, चाहे विद्रोही, चाहे किसी देश-प्रांत-संस्कृति और वर्ग के हों, ये सर्वथा मानवीय सम्बन्धों, प्रश्नों और आकांक्षाओं के चित्रों से अभिभूत हैं, इनमें मानवीय निष्ठा और संस्कार अनन्य हैं

शैली

कहानी-निर्माण में शैली की विविधता और इसमें विभिन्न प्रयोग तथा प्रकार, अज्ञेय की शिल्पविधि की अन्य सबसे बड़ी विशेषता है। इनमें शैलीगत इतनी विविधता क्यों आई, इसका एकमात्र कारण यह है कि अलग-अलग चरित्रों-व्यक्तियों को अध्ययन के लिये उन्हें उनके अनुरूप कहानी-निर्माण की शैलियाँ ढूँढनी पड़ीं जिन्हें हम छः भागों में रख सकते हैं—

१—कथात्मक शैली,
२—आत्मकथात्मक शैली,
३—नाटकीय शैली,
४—पत्रात्मक शैली,
५—प्रतीकात्मक शैली,
६—मिश्रित शैली।

१. पुलिस की सीटी : परम्परा, पृ० १५६।

उक्त समस्त शैलि
विशेषता है। वस्तुतः इस
रूप से कार्य कर रही है

कथात्मक शैली

कथात्मक शैली
की डायरी', 'पगोडा वृक्ष
मुख्य हैं, लेकिन यहाँ अ
पुरुष में वर्णनात्मकता प्र
उत्तमपुरुष की स्थापना
विधान प्रस्तुत हुए हैं;
बीरज'। वस्तुतः कथात
सफलता ने कथात्मक शै

आत्मकथात्मक शै

आत्मकथात्मक
अर्थात् 'मैं' के सहारे
बल्लरी', 'विपथगा', '
वापसी' आदि कहानिय
जहाँ 'मैं' के माध्यम से
स्मृतियों से भी सम्बन्धि
अन्तर्गत सम्पूर्ण कहानी
है कि इस शैली में स्
जहाँ चरित्र के मानसि

नाटकीय शैली

'जयदोल' मे
उल्लेखनीय हैं। इनमें
है अतः इसे कहानी क
दर्शन होते हैं। यहाँ
दोनों के तत्वों का सुन
अवतारणा हुई।

पत्रात्मक शैली

केवल 'सिगने

उक्त समस्त शैलियों में विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति अज्ञेय की कला की प्रमुख विशेषता है। वस्तुतः इसके पीछे व्यक्ति के चरित्र-विश्लेषण की प्रेरणा सबसे अधिक रूप से कार्य कर रही है।

कथात्मक शैली

कथात्मक शैली की प्रतिनिधि कहानियों से 'कैसेन्ड्रा का अभिशाप', 'आदम की डायरी', 'पगोडा वृक्ष', 'शरणदाता', 'हीली बोनू की बत्तखें' आदि कहानियाँ मुख्य हैं, लेकिन यहाँ अज्ञेय ने कथात्मक शैली में भी कुछ नये प्रयोग किये हैं। अन्य-पुरुष में वर्णनात्मकता प्रायः विश्लेषण के आधार से अभिव्यक्त हुई है। अन्यपुरुष में उत्तमपुरुष की स्थापना और अन्यपुरुष में स्मृतियों-चिन्तनों द्वारा कहानी में विकास के विधान प्रस्तुत हुए हैं; जैसे 'इन्दु की बेटी', 'वे दूसरे', 'जयदोल' और 'पठार का धीरज'। वस्तुतः कथात्मक शैली में अज्ञेय का यह तीसरा प्रयोग अपूर्व है। इसकी सफलता ने कथात्मक शैली में आश्चर्यजनक शक्ति और विकास दिया है।

आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली अज्ञेय की सर्वप्रिय शैली है क्योंकि इसके माध्यम से अर्थात् 'मैं' के सहारे चरित्र-विश्लेषण में अनन्य सुविधा प्राप्त होती है। 'अमर वल्लरी', 'विपथगा', 'लेटर बक्स', 'रमन्ते तत्र देवता', 'साँप', 'मेजर चौधरी की वापसी' आदि कहानियाँ इस शैली की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। कहानी का निर्माण जहाँ 'मैं' के माध्यम से अबाध गति से होता है वहाँ मैं से सम्बन्धित अनेक अनुभूतियों, स्मृतियों से भी सम्बन्धित अनेक चित्रों के विश्लेषण प्रस्तुत होते हैं। इस शैली के अन्तर्गत सम्पूर्ण कहानी का विकास घटनाओं और द्वन्द्वों के सहारे होता है, यही कारण है कि इस शैली में स्वगत भाषण के तत्व बहुत आये हैं—विशेषकर उन स्थानों पर जहाँ चरित्र के मानसिक द्वन्द्व और ऊहापोह की अभिव्यक्ति अधिक हुई है।

नाटकीय शैली

'जयदोल' में 'कविप्रिया' और 'बसंत' दो कहानियाँ इस शैली के अन्तर्गत उल्लेखनीय हैं। इनमें 'कविप्रिया' तो विशुद्ध एकांकी नाटक-शिल्पविधि में लिखी गयी है अतः इसे कहानी कहना ही अवैज्ञानिक है। 'बसन्त' में एक नये शिल्पगत प्रयोग के दर्शन होते हैं। यहाँ शैली एकांकी नाटक और कहानी के बीच से चलती है। इसमें दोनों के तत्वों का सुन्दरतम तादात्म्य हुआ है और उससे एक नई कला-वस्तु की अवतारणा हुई।

पत्रात्मक शैली

केवल 'सिगनेलर' इस शैली की प्रतिनिधि कहानी है। इस शैली में भी कुछ

विशेषता है। पत्र केवल 'मैं' ने अपने मित्र विमल को लिखा है और 'मैं' के क्रमशः पाँच पत्रों के समन्वय से 'सिगनेलर' कहानी की अभिव्यक्ति हुई है। इसके विकास में कहानीकार ने किसी और अन्य के एक भी पत्र का सहारा नहीं लिया है। अन्तिम दो पत्र डायरी के पृष्ठों के रूप में हैं क्योंकि उस स्थल पर कहानी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है तथा कहानी अपनी चरम परिणति पर पहुँचती है। कहानी में अबाध गति उत्पन्न करने के लिए कहानीकार ने एक ही पत्र को दो-तीन भागों और तिथियों में बाँट कर लिखा है।

प्रतीकात्मक शैली

प्रतीकात्मक शैली अज्ञेय की कहानी-कला का एक ललित पक्ष है। जहाँ भी इन्हें मानसिक संघर्षों के अन्तस्तल में जाकर उसका अध्ययन प्रस्तुत करना पड़ा है, वहाँ इन्होंने प्रायः इसी शैली को अपना साधन बनाया है। अतएव इस शैली से निर्मित इनकी कुछ कहानियाँ; जैसे 'चिड़ियाघर', 'पुरुष का भाग्य', 'कोठरी की बात', 'पठार का धीरज' और 'साँप' आदि शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। कहानी के भाव-पक्ष से पूर्ण स्वाभाविकता और वैज्ञानिकता स्थापित करने के प्रयास में यहाँ प्रतीकों में पूर्ण विविधता और आकर्षण उपस्थित हुआ है। 'चिड़ियाघर' के प्रतीक विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु हैं। 'पुरुष का भाग्य' में धूल पर दो गीले पैरों की छाप, अनन्य सुन्दर प्रतीक है। इसी तरह 'कोठरी की बात', 'पठार का धीरज' और 'साँप' में क्रमशः कोठरी, पठार और साँप, इसके कलात्मक प्रतीक हैं। इन सब प्रतीकों और कहानी के विभिन्न मानसिक संघर्षों का पूर्ण सफलता से तादात्म्य उपस्थित हुआ है।

मिश्रित शैली

शिल्पविधि की दृष्टि से जो कहानियाँ उच्चकोटि की हैं वे इस शैली में निर्मित हुई हैं; अर्थात् उनके विकास और अन्त में ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, संवादात्मक, पत्रात्मक और प्रतीकात्मक आदि सभी शैलियों का इन्होंने सामूहिक सहारा लिया है और इस मिश्रित शैली से कहानी में उच्चकोटि का चरित्र-विश्लेषण, कर्म-प्रेरणाओं की पूर्ण व्याख्या तथा शिल्पविधान में आश्चर्यजनक हस्तलाघवता का परिचय दिया है। 'छाया', 'द्रोही' और 'नम्बर दस' इस शैली की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। 'छाया' में वार्डन द्वारा आत्मकथन, वर्णन, अरुण और वार्डन द्वारा संवाद, सुषमा और अशोक द्वारा पत्र-व्यवहार, वार्डन और अशोक के अलग-अलग आत्म-चिन्तन, विभिन्न प्रतीकों द्वारा अशोक और सुषमा के मानसिक संघर्षों के चित्र आदि सब शैलीगत उपादानों से इस कहानी का निर्माण हुआ है। ठीक यही शैलीगत स्थिति 'द्रोही' और 'नम्बर दस' की भी है।

विशुद्ध रचना-शैली
विश्लेषण, कथोपकथन औ
कहानियों के रचना-विधान

१. आरम्भ : पा
२. विकास :
अ. प्रथम मुख्
ब. द्वितीय मु
आती है।
स. तृतीय मु
कहानी अ
३. निष्पत्ति या

शैली का सामान्य

शैली के सामान्य
शब्द-संयम आदि में अज्ञे
पर हैं। चित्रण और वर्ण
कथन प्रायः छोटे, सुगठि
आश्चर्यजनक संयम, गम्भ
कारण है कि इनकी भाष
द्वंद्वों की अभिव्यक्ति में

लक्ष्य और अनुभूति

अज्ञेय की कहा
से है, लेकिन अनुभूति क
व्यंजित होती है वहाँ ल
राजनीति, विद्रोह, बन्दी
भवों के धरातल से नि
कहानी के निर्माण में अ
जो कहानियाँ सामाजिक
तल से लिखी गई हैं, उ

१. मेरा आग्रह
है, कोई सैद्धान्तिक प्रेर
साहित्यिक सिद्धि नहीं।

विशुद्ध रचना-शैली की दृष्टि से अज्ञेय की कहानियों में रचना-विधान विश्लेषण, कथोपकथन और घटना-प्रवाह के सहारे से होता है। व्यापक दृष्टि से इनकी कहानियों के रचना-विधान में निम्नलिखित विकास-क्रम मिलते हैं—

१. आरम्भ : पात्र-परिचय और समस्या का संकेत

२. विकास :

अ. प्रथम मुख्य घटना : जिसमें केन्द्रीय भाव की सूचना होती है।

ब. द्वितीय मुख्य घटना : कौतूहल या विस्मय के तत्व जिसके सहारे स्पष्टता आती है।

स. तृतीय मुख्य घटना : जिससे कहानी चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है और कहानी अपने भाव-पक्ष में पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है।

३. निष्पत्ति या चरमसीमा : सम्पूर्ण तथा एकांत प्रभाव चरितार्थ हो जाता है।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष अर्थात् चित्रण, वर्णन, कथोपकथन, भाषा-सौष्ठव और शब्द-संयम आदि में अज्ञेय का हस्तलाघव और लेखन-शिल्प दोनों अपनी पूर्ण सफलता पर हैं। चित्रण और वर्णन दोनों विश्लेषण के धरातल से चरितार्थ हुए हैं। कथोपकथन प्रायः छोटे, सुगठित और व्यंजनात्मक हुए हैं। अज्ञेय की गद्य-शैली में सर्वत्र आश्चर्यजनक संयम, गम्भीरता, चयन और परिष्कार (Finish) मिलता है। यही कारण है कि इनकी भाषा अमूर्त से अमूर्त मनोद्गारों, घात-प्रतिघातों और मानसिक द्वंद्वों की अभिव्यक्ति में सदैव सफल रही है।

लक्ष्य और अनुभूति

अज्ञेय की कहानियों के निर्माण में लक्ष्य और अनुभूति की प्रेरणा समान रूप से है, लेकिन अनुभूति की प्रेरणा जहाँ इनकी कहानियों में प्रत्यक्ष और अपूर्व वेग से व्यंजित होती है वहाँ लक्ष्य अपने अप्रत्यक्ष रूप में ध्वनित होता है। जो कहानियाँ राजनीति, विद्रोह, बन्दी जीवन, तथा अज्ञेय के विस्तृत देशाटन और युद्धकालीन अनुभवों के धरातल से निर्मित हुई हैं, वे मूलतः अनुभूति के ही धरातल से लिखी गई हैं। कहानी के निर्माण में अनुभूति की प्रेरणा को अज्ञेय ने सबसे ऊँचा स्थान दिया है।[1] जो कहानियाँ सामाजिक तथा नैतिक जीवन के वैषम्य, समस्याओं और संघर्षों के धरातल से लिखी गई हैं, उनमें एक निश्चित लक्ष्य की प्रेरणा ध्वनित होती है अर्थात्

---

१. मेरा आग्रह रहा है कि लेखक अपनी अनुभूति ही लिखे। जो अनुभूति नहीं है, कोई सैद्धान्तिक प्रेरणा के वशीभूत होकर उसे लिखना, ऋणशोध हो सकता है, साहित्यिक सिद्धि नहीं।—अज्ञेय, शरणार्थी : भूमिका, पृ० २।

ऐसी कहानियों में लक्ष्य की भावना प्रायः कटु व्यंग, चुनौती, ग्लानि और तिरस्कृत अनुभवों के माध्यम से व्यंजित की गई है, दृष्टांतों के रूप में नहीं कि सत्यं वद, आदर्श बन, चरित्रनिष्ठ बन। कहानियाँ अपने अधिकांश रूप में ,अनुभूति के ही धरातल से लिखी गई हैं। यही कारण है कि इन कहानियों में एकान्त प्रभाव डालने की क्षमता अपूर्व है।

संक्रान्ति-युग में कहानीकार अज्ञेय का मूल्य सर्वाधिक है। इनमें रचना-कौशल की प्रतिभा व नये-नये प्रयोगों का सफल आग्रह इतना है कि इनकी शिल्पविधि में आश्चर्यजनक विविधता आ गई है, लेकिन कला-शिल्पी अज्ञेय की उत्कृष्टता शिल्पविधि की ओर है, इसकी अपेक्षा इनका भाव-पक्ष कुछ निर्बल पड़ता है। इसमें न तो शिल्प-विधान की सी विविधता है, न कथा-सौष्ठव की भाँति भावगत मौलिकता, लेकिन इसके स्थान पर अज्ञेय ने अपनी कहानी-कला में देश-काल और परिस्थिति का चित्रण इतने व्यापक और विस्तृत ढंग से किया है कि इनका स्थान सर्वोपरि सिद्ध होता है।

इलाचन्द्र जोशी :

मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के दूसरे प्रतिनिधि कहानीकार इलाचन्द्र जोशी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से संक्रांति-युग के समस्त कहानीकारों में जोशी जी प्रथम कहानीकार हैं जिन्होंने इस प्रवृत्ति को लेकर कहानी लिखना आरम्भ किया। इनकी सर्वप्रथम कहानी 'सजनवा'[1] उसका प्रमाण है। इनकी कहानी का मुख्य धरातल मनोविज्ञान है और इसके दो प्रमुख पक्ष हैं। मध्य वर्ग अथवा ह्रासोन्मुख जीवन की विश्लेषणात्मक आलोचना, दूसरी ओर व्यक्ति के अहंभाव की एकान्तिकता पर निर्भय प्रहार। यही दो पक्ष इनकी कहानी-कला के मूलाधार हैं। अज्ञेय और जोशी के मनोवैज्ञानिक धरातलों में अन्तर और विरोध स्पष्ट है। अज्ञेय जहाँ सर्वगामी अहं-रूप के माध्यम से विश्लेषण उपस्थित करते हैं, वहाँ जोशी अहं-रूप ही पर प्रहार करते हैं क्योंकि जोशी की धारणा है—"आधुनिक समाज में पुरुष की बौद्धिकता ज्यों-ज्यों बढ़ती चली जा रही है त्यों-त्यों उसका अहं-भाव तीव्र से तीव्रतर और व्यापक से व्यापकतर रूप ग्रहण करता चलता है। अपने तृप्त न होने वाले अहम्-भाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब उसे पग-पग पर स्वाभाविक सफलता मिलती है, तो वह बौखला उठता है और उसे बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वह आत्म-विनाश के पहले अपने आस-पास के संसार के विनाश की योजना में जुट जाता है।"[2] इस तरह जहाँ अज्ञेय की मनोवृत्ति

---

१. हिन्दी गल्प माला : भाग २, अंक ८, मार्च १९२०, पृ० ३५९।
२. इलाचन्द्र जोशी : विवेचना, पृ० १२४।

अन्तर्मुखी है, वहाँ जोशी के दृष्टिकोण में अपेक्षाकृत अन्तर्जगत् का सुन्दर सामंजस्य है। इसी प्रकाश में जोशी की कहानी में शिल्पविधि का निर्माण हुआ है।

कथानक

जो कहानियाँ मध्य वर्ग और ह्रासोन्मुख जीवन की विश्लेषणात्मक आलोचना के धरातल से लिखी गई हैं; जैसे 'चरणों की दासी', 'होली', 'अनाश्रित', 'रक्षित धन का अभिशाप', 'रोगी', 'परित्यक्ता', 'जारज', 'एकाकी', 'दुष्कर्मी' और 'पतिव्रता या पिशाची' आदि कहानियों में कथानक का रूप इतिवृत्तात्मक है। इन कहानियों से कथानक का आरम्भ, मध्य और अंत पूर्ण स्पष्ट और सुनिश्चित हैं। इनके निर्माण प्रायः दो ढंगों से हुए हैं—मुख्य चरित्र को लेकर उसके जीवन-परिचय, जीवन-सम्बन्धी विभिन्न घटनाओं और वर्णनों के साथ कथानक-निर्माण; जैसे 'चरणों की दासी', 'होली', 'अनाश्रित' आदि के कथानक। ऐसे कथानक प्रायः व्यक्ति को ही लेकर निर्मित हुए हैं। इसका कारण है, व्यक्तिचरित्र-विश्लेषण की प्रवृत्ति और उसके जीवन के किंचित् घटना-चक्रों और कार्य-व्यापारों के माध्यम से एक ओर व्यक्ति-जीवन और उसकी सामाजिकता पर व्यंग दूसरी ओर व्यक्ति-चरित्र-विश्लेषण। दूसरे प्रकार के कथानक-निर्माण में कोई चरित्र अन्य व्यक्ति-सम्बन्धी उसके जीवन-सम्बन्धी कहानी को निरपेक्ष ढंग से वर्णन अथवा कथन प्रस्तुत करता है; जैसे 'एकाकी', 'पतिव्रता या पिशाची', 'कापालिक' और 'दुष्कर्मी' आदि कहानियाँ। इनमें कथात्मकता और वर्णनात्मकता ही मुख्य रूप से कथानक-निर्माण के दो तत्व हैं। वस्तुतः ऐसे कथानक साधारण हैं। दूसरी ओर जो कहानियाँ व्यक्ति के अहं-विश्लेषण, अहं की एकांतिकता पर निर्भय प्रहार के लिए लिखी गई हैं; जैसे ''मैं', 'मिस एल्किन्स', 'रात्रिचर', 'पागल की सफाई', 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' आदि में कथानक का रूप अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक है। इसमें भी जो कहानियाँ विशुद्ध रूप से अहं की एकांतिकता पर प्रहार के लिए लिखी गई हैं; जैसे 'मैं' और 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' इनमें कथानक का निर्माण केवल भावों, मनोवेगों के विश्लेषण के माध्यम से हुआ है। 'मैं' के कथानक में न तो कोई घटना-चक्र है, न कार्य-व्यापार, बस केवल आत्म-विश्लेषण के आधार पर कहानी निर्मित हुई है। शेष जो कहानियाँ व्यक्ति के अहं के विश्लेषण के निमित्त लिखी गई हैं; जैसे 'मिस एल्किन्स', 'पागल की सफाई', 'रात्रिचर' आदि इनमें कथानक एक सूत्रात्मक ढंग से विभिन्न घटना-चक्रों, कार्य-व्यापारों से निर्मित हुआ है।

जोशी की कहानियों में कथा-विधान स्पष्ट और कथा-तत्व को लेकर निर्मित हुआ है। इनमें कहीं भी प्रयोग का आग्रह नहीं है।

चरित्र

जोशी के समस्त चरित्र तीन वर्गों में बाँटे जा सकते हैं। पहले वर्ग में वे चरित्र

आते हैं जो पूर्णतः असाधारण और विशिष्ट हैं, जैसे 'कापालिक', 'रात्रिचर', 'प्रेतात्मा 'शराबी' और 'एकाकी'। दूसरे वर्ग के चरित्र वे हैं जो सर्वसाधारण, स्वाभाविक और प्रायः मध्य वर्ग के प्रतीक हैं; जैसे 'रोगी', 'परित्यक्ता'; 'दीवाली और होली' की बिन्दी, मोहन और रञ्जन, 'चरणों की दासी' की कामना, 'रेल की रात' का महेन्द्र और 'अनाश्रित के द्वार' का तारा आदि। चरित्र का तीसरा वर्ग सर्वग्राही व्यक्ति के प्रतिनिधि-रूप में है। यह तीसरा वर्ग अर्थात् 'मैं' जोशी के चरित्र-विधान में सबसे अधिक बलिष्ठ, सुदृढ़ और सर्वग्राही है। इसके विकास, मनोविश्लेषण और इसकी एकांतिकता के प्रहार में जोशी पूर्ण सफल और वैज्ञानिक सिद्ध हुए हैं।

विशिष्ट और असाधारण चरित्रों की अवतारणा में विश्लेषण की अपेक्षा कौतूहल, जिज्ञासा की प्रवृत्ति अधिक है, लेकिन इनमें भी जो दो-एक चरित्र एक निश्चित मनोवैज्ञानिक प्रेरणा से अवतरित हुए हैं; जैसे स्त्री, कुँवर साहब; इनमें विश्लेषण के तत्व पूर्ण सफलता से स्पष्ट हो आए हैं। चरित्र के वास्तविक रूप में जोशी के दूसरे प्रकार के चरित्र सबसे अधिक आकर्षक और व्यक्तित्व-प्रधान हैं। यह हमारे मध्यम वर्ग के जीवन तथा हम लोगों के प्रतीक हैं। इनमें एक ओर चरित्रगत स्वाभाविक निर्बलता और त्रुटियाँ हैं। दूसरी ओर इनमें अपने सद्गुणों, आदर्शों, संस्कारों के प्रति आस्था और निष्ठा है। ऐसे चरित्रों का पूर्ण चरित्र-चित्रण और व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा जोशी ने अपनी कहानियों में की है। वस्तुतः ये चरित्र पूर्ण रूप से यथार्थवादी धरातल से अवतरित हुए हैं।

चरित्र का तीसरा प्रकार अर्थात् 'मैं' जोशी के चरित्र-विधान का प्रमुख अंग है, बल्कि यहाँ तक कहा जा सकता है कि उनकी कहानियों का सर्वसुलभ प्रतिनिधि नायक 'मैं' ही हूँ, लेकिन यहाँ उल्लेखनीय यह है कि 'मैं' के अस्तित्व और इसक एकान्तिकता को जोशी जी ने कभी प्रश्रय नहीं दिया है। इसका मनोविश्लेषण परम निर्मम ढंग से किया है। इन्होंने चेतन और अवचेतन जगत् की अनेक गुत्थियों और कुंठाओं का उद्‌घाटन मानस के सूक्ष्म प्रेरक सूत्रों के माध्यम से किया है।

मनोविश्लेषण

चरित्र का मनोविश्लेषण दो रूपों से हुआ है—प्रथम, आत्म-विश्लेषण और आत्म-कथन द्वारा; द्वितीय, अन्यपुरुष में। पहले में चरित्र स्वयं का व्यक्तित्व प्रधान है, दूसरे में कहानीकार की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति उभर आई है। वस्तुतः आत्म-विश्लेषण ही जोशी जी की शैली की प्रमुख विशेषता है। अधिकांश चरित्र इसी कसौटी पर कसे गये हैं तथा उसका रूप निम्नलिखित है।

आत्म-विश्लेषण

"मैं उन आदमियों में से हूँ जो सब समय केवल अपने ही अंतर की भावनाओं

के लिए रहते हैं, ठीक उसी तरह जिस प्रकार मादा कंगारू अपने नवजात शिशु को हर घड़ी छाती से जकड़े रहती है। × × × × मैं इसी प्रकृति का आदमी हूँ अर्थात् मैं आधुनिक मनोवैज्ञानिक भाषा में इंट्रोवर्ट हूँ।"

निरपेक्ष विश्लेषण

"श्यामा के हृदय में एक नया आन्दोलन मचने लगा। अपने हृदय में वह पति का एक निराला चित्र अंकित करने लगी। विवाह के समय उसने अपने पति के मुख की क्षणिक झलक देखी थी, वह बिल्कुल अस्पष्ट थी। उससे उनकी आकृति के संबंध में कोई धारणा उसके मन में नहीं हो सकती थी।"

जोशी जी के चरित्र जैनेन्द्र और अज्ञेय की अपेक्षा परम स्पष्ट और यथार्थ कोटि में आते हैं। कभी भी इन्होंने चरित्र को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर अपनी कहानियों में नहीं रखा है। इस दिशा में सर्वत्र वैज्ञानिकता और स्वाभाविकता का आग्रह है।

शैली

रचना-कौशल की दृष्टि से जोशी की कहानियों में सबसे कम विविधता है। इन्होंने कहानी की विभिन्न शैलियों में लिखने, विभिन्न प्रयोगों और शिल्पविधानों में बाँधने का जैसे प्रयत्न ही नहीं किया है। सबके पीछे सर्वत्र एक सहज गति है। इनकी कसौटी के अनुसार कहानी में भाव-तत्व और चरित्र-विश्लेषण ही कहानी की आत्मा है। वस्तुतः इसी धारणा के फलस्वरूप जोशी जी में रचनागत अथवा शैलीगत विभिन्नता बहुत कम है। मुख्यतः दो ही रचना-शैलियों में इनकी कहानियाँ निर्मित हुई हैं।

आत्म-कथात्मक

जितनी भी कहानियाँ अहं-विश्लेषण के धरातल से लिखी गई हैं, वे समस्त कहानियाँ इसी शैली के अंतर्गत हैं। इसमें आत्मकथा के अतिरिक्त और भी दो तत्व आए हैं स्वगत भाषण तथा संवाद। इन सबके सामूहिक प्रभाव के फलस्वरूप इस शैली में अपूर्व वेग, आन्तरिकता और सूक्ष्म अध्ययन की शक्ति आ गई है। जोशी की यही शैली उनकी सहज और प्रमुख शैली है। इसी के माध्यम से वे व्यक्ति-चरित्र का अध्ययन, उसके सूक्ष्म सूत्रों का उद्घाटन और अहं का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

वर्णनात्मक

सामाजिक, व्यक्तिपरक कहानियाँ इसी शैली में लिखी गई हैं। इनके रचना-विधान में वर्णनात्मकता, कथोपकथन के साथ घटना-चक्रों का क्रमिक प्रतिफलन और कार्यों का स्वाभाविक विश्लेषण यही इसके तीन पक्ष हैं। असाधारण चरित्रों, सामाजिक विवरणों और आलोचनाओं की भी कहानियाँ इसी शैली में निर्मित हुई हैं, अत-

एव रचना-शैली की दृष्टि से जोशी जी की कहानियों में निम्नलिखित विकासक्रम मिलते हैं :

(१) आरम्भ : पात्र-परिचय और विषय-प्रवेश
(२) पूर्व विकास : केन्द्रीय भाव अथवा चरित्र पर बल
(३) विकास : केन्द्रीय भाव और मुख्य-चरित्र का पूर्ण उद्‌घाटन
(४) मुख्य घटना द्वारा : भाव और चरित्र-विश्लेषण का चरमोत्कर्ष
(५) निष्पत्ति या अंत : पूरे अभिप्राय की निष्पत्ति।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष में वर्णन, चित्रण और कथोपकथन तीनों के रूप परम स्वाभाविक हैं। इस दिशा में विश्लेषणात्मक शैली इनकी मुख्य प्रेरणा है। जहाँ देश-काल-परिस्थिति का चित्रण अथवा वर्णन हुआ है वहाँ की भाषा परम संयत और सुबोध है। जहाँ व्यक्ति-चरित्र का विश्लेषण हुआ है, वहाँ की भाषा वैज्ञानिक और अभिव्यंजक हुई है। इस तरह जोशी की भाषा में बौद्धिकता अधिक है और इसी बौद्धिकता के फलस्वरूप जहाँ-कहीं परिस्थिति के अनुसार भाषा में लयमयता और माधुर्य आना चाहिए वहाँ ये गुण इनकी भाषा में नहीं आ पाते। फिर भी जोशी जी के गद्य में शब्द-संयम, शब्द-निर्माण और भाषा-सौष्ठव आदि तत्व प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

लक्ष्य और अनुभूति

जोशी जी की जितनी कहानियाँ व्यक्तिपरक हैं, उनमें निश्चित रूप से जीवन के मूल्यों पर नैतिक प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है क्योंकि ये कहानियाँ परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप से एक लक्ष्य को लेकर निर्मित हुई हैं, लेकिन विशेषता इनमें यह है कि ये कहानियाँ कहीं भी दृष्टान्त-सी नहीं प्रतीत होतीं। इन कहानियों में कहानीकार का दृष्टिकोण और निश्चित लक्ष्य सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। निष्कर्ष-रूप में लक्ष्य को प्रतिफलित करने की पद्धति जोशी जी की कहानियों में बहुत कम है। दूसरी ओर वे भी कहानियाँ जो अहं के विश्लेषण और उसकी एकान्तिकता पर प्रहार की दृष्टि से लिखी गई हैं, उनके भी निर्माण में लक्ष्य की प्रेरणा है, लेकिन उनके विकास में आत्मानुभूति की भी प्रेरणा बहुत है। जो कहानियाँ कुछ सच्चे चरित्रों और संवेदनाओं को लेकर लिखी गई हैं; जैसे 'खंडहर की आत्माएँ' की कहानियाँ उनके निर्माण में वस्तुतः आत्मानुभूति की ही प्रेरणा सर्वोपरि है व्यापक रूप से जोशी जी की कहानी-कला विश्लेषणात्मक है। इस पर बौद्धिकता की छाप सबसे अधिक है। इसका सबसे बड़ा कारण जोशी जी का कलागत दृष्टिकोण है। बाह्य-अन्तर का तादात्म्य इनकी कहानी-कला में लक्ष्यात्मक गम्भीरता लाता है। इस कलागत दृष्टिकोण को न समझने वाले आलोचक जोशी जी की कहानी-कला के मूल्यांकन में पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। जोशी जी

की कला में अपना एक
जिसे कभी नहीं भुलाया

उपेन्द्रनाथ अश्क'

'अश्क' की कह
विधान के विकास का अ
यथार्थ जीवन और मनो
अश्क की कहानियों का
की आलोचना करती हैं
करती हैं; चरित्र पर त
ओर प्रेरणा करती हैं।

साहित्यिक परिस्थि

प्रेमचन्द की भ
आरंभ वस्तुतः प्रेमचन्द
तक अश्क अपनी कहानी
कालीन कला के प्रभाव
से ही होता है। इनकी
१६२६ ई० की कुछ क
की उर्दू कहानियाँ 'औ
कहानियाँ विशुद्ध रूप स
भूमिका प्रेमचंद ने ही
विद्यमान हैं, जो प्रेमचंद
कहानियाँ रुमानी धरा

उर्दू से हिन्दी में

मुख्यतः प्रेमच
ही सर्वप्रथम इनकी दो
'माधुरी' आदि में प्रका
हिन्दी में आने के लिए
लाने का श्रेय हरिकृष्
चतुर्वेदी जी ने 'कर्म
किया तथा इन्होंने उस
'भाई' आदि कहानियाँ

की कला में अपना एक स्वतन्त्र छंद है, गति है, इसकी अपनी एक विशिष्ट धारा है जिसे कभी नहीं भुलाया जा सकता।

उपेन्द्रनाथ अश्क' :

'अश्क' की कहानी की शिल्पविधि प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा, शिल्प-विधान के विकास का आधुनिक रूप है। जिस तरह प्रेमचन्द की कला व्यक्ति-समाज के यथार्थ जीवन और मनोविज्ञान का सामूहिक प्रतिनिधित्व करती थी, ठीक वही धरातल अश्क की कहानियों का है। यही कारण है कि इनकी कहानियाँ जहाँ एक ओर समाज की आलोचना करती हैं, वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति के मनोविज्ञान की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं; चरित्र पर तीखे व्यंग के साथ पाठक को एक निश्चित आदर्श अथवा लक्ष्य की ओर प्रेरणा करती हैं।

साहित्यिक परिस्थितियाँ

प्रेमचन्द की भाँति अश्क भी उर्दू से हिन्दी में आये। इनकी कहानियों का आरंभ वस्तुतः प्रेमचन्द के प्रभाव और प्रेरणा से हुआ। १९२६ ई० से १९३२ ई० तक अश्क अपनी कहानी-कला के प्रारम्भिक काल में पूर्ण रूप से प्रेमचन्द की विकास-कालीन कला के प्रभाव में थे। उर्दू में इनकी कहानियों का आरम्भ सन् १९२६ ई० से ही होता है। इनकी १९२६ से १९२८ ई० तक की कहानियाँ अप्रकाशित हैं। १९२९ ई० की कुछ कहानियाँ उर्दू नवरत्न में हैं। इनकी १९३० से १९३१ ई० तक की उर्दू कहानियाँ 'औरत की फितरत' नामक उर्दू कहानी-संग्रह में संगृहीत हैं। ये कहानियाँ विशुद्ध रूप से प्रेमचंद की विकास-कालीन कला के उदाहरण हैं। इसकी भूमिका प्रेमचंद ने ही लिखी थी। वस्तुतः इन कहानियों की शिल्पविधि में वे सब तत्व विद्यमान हैं, जो प्रेमचंद की विकास कालीन कला की मुख्य देन हैं। इनमें से कुछ कहानियाँ रुमानी धरातल से लिखी गयी हैं, लेकिन शिल्पविधान समान ही है।

उर्दू से हिन्दी में आगमन

मुख्यतः प्रेमचन्द की ही प्रेरणा से अश्क उर्दू से हिन्दी में आये। प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम इनकी दो-एक कहानियों को उर्दू से हिन्दी में अनूदित करा कर 'हंस', 'माधुरी' आदि में प्रकाशित किया। 'औरत की फितरत' की भूमिका में प्रेमचन्द ने इन्हें हिन्दी में आने के लिए पूर्ण रूप से प्रेरित किया। प्रेमचन्द के अतिरिक्त इन्हें हिन्दी में लाने का श्रेय हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशङ्कर भट्ट और माखनलाल चतुर्वेदी को है। चतुर्वेदी जी ने 'कर्मवीर' के लिए हिन्दी कहानियाँ लिखने को इन्हें आमंत्रित किया तथा इन्होंने उसके लिए 'संवाददाता', 'कलाकार', 'सतीत्व का आदर्श' और 'भाई' आदि कहानियाँ लिखीं। इसी समय 'प्रेम की वेदी' जो आगे चलकर 'जुदाई की

शाम का गीत' शीर्षक से आयी है; 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई, और इस तरह १९३२ ई० से अश्क ने नियमित रूप से हिन्दी कहानियाँ लिखना आरंभ किया और १९३३ ई० तक अर्थात् एक ही वर्ष में इन्होंने अनेक अच्छी कहानियाँ लिखीं।

आलोचनात्मक दृष्टि से १९३३ ई० तक की कहानियाँ; जैसे 'नज्जियाँ', 'जुदाई की शाम का गीत', 'मरीचिका', 'निशानियाँ' और 'फूल का अंजाम' आदि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की कहानियाँ हैं, लेकिन इसी समय इन्होंने 'चित्रकार की मौत', 'नरक का चुनाव' और 'तीन सौ चौबीस' जैसी विशुद्ध यथार्थवादी कहानियाँ भी लिखीं। वस्तुतः इसी यथार्थवादी परम्परा को लेकर अश्क का वास्तविक विकास हुआ और इनका कलात्मक व्यक्तित्व इसी प्रवृत्ति का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। स्पष्ट शब्दों में हम यों भी कह सकते हैं कि १९३३ ई० का काल अश्क की कहानी-कला का वह संक्रान्ति-बिन्दु है, जहाँ से ये कहानी का रुमानी धरातल और प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को छोड़ कर विशुद्ध यथार्थवादी दिशा की ओर बढ़े और इसकी परम्परा के अनुकूल इनके शिल्पविधान का निर्माण हुआ।

कथानक

अश्क की कहानियों के कथानक परम स्पष्ट और आदि, मध्य तथा अन्त अपने तीनों रूपों में पूर्ण परिष्कृत रहते हैं। लगता है कि कहानीकार ने संवेदना के स्वाभाविक विकास से अपने कथानक को खूब सँवारा है। इस स्पष्टता और परिष्कार के स्पष्ट कारण हैं। अश्क की कहानियों की संवेदना हम सबकी संवेदना होती है—विशेषकर मध्य वर्ग की। जिस समस्या को लेकर कथानक का निर्माण होता है, वह समस्या भी हमारी नित्यप्रति की समस्या होती है। फलतः यहाँ कथानक का रूप चाहे व्यंजनात्मक हो चाहे अपूर्ण, पाठक के लिए सर्वथा स्पष्ट रहता है। दूसरी ओर उनकी कहानियों के कथानकों में एक समता और केन्द्रीय भावना परम सफलता से विद्यमान रहती है। मूल कथानक के साथ प्रायः कहीं भी उपकथा, अन्य कथा अथवा अन्तर्कथा की व्यवस्था नहीं रहती। कथानक सदैव किसी निश्चित समस्या या भाव को लेकर आरम्भ होता है और इसी भाव या समस्या के किनारे-किनारे पूरा कथानक अपनी एक समता के साथ केन्द्रीभूत रहता है।

विधान की दृष्टि से अश्क के कथानक-निर्माण में दो शैलियाँ हैं : प्रथम, वर्णनात्मक ढंग से घटना-चक्र से और कार्यों के तादात्म्य से; द्वितीय, कथासूत्र के पूर्व विकास और उत्तर-विकास के कलात्मक संयोग से। पहले के उदाहरण में उस वर्ग की कहानियाँ आती हैं, जो नैतिक व्यंग और सामाजिक आलोचना-सूत्र को लेकर लिखी गई हैं; जैसे 'वह मेरी मंगेतर थी', 'तीन सौ चौबीस', 'चारा काटने की मशीन', 'डायरी', 'गोखरू', 'काले-साहब' और 'काँगड़ा का तेली' आदि। इन सब कहानियों

की संवेदना जीवनगत व्यंग और कटु आलोचना से सम्बद्ध और इनके कथानकों के निर्माण में व्यक्ति के जीवन-संबंधी सहज घटना-चक्रों तथा परिस्थितियों के आरोह-अवरोह एक-सूत्रता में पिरोये गये हैं। दूसरे के उदाहरण में उस शैली की कहानियाँ आती हैं जो प्राय: प्रतीकात्मक हैं अथवा जिनके कथा-विन्यास में पूर्व और उत्तर-स्थितियाँ चिन्तन, स्मृति आदि के माध्यम से वर्तमान स्थिति में पिरायी गयी हैं; जैसे 'नासूर', 'चट्टान', 'अंकुर', 'उबाल', 'बैंगन का पौदा' और 'पिंजरा' आदि। 'पिंजरा' का कथानक शान्ति की वर्तमान स्थिति को लेकर आरम्भ होता है। वह किस भाँति इतने धनी प्रतिष्ठित पति के घर, संस्कार-व्यवहार के पिंजड़े में बन्दिनी बनकर बैठी है, किस तरह उसका व्यक्तित्व, उसकी सत्ता मिट गयी है, इसी मन:स्थिति और द्वंद्व में वह एक पत्र लिखने को है। बार-बार वह पत्र लिखती है और बार-बार उसे फाड़ देती है और वह पाँचवाँ पत्र था। तब कहीं बैठे-बैठे उसकी आँखों के सामने अतीत के कई चित्र घूम गये। यहाँ से कथानक अपनी पूर्व कथा की ओर मुड़ता है : "तब शान्ति गरीब थी। उसके पति लाँड्री का काम करते थे। गोमती एक काली-कलूटी निम्नकोटि की लड़की शांति की बहन बन गयी। वही गोमती आज दोपहर को, बहुत दिनों के बाद फिर शांति के घर आयी। शांति ने उसका स्वागत पहले की भाँति किया। उस पर शांति के पति, जो आज धनी व्यक्ति हो गये हैं, क्रुद्ध होते हैं और शान्ति की स्थिति पिंजरे में पड़े हुए पक्षी की भाँति हो जाती है। वह गोमती को लिखे हुए खत को फाड़ देती है।" वस्तुत: ऐसे कथानक के शिल्पविधान के पीछे व्यक्ति-अध्ययन और उसके मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रेरणा सबसे अधिक है। प्रथम प्रकार के कथानक की संवेदना जहाँ स्थूल होती है, वहाँ दूसरे प्रकार के कथानक की संवेदना अपेक्षाकृत सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक होती है।

चरित्र

अश्क की कहानी-कला में चरित्र सीमित हैं, लेकिन इस सीमित क्षेत्र में भी उनके चरित्रों में विविधता है। उनके समस्त चरित्र विशुद्ध रूप से हमारे जीवन के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उनकी अवतारणा सर्वथा स्वाभाविकता और मानवीय तत्वों के धरातल से हुई है। वस्तुत: अश्क का यथार्थवादी दृष्टिकोण मुख्यत: उनके चरित्रों के ही माध्यम से व्यक्त हुआ है। चरित्र मुख्यत: दो भागों में रखे जा सकते हैं—

(१) साधारण चरित्र

(२) प्रतिनिधि चरित्र

साधारण चरित्र

साधारण चरित्रों में अश्क ने परिवार के भाई-बहन, प्रेमी-प्रेमिका से लेकर

नौकर, किसान, मजदूर, व्यावसायिक और अन्य छोटे-मोटे कर्मचारियों को लिया है। साधारण चरित्रों में इन्होंने उन्हीं चरित्रों को लिया है जो सर्वसुलभ और व्यापक हैं। अश्क ने इन्हीं पूर्ण परिचित चरित्रों को लिया है और उनके रहस्योद्‌घाटन से पाठक को आश्चर्यचकित कर दिया है। 'काले साहब' का रिक्शा वाला, 'बगूले' का दुल्ले, 'डाची' का बाकर, 'तीन सौ चौबीस' का हैदर, और 'उबाल' का चंदन इसके अमर उदाहरण हैं। इन्हीं साधारण चरित्रों के सहारे इन्होंने सामाजिक वैषम्य और जन-संघर्षों का चित्रण किया है। इस दिशा में कुछ चरित्र अपनी सामाजिक परम्परा, नैतिक मानदंडों तथा आर्थिक व्यवस्था से इतने दुखी और शोषित दिखाए गए हैं कि इनके प्रति पाठक की सहज संवेदना और करुणा का जागृत होना स्वाभाविक हो गया है। ये साधारण चरित्र एक ओर मौन विद्रोह के प्रतीक हैं, दूसरी ओर ये मानवीय संवेदना से ओतप्रोत हैं। इनकी दुर्बलताएँ, परम्परा-निष्ठा, विश्वास तथा जीवन-संघर्ष सब हमारे हैं और इनके चरित्र-चित्रण हमारे जीवन के चित्रण हैं।

प्रतिनिधि चरित्र

अश्क के प्रतिनिधि चरित्र विशुद्ध यथार्थवादी परम्परा के हैं। इनकी अवतारणा कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक स्थितियों और भावों के आधार पर हुई है। इन चरित्रों का प्रायः स्वतंत्र व्यक्तित्व न होकर ये चरित्र के प्रतिनिधि-रूप अथवा 'टाइप' हो गए हैं। अश्क की जितनी कहानियाँ प्रतीकात्मक हैं, उनके चरित्र प्रायः इसी कोटि में आते हैं। चरित्र अलग-अलग मनःस्थितियों, समस्याओं और द्वन्द्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा में मनःस्थितिगत विशेषताएँ मुख्य रूप से व्यक्त हुई हैं और ये चरित्र उन स्थितियों के सफल प्रतिनिधि हैं अर्थात् इनके चरित्र सापेक्षिक अधिक हैं, निरपेक्ष कम। 'पिंजरा' की शान्ति, हमारे ह्रासोन्मुख सामाजिक संस्कार का प्रतीक है। 'गोखरू' की मालती' और 'पत्नीव्रत' के खन्ना साहब, क्रमशः स्त्री-संस्कार, निर्बलता और स्वार्थ के प्रतिनिधि चरित्र हैं। 'अंकुर' की शंकरी और 'उबाल' का चन्दन क्रमशः अतृप्त इच्छाशक्ति के उदाहरण हैं। इसी तरह 'नासूर' का सुरजीत और ईश्वर वैवाहिक वैषम्य और अस्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के उदाहरण हैं। 'बैंगन का पौदा' का बुड्ढा सामाजिक वैषम्य और शोषण का वह प्रतीक है जिसकी सीमा उस क्यारी तक नहीं समाप्त होती जहाँ वह सूखा सिकुड़ा हुआ पीला बैंगन का पौधा खड़ा है, वरन् उसकी सीमा हर एक फुटपाथों, चालों, गंदी सड़कों, गंदी गलियों और अनेक ठंडे बरामदों तक फैली हैं, जहाँ एक ओर धनी वर्ग जाड़े की रात में सुख से सोता है, दूसरा उसके बरामदे में बाहर ठंडक से अकड़ कर मर जाता है। व्यापक रूप से ये प्रतिनिधि चरित्र हमारे जीवन-दर्शन के प्रतीक अधिक हैं, चरित्र कम। अश्क का चरित्र-विधान पूर्ण मानवीय धरातल पर स्थित है।

शैली

'अश्क' में रचना-
है। वस्तुतः ये उस संस्था
भाव-पक्ष को अपना साध्य
विधान तीन शैलियों में

(१) कथात्मक
(२) प्रतीकात्मक
(३) चिन्तन (

कथात्मक शैली

'अश्क' की परम
शैली में लिखी हैं। इस
उल्लेखनीय हैं। वर्णनात्
की अविच्छिन्न एक सूत्र
अक्षुण्ण रहती है। इस
गई हैं, जैसे 'काले साहब
रूप में रेखाचित्र अधिक

प्रतीकात्मक शैली

अश्क कहानी के
के सहारे से व्यक्ति की
हैं, तब इनकी कहानियाँ
एक ओर चरित्र का मन
इसको मूल स्रोत मानते
रूप में क्रमशः जन्म औ
का पौदा' में कहानी की
उसके चारों घूमती है अ
का मनोविश्लेषण भी हो

चिन्तन-शैली

रचना-विधान
निर्माण ऐतिहासिक ढंग
के सहारे पूर्व विकास

शैली

'अश्क' में रचना-कौशल अवश्य है, लेकिन इनमें विभिन्नता उतनी विशेष नहीं है। वस्तुतः ये उस संस्थान के कहानीकार हैं, जो शिल्पविधि की अपेक्षा कहानी के भाव-पक्ष को अपना साध्य मानते हैं। अध्ययन की दृष्टि से इनकी कहानियों में रचना-विधान तीन शैलियों में है—

(१) कथात्मक शैली
(२) प्रतीकात्मक शैली
(३) चिन्तन (Reflective) शैली

कथात्मक शैली

'अश्क' की परम स्वाभाविक शैली यही है। अधिकांश कहानियाँ इन्होंने इसी शैली में लिखी हैं। इस दिशा में अश्क की कुछ कलागत विशेषताएँ निश्चित रूप से उल्लेखनीय हैं। वर्णनात्मकता का मुख्य धरातल इन्होंने चरित्र-चित्रण लिया है। कथा की अविच्छिन्न एक सूत्रता देश-काल-परिस्थिति के चित्रण के साथ आदि से अंत तक अक्षुण्ण रहती है। इस शैली के अंतर्गत जो कहानियाँ मात्र चरित्र के धरातल से लिखी गई हैं, जैसे 'काले साहब', 'ज्ञानी' और 'कालू' आदि, ये कहानियाँ अपने कलात्मक रूप में रेखाचित्र अधिक हो गई हैं।

प्रतीकात्मक शैली

अश्क कहानी के केन्द्र-बिन्दु से कभी दूर नहीं हटते और जब कभी किसी प्रतीक के सहारे से व्यक्ति की कोई मानसिक स्थिति या कुरीति को कहानी का साध्य बनाते हैं, तब इनकी कहानियाँ विशुद्ध रूप से रूपकात्मक हो जाती हैं। प्रतीकों के सहारे एक ओर चरित्र का मनोविश्लेषण करते हैं, दूसरी ओर कहानी के समूचे विधान में इसका मूल स्रोत मानते हैं। 'अंकुर' और 'बैंगन का पौदा' में दोनों प्रतीक अपने स्थूल रूप में क्रमशः जन्म और मरण के रूप में आये हैं। रचना-विधान की दृष्टि से 'बैंगन का पौदा' में कहानी की सारी संवेदना उसी बैंगन के पौधे को अपना केन्द्र बना कर उसके चारों घूमती है और कहानी का निर्माण हो जाता है और इसी प्रकाश में बुड्ढे का मनोविश्लेषण भी हो जाता है।

चिन्तन-शैली

रचना-विधान की दृष्टि से, चिन्तन-शैली में वे कहानियाँ आती हैं जिनका निर्माण ऐतिहासिक ढंग से न होकर मुख्य चरित्र की पूर्व स्मृति या उसके आत्म-चिन्तन के सहारे पूर्व विकास का सम्बन्ध मिलाया गया हो। 'पिंजरा' समूची कहानी का

रचना-विधान शान्ति की पूर्व स्मृति में केन्द्रित है। 'दूलो' में 'मैं' के चिन्तन के माध्यम से दूलो के जीवन का पूर्व भाग उसके वर्तमान जीवन के भाग से मिल कर पूरी कहानी को पूरा करता है। 'पत्नीव्रत' में इस शैली का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। कहानी का आरम्भ अस्पताल में लक्ष्मी की मृत्यु के दृश्य से होता है और इसके विकास में निम्नलिखित विकास-क्रम आए हैं—

(१) लक्ष्मी और उसके पति खन्ना का पूर्व प्रेम : पूर्व विकास :
(२) उसकी लाश को उठाने के लिए स्ट्रेचर का आना : उत्तर विकास :
(३) लक्ष्मी यक्ष्मा की रोगी कैसे हुई : पूर्व विकास :
(४) लक्ष्मी की वर्तमान स्थिति का चित्रण : उत्तर विकास :
(५) लक्ष्मी और खन्ना में गहने का द्वन्द्व : पूर्व विकास :
(६) खन्ना का न लौटना, पता चलना कि वे शादी करने चले गए हैं। : चरम विकास :

यहाँ पूर्व विकास और चरम विकास दोनों का क्रमिक तादात्म्य उपस्थित किया गया है। वस्तुतः अश्क की यह शैली पूर्ण कलात्मक है।

व्यापक दृष्टि से इनकी कहानियों के आरम्भ, विकास और अंत तीनों भाग अत्यन्त स्पष्ट और निश्चित होते हैं। चरमसीमा पर इन्होंने विशेष बल दिया है।

शैली का सामान्य पक्ष

शैली के सामान्य पक्ष में अश्क की कहानियों में चरित्र-वर्णन काफी स्वाभाविक हुए हैं। देश-काल-परिस्थिति के चित्रण में नाटकीयता आई है। घटनाओं की निष्पत्ति और चरित्र-प्रवेश के पूर्व इन्होंने सर्वथा नाटकीय परिपार्श्व देने का प्रयत्न किया है। अश्क के कथोपकथन इनकी शैली के प्रमुख अंग हैं। इनकी भाषा प्रेमचंद की भाषा की अनुवर्तिनी है। इसमें कहीं-कहीं पंजाबी और उर्दू की गति के कारण एक अजीब अटपटा भोलापन आ गया है।

लक्ष्य और अनुभूति

अश्क की कहानी-कला में सोद्देश्यता सबसे अधिक स्पष्ट है। विशेषकर जितनी कहानियाँ समाज-व्यक्ति की आलोचना के धरातल से लिखी गई हैं, उनमें चरित्रगत, नीतिगत और सामाजिक मान्यतागत कोई-न-कोई लक्ष्य निश्चित रूप से रहता है। उसी लक्ष्य को केन्द्र मान कर अश्क की कहानी-कला अग्रसर होती है। जो कहानियाँ व्यक्ति की विशेष मनःस्थिति को लेकर लिखी गई हैं, केवल उन्हीं के निर्माण में अनुभूति की प्रेरणा मुख्य रूप से रही है, लेकिन सैद्धान्तिक रूप से अश्क कहानी में सोद्देश्यता के पक्षपाती हैं।

अश्क एक सफल क
हैं। इन दोनों व्यक्तित्व की
व्यंग, तिलमिला देने वाले
चित्रण इन की कहानी-कल
सामाजिक जीवन
धरातल पर कहानियाँ लि
'निराला' के भी नाम उल्ले
मौलिक प्रतिभा भी है और
कार व्यापक रूप से जीवन
जीवन-दर्शन के सम्बन्ध
अश्लीलता दोनों व्यक्ति-स
'निराला' ने मुख्यतः जीव
जीवन-दर्शन, मानव-संवेद
से लिए गये है।

भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण व
दोनों में बहुत थोड़ा-सा
में दो रूप पूर्णतः स्पष्ट
के समीप हैं; जैसे 'दो पह
द्वितीय, इनकी कहानिय
फलतः शैली-विधान में
'मृत्यु', 'कायरता' और
विधान में भूमिका, तर्क
में ये कहानियाँ लघु कह

'निराला' :

'निराला' की
की नहीं। कला-पक्ष में
विधान में वर्णनात्मकत
शैली इनकी कहानी-क
में उत्कृष्ट हैं कि ये स

१. दो बाँके :

अश्क एक सफल कहानीकार के अतिरिक्त नाटककार और मान्य उपन्यासकार हैं। इन दोनों व्यक्तित्व की प्रेरणा इनकी कहानी-कला में स्पष्ट है। नाटक के तीखे व्यंग, तिलमिला देने वाले छींटे और औपन्यासिक शैली से देश-काल-परिस्थिति के चित्रण इन की कहानी-कला की मुख्य विशेषताएँ हैं।

सामाजिक जीवन की इकाइयों अथवा व्यक्तिगत जीवन के विभिन्न पहलुओं के धरातल पर कहानियाँ लिखने वालों में भगवतीचरण वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के भी नाम उल्लेखनीय हैं क्योंकि इन दोनों कहानीकारों की कला में अपनी मौलिक प्रतिभा भी है और शिल्प-विधान के आकर्षण भी। वस्तुतः ये दोनों कहानीकार व्यापक रूप से जीवन-दर्शन की ही प्रवृत्ति में आते हैं। भगवतीचरण वर्मा ने जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है कि नैतिकता और अश्लीलता दोनों व्यक्ति-सापेक्ष्य हैं। वस्तुतः इनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।[1] 'निराला' ने मुख्यतः जीवन को परम स्वस्थ और व्यापक दृष्टिकोण से देखा है। इसमें जीवन-दर्शन, मानव-संवेदना और चरित्र-निष्ठा ये तीनों पक्ष अत्यन्त स्वस्थ दृष्टिकोण से लिए गये है।

भगवतीचरण वर्मा :

भगवतीचरण वर्मा की कहानी-कला मुख्यतः प्रेमचन्द-संस्थान के समीप है। दोनों में बहुत थोड़ा-सा ही कलागत अन्तर है। इनकी कहानियों के व्यापक शिल्पविधान में दो रूप पूर्णतः स्पष्ट हैं, प्रथम, इनकी कहानियाँ चरित्र-प्रधान हैं, फलतः ये रेखाचित्र के समीप हैं; जैसे 'दो पहलू', 'विवशता' 'पराजय और मृत्यु', 'प्रेजेंट्स' और 'इन्स्टालमेंट' द्वितीय, इनकी कहानियाँ बौद्धिक विचारों और समस्याओं को लेकर लिखी गई हैं, फलतः शैली-विधान में ये व्यक्तिगत निबन्ध हो गई हैं; जैसे 'दो बाँके', 'पराजय' अथवा 'मृत्यु', 'कायरता' और 'प्रायश्चित' आदि। इन सब कहानियों की शैली, रचना-विधान में भूमिका, तर्क-वितर्क और अंत में दृष्टान्त की प्रेरणा स्पष्ट है। रूप-विधान में ये कहानियाँ लघु कहानी हैं।

'निराला' :

'निराला' की कहानियों में मुख्यतः भाव-पक्ष की सम्पत्ति अतुल है, कलापक्ष की नहीं। कला-पक्ष में इनकी कहानियाँ प्रेमचन्द-संस्थान में ही आती हैं। रचना-विधान में वर्णनात्मकता, कथा-विधान में इतिवृत्त तथा शैली की दृष्टि से ऐतिहासिक शैली इनकी कहानी-कला के मुख्य पक्ष हैं। वस्तुतः 'निराला' की कहानियाँ इस अर्थ में उत्कृष्ट हैं कि ये समाज के सभी पात्रों को छूती हैं, विशेषकर उनको जहाँ शोषण

---

१. दो बाँके : भूमिका, पृ० १।

है, संघर्ष है। इनकी कहानियाँ अपनी मार्मिकता और संवेदना के सहारे मानव-विश्लेषण और अध्ययन में सफल हुई हैं, उतनी ही सफलता उन्हें इस सत्य की प्रतिष्ठा में मिली है कि मानव-जीवन अपनी समस्त सीमाओं और संघर्षों के रहते भी महान और सुन्दर है।

यशपाल :

यशपाल की कहानियों का धरातल मुख्यतः निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियाँ हैं, जिनका मूल केन्द्र द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। अतएव यशपाल की कहानी कला में समाज अपने दोनों पक्षों में ही लिया गया है। प्रथम, शोषित और शोषक दृष्टियों से, जिसमें समाज का अध्ययन इसे पूँजीपति और सर्वहारा दो वर्गों में बाँट कर किया गया है। इसी के साथ-साथ समाज का सांस्कृतिक पक्ष भी लिया गया है, जहाँ पुरातन धार्मिकता और परम्परा की कटु आलोचना की गई है और उनके स्थान पर आधुनिक आर्थिक शक्तियों को महत्व दिया गया है अर्थात् समाज का अध्ययन मुख्यतः अर्थ के धरातल से किया गया है। दूसरे पक्ष में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को लेकर कहानियाँ लिखी गई हैं और नये-नये मापदण्डों और मान्यताओं की प्रतिष्ठा के फलस्वरूप इनकी कहानियों में मनोविश्लेषण और व्यक्ति की कर्म-प्रेरणाओं का विवेचन सर्वथा अनूठे ढंग से हुआ है।

कथानक

यशपाल की कहानियाँ समस्या-प्रधान हैं तथा सामयिकता और यथार्थवादिता उसके दो प्रमुख पक्ष हैं। फलतः इनके कथानकों के मुख्यतः दो रूप हैं। जो कहानियाँ मानसिक विश्लेषण अथवा व्यक्ति-संघर्ष को लेकर लिखी गई हैं, उनके कथानक प्रायः छोटे और सूक्ष्म हैं। उनके निर्माण में जीवन के उस पक्ष से सम्बन्धित दो-एक घटनाएँ हैं, अथवा कार्य-संकेत हैं; जैसे 'काला आदमी', 'आदमी का बच्चा', और 'रोटी का मोल' आदि कहानियों के कथानक अपूर्ण-से लगते हैं, लेकिन उनमें कलात्मक आग्रह बहुत है। दूसरी ओर जो कहानियाँ व्यापक जीवन-संघर्ष और मनुष्य के कार्यों और कर्म-प्रेरणाओं के विवेचन के प्रकाश में लिखी गई हैं, उनके कथानक अपेक्षाकृत लम्बे, इतिवृत्तात्मक और पूर्ण हुए हैं। उनके निर्माण में कभी-कभी महीनों, वर्षों की घटनाओं का विवरण और कार्य-व्यापार सम्बद्ध हुए हैं। 'उत्तराधिकारी', 'फूलों का कुर्त्ता', 'दास धर्म', 'मक्रील', 'हिंसा' और 'पराई' आदि कहानियों के कथानक इस दिशा में इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। व्यापक दृष्टि से यशपाल में कथा-विधान की विविधता और प्रयोग का आग्रह नहीं है। समस्त कथानक सीधे, स्पष्ट और लक्ष्यात्मक हैं।

चरित्र

यशपाल की समस्त कहानियों में चरित्र-अवतारणा मुख्यतः आर्थिक संघर्ष और

वर्ग-चेतना के धरातल से
व्यापक है कि इन्होंने इति
को लिया है। परन्तु इस
हैं। इनके चरित्र सर्वथा
इसका सबसे बड़ा कारण
जातियों, उम्रों और स्थि
प्रतिष्ठा इनके चरित्रों में
विद्रोह दोनों पक्ष विशिष्ट
तारणा की है। अतएव
आदर्श चरित्र नहीं हैं, यव
निर्मित हुए हैं।

शैली

शिल्प-प्रयोग की
है कि इनमें शैलीगत वि
कथावर्णन, कथोपकथन
तत्वों के कलात्मक तादा
और अन्त में इतनी कला
करना कठिन हो जाता है
अधिक है। इनकी छोटी
'शर्त', 'दुःख', 'तीसरी नि
आदि इनकी शिल्प-विधि
और निर्णयहीन हैं। इसक
मान्यताएँ सामाजिक तथा
अस्पष्ट हैं।

शैली के सामान्य
परिस्थिति के अनुकूल हैं
है, कहानियों की भाषा स
जैनेन्द्र और जोशी जी आ
यशपाल ने नहीं।

लक्ष्य और अनुभूति

यशपाल की प्राय

वर्ग-चेतना के धरातल से हुई है, लेकिन इस दिशा में यशपाल का दृष्टिकोण इतना व्यापक है कि इन्होंने इतिहास, पुराण, समाज और कल्पना-जगत् से अन्यान्य चरित्रों को लिया है। परन्तु इस व्यापकता में यशपाल के चरित्रों की दो मान्यताएँ सर्वत्र व्याप्त हैं। इनके चरित्र सर्वथा सर्वसाधारण, यथार्थ और मानव-संघर्षों के प्रतीक होते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि इन्होंने अपनी कहानियों में अधिक-से-अधिक वर्गों जातियों, उम्रों और स्थितियों के चरित्रों को लिया है। चरित्र-चित्रण और व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा इनके चरित्रों में प्रायः सर्वत्र हुए हैं। इनके चरित्रों के व्यक्तित्व में संघर्ष और विद्रोह दोनों पक्ष विशिष्ट हैं। इन पक्षों से इन्होंने पूर्ण यथार्थवादी चरित्रों की अवतारणा की है। अतएव यशपाल के चरित्र-विधान में जैनेन्द्र, अज्ञेय सरीखे एक भी आदर्श चरित्र नहीं हैं, यद्यपि उनके चरित्र प्रायः संघर्ष और विद्रोह के धरातल से निर्मित हुए हैं।

शैली

शिल्प-प्रयोग की दृष्टि से यशपाल में इसका आग्रह बहुत कम है, यही कारण है कि इनमें शैलीगत विविधता और व्यापकता नहीं है। कहानियों की रचना-शैली में कथावर्णन, कथोपकथन और चरित्र-चित्रण मुख्यतः यही तीन तत्व हैं, लेकिन इन तीनों तत्वों के कलात्मक तादात्म्य में यशपाल अपूर्व हैं। संपूर्ण कहानी अपने आरम्भ, विकास और अन्त में इतनी कलात्मकता से गुँथी रहती है कि इन भागों को एक-दूसरे से अलग करना कठिन हो जाता है। अतएव इनकी कहानियों के पठन में प्रभाव की तीव्रता अधिक है। इनकी छोटी कहानियाँ जो शैली की दृष्टि से रेखा-चित्र अधिक हैं; जैसे 'शर्त', 'दुःख', 'तीसरी चिन्ता', 'आदमी का बच्चा', 'चार आने' और 'जीत का हार' आदि इनकी शिल्प-विधि की सुन्दर कहानियाँ हैं। इन कहानियों के अन्त प्रायः अस्पष्ट और निर्णयहीन हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि संक्रान्ति-युग में कहानीकार की मान्यताएँ सामाजिक तथा अन्य मानवीय सम्बन्धों पर स्वयं ही अनिश्चित और अस्पष्ट हैं।

शैली के सामान्य पक्ष में यशपाल में वर्णन और चित्रण पूर्ण स्वाभाविक और परिस्थिति के अनुकूल हैं। भाषा-शैली में इनका भी गद्य अपना अलग सौन्दर्य रखता है, कहानियों की भाषा संवेदना के अनुकूल रहती है, लेकिन यह अवश्य है कि अज्ञेय, जैनेन्द्र और जोशी जी आदि ने भाषा, गद्य-शैली को जितना महत्व दिया है उतना यशपाल ने नहीं।

लक्ष्य और अनुभूति

यशपाल की प्रायः समस्त प्रतिनिधि कहानियाँ लक्ष्यात्मक हैं। इनके निर्माण में

लक्ष्य की ही प्रेरणा प्रधान है। लक्ष्य में आर्थिक संघर्ष और वर्गचेतना का आग्रह सर्वत्र स्पष्ट है। वर्ग-चेतना में पूँजीपति और सर्वहारा के अतिरिक्त जितनी कहानियाँ इन्होंने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों और नैतिक मान्यताओं को लेकर लिखी हैं, उनमें नये-नये मूल्यों, मान्यताओं की उद्देश्यता प्रधान है। सभ्यता, संस्कृति, आस्था, ईश्वर आदि के प्रश्नों में भी यही प्रेरणा कार्य कर रही है। इसके फलस्वरूप इनकी कहानियों में कहीं-कहीं अस्वाभाविक उग्रता और नग्नता आ गई है। अनुभूति की प्रेरणा मुख्यत: चरित्र-विश्लेषण और उनकी कर्म-प्रेरणाओं के अध्ययन में है।

यशपाल मुख्यत: समाजालोचन के कहानीकार हैं। जिस आर्थिक दर्शन अथवा मार्क्सवाद की प्रेरणा इनकी कहानी-कला में है उससे जो प्रकाश हमारे नैतिक प्रश्नों और सामाजिक मान्यताओं पर पड़ा है, वह सदा उल्लेखनीय है।

पहाड़ी :

सीमित यौनवाद की प्रेरणा पहाड़ी की कहानी-कला का मुख्य केन्द्र है। स्त्री-पुरुष के समस्त रूपों और सम्बन्धों में इन्होंने केवल ऐन्द्रिक सम्बन्ध को अपनी कहानियों का चरम साध्य बनाया है। वस्तुत: फ्रायड ने जिस सेक्स के प्रकाश में सामाजिक सम्बन्धों और नैतिक प्रश्नों की व्याख्या की है, उसमें आश्चर्यजनक व्यापकता और विस्तृत कर्म-प्रेरणाओं के विवेचन हैं। अस्पष्ट से अस्पष्ट, संश्लिष्ट से संश्लिष्ट और अवचेतन जगत् की गुत्थियों को उसने मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों से उपस्थित किया है। अतएव फ्रायड की मनोविश्लेषण-पद्धति ने मानव-हृदय-जगत् के अध्ययन का एक नूतन मार्ग खोला है। दूसरी ओर उसने केवल सेक्स को ही चिरंतन सत्य मानकर शेष समस्त सामाजिक सम्बन्धों को कृत्रिम और अप्राकृतिक माना है। काम-वासना और उसकी तृप्ति को उसने प्रकृति का एकमात्र अनिवार्य धर्म माना है।

पहाड़ी कहानियाँ फ्रायड के इसी दूसरे पक्ष को अपना धरातल बनाकर निर्मित हुई हैं। इनकी कहानियों की संवेदना प्राय: सेक्स-समस्या है। इस समस्या को भी इन्होंने केवल एक सीमित क्षेत्र में लिया है। प्राय: सभी कहानियों के कथानक काम-वासना के द्वन्द्व में विकसित होकर उसकी चरम परिणति पर समाप्त होते हैं। चरित्र-अवतारणा की भी दिशा में सभी चरित्र केवल दो पक्षों से सामने आते हैं। कुछ पुरुष-चरित्र प्राय: धनी उच्च वर्ग के हैं और प्रतिष्ठित हैं, लेकिन काम-वासना में असमर्थ हैं। इनके स्थान की पूर्ति प्राय: निम्न वर्ग के गरीब युवक करते हैं। स्त्री-चरित्र केवल शारीरिक आदि वासना की भूख और अतृप्ति के धरातल से अवतरित हुए हैं। इतने सीमित क्षेत्र में शिल्पविधि की दृष्टि से, पहाड़ी में कथा-विधान और चरित्र-विधान बहुत ही निम्नकोटि के हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि, सेक्स

की दिशा में, फ्रायड ने जि
पहाड़ी की कला में नहीं है
लेकर इन्होंने नग्न वासन
कहानियों में किया है। '
रानी', 'एस्प्रिन की टेबुले
इस दिशा की प्रतिनिधि

कह

अभी तक हम क
प्रवृत्तियों की चर्चा करते
प्रेरणा कहानियों को कथ
अब कई प्रकार के स्वीकृ
निम्नलिखित हैं :

१. रेखा-चित्र (
२. सूचनिका (

रेखा-चित्र

मशीन और वि
फलस्वरूप मनुष्य और
सामाजिक जीवन के सा
तरह जीवन की द्रुतगा
अभिनव रूप-विधानों क
सशक्त और प्रभावशाली
व्यक्त हुआ। इसके उप
अन्तर्गत आई। कहानी
विकता के किसी अंग-वि
संवेदनशील चित्र उपस्थि
आंतरिक सुन्दरता रेखा
आंतरिकता भी व्यंजित
देन है, इसलिए इस कल
या विशेष अंग को ही प्र
का चित्र व्यंजित कर दे
को पूर्ण यथार्थवादी दृ

की दिशा में, फ्रायड ने जिस मनोविश्लेषण की पद्धति दी है, उसका प्रयोग कहीं भी पहाड़ी की कला में नहीं है। केवल साधारण कथा-विधान और सीमित चरित्रों को लेकर उन्होंने नग्न वासना, अतृप्ति, शारीरिक भूख और यौन-विकारों का चयन अपनी कहानियों में किया है। 'चार विराम', 'हिरन की आँखें', 'यथार्थवादी रोमांस', 'राज रानी', 'एस्प्रिन की टेबुलेट', 'केवल प्रेम ही विश्राम' और 'लाक्षणिक पुरुष' इनकी इस दिशा की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

कहानी-शिल्पविधि में प्रयोगशीलता

अभी तक हम कहानी-शिल्पविधि के सर्वाङ्गपूर्ण विकास और उसकी मुख्य प्रवृत्तियों की चर्चा करते आ रहे थे। इधर कहानी-शिल्पविधि में प्रयोगशीलता की प्रेरणा कहानियों को कथा और इतिवृत्त के स्पष्ट आकार से बहुत दूर ले गई है और अब कई प्रकार के स्वीकृत कला-रूप इसके अन्तर्गत आ गये हैं, जिनके मुख्य रूप निम्नलिखित हैं :

१. रेखा-चित्र (Sketch)
२. सूचनिका (Reportas)

रेखा-चित्र

मशीन और विद्युत ने वर्तमान युग को इतना द्रुतगामी बना दिया कि इसके फलस्वरूप मनुष्य और समाज के जीवन में आमूल परिवर्तन उपस्थित हो गया। सामाजिक जीवन के सामने नित्य नई-नई समस्याएँ और उसके फल आते रहे। इस तरह जीवन की द्रुतगामी वास्तविकता से कला के सामंजस्य ने भावाभिव्यक्ति के उक्त अभिनव रूप-विधानों को जन्म दिया। इन रूप-विधानों में रेखाचित्र सबसे अधिक सशक्त और प्रभावशाली है। हिन्दी-साहित्य में रेखाचित्र सबसे पहले काव्य में अभिव्यक्त हुआ। इसके उपरान्त चित्रकला में, फिर यह कला हिन्दी कहानी-विधान के अन्तर्गत आई। कहानी के अन्तर्गत रेखाचित्र उस कला-विधान को कहते हैं जो वास्तविकता के किसी अंग-विशेष को अलग करके अनुभूति और अनुभाव द्वारा उसका इतना संवेदनशील चित्र उपस्थित करता है, जिससे एक ओर उस अंग-विशेष की बाह्य और आंतरिक सुन्दरता रेखाओं में उभर आती है, दूसरी ओर वास्तविकता, सम्पूर्ण की आंतरिकता भी व्यंजित हो जाती है। वस्तुतः रेखाचित्र आधुनिक युग की द्रुतगामी देन है, इसलिए इस कला-विधान में सम्पूर्ण और विस्तार के स्थान पर उसके टुकड़े या विशेष अंग को ही ग्राह्य माना गया है, जो अपनी सीमा या टुकड़े ही में सम्पूर्ण का चित्र व्यंजित कर देता है। अतएव रेखाचित्र में लेखक की अनुभूति और वर्ण्यवस्तु को पूर्ण यथार्थवादी दृष्टिकोण से आँकना, ये दोनों शर्तें इस कला के प्राण हैं। कहानी

के अन्तर्गत रेखाचित्र, कला के समीप है। यह पूर्ण व्यक्तिवादी कला है। जिस तरह चित्र-कला में अनेक आधुनिक प्रवृत्तियाँ; जैसे प्रतीकवाद, रूपविधानवाद, अभिव्यंजनावाद, प्रभाववाद आदि आ रही हैं, उसी तरह रेखाचित्र में, व्यंग चित्र, प्रकाश-छाया, अध्ययन-चित्र, खाके, शबीहें आदि कला-प्रवृत्तियाँ सामने आ रही हैं।

वर्तमान हिन्दी कहानी में रेखाचित्र की परम्परा जैनेन्द्र और महादेवी वर्मा द्वारा आरम्भ हुई। 'स्मृति की रेखाएँ'[1] जिन-जिन चरित्रों के व्यक्तित्व और उनकी चेतना-रेखाओं में उभारी गई हैं, वे इस दिशा में सफल प्रयास हैं। इसका विकास आगे प्रकाचन्द्र गुप्त[2], अमृतराय[3], शमशेर[4], ओंकार शरद[5], डाक्टर रघुवंश[6] ने किया। प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृतराय और शमशेर की रेखाएँ जितनी पैनी हैं, उतनी ही यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति में सशक्त हैं, लेकिन इनके चित्रों में संवेदना की कमी है। ओंकार शरद में संवेदना कुछ मात्रा में अवश्य है, लेकिन इनकी रेखाओं में भी अधिक कोमलता और रंगीनियाँ हैं। डाक्टर रघुवंश के रेखाचित्र चरित्र के आन्तरिक विश्लेषण में पूर्ण सफल हैं।

सूचनिका (रिपोर्ताज)

संक्रान्ति-युग में साहित्य और कला के लघु रूपों और लघु विधानों की सृष्टि परम स्वाभाविक है। रेखाचित्र समाज और स्थिति की जिस द्रुतगामिता की अभिव्यक्ति है, सूचनिका इससे भी आगे है। हमारा दैनिक जीवन और इसकी घटनाओं में इतनी द्रुतगामिता और विभिन्नता है कि उसे कलात्मक रूप-विधानों में बाँधते चलना बड़ा कठिन कार्य हो गया है, लेकिन कला और साहित्य की तो सबसे बड़ी जिम्मेदारी यही है कि वह मनुष्य के सामयिक जीवन, युग-चेतना और उसके संघर्षों को अपने में सँजोता चले। वस्तुतः सूचनिका का रूप-विधान इसी माँग की पूर्ति करता है।

योरुप में पिछले महायुद्ध के बाद जो बड़ी-से-बड़ी घटनाएँ घटीं और मानव-संघर्ष में जो ज्वार-भाटे आये, उनकी विस्तृत सूचना, रिपोर्ट तैयार करने में वहाँ के गद्य लेखक प्रयत्नशील हुए और उसी के फलस्वरूप सूचनिका का एक स्वतन्त्र रूप-विधान प्रस्तुत हुआ। रूस इसका जन्मदाता है और अमेरिका में इस विधान का

१. स्मृति की रेखाएँ : महादेवी वर्मा।
२. पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच : प्रकाशचन्द गुप्त।
३. लाल धरती : अमृतराय।
४. प्लाट का मोर्चा : शमशेर बहादुर।
५. लंक महराजिन : ओंकार शरद।
६. छाया तप : डॉ० रघुवंश।

आश्चर्यजनक विकास हुआ। शिल्पविधि की दृष्टि से सूचनिका में प्रायः तीन तत्वों की अपेक्षा होती है : यथार्थ घटना और संघर्षमयी वास्तविकता का धरातल; द्वितीय, परिवेष्ठन और परिस्थितियों, चित्रात्मक वर्णन; तृतीय, विभिन्न शक्तियों, धारणाओं और क्रियाओं की व्याख्या, जो उन घटनाओं और संघर्षों में प्रेरणा दे रही हैं। ये तीनों तत्व सूचनिका के प्राण हैं और इनमें से किसी भी एक तत्व की कमी इस रूप-विधान को अपूर्ण और असफल कर सकती है क्योंकि सूचनिका का परम लक्ष्य इसी में है कि वह वर्तमान जीवन की सारी संघर्षमयी चेतना की वास्तविकता को पाठक के हृदय में स्थापित करती चले। हिन्दी में यह रूप-विधान अभी आरम्भ हुआ है। उर्दू में अपेक्षाकृत इसका अधिक विकास हो रहा है। कृष्ण चंदर की प्रसिद्ध सूचनिका 'सुबह होती है' इसका सुन्दर उदाहरण है। हिन्दी में इस रूप-विधान को अपनाने वालों में शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय आदि मुख्य हैं, लेकिन अपने निश्चित रूप में अब तक सूचनिका हिंदी में नहीं आ पा रही है।

फिर भी वर्तमान समय में हिंदी कहानी शिल्पविधान में निरंतर प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति इस बात का प्रमाण उपस्थित कर रही है कि काव्य के समस्त रूपों में हिंदी कहानियों का भविष्य सबसे अधिक उज्ज्वल और सशक्त है। अमेरिका में कहानी-शिल्पविधान में नित्य नये-नये प्रयोग हो रहे हैं; जैसे केमरा विधान[1] न्यूजरील विधान आदि। इन सबके प्रयोग हिंदी के नवयुवक कहानीकारों-द्वारा हो रहा है। समूचे संक्रांति-युग को सामूहिक दृष्टि से देखने से स्पष्ट पता चल रहा है कि इस युग की कहानी की गतिविधि संसार के कहानी-साहित्य में अपना स्थान अमर कर लेगी।

प्रवृत्तियों और कहानीकारों की विशिष्ट शैली के आधार पर शिल्पविधि का विकास

जिस तरह युगीन प्रवृत्तियों ने हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करके हमारी नैतिक मान्यताओं, सामाजिक प्रश्नों और उनके निर्णयों में आमूल परिवर्तन ला खड़ा किया, उसी तरह उन प्रवृत्तियों ने कहानीकारों के मापदंड और दृष्टिकोण में भी अपूर्व क्रान्ति की। युग का जितना बौद्धिक दृष्टिकोण 'जीवन' के प्रति हुआ, उतनी ही बौद्धिकता कहानी की परिभाषा के रचना-कौशल और शिल्प विधान के प्रति प्रकट हुई। अतएव इस युग की कहानी-कला में आश्चर्यजनक वैविध्य

1. The technique of the camera angle—'This mobility as to the detail combined with the rigidity of the general direction is one of the great technical pleasure of the modern short story' — Sen O' Faolain, The Short stories, page 181.

उपस्थित हुआ । विशेषकर आश्चर्य इस दिशा में है कि संक्रान्ति-युग की कहानी-कला को किसी एक परिभाषा में बाँधना कठिन हो गया है क्योंकि अनेक प्रवृत्तियाँ, अपने दृष्टिकोण और उनके प्रतिनिधि कहानीकारों द्वारा उसकी विभिन्न मान्यताएँ बनती गईं । अध्ययन की दृष्टि से केवल एकांत प्रभाव ही इस युग के कहानीकार का परम लक्ष्य बना ।'[1] इसे प्राप्त करने के लिए इस युग का कहानीकार, अपनी रचना-शैली, शिल्पविधान में इतना स्वतंत्र हुआ कि उसने इस क्षेत्र में अपूर्व व्यापकता ला दी । उसने इतने प्रयोग किये कि उनका एक स्थान पर आकलन करना कठिन है । सम्यक् कहानी-शैली से लेकर उसमें रेखाचित्र, विश्लेषण चित्र से लेकर सूचनिका (Reportas) कैमरा विधान (Camera Technique) और न्यूजरील विधान तक कहानी-रचना की सीमा बढ़ गयी ।

प्रवृत्तियों और उनके कहानीकारों की विशिष्ट शैलियों के फलस्वरूप कथानक निर्माण तथा कथा-विधान के रूपकों में अनेक नये-नये प्रयोगों और हस्तलाघव के परिचय मिले । कथानक अपनी क्रमबद्धता, एकसमता और वर्णनात्मकता से आगे बढ़ कर मानसिक सूत्रों, मनोवैज्ञानिक चक्रों, सूक्ष्म घटनाओं, मनोद्वेगों के माध्यम से निर्मित होकर स्फुट रेखाचित्रों, टुकड़ों और सांकेतिक रूपों में कभी-कभी इतने व्यापक हो गए हैं कि उनमें जीवन के लम्बे-लम्बे भाग विस्तृत समस्याएँ संगुम्फित हो गई हैं । जैनेन्द्र और अज्ञेय के कथा-विधान इस दिशा में सदा उल्लेखनीय हैं ।

संश्लिष्ट चरित्र तथा मनःस्थिति की गूढ़ ग्रन्थियों के विश्लेषण में ऐसे कथा-विधान प्रस्तुत किये गए, जिनसे चरित्र से सम्बन्धित वे तमाम कर्म प्रेरणाएँ एक ऐसे संधि-स्थल पर स्वीकृत हो गईं कि जिनके सहारे उस गूढ़ चरित्र का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया गया । ऐसी भी न जाने कितनी कहानियाँ लिखी गईं जिनमें कथानक के रूप इतने सूक्ष्म और अव्यक्त हुए कि उन्हें अध्ययन की सीमा में बाँधना कठिन है । साम्यवाद अथवा मार्क्सीय प्रवृत्ति ने सामाजिक और व्यक्तिगत घटनाओं को कथानक-निर्माण में सबसे अधिक स्थान दिया । दूसरी ओर फ्रायड की मनोविश्लेषण-पद्धति ने जीवन की बाह्य घटनाओं को नगण्य सिद्ध कर व्यक्ति के चेतन-अवचेतन जगत् के मनःउद्वेगों, स्वप्न-चित्रों को सबसे अधिक स्थान दिया और इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप कथा-विधान में चरित्र के सूक्ष्म संकेतों, घटनाओं और उद्गारों को संगुम्फित करने का कौशल प्रकट

१. इतना ही कहा जा सकता है कि कहानी नामक साहित्य-प्रकार में एकान्त प्रभाव ही साहित्यकार का उद्देश्य होता है, और उसके द्वारा चुनी गई वस्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन । वह प्रभाव और उस प्रभाव की एकान्तिकता ही मुख्य है। अज्ञेय : हिन्दी० प्रति० कहा०, भूमिका, पृष्ठ २२ ।

उपस्थित हुआ । विशेषकर आश्चर्य इस दिशा में है कि संक्रान्ति-युग की कहानी-कला को किसी एक परिभाषा में बाँधना कठिन हो गया है क्योंकि अनेक प्रवृत्तियाँ, अपने दृष्टिकोण और उनके प्रतिनिधि कहानीकारों द्वारा उसकी विभिन्न मान्यताएँ बनती गईं । अध्ययन की दृष्टि से केवल एकांत प्रभाव ही इस युग के कहानीकार का परम लक्ष्य बना ।'[1] इसे प्राप्त करने के लिए इस युग का कहानीकार, अपनी रचना-शैली, शिल्पविधान में इतना स्वतंत्र हुआ कि उसने इस क्षेत्र में अपूर्व व्यापकता ला दी । उसने इतने प्रयोग किये कि उनका एक स्थान पर आकलन करना कठिन है । सम्यक् कहानी-शैली से लेकर उसमें रेखाचित्र, विश्लेषण चित्र से लेकर सूचनिका (Reportas) कैमरा विधान (Camera Technique) और न्यूजरील विधान तक कहानी-रचना की सीमा बढ़ गयी ।

प्रवृत्तियों और उनके कहानीकारों की विशिष्ट शैलियों के फलस्वरूप कथानक निर्माण तथा कथा-विधान के रूपकों में अनेक नये-नये प्रयोगों और हस्तलाघव के परिचय मिले । कथानक अपनी क्रमबद्धता, एकसमता और वर्णनात्मकता से आगे बढ़ कर मानसिक सूत्रों, मनोवैज्ञानिक चक्रों, सूक्ष्म घटनाओं, मनोद्वेगों के माध्यम से निर्मित होकर स्फुट रेखाचित्रों, टुकड़ों और सांकेतिक रूपों में कभी-कभी इतने व्यापक हो गए हैं कि उनमें जीवन के लम्बे-लम्बे भाग विस्तृत समस्याएँ संगुम्फित हो गई हैं । जैनेन्द्र और अज्ञेय के कथा-विधान इस दिशा में सदा उल्लेखनीय हैं ।

संश्लिष्ट चरित्र तथा मनःस्थिति की गूढ़ ग्रन्थियों के विश्लेषण में ऐसे कथा-विधान प्रस्तुत किये गए, जिनसे चरित्र से सम्बन्धित वे तमाम कर्म प्रेरणाएँ एक ऐसे संधि-स्थल पर स्वीकृत हो गईं कि जिनके सहारे उस गूढ़ चरित्र का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया गया । ऐसी भी न जाने कितनी कहानियाँ लिखी गईं जिनमें कथानक के रूप इतने सूक्ष्म और अव्यक्त हुए कि उन्हें अध्ययन की सीमा में बाँधना कठिन है । साम्यवाद अथवा मार्क्सीय प्रवृत्ति ने सामाजिक और व्यक्तिगत घटनाओं को कथानक-निर्माण में सबसे अधिक स्थान दिया । दूसरी ओर फ्रायड की मनोविश्लेषण-पद्धति ने जीवन की बाह्य घटनाओं को नगण्य सिद्ध कर व्यक्ति के चेतन-अवचेतन जगत् के मनःउद्वेगों, स्वप्न-चित्रों को सबसे अधिक स्थान दिया और इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप कथा-विधान में चरित्र के सूक्ष्म संकेतों, घटनाओं और उद्गारों को संगुम्फित करने का कौशल प्रकट

१. इतना ही कहा जा सकता है कि कहानी नामक साहित्य-प्रकार में एकान्त प्रभाव ही साहित्यकार का उद्देश्य होता है, और उसके द्वारा चुनी गई वस्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन । वह प्रभाव और उस प्रभाव की एकान्तिकता ही मुख्य है। अज्ञेय : हिन्दी० प्रति० कहा०, भूमिका, पृष्ठ २२ ।

हुआ । कथानक की रूप-
तथा उसके विधान में भी

कलात्मक दृष्टि
अध्ययन, इसी की कर्म-
ओर इस युग की कहानी
रूप, चरित्र के वर्ग, चरि
समूचा आधुनिक युग इस
और साम्यवाद, समस्त
अवतारणा मूलतः यथार्
निधि चरित्रों के सहारे
स्थान मिले । चरित्रों की
प्रसाधन प्रयुक्त हुए, जैसे
संकेत और छोटे-छोटे का

व्यापक दृष्टि से
हुई और इसके व्यक्तित्व-
चिंतन कार्य करती रही,
अधिक व्यक्तिवादी हुआ
हमारा साधारणीकरण
कहानियों के चरित्र या
तैरने लगे, वस्तुतः मनो
एक विशेष कारण थी ।
स्तरों के अध्ययन के लि
नैतिक मान्यताओं और
सबसे अधिक हुआ, लेकि
में दुरुपयोग भी हुआ ।
तियों के चित्रण हुए ।

शैली की दिशा
कहानी-कला का चरम ल
इसे प्राप्त करने के लिए
पूरी तरह स्वतंत्र है । फल
वैविध्य, नवीनता और
शैली से लेकर ऐतिहासि

हुआ। कथानक की रूप-सीमा और उसके वर्ण्य विषय में आश्चर्यजनक विस्तार हुआ तथा उसके विधान में भी इसी तरह अनेकरूपता उपस्थित हुई।

कलात्मक दृष्टि से इस युग की कहानी-कला का मेरुदंड चरित्र है। इसी के अध्ययन, इसी की कर्म-प्रेरणाओं के विवेचन तथा इसी के व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा के चारों ओर इस युग की कहानी-शिल्पविधि के समस्त उपकरण घूमते मिलते हैं। चरित्र के रूप, चरित्र के वर्ग, चरित्र की स्थिति और चरित्र के स्तर में इतनी व्यापकता आई कि समूचा आधुनिक युग इसके माध्यम से प्रतिबिम्बित हुआ। दर्शन, मनोविज्ञान, यौनवाद और साम्यवाद, समस्त युगीन प्रवृत्तियाँ इसी केन्द्र-बिन्दु से चरितार्थ की गईं। चरित्र-अवतारणा मूलतः यथार्थ भूमि पर हुई, सामान्य चरित्र से लेकर विशिष्ट और प्रतिनिधि चरित्रों के सहारे सम्पूर्ण मानव-संवेदनाओं, कार्य-व्यापारों को कहानी-विधान में स्थान मिले। चरित्रों की व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा और उनके व्यक्तित्व-विश्लेषण में नये-नये प्रसाधन प्रयुक्त हुए, जैसे आत्मविश्लेषण, मानसिक ऊहापोह, अवचेतन विज्ञप्ति तथा संकेत और छोटे-छोटे कार्य-व्यापारों के अध्ययन।

व्यापक दृष्टि से इस युग में चरित्र-अवतारणा विशुद्ध मनोवैज्ञानिक धरातल से हुई और इसके व्यक्तित्व-निर्माण में प्रायः तीन प्रेरणाएँ, अहं, विद्रोह और आत्मविश्लेषण-चिंतन कार्य करती रहीं, अर्थात् इस युग का चरित्र विकास-युग के चरित्र की अपेक्षा अधिक व्यक्तिवादी हुआ। इसका रूप हमारे सामने इतना स्पष्ट हुआ कि सर्वत्र इससे हमारा साधारणीकरण होता रहा। अब हमें कहानियों के कथानक न याद रह कर कहानियों के चरित्र याद रहने लगे। उनके सारे अन्तर्द्वन्द्व, संघर्ष हमारे मस्तिष्क में तैरने लगे, वस्तुतः मनोविज्ञान की उन्नति और उससे पायी हुई विश्लेषण-पद्धति इसका एक विशेष कारण थी। वैसे तो इसका प्रयोग मानव-जीवन के प्रायः सभी अंगों और स्तरों के अध्ययन के लिए किया गया, लेकिन इस युग में विशेषकर स्त्री-पुरुष के संबंधों, नैतिक मान्यताओं और स्त्रीत्व को समझने और व्यापक अध्ययन के लिए इसका प्रयोग सबसे अधिक हुआ, लेकिन इस मनोविश्लेषण-पद्धति का दूसरी ओर चरित्रों की दिशा में दुरुपयोग भी हुआ। इसके नाम पर काम, नग्न प्रेम-वासना और उसकी अनेक विकृतियों के चित्रण हुए।

शैली की दिशा में, इस युग में सबसे अधिक प्रयोग हुए, क्योंकि इस युग की कहानी-कला का चरम लक्ष्य उसकी प्रभविष्णुता और प्रभाव की एकान्तिकता है और इसे प्राप्त करने के लिए इस युग का कहानीकार अपनी निर्माण-शैली, विधान आदि में पूरी तरह स्वतंत्र है। फलतः कहानी की निर्माण-शैली और संविधान में अपूर्व ढंग का वैविध्य, नवीनता और व्यापकता आई। वार्ता, दृष्टान्त, सांकेतिक और प्रतीकात्मक शैली से लेकर ऐतिहासिक, आत्म-कथात्मक, डायरी, रूपकात्मक, नाटकीय, पत्रात्मक,

स्वगत भाषण और मिश्रित शैली तक इसका विकास हुआ। रचना-शैली में इतने वैविध्य और प्रयोग आने का सबसे मुख्य कारण यह था कि इस युग की कहानी-कला में चरित्र का विकास दिखाने के लिये विस्तार के अभाव ने इसके रचना-कौशल पर सबसे अधिक दबाव डाला, जिसके फलस्वरूप इसके रचना-विधान में आश्चर्यजनक विविधता आई। चरित्र-विकास के साथ जब कहानी-कला में भाव-वस्तु को ही उसके अनुरूप प्रमुखता मिली, तब इसके रचना-विधान में और भी नये-नये प्रयोग हुए, जैसे रेखाचित्र, व्यंग-चित्र, संस्मरण, सूचनिका और केमरा शैली आदि। इस तरह निर्माण की दृष्टि से कहानी की शैली चित्र-कला के बिल्कुल समीप आ गई और जिस तरह चित्र-कला के माध्यम से अनेक आधुनिक वाद; जैसे प्रतीकवाद, रूप-विधानवाद, अभिव्यंजनावाद और प्रभाववाद आदि अभिव्यक्त हो रहे हैं; ठीक यही कार्य कहानी-कला से भी लिया जाने लगा। इस तरह अनेक युगीन प्रवृत्तियों और आधुनिक वादों के फलस्वरूप कहानी की निर्माण-शैली में उत्तरोत्तर विकास होता जायगा। यही कारण है कि आधुनिक काल में साहित्य के समस्त प्रकारों में कहानी साहित्य-प्रकार का भविष्य सबसे अधिक उज्ज्वल है।

लक्ष्य और अनुभूति की दिशा में; इस युग में कहानी-निर्माण की प्रेरणा समान रूप से है। मुख्यतः मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियों की सृष्टि प्रायः अनुभूति की प्रेरणा से अधिक हुई है। जो कहानियाँ किन्हीं वादों, तात्विक विचारों और समस्याओं के हल विवेचन के लिए लिखी गई हैं, उनकी प्रेरणा निश्चित रूप से लक्ष्यात्मक है। समाज-शास्त्र के विकास से, विशेषतया मार्क्सीय मत और फ्रायड के मत की प्रगति से, सामाजिक सम्बन्धों पर जो प्रकाश पड़ा और उनके अध्ययन की जितनी पद्धतियाँ आविर्भूत हुई, यह सोद्देश्यता भी इस युग की कहानियों की प्रेरणा बनी। अतएव विकास-युग की भावात्मक कहानियों की अपेक्षा इस युग की कहानियाँ अधिक बौद्धिक हो गईं। निर्माण की दृष्टि से इस युग के कहानीकारों की दृष्टि अधिक व्यापक हुई। वह मानव-जीवन के समस्त पहलुओं को सापेक्ष-निरपेक्ष और कभी-कभी उसे अपना व्यक्तिगत पहलू बना कर अध्ययन करने लगा और उसके संबंध में अपना निर्णय देने का प्रयत्न करने लगा, लेकिन परिणामतः इस युग के कहानीकार की संवेदना अधिक उलझी हुई सिद्ध हुई। उसके विषय में मानसिक ऊहापोह बढ़ा और समस्याओं, मूल्यों के संबंध में उसका निर्णय अस्पष्ट और अस्थायी रहा। यही कारण है कि जहाँ इस युग में कहानी के शिल्प-विधान में विकास-युग की अपेक्षा आश्चर्यजनक विकास हुआ, वहाँ कहानी अपने दृष्टिकोण और चरम परिणति में अस्पष्ट और रहस्यात्मक होती रही। कहानियाँ इतिवृत्तात्मकता को छोड़ कर इतनी दूर चली आई हैं कि उनका पूर्ण रूप से समझना साधारण पाठकों के लिए कठिन होने लगा। •

उद्गम और विकास-सूत्र

हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति किसी एक दिन की घटना नहीं है, वरन् इसकी उत्पत्ति में वर्षों की साधना और प्रयोग की प्राणशक्ति व्यय हुई है। इसकी उत्पत्ति कितने उद्गम-सूत्रों से हुई है, इसका अध्ययन वस्तुतः उस तरह है; जैसे किसी विशाल वट वृक्ष की उन तमाम जड़ों, अंतर्शाखाओं और सूत्रों को ढूँढ़ना, जो धरती की न जाने कितनी अगम्य परिधि और तहों में समा गए हैं, लेकिन जिनके सामूहिक अवलम्बन से समूचा वट वृक्ष जीवित खड़ा है। वस्तुतः हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के आविर्भाव में यथासंभव उन समस्त सूत्रों से प्रेरणा-शक्ति ग्रहण की गई है, जिनमें कहानी-कला की दिशा में कुछ भी प्राणशक्ति देने की क्षमता थी। यही कारण है कि उद्गम-सूत्रों के रूप अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और अमूर्त हैं, क्योंकि उद्गम-सूत्र मूलतः प्रेरणाओं के स्वरूप में चरितार्थ हुए हैं। आगे चलकर जब उन प्रेरणाओं के फलस्वरूप हिन्दी कहानी-शिल्पविधि के स्वरूप की प्रतिष्ठा होने लगी, तब वही सूक्ष्म उद्गम-सूत्र इस कला के विकास में पूर्ण स्पष्टता से दृष्टिगोचर होने लगे और उन्हीं को हम दूसरे शब्दों में प्रभाव भी कहने लगे।

विविध युगों में कहानी-कला को प्रेरणाएँ

हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के विकास की दृष्टि से उसके उद्गम के अध्ययन में स्तर-विभेद करने होंगे अर्थात् जिस तरह शिल्पविधि के विकास में आविर्भाव, विकास और संक्रान्ति-युगों के अन्तर्गत हमने उसके क्रमिक रूपों को देखा है, उसी के अनुरूप हम उसके उद्गम-सूत्र के अध्ययन में उन क्रमिक शक्तियों को देखेंगे जो उन युगों को यथा-सम्भव प्रभावित और प्रेरित करती रहीं।

(क) आविर्भाव-युग

उद्गम-सूत्र के अध्ययन का पूर्ण वैज्ञानिक सम्बन्ध आविर्भाव-युग से ही है क्योंकि यही युग वस्तुतः वह संधिस्थल है जहाँ कहानी की उत्पत्ति की अनेक प्रेरणा-शक्तियों ने अपना बल दिखाया होगा। वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के आविर्भाव में मूलतः निम्नलिखित उद्गम-सूत्रों की प्रेरणा है :

(अ) संस्कृत नाटकों की कथा-वस्तु
(आ) शेक्सपियर के नाटकों की कथावस्तु
(इ) उर्दू किस्सा-अफसाने
(ई) प्रारम्भिक बंगला कहानी

संस्कृत नाटकों की कथावस्तु

संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद उन्नीसवीं सताब्दी उत्तरार्द्ध के अनन्य प्रयास हैं। इन अनुवादों से संस्कृत के प्रायः समस्त उत्कृष्ट नाटक हिन्दी में आए; जैसे राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा कालिदास-कृत 'शकुन्तला' का अनुवाद, हरिश्चन्द्र जी-द्वारा कवि कांचन-कृत, 'धनंजय विजय', राजेश्वर-कृत, 'कर्पूर मंजरी' और विशाखदत्त-कृत 'मुद्राराक्षस' नाटकों के अनुवाद, लाला सीताराम-द्वारा भवभूति-कृत 'महावीर चरित', 'उत्तर रामचरित', 'मालती-माधव', कालिदास-कृत नाटक, शूद्रक-कृत 'मृच्छकटिकम्' और हर्षदेव-कृत 'नागानन्द' के अनुवाद।

हिन्दी कहानियों के विकास-काल में अर्थात् बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में संस्कृत नाटकों का हिन्दीकरण एक अन्य रूप में भी हुआ। यह हिन्दीकरण बिल्कुल नया और प्रयोगात्मक ढंग का था। इस प्रयोग में हिन्दी कहानी के एक अनिश्चित रूप को निश्चित ढंग से गढ़ने का प्रयास था। 'सरस्वती' के प्रारम्भ से संस्कृत नाटकों की केवल कथा-वस्तु को लेकर अनेक आख्यायिकाओं की अवतारणा हुई; जैसे 'सरस्वती' के दूसरे वर्ष की पहली संख्या में पं० जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी द्वारा 'रत्नावली', श्री हर्ष-रचित नाटक की आख्यायिका। आगे चलकर इन्होंने ही महाकवि कालिदास के नाटक की आख्यायिका 'मालविका और अग्निमित्र' को लिखा। यहाँ इन्होंने नाटक के सम्पूर्ण इतिवृत्त को, उसकी समस्त घटनाओं और दृश्यों को अपनी आख्यायिका में समेटने का प्रयत्न किया है। फलतः यह आख्यायिका संख्या ६ से धारावाहिक रूप में संख्या ६ तक फैल गई है। अतएव इसमें कहानी की अपेक्षा उपन्यास के तत्व आ गए हैं। संस्कृत के नाटकों की कथा-वस्तुओं की ये दोनों हिन्दीकरण की शैलियाँ, सम्पूर्ण इतिवृत केवल और आख्यायिका; हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की उत्पत्ति में केवल उसकी कथा-वस्तु को दिशा में कुछ प्रेरणा दे सकी हैं। कथा-वस्तु के रूप-विधान और कथा-विधान में संस्कृत नाटकों की कथा-वस्तुओं ने आरोह-अवरोह की कला दी है, शेष कुछ नहीं।

---

१. सरस्वती, १९०१, भाग २, संख्या १।
२. सरस्वती, जून १९०४, भाग ५. संख्या ६।

शेक्सपियर के नाटकों की कथावस्तु

हिन्दी कहानी-शिल्पविधि में कथा-तत्व के निर्माण में संस्कृत नाटकों की कथा-वस्तुओं की अपेक्षा शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं ने अधिक प्रेरणा दी है। संस्कृत नाटकों की भाँति भारतेन्दु-काल में शेक्सपियर के नाटकों के हिन्दी अनुवाद हुए; जैसे रत्नचन्द्र-द्वारा १८७९ ई० कॉमेडी लाफ ऐरर्स का 'भ्रमजाल' अनुवाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा मर्चेण्ट आफ वेनिस का 'दुर्लभ बन्धु' नाम से अनुवाद, पुरोहित गोपी-नाथ-द्वारा ऐज यू लाइक इट का 'मन-भावन' और रोमियो एण्ड जूलिएट का 'प्रेमलीला' नाम से अनुवाद तथा १८९३ ई० में मथुराप्रसाद उपाध्याय-द्वारा मैकबेथ का 'साहसेन्द्र' नाम से अनुवाद। वस्तुतः इन अनुवादों से हिन्दी नाटकों को प्रेरणा मिली है, कहानी को नहीं। परन्तु शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं अथवा आख्यायिकाओं ने निश्चित रूप से हिन्दी कहानी-शिल्पविधि के प्रारम्भिक विकास में प्रेरणा दी है। यह प्रेरणा बीसवीं शताब्दी में 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी कहानी-कला को मिली। इसके दो स्वरूप भी मिले: प्रथम, शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं को लेकर 'हिन्दी शेक्सपियर'[1] की सृष्टि हुई। दूसरी ओर शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं के धरातल पर कलात्मक आख्यायिकाओं की सृष्टि हुई जिसे हम केवल 'सरस्वती' के प्रारम्भिक वर्षों की संख्याओं में पाते हैं।

काल-क्रम के अनुसार 'सरस्वती' में प्रकाशित शेक्सपियर के नाटकों की आख्या-यिकाओं की अपेक्षा हिन्दी शेक्सपियर का समय काफी बाद को आता है। उस समय हिन्दी कहानियों के निश्चित रूप-विधान का विकास हो चुका था। फलतः कहानी-शिल्पविधि के ऊपर प्रभाव और उगद्म-सूत्र की दृष्टि से केवल 'सरस्वती' में आए हुए शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुओं का महत्व अपेक्षाकृत बहुत है। ये कथा-वस्तुएँ दो रूपों में अवतरित हुईं, प्रथम, कलात्मक आख्यायिका के रूप में; दूसरे, इसके भाव-धरातल पर स्वतंत्र कहानी-सृष्टि के रूप में; जैसे किशोरीलाल गोस्वामी-लिखित हिन्दी कहानी 'इन्दुमती' जिस पर शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' की छाप है। टेम्पेस्ट की कथा-वस्तु को भावात्मक धरातल मान कर इसकी सृष्टि हुई है 'यहाँ तक कि इसे भार-तीय वातावरण के अनुकूल रूपान्तर ही कहें तो अत्युक्ति न होगी।' यद्यपि इस शैली का प्रयास आगे नहीं हुआ फिर भी हिन्दी कहानी की उत्पत्ति में इसका महत्व बहुत है। इससे हिन्दी कहानियों के रूप-निर्माण में बहुत सरलता और सुगमता मिलने की संभावना थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इसी बात में है कि आगे शेक्सपियर के नाटकों की

---

१. हिन्दी शेक्सपियर: गंगा प्रसाद, एम० ए०: इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९१४।

कथा-वस्तुएँ विभिन्न आख्यायिकाओं के रूप में आईं और हिन्दी पाठकों को हिन्दी के उस प्रारंभिक विकास-काल में उन आख्यायिकाओं से असीम आनन्द मिलता रहा। अतएव आगे शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तुएँ इस रूप में आई 'सिम्बेलीन'[१] महाकवि शेक्सपियर-रचित नाटक की आख्यायिक का मर्मानुवाद 'एथेन्स'[२] वासी टाइमन' की आख्यायिका, तथा 'पेरिक्लिस' आख्यायिका की सृष्टि। इन आख्यायिकाओं में कथा-तत्व को बहुत ही सफलता से चरितार्थ करने का प्रयत्न किया गया है। नाटक के समूचे इतिवृत्त को काट-छाँट कर कहानी के समीप लाने का प्रयत्न किया गया है, अतएव इन आख्यायिकाओं में भावी हिन्दी कहानी-शिल्पविधि के विकास की समस्त संभावनाएँ स्पष्ट ही आई हैं।

शेक्सपियर के नाटकों की इन आख्यायिकाओं ने कहानी-शिल्पविधि की दिशा में विशेषकर कथा-वस्तु के तत्व में नाटकीय गठन और मुख्य संवेदना में अंतर्द्वन्द और दु:खांत की भावना को प्रतिष्ठापित किया, हिन्दी शेक्सपियर (१६१४) में निस्सन्देह, शेक्सपियर के प्राय: समस्त नाटकों की कथा-वस्तुओं को इतिवृत्तात्मक रूप में अभिव्यक्त किया गया है; जैसे (ओथलो) भूलभुलैया (कॉमेडी आफ एरर्स), वेरोना नगर के दो भद्र पुरुष (टू जेन्टलमेन आफ वेरोना), एथेन्स का टाइमन (टाइमन आफ एथेन्स), बात का बतंगड़ (मच एबाउट नथिंग), एंटनी और क्लेपेट्रा (एंटनी एन्ड क्लेपेट्रा), निष्फल प्रेम (लव्स नेवर लास्ट), हेनरी आठवाँ, कोरियो लेनस, टीटस एन्ड्रोनीकस, टोइलस[३] और क्रैसीडा। कलात्मक दृष्टि से ये आख्यायिकाएँ न होकर कथाएँ हो गई हैं। इनमें 'सरस्वती' की आख्यायिकाओं का अपेक्षा कहानी-तत्व बहुत ही कम आए हैं। काल-क्रम १६१४ ई० के अनुसार भी इनका प्रकाशन उस समय हुआ है जब प्रसाद जैसे कहानीकार का अभ्युदय हो चुका था तथा हिन्दी कहानी-शिल्पविधि का अपना एक स्वतन्त्र रूप स्वीकृत हो चुका था। आलोचनात्मक दृष्टि से फलत: 'सरस्वती' में आए हुए शेक्सपियर के नाटकों की आख्यायिकाओं का महत्व बहुत है।[४] वस्तुत: हिन्दी कहानी के कथा-विकास के निर्माण का एकमात्र उद्गम-सूत्र यही है।

उर्दू किस्सा और अफसाने

उर्दू कथा-सहित्य में प्रेमचंद के पूर्व तक उपन्यास और कहानी नाम की कोई अलग-अलग कथा-वस्तुएँ विकसित नहीं हो पाई थीं। केवल कथाएँ थीं, जिन्हें हम

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डॉ० श्रीकृष्णलाल, पृ० ३२२।
२. सरस्वती, १६०० ई०, भाग १, संख्या १, पृ० ८।
३. सरस्वती, १६०० ई०, भाग १, संख्या २, पृ० ४४।
४. हिन्दी शेक्सपियर : गंगा प्रसाद एम० ए०, इंडियन प्रेस 'प्रयाग, १६१४।

दास्तान, किस्सा कह सकते हैं। फोर्ट विलियम कालेज से उर्दू कथा-साहित्य के कथात्मक स्वरूप का निश्चित इतिहास मिलने लगता है और उसका यह विकास हिन्दी कथा-साहित्य के समानान्तर मिलता है। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी-पूर्वार्द्ध में कथा-साहित्य का विकास दो रूपों में होना प्रारम्भ हुआ : पहला, अनुवाद के रूप में; दूसरा, स्वतन्त्र सृष्टि के रूप में। इस दिशा में मुख्य प्रेरणा फोर्ट विलियम कालेज की थी। इसकी प्रेरणा से मुख्यतः फारसी और संस्कृत कथाएँ उर्दू में अनूदित हुईं। मीर शेर अली 'अफसोस' ने फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी की प्रसिद्ध पुस्तक 'गुलिस्तां' का उर्दू में अनुवाद किया और उसका नाम 'बागे उर्दू' रखा। मीर अम्मन ने इसी जमाने में 'चहार दरवेश' का अनुवाद 'बागो बहार' के नाम से किया। इसमें 'चहार दरवेश' वाले किस्सों को बहुत विस्तार से स्थान दिया गया है। संस्कृत कथा-कृतियों के भी उर्दू अनुवाद हुए और 'शकुन्तला', 'नल माधव', 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बैताल पचीसी' के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वतन्त्र सृष्टि के सम्बन्ध में, जिसका भावात्मक आधार फारसी की कथा-कृतियाँ थीं, हैदर बक्स हैदरी ने आराइशे महफिल और हातिमताई के किस्सों को लिखा। इसके अतिरिक्त 'नस्रे बेनजीर', 'लैला मजनूँ', 'खिरदअफरोज' भी उल्लेखनीय हैं। उर्दू कथा-साहित्य में वैज्ञानिक दृष्टि से मौलिक रचनाओं का आरम्भ इंशाअल्ला खाँ से न मान कर मिर्जा रजब अली बेग शरर से मानना उचित होगा। इनकी 'फसानये अजानब' सर्वथा मौलिक रचना थी। इसके अतिरिक्त इस कृति में सर्वप्रथम दास्तान शैली में लखनऊ के समाज का चित्र खींचा है। उसके बाद ही इसी शैली के विकास के फलस्वरूप नजीर अहमद ने 'तौबातुन्नसूह' नामक प्रथम मौलिक उर्दू उपन्यास लिखा। इसकी शिल्पविधि से स्पष्ट है कि यह दास्तान और किस्सा शैली से हट कर उपन्यास की शैली के समीप है। इसके उपरांत सरशार (१८७८ ई०) का काल आता है। उर्दू कथा-साहित्य में सरशार का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। इनका प्रसिद्ध उपन्यास 'फिसानये आजाद' उर्दू कथा-सहित्य में एक युग की प्रतिष्ठा करता है। इनके अन्य उपन्यास 'जामे सरशार', 'सैर कोहसार', 'कामिनी' और 'पी कहाँ' हैं। इसी विकास-क्रम में शरर का भी नाम उल्लेखनीय है। इनके भी उपन्यास 'मंसूर मोहना', 'मलिकुल अर्जीज वर्जिना', 'फ्लोरा फ्लोरेन्डा', 'मुकद्दसना जमीन' आदि कलात्मक उपन्यास हैं। १८९० ई० के बाद अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम उपन्यासकारों में डॉ० हादी रुस्वा का नाम आता है। इनके उपन्यासों में 'शरीफजादा', 'उमराव जान अदा', दो उत्कृष्ट उपन्यास हैं।

उपर्युक्त उर्दू कथा-साहित्य में दो कथा-शैलियाँ मिलती हैं: पहली, किस्सा और दास्तान शैली; दूसरी, अफसाना शैली। हिन्दी साहित्य के विकास-क्रम की दृष्टि से उक्त समस्त उर्दू कथा-कृतियाँ हरिश्चन्द्र-युग के पूर्व तथा हरिश्चन्द्र-युग में आती हैं। आलोच-

नात्मक दृष्टि से हिन्दी के इस युग में भी कथा और उपन्यासों की भरमार थी। जहाँ तक इस युग में हिन्दी-उर्दू के कथा-साहित्यों का एक-दूसरे पर प्रभाव का प्रश्न उठता है, दोनों एक-दूसरे से बिस्कुल प्रभावित नहीं हुए। यद्यपि उर्दू कथा-साहित्य से हिन्दी का प्रभावित होना बहुत स्वाभाविक और संभावित था, क्योंकि उर्दू भाषा और साहित्य के प्रति अंग्रेजों का पूरा समर्थन था, लेकिन समूचे भारतेन्दु-युग के पीछे आर्य-समाज, राष्ट्रीय भावना और जातीय भावना इतनी अपूर्व प्रेरणा का कार्य कर रही थी कि उस समय हिन्दी-कथाकार उर्दू से बिस्कुल संपर्क ही नहीं रख सके। अतएव उन्नीसवीं शताब्दी के उर्दू किस्से और दास्तान से उद्गम-सूत्र और प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी का कोई संबंध नहीं है। इसका सब से बड़ा कारण यही है कि इस शताब्दी में उर्दू कथा साहित्य की अपेक्षा हिन्दी कथा-साहित्य संभवतः अधिक प्रशस्त और शक्तिशाली था।

जहाँ उर्दू अफसाने का प्रश्न आता है, इसका कोई भी रूप हम उन्नीसवीं शताब्दी में नहीं पाते, बल्कि हिन्दी की ओर, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में, 'हिन्दी प्रदीप' और 'हरिश्चंद्र मैगजीन' के माध्यम से कहानी की उत्पत्ति का अवचेतन रूप अवश्य आरंभ हो गया था, लेकिन उर्दू अफसाने की उत्पत्ति अथवा आरंभ की दिशा में, प्रेमचंद से पहले यहाँ अफसाने का कोई प्रयोगात्मक रूप तक नहीं दिखाई पड़ता क्योंकि उर्दू कथा-साहित्य में प्रेमचंद से पूर्व केवल उपन्यास लिखे गए हैं। सरशार, शरर और रुस्वा की कथा-कृतियाँ उपन्यास हैं, कहानी या अफसाना नहीं। और अब तक जो कहानी या अफसाने शब्द का प्रयोग होता चला आ रहा था, वह कहानी, अफसाने के व्यापक रूप में किया जाता रहा, जिसमें एक पृष्ठ का दृष्टान्त भी शामिल किया जाता था और सहस्र पृष्ठों का उपन्यास भी। उदाहरण के लिए 'रानी केतकी की कहानी' और 'फसानये आजाद', वस्तुतः ऐसी रचना जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य, मानव-जीवन अथवा समाज की समस्या अथवा व्यापक जीवन की किसी एक घटना पर रखा गया हो।[1]

इस तरह से उर्दू अफसाने के जन्मदाता प्रेमचन्द थे। इन्होंने ही १९०८ ई० से नवाब राय के नाम से उर्दू अफसाना लिखना आरम्भ किया और १९०९ ई० में 'सोजे-वतन' के नाम से इनका पहला कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ जो अवैध होने के कारण जला दिया गया, लेकिन उद्गम की दृष्टि से उर्दू अफसाने के जन्मदाता प्रेमचंद (१९०९ ई०) के पूर्व ही 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति हो गई थी। फलतः इस पर किसी तरह से भी उर्दू अफसाना के प्रभाव का प्रश्न नहीं उठता। दूसरी ओर प्रेमचन्द स्वयं (१९१६ ई०) में उर्दू अफसाना-क्षेत्र से हिन्दी कहानी-जगत् में आ

१. हंस, फरवरी १९३९, वर्ष ९, अङ्क ५, उर्दू गल्प का इतिहास।

गए। 'सप्तसरोज' की कहा
सूत्र की दृष्टि से उर्दू किस्से
की उत्पत्ति से नहीं है, इस
उदाहरण हैं, लेकिन इन्हें
हैं तथा हिन्दी कहानियों की
की दृष्टि से हम इतना ही
यथार्थ भाषा-शैली और व्यं
पड़ा, लेकिन कटु सत्य तो
कहानी-दिशा पर पड़ा, व
उद्गम-सूत्र की दृष्टि से उ
विधि की उत्पत्ति पर कुछ

लोक-कहानियाँ

विषय-प्रवेश के अ
कथा-प्रवृत्ति के साथ ही स
के रूप में भी विकसित हु
तादात्म्य स्थापित हुआ।
रुचि की विशेष प्रवृत्ति के
जन्म से भी पूर्व अपने ती
(२) वीर कथात्मक (E
(Supernatural Balla
और रोमांच कथात्मक ग
काव्यों से है और आंशिक
स्पष्ट है, लेकिन हिन्दी
लोक-कहानियों का साहि
कथाओं की ही शाखाएँ
जातक, जैन कहानियाँ,
और शुक सप्तति आदि
प्रेरणा का व्यापक विक
चली आ रही थीं, उन्हीं
कथाओं को आगे चलक
उन्हें लोक-कहानियों
फोर्ट विलियम कालेज

गए। 'सप्तसरोज' की कहानियाँ इसके उदाहरण में सदा अमर रहेंगी। अतएव उद्गम-सूत्र की दृष्टि से उर्दू किस्से और अफसाने का कोई सम्बन्ध हिन्दी कहानी-शिल्पविधि की उत्पत्ति से नहीं है, इसके विकास से कुछ सम्बन्ध अवश्यमेव है। प्रेमचन्द इसके उदाहरण हैं, लेकिन इन्हें उर्दू कहानीकार क्यों कहा जाय, ये तो हिन्दी कहानीकार हैं तथा हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के विकास में ये एक युग-निर्माता हैं। अध्ययन की दृष्टि से हम इतना ही कह सकते हैं कि प्रेमचन्द के माध्यम से उर्दू अफसानों की यथार्थ भाषा-शैली और व्यंगात्मक रूप का प्रभाव हिन्दी कहानी-शिल्पविधि पर अवश्य पड़ा, लेकिन कटु सत्य तो यह है कि उर्दू के जिस अफसाना-लेखक से यह प्रभाव हिन्दी कहानी-दिशा पर पड़ा, वही स्वयं हिन्दी कहानियों के विकास का युग-निर्माता था। उद्गम-सूत्र की दृष्टि से उर्दू किस्से और अफसानों का आभार हिन्दी कहानी-शिल्प-विधि की उत्पत्ति पर कुछ भी नहीं है।

लोक-कहानियाँ

विषय-प्रवेश के अध्ययन में हमने देखा है कि दन्त-कथाओं का आरंभ मानव की कथा-प्रवृत्ति के साथ ही साथ हुआ है। कालान्तर में चलकर यही दन्त-कथाएँ लोकगाथा के रूप में भी विकसित हुईं जिसमें गेयता और कथानक दोनों तत्वों का आश्चर्यजनक तादात्म्य स्थापित हुआ। ये गाथाएँ समस्त भारत में, विशेषकर हिन्दी प्रान्त में, लोक-रुचि की विशेष प्रवृत्ति के अनुरूप रही हैं। ये लोकगाथाएँ इस प्रदेश के हिन्दी गद्य के जन्म से भी पूर्व अपने तीन रूपों में मिलती हैं—(१) प्रेमात्मक (Love Ballads), (२) वीर कथात्मक (Heroic Ballads) और (३) रोमांच कथात्मक गाथाएँ (Supernatural Ballads)। प्रभाव और संवेदनशीलता की दृष्टि से इन प्रेम, वीर और रोमांच कथात्मक गाथाओं का सम्बन्ध हमारे साहित्य के मध्ययुगीन आख्यानक काव्यों से है और आंशिक रूप में इसका प्रभाव भारतेन्दु-युग के कुछ उपन्यासों पर स्पष्ट है, लेकिन हिन्दी कहानियों के उद्गम सूत्र से जिसका सीधा सम्बन्ध है, वह है लोक-कहानियों का साहित्य। ये लोक-कहानियाँ मूलतः परम्परा से आती हुई दन्त-कथाओं की ही शाखाएँ हैं, जिनकी निश्चित परम्पराएँ हमारे प्राचीन कथा-साहित्य, जातक, जैन कहानियाँ, हितोपदेश, पंचतन्त्र, कथा सरित्सागर, वैताल पंचविंशतिका और शुक सप्तति आदि से आरंभ हुई हैं। वस्तुतः लोक-गाथाएँ इन्हीं दन्त-कथाओं की प्रेरणा का व्यापक विकास हैं, लेकिन जो दन्त-कथाएँ अपने मूल और लघु रूप ही में चली आ रही थीं, उन्हीं को आगे लोक-कहानियों की संज्ञा मिली अर्थात् जब दन्त-कथाओं को आगे चलकर मौखिक परम्परा से पुस्तक-संग्रह के रूप में आना पड़ा, तब उन्हें लोक-कहानियों के नाम से प्रसिद्धि मिली। उन्नीसवीं शताब्दी-पूर्वार्द्ध ही में फोर्ट विलियम कालेज की प्रेरणा से ये दन्त-कथाएँ विविध लोक-कहानियों के संग्रहों में

बाँधी गईं। ये प्रयत्न उर्दू-हिंदी दोनों क्षेत्रों में समान रूप से हुए; जैसे 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पचीसी', 'शुक बहत्तरी', 'तूतीनामा', 'सारंगा सदावृक्ष' आदि।

लेकिन लोक-कहानियों का मूल और शुद्धतम क्षेत्र लोकवार्ता के अन्तर्गत आता है। लोकवार्ता से तात्पर्य हमारे जनविश्वास, आचरण, रीति-रिवाज के आधार पर घर-गृहस्थी में प्रचलित कहानियों, गीतों, कहावतों से है। लोकरुचि में इस प्रवृत्ति की मूल अधिष्ठात्री है नारी। इन्होंने ही मुख्यत: अपनी लोकसंस्कृति, परम्पराओं, विश्वासों, अनुष्ठानों, पूजा-विधानों को अपनी मौखिक कहानियों में बाँध रखा है। दूसरी ओर उसने अपने सांसारिक उद्गार, उत्सव-समारोहों को गीतों में प्रचलित किया। अत: लोकवार्ता के अन्तर्गत घर-गृहस्थी में प्रचलित आख्यान और गीत आते हैं। ये लोकगीत भारतीय जनरुचि के प्राण हैं तथा इनका प्रचलन हिन्दी-प्रदेश के समस्त भागों और उनकी बोलियों भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुन्देलखंडी और राजस्थानी में है। ये लोक-कहानियाँ मुख्यत: चार प्रकार की मिलती हैं :

१—उपदेशात्मक,
२—मनोरंजनात्मक,
३—वृत्तात्मक,
४—प्रेमात्मक।

इन समस्त प्रकार की कहानियों की शैली वर्णनात्मक होती है। यही कारण है कि ऐसी कहानियों को डॉ० दिनेशचन्द ने कथा कहा है तथा इन लोक-कहानियों को अन्य प्रकाश में चार भागों में बाँटा[१] है—(१) रूप-कथा (Supernatural Tales) (२) हास्य कथा (Humerous Tales), (३) व्रत-कथा (Religious Tales) और (४) गीत कथा (Nursery Tales)। वस्तुत: ऊपर के वर्गीकरण में उपदेशात्मक और मनोरंजनात्मक कहानियाँ शैली की दृष्टि से प्राय: रूपकथात्मक (Supernatural) ही होती हैं। इन दोनों में अमानवीय शक्तियों, देवताओं, पृथ्वी और आकाश, आत्मा तथा परलोक, शकुनों, अपशकुनों, भविष्य-वाणियों, आकाश वाणियों तथा कभी-कभी भूत-प्रेतों तथा अन्य शक्तियों को लेकर कहानियाँ आती हैं। वृत्तात्मक और प्रेमात्मक कथाओं में भी पर-मानवीय जगत्, वनस्पति-जगत्, पशु-जगत्, मानव-जगत् तथा भूत-प्रेतों के जगत् से संवेदनाएँ, लेकर कहानियाँ निर्मित हुई हैं। ब्रज की लोककहानियाँ[२], बुन्देलखंड की कहानियाँ[३], भोजपुरी, अवधी और छत्तीसगढ़ी की लोककहानियों में

१. देखिये, फौक लिटरेचर आफ बंगाल : डॉ० दिनेशचन्द।

२. ब्रज की लोककहानियाँ : संपादक—श्री सत्येन्द्र एम० ए०, ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा, सं० २००४।

३. संग्रहकर्त्ता—शिवसहाय चतुर्वेदी, पाषाणनगरी तथा बुन्देलखंड की कहानियाँ।

इन बातों के विस्तृत उदाहरण हैं तथा उनके प्रकाश में अनेक कहानियाँ अपने सहज रूप में मिलेंगी। ये कहानियाँ अपने सहजतम रूप में समूचे हिन्दी-प्रदेश की धरती की आत्माएँ हैं और ये आत्माएँ जन-जीवन में आमोद-प्रमोद, मनोरंजन और प्राण-शक्ति देती रही हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में उन लोककहानियों, वार्ताओं की ओर डॉ० ग्रियर्सन ने हमारे शिष्ट समाज को सर्वप्रथम प्रेरित किया। अतः इन लोककहानियों के विविध संग्रहों के लिए प्रयत्न आरम्भ हुए। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में, जब हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति हो रही थी और उसके रूप के विविध प्रयोग चल रहे थे, उस समय प्रयोग और प्रयास की दिशा में जो शक्ति सबसे अधिक प्राणशक्ति दे रही थी, वह इन्हीं लोककहानियों की शक्ति थी। इसी उद्गम-सूत्र से हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति को सबसे अधिक प्रेरणा मिली और उस समय प्रायः समस्त हिन्दी कहानीकारों की पहली मौलिक रचनाएँ इन्हीं लोककहानियों की प्रतिमाएं थीं; उदाहरण-स्वरूप, पहले हम 'सरस्वती' की आरंभिक कहानियों को लेते हैं। लाला पार्वतीनन्दन की कहानियाँ 'प्रेम का फुआरा'[1], 'जीवनाग्नि'[2], 'भूतों वाली हवेली'[3], 'नरक गुलजार'[4] आदि स्पष्ट रूप से इन्हीं लोककहानियों की प्रेरणा-शक्ति से लिखी गई हैं। 'प्रेम का फुआरा' में प्रेम का चमत्कार है। लोककहानियों की भाँति इसका भी विकास जादू और कौशल से किया गया है। 'जीवनाग्नि' में लोक-कहानी के राजा-रानी, राजकुमार शैली की प्रेरणा है। 'जीवनाग्नि' में "एक व्यक्ति को धनपत राय की चिट्ठी मिलती है कि वे मर गए और अपने एकमात्र लड़के रज्जन को तथा एक बक्स को उन्हें सौंप गए हैं। जब रज्जन बीस वर्ष का हुआ, तब उसने उस बक्स को खोला। उसमें पिता जी ने एक कागज छोड़ रखा था, जिसमें लिखा था कि दक्षिण सागर के आसपास एक द्वीप है, वहाँ एक स्त्री है। उसके पास जीवनाग्नि का गोला है। उसे देखने से आदमी सहस्रों वर्ष जीता रहेगा। वह वहाँ जाता है और अनेकानेक बाधाओं, यात्राओं को समाप्त करता हुआ अपने अभियान को सम्पन्न करता है।" 'भूतों वाली हवेली' और 'नरक गुलजार' में भूत-प्रेतों और अंधविश्वासों के धरातल पर निर्मित कहानियाँ हैं ये कहानियाँ लोककहानियों के बहुत समीप हैं। इस तरह इन जासूसी कहानियों के भी उद्गम के सूत्र इन्हीं लोककहानियों में हैं। शुक्ल जी की कहानी

१. सरस्वती, भाग २, संख्या ५, पृ० १०६।
२. सरस्वती, भाग २, संख्या ११, पृ० ३६२।
३. सरस्वती, भाग ४, संख्या ५ से ८ तक।
४. सरस्वती, भाग ६, संख्या ९।
५. सरस्वती, भाग ४, संख्या ९।

'ग्यारह वर्ष का समय' भी प्रेमात्मक लोककहानियों से बहुत प्रेरित है—"दो अनजाने, बिछुड़े हुए पति-पत्नी का एकाएक खंडहर में मिलना, कहानियाँ कहना, पहचान जाना और दोनों का आदर्श संयोग" ये सब लोक-प्रेम-कहानियों के तत्व हैं। दूसरी ओर 'इन्दु' में प्रसाद की कहानी 'ग्राम' और 'चन्दा' इसी उद्गम-सूत्र की प्रेरणा-स्वरूप आई हैं। प्रसाद के आगे की समस्त प्रारम्भिक कहानियाँ; जैसे 'करुणा की विजय', 'उस पार का योगी', 'प्रतिमा', 'दुखिया' और 'पाप की पराजय' आदि निश्चित रूप से लोककहानियों से प्रेरित हैं। वही प्रेम, करुणा, संवेदना, आदर्श, संयोग आदि लोककहानियों वाले तत्व इन कहानियों में सर्वत्र मिलते हैं। इलाचन्द्र जोशी की आदि कहानी 'सजनवाँ'[1] और पं० विश्वम्भर नाथ जिज्जा की आदि कहानी 'विदीर्ण हृदय'[2] में भी यही तत्व मिलते हैं।

इस तरह से हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति में इन लोककहानियों की प्रेरणा सबसे अधिक रही है। मूलतः इसी उद्गम-सूत्र से हिन्दी कहानियों में जासूसी और सामाजिक प्रेमात्मक कहानियों की सृष्टि हुई है।

सामाजिक आदर्शों तथा स्नेह, करुणा के मूलमन्त्रों की दीक्षा इन्हीं कहानियो ने हिन्दी के आदि कहानीकारों को दी है। लोक-कहानियों से विशुद्ध कलात्मक प्रेरणा हिन्दी कहानियों को भले ही न मिली हो, लेकिन विशुद्ध भावात्मक प्रेरणा इसे निश्चित रूप से मिली है। इसका सबसे बड़ा कारण यही रहा है कि हिन्दी के प्रायः समस्त आदि कहानीकार किसी न किसी रूप में जन-जीवन, जन-साहित्य, जन-संस्कृति और ग्रामों से सम्बन्धित थे। वस्तुतः हिन्दी के आदि कहानीकारों को अत्यन्त स्वाभाविक रूपों में ये लोक-कहानियाँ दादा-दादी, माँ-बाप, हित-मित्रों और दोस्तों से मौखिक रूप में सुनने को मिली होंगी। यही कहानियाँ उनकी आत्माओं में भावी कहानीकार की चेतना-स्वरूप प्रतिष्ठापित हुई होंगी। इन लोककहानियों की ओर ये आदि कहानीकार इसलिए और भी आकर्षित हुए होंगे कि उस समय पश्चिमी दृष्टिकोण लोककथाओं के पक्ष में अधिक सहानुभूतिमय हो गया था। फलतः इसकी ओर से तीन-ग्रन्थि की भावना नष्ट होकर इन कहानीकारों में जन-प्रेम, स्वाभिमान और आत्म-प्रेम की भावना जगी होगी और लोककहानियाँ अपने भावात्मक और प्रेरणा-स्वरूप में अधिक अंशों में हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति की उद्गम-सूत्र बनी होंगी।

प्रारम्भिक बंगला कहानियाँ

व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के उद्गम-सूत्र का

१. हिन्दी गल्प माला, भाग २, अंक ८, पृ० ३५६, ३६५।

२. इन्दु, कला ६, खंड २, किरण १, पृ० ४४, ४८।

सम्बन्ध प्रारम्भिक बंगला कहानियों से बहुत है। भारतेन्दु युग ही में हिन्दी नाटकों और उपन्यासों के बंगला के उपन्यास और नाटकों से सम्बन्ध जुड़ चुके थे। इनके हिन्दी-अनुवाद इस युग की सबसे बड़ी विशेषता रही है। इन अनुवादों में भारतेन्दु द्वारा बंकिम-कृत 'राजसिंह', राधाकृष्ण दास-द्वारा तारकचन्द्र गांगुली-कृत 'स्वर्णलता', 'प्रतिप्राणा अबला', बंकिम-कृत 'राधारानी', गदाधर सिंह-द्वारा बंकिम-कृत 'दुर्गेश-नन्दिनी', किशोरीलाल गोस्वामी-द्वारा 'प्रेममयी', और 'लावण्यमयी', राधाचरण गोस्वामी-द्वारा श्रीमती सरन कुमारी घोषाल-कृत 'दीप निर्वाण', और 'विरजा', 'विजयानन्द त्रिपाठी-द्वारा भूदेव मुखोपाध्याय-कृत 'सच्चा सपना', राधिकानाथ बन्द्योपाध्याय-कृत 'स्वर्णबाई', प्रतापनारायण मिश्र-द्वारा बंकिम-कृत 'कपाल कुंडला' आदि के अनुवाद उल्लेखनीय हैं।

नाटकों की दिशा में बंगला में हिन्दी अनुवाद उपन्यासों की अपेक्षा कम हुए। इनमें भी रायकृष्ण वर्मा-द्वारा राजकिशोर दे-कृत 'पद्मावती', द्वारकानाथ गांगुली-कृत 'वीरनारी', मधुसूदनदत्त-कृत 'कृष्णाकुमारी' और मुन्शी उदितनारायण लाल-द्वारा मनमोहन वसु-कृत 'सती' नाटक मुख्य हैं, लेकिन भारतेन्दु-युग में प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी नाटकों पर इन बंगला अनुवादों का कोई भी विशेष प्रभाव नहीं पड़ा[१], परन्तु हिन्दी उपन्यासों का प्रभाव अपूर्व ढंग से पड़ा। इसी परम्परा-सूत्र से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दी कहानियों की उत्पत्ति में बंगला की प्रारम्भिक कहानियों ने अनन्य प्राणशक्ति दी।

विशुद्ध शिल्पविधि की दृष्टि से बंगला कहानियों के अनुवादों के साथ-साथ हिंदी के आदि कहानीकारों ने मौलिक हिन्दी कहानियों की सृष्टि की। जिन प्रेरणाओं से हिंदी कहानी-कला का जन्म हुआ और इसकी स्वतंत्र शिल्पविधि का विकास हुआ, उन समस्त प्रेरणा-सूत्रों में बंगला की ये प्रारम्भिक कहानियाँ सबसे अधिक प्राणशक्ति दे रही थीं। इसके प्रमाण में हम 'सरस्वती', 'इन्दु' और 'हिन्दी गल्प माला' के अंकों को देख सकते हैं। 'सरस्वती' के चौथे ही वर्ष से संख्या दो और तीन में रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी 'दृष्टिदान'[२] के नाम से हिन्दी में अनूदित होकर आई। टैगोर की इस प्रथम हिन्दी अनूदित कहानी में अपूर्व भावुकता तथा सूक्ष्म वर्णन-शैली का दर्शन होता है। स्थान-स्थान पर चिन्तन, मनन (Reflection) में कहानी में कहानीकार के व्यक्तित्व की पैठ मिलती है। इसमें चरित्र प्रतिष्ठा के प्रकाश में आदर्श का सफल पुट दिया गया है। आगे बंग-महिला श्रीमती नीरदवासिनी घोष-द्वारा लिखित बंगला

---

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य : डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० २६७।

२. सरस्वती, १९०३, अंक ४, संख्या २, अनुवादक —कुमुदबन्धु मित्र।

कहानी का 'कुम्भ में छोटी बहू'[१] के नाम से अनुवाद हुआ है। उसी वर्ष आगे की संख्या में बंगमहिला ने टैगोर की अन्य कहानी 'दान प्रतिदान' का हिन्दी अनुवाद किया है। आगे चलकर इन्होंने फिर 'दालिया'[२] नाम से टैगोर की कहानी का अनुवाद दिया है। 'इन्दु' में बंग भाषा के प्रसिद्ध 'प्रवासी' पत्र से अनेक बंगला कहानियाँ अनूदित होकर आई हैं। इनमें 'दीवार की आड़'[३] 'जूता की कथा'[४], 'किरण'[५], 'मन का दान'[६], 'प्रेम पुस्तक'[७], 'ललिता'[८], 'प्रियम्वदा' और 'पोस्टकार्ड'[९] और 'मेरी प्राण'[१०] बंगला कहानियाँ आती हैं। ये कहानियाँ अधिकांश रूप में पं० पारसनाथ जी त्रिपाठी-द्वारा अनूदित की गई हैं, जिनमें अनुवादक ने मूल बंगला कहानीकारों के नामों को नहीं दिया है। मूल बंगला नामों के साथ आई हुई 'इन्दु' में अनूदित कहानियाँ कितनी हैं और इन बंगला लेखकों में श्री पाँचकौड़ी बन्द्योपाध्याय और अनादिधन बन्द्योपाध्याय के नाम विशेष ढंग से उल्लेखनीय हैं।

'हिन्दी गल्पमाला' में भी अनादिधन बन्द्योपाध्याय-कृत 'चोट'[११] कहानी का हिंदी अनुवाद आया है। इस तरह से 'सरस्वती', 'इन्दु', 'हिन्दी गल्पमाला' हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की उत्पत्ति के माध्यम से तीनों हिन्दी मासिक पत्रों में बंगला कहानियाँ अनवरत आती रहीं और इनसे हिन्दी कहानियों के विकास में अपूर्व प्रेरणा मिलती रही। इस सम्बन्ध में हिन्दी कहानी-कला के अपने उद्गम-सूत्र की दिशा में टैगौर, चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय, पाँचकौड़ी और अनादिधन बन्द्योपाध्याय के नाम कभी नहीं भुलाये जा सकते। वस्तुतः बंगला कहानियों के जन्मदाता यही व्यक्ति थे और ये पश्चिम के कहानी-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे। प्रभातकुमार मुखोपाध्याय भी बंगला कहानियों की उत्पत्ति और विकास के अन्य प्रसिद्ध कहानीकार हैं और इन्होंने

---

१. सरस्वती, १९०६, अंक ७, संख्या ९, पृ० ३४२।
२. इन्दु कला, ४ खंड १, किरण १ पृ० ५४।
३. इन्दु कला, ४ खंड १, किरण ५, पृ० ४४७।
४. इन्दु कला, ४ खंड १०, किरण ५ पृ० ४४७।
५. इन्दु कला, ५ खंड १, किरण १, पृ० ८१।
६. इन्दु कला, ५ खंड १, किरण २, पृ० १४१।
७. इन्दु कला, ५ खंड १, किरण ४, पृ० ३६१।
८. इन्दु कला ५ खंड २, किरण ५, पृ० ४४७।
९. इन्दु कला, ७ खंड १, किरण १, पृ० ४६२।
१०. इन्दु कला, ६ खंड १, किरण ५, पृ० ४८०।
१२. हिन्दी गल्पमाला, भाग १, अंक ६ पृ० १७०।

भी बहुत कहानियाँ लिखी हैं, लेकिन इनकी कहानियाँ[1] हिन्दी के १९२६ ई० से अनूदित होकर आ सकी हैं, टैगोर और बन्द्योपाध्याय-बन्धुओं के साथ नहीं; अतः हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की उत्पत्ति और इसके उद्गम-सूत्र की दिशा में प्रभातकुमार की कहानियाँ बिलकुल नहीं आतीं। इस दिशा में बंगला की वे प्रारम्भिक कहानियाँ आती हैं जिन्हें टैगोर आदि ने बंगला कहानी-साहित्य के प्रारम्भिक चरण में लिखी थीं।

हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के उद्गम-सूत्र और इस पर प्रभाव की दृष्टि से उपर्युक्त समस्त प्रेरणाओं, धाराओं और शक्तियों के दो रूप हैं : एक, विशुद्ध कलात्मक और दूसरा, विशुद्ध भावात्मक रूप। शेक्सपियर के नाटकों की कथा-वस्तु, संस्कृत नाटकों की कथा-वस्तु, बंगला कहानियाँ आदि वस्तुतः हिन्दी कहानियों के कला-पक्ष के निर्माण में प्रेरक शक्तियाँ रही हैं। दूसरी ओर लोककहानियाँ, बंगला कहानियाँ (दोनों रूपों में इसकी प्रेरणा रही है) तथा तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक शक्तियाँ और उनकी विविध क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ इसकी भावात्मक प्राणशक्तियाँ रही हैं, जिनकी प्रेरणा से हिन्दी कहानियों का आविर्भाव-युग अपने शिल्प-आकार को प्राप्त हुआ।

विकास-युग

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', प्रेमचन्द और 'प्रसाद' हिन्दी कहानियों के विकास-युग के मेरुदण्ड हैं। इन्हीं की कहानी-कला अथवा शिल्पविधानात्मक प्रवृत्तियों से समूचा युग प्रभावित रहा। आविर्भाव-युग से आगे चल कर इन तीनों शक्तियों ने हिन्दी कहानी-शिल्पविधान को इतना समृद्धिशाली बनाया कि इन तीनों कलाकारों की प्रतिभा के सम्बन्ध में आश्चर्य होता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि हिन्दी कहानियों के आविर्भाव में भी इन शक्तियों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। अतएव कुछ ही वर्षों की साधना के उपरान्त इन तीनों शक्तियों के द्वारा कहानी-शिल्पविधान का इतना विकास हुआ कि शीघ्र ही हिन्दी साहित्य के सब प्रकारों के समक्ष हिन्दी कहानी-साहित्य का स्थान गौरवपूर्ण सिद्ध हुआ। इस युग के कहानी-शिल्पविधान में किन-किन उद्गम-सूत्रों से इसे प्रेरणा और विकास मिला, यह प्रश्न आविर्भाव-युग की अपेक्षा यहाँ पूर्ण स्पष्ट है क्योंकि इस युग में आकर एक ओर हिन्दी कहानी-साहित्य की स्वतन्त्र सत्ता स्थापित हुई, और दूसरी ओर इसकी शिल्पविधि तथा इसकी स्वतन्त्र प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा हुई।

उद्गम-सूत्र के अध्ययन की दिशा में जिस नई शक्ति का सम्बन्ध इस युग में स्थापित हुआ, वह है पश्चिमी कहानी-साहित्य का सम्पर्क। वस्तुतः यह शक्ति आविर्भाव युग के उद्गम-सूत्रों और प्रभाव डालने वाली शक्तियों से एक नई और स्वतन्त्र शक्ति

१. प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की कहानियाँ : अनुवाद—लल्लीप्रसाद पाण्डेय, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, १९२६।

है। इस तरह प्रेरणा और प्रभाव की दृष्टि से आविर्भाव युग की कुछ शक्तियाँ; जैसे प्रारम्भिक बंगला कहानियाँ और लोक-कहानियाँ इस युग को भी यथासंभव प्रेरित करती रहीं, लेकिन इस दिशा में जो एक नवीन उद्गम-सूत्र इस युग को प्राप्त हुआ, वह है इसका पश्चिमी कहानी-साहित्य का जीवंत प्रत्यक्ष सम्पर्क।

पश्चिमी कहानी-साहित्य का सम्पर्क

व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी प्रदेश का प्रथम पश्चिमी साहित्यिक सम्पर्क अंग्रेजी के माध्यम से आरम्भ हुआ। अंग्रेज हमारे शासक थे तथा हमें उनकी शिक्षा-योजनाओं के के बीच से गुजरना पड़ा। कहानी-साहित्य की दिशा में अंग्रेजी साहित्य (इंगलैंड) उन्नीसवीं शताब्दी तक अमेरिका, रूस और फ्रांस के सामने नगण्य था। आरम्भ और विकास की दृष्टि से अमेरिका, फ्रांस और रूस कहानी-साहित्य की दिशा में सबसे पहले आते हैं। यहीं वे दो उद्गम-सूत्र हैं, जहाँ से संसार में कहानी-कला का विकास हुआ।

अमेरिका में एडगर एलन पो ने कहानी-कला को सर्वप्रथम जन्म दिया।[1] इसका समय १८०६ से १८४६ ई० के बीच आता है। इसने सर्वप्रथम मनोविज्ञान और चारित्रिक अंतर्द्वन्द्व के धरातल से कहानियों को आविर्भूत किया। 'पो' के प्रभाव से फ्रांस में कहानी का जन्म हुआ और बालजाक, मूसेट, गटियर, विगनी, मिरमी, वोल्तियर के हस्तलाघव से शीघ्र ही यह कला अपने विकास की ओर अग्रसर हुई। वस्तुतः बालजाक की प्रतिभा ने प्राचीन कला के स्थान पर आधुनिक कहानी-कला की प्रतिष्ठा की। इसने जिस नवीन शिल्पविधान की अवतारणा की, उसके प्रकाश में उस शताब्दी के समस्त प्रसिद्ध कहानीकारों ने कहानी-कला की सेवा की।

कहानी-कला के आरम्भ और विकास का दूसरा उद्गम-सूत्र रूस है। अमेरिका में पो की भाँति यहाँ पुश्किन इस कला का स्वतन्त्र अधिष्ठाता है। इसने १८३० ई० में सर्वप्रथम पाँच लौकिक आधुनिक कहानियों का संग्रह (Tales of Balkin) 'टेल्स आफ बल्किन' के नाम से प्रकाशित किया, तथा १८३१ ई० के बाद इसने दो कहानियाँ 'दी केप्टन डाटर', 'दी क्वीन आफ स्पेड, लिखीं तथा रूसी कहानी-साहित्य का यहाँ से आविर्भाव[2] किया। अमेरिका और रूस इन दो कहानी-कला के उद्गम-सूत्रों के बीच फ्रांस वस्तुतः अमेरिका से सम्बन्धित था। अमेरिका में पो के उपरान्त ब्रेटहार्ट (१८३२-१९०२ ई०) ने अपनी शक्तिशाली कला-द्वारा आधुनिक कहानी-शिल्पविधान

---

१. Dictionary of World Literture, P. 522.

२. History of Russian Literature—by D. S. Mirsky.

में आश्चर्यजनक विकास किया।[1] इसके उपरान्त ओ० हेनरी में अमरीकी कहानी-कला अपने उत्कर्ष पर पहुँची। वस्तुतः ब्रेटहार्ड की ही धारा के साथ फ्रांस में फ्लायबेयर, मोपाँसा आदि ने कहानी-कला को और भी उत्कृष्ट बनाया क्योंकि अमरीकी कहानी-धारा की अपेक्षा मोपाँसा, फ्लायबेयर आदि फ्रांसीसी कहानीकारों में कुछ अधिक रंगीनी, चपलता और क्रियाशीलता थी। उधर रूसी कहानी-धारा में इन्हीं कलात्मक प्रवृत्तियों के समानान्तर तुर्गनेव, चेखव भी थे। तुलनात्मक दृष्टि से इस रूसी कहानी-धारा में अमरीकी और फ्रांसीसी कहानी-धारा से शिल्पविधि के रूप में अधिक सजीवता और क्रियाशीलता थी क्योंकि चेखव के व्यक्तित्व में (१८६०-१९०४ ई०) शिल्पविधान की गहराई और बारीकी दोनों अनन्य ढंग की थीं, जिसकी तुलना में विश्व के अधिक कहानीकार नहीं टिक सकते। इसने कहानी-कला को जीवन के यथार्थतम धरातल पर उतारा और जीवन की नगण्य घटनाओं, कर्म-प्रेरणाओं-द्वारा चरित्र का सूक्ष्म विश्लेषण किया, लेकिन सम्यक् प्रभाव और ख्याति की दिशा में टालस्टाय चेखव से भी आगे हैं। इनका मुख्य कारण है टालस्टाय का भाव पक्ष, जीवन के प्रति उसकी अनन्य निष्ठा और शोषित वर्ग के प्रति पूर्ण संवेदना। काल की दृष्टि से चेखव और टालस्टाय (१८२८-१९०४ ई०) प्रायः समकालीन ही कहानीकार हैं, लेकिन प्रभाव की दृष्टि से चेखव टालस्टाय के समक्ष कम हैं। चेखव का प्रभाव रूसी कहानी-साहित्य पर बहुत ही कम पड़ा। संसार के कहानी साहित्य में चेखव की कला की वास्तविक उत्तराधिकारिणी इंगलैण्ड की कैथराइन मैंसफील्ड (१८८८-१९२३ ई०) है। रूसी कहानी-साहित्य में इसका एक भी उत्तराधिकारी नहीं मिलेगा, लेकिन टालस्टाय का प्रभाव संसार के इतिहास में उस समय गेटे के उपरान्त साहित्य पर सबसे अधिक पड़ा।

हिन्दी कहानी-शिल्प-विधि का विकास-युग, प्रभाव और उद्‌गम-सूत्र की दृष्टि से, वस्तुतः इसी रूसी कहानी-धारा से विशेष रूप से संबद्ध है। फ्रांसीसी कहानी-धारा में मोपाँसा की धारा से भी इसका सम्बन्ध जुड़ा था, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

ऊपर की पंक्तियों में पश्चिम की कहानी-धारा के आरम्भ और विकास की चर्चा अत्यन्त संक्षेप और सूत्रात्मक ढंग से की गई है। उक्त विवरण में अंग्रेजी कहानी-धारा की क्या स्थिति थी, इसकी चर्चा अभी तक नहीं की गई, क्योंकि उक्त धाराओं में अंग्रेजी कहानी-साहित्य का स्थान अत्यन्त नगण्य है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक, जब अमेरिका, फ्रांस और रूस में कहानी-कला अपने विकास की एक सीमा पर

---

१. "Next to Poe in skill stands Bretharte, who in his early stories has left unique first-hand record of the lawless times of the gold rush of 1850.—World's great shorts tories. Introduction ,P. 8.

पहुँच रही थी, उस समय अंग्रेजी कहानी-धारा का आरम्भ हो रहा था। इस तरह उन्नीसवीं शती के अन्तिम दिनों में कहीं जाकर इंगलैण्ड में कहानी-कला विकसित होकर लोकप्रिय हो सकी। अनेक लेखकों ने इसे अपनाया, जिनमें स्टीवेन्सन, कोननडायल, किपलिंग और वेल्स आदि उल्लेखनीय हैं। इस तरह अंग्रेजी कहानी-साहित्य उन्नीसवीं शती में अन्य देशों की कहानी-धारा की अपेक्षा अत्यन्त अजागरूक और पिछड़ा था। यद्यपि इस पर अमेरिकी और फ्रांसीसी कहानी-धारा का प्रभाव तत्काल ही पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक था, लेकिन ऐसा क्यों नहीं हुआ इसका एक ही कारण था कि उन्नीसवीं शती के अंग्रेजी कथाकार, जैसे सर वाल्टर स्काट (१७७१-१८३२ ई०), वाशिंगटन इर्विंग (१७८३-१८५९ ई०) और चार्ल्स डिकन्स (१८१२-७० ई०) आदि कहानी-कला की अपेक्षा गद्य की अन्य विधाएँ; जैसे, उपन्यास, निबन्ध और लेख लिखने में व्यस्त थे, ठीक उसी तरह जैसे भारतेन्दु-युग में हिन्दी के लेखक उपन्यास और नाटक के पीछे लगे थे।

बीसवीं शती के प्रारम्भ में हिन्दी-लेखकों के सामने केवल अंग्रेज थे और उनका अंग्रेजी साहित्य था। इसी के माध्यम से हमारा पश्चिमी कहानी-साहित्य से सम्पर्क स्थापित होना स्वाभाविक था। उस समय शिक्षा केन्द्रों, योजनाओं और परीक्षाओं के साधन से जो कहानी-साहित्य के नाम से हिन्दी पाठकों और लेखकों के बीच में था, वह मुख्यतः अंग्रेजी कहानी-साहित्य ही था। उदाहरणस्वरूप उस समय अंग्रेजी कहानी-पुस्तकों के नाम पर जो पुस्तकें उच्च शिक्षा-केन्द्रों और योजनाओं में निर्धारित थीं, वे इस तरह की थीं : मैथेनियल हार्थोन की 'कहानियाँ', वाशिंगटन इर्विंग की 'स्केच बुक', चार्ल्स किंग्स्ले की 'दी हीरोज', चार्ल्स लैम्ब की 'टेल्स फ्राम शेक्सपियर'। इनके अतिरिक्त 'सेलेक्टेड शार्ट स्टोरीज' के नाम से एक स्वतन्त्र अंग्रेजी कहानियों का संग्रह भी प्रचलित था। इसमें सर वाल्टर स्काट, वाशिंगटन इर्विंग और चार्ल्स डिकेन्स की क्रमशः 'दी टू डोवर्स', 'रिपवान विंकिल' और 'दी सेविन पुअर ट्रैवलर्स' आदि कहानियाँ संगृहीत थीं।[1]

लेकिन उक्त कथा-कहानी-पुस्तकों से उस काल की कहानियों को जो कुछ भी प्रेरणा मिली होगी, उसका क्षेत्र बहुत ही सीमित रहा होगा, क्योंकि उक्त पुस्तकें लेखकों के सामने साधारणतः और सहज रूप में नहीं आती रही होंगी। उनकी सीमा शिक्षा-केन्द्रों तक ही रही होगी। अतएव बीसवीं शती के आरम्भ में पश्चिमी कहानी-साहित्य के सम्पर्क के प्रश्न में उक्त अंग्रेजी कला-कहानियाँ केवल अध्ययन के नाम पर हिन्दी कहानियों के उद्गम से सम्बद्ध है।

१. English influnece on Hindi language and literature—by Dr. Vishwanath Misra. Chapter X.

आगे चल कर विकास-
साहित्य से दो रूपों में जुड़ा।
के अंग्रेजी अनुवाद से विकास-
उदाहरण में 'सरस्वती', 'इ
रूप में[1] भी टैगोर, चारु चन्द
ली जा सकती हैं, जो बंगला से
रूप से फ्रांसीसी और रूसी क
विकास-युग में बंगला कहानियों
संपर्क से हो रहा था। दूसरे के
को ले सकते हैं, जिनके अनुव
द्वारा अनूदित 'टालस्टाय की
कहानियाँ', 'तुर्गनेव की कहानि
कहानियाँ', अनुवादक इलाचन्द्र

उक्त उदाहरणों से पू
हिन्दी कहानी के विकास-युग
उनकी क्रियाशीलता कभी नहीं
किया कि बंगला के माध्यम
अप्रत्यक्ष रूप में पश्चिमी कहान
रीति से हिन्दी कहानी-शिल्पवि
सकती। अतएव प्रेमचन्द ने
निधि कहानीकारों की कला
विकास-युग के कुछ अन्य कहा
विद्यालंकार, कृष्णानन्द गुप्त
पश्चिमी कहानी-धारा में रूस
किया। अतः विकास-युग के
संपर्क इसकी सबसे प्रमुख वि
कहानी-शिल्पविधि की धारा
सत्य के प्रतीक हैं। इनकी क
शोषित वर्ग के साथ सहानुभूति
इतिवृत्त का स्पष्ट आकार आ

१. टैगोर की कहानि
पाण्डेय।

आगे चल कर विकास-युग में हिन्दी कहानियों का सम्बन्ध पश्चिमी कहानी साहित्य से दो रूपों में जुड़ा। एक अप्रत्यक्ष रूप था, अर्थात् रूसी-फ्रांसीसी कहानियों के अंग्रेजी अनुवाद से विकास-युग की कहानी-कला इसके संपर्क में आई। पहले के उदाहरण में 'सरस्वती', 'इन्दु' और 'हिन्दी गल्पमाला' में, और स्वतन्त्र पुस्तक रूप में[1] भी टैगौर, चारु चन्द बन्द्योपाध्याय और प्रभातकुमार आदि की वे कहानियाँ ली जा सकती हैं, जो बंगला से हिन्दी में अनूदित होकर आ रही थीं, जिन पर निश्चित रूप से फ्रांसीसी और रूसी कहानियों की प्रेरणा थी, क्योंकि हिन्दी कहानियों के विकास-युग में बंगला कहानियों का विकास प्रत्यक्ष रूप से पश्चिमी कहानी-साहित्य के संपर्क से हो रहा था। दूसरे के उदाहरण में हम उन रूसी और फ्रांसीसी कहानियों को ले सकते हैं, जिनके अनुवाद सीधे अंग्रेजी से हिन्दी में हो रहे थे; जैसे प्रमचन्द-द्वारा अनूदित 'टालस्टाय की कहानियाँ', गोपाल नेवटिया-द्वारा अनूदित 'यूरोप की कहानियाँ', 'तुर्गनेव की कहानियाँ', अनुवादक चन्द्रगुप्त विद्यालंकार और 'मोपाँसा की कहानियाँ', अनुवादक इलाचन्द्र जोशी।

उक्त उदाहरणों से पूर्णतः स्पष्ट है कि पश्चिमी कहानी-साहित्य का संपर्क हिन्दी कहानी के विकास-युग को मिल सका। इसके लिए प्रेमचन्द का उद्योग और उनकी क्रियाशीलता कभी नहीं भुलाई जा सकती। उन्होंने ही सर्वप्रथम इसका अनुभव किया कि बंगला के माध्यम से कहानी-शिल्पविधि की व्यापकता में जाना अथवा अप्रत्यक्ष रूप में पश्चिमी कहानी-साहित्य के संपर्क में आना सर्वथा भूल है। इस अप्रत्यक्ष रीति से हिन्दी कहानी-शिल्पविधि को कोई सम्यक् और सारभूत प्रेरणा नहीं मिल सकती। अतएव प्रेमचन्द ने सीधे टालस्टाय, चेखव, तुर्गनेव और मोपाँसा आदि प्रतिनिधि कहानीकारों की कला से हिन्दी का संपर्क स्थापित किया। इस प्रेरणा से विकास-युग के कुछ अन्य कहानीकार; जैसे कौशिक, सुदर्शन, सत्यजीवन वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, कृष्णानन्द गुप्त और चतुरसेन शास्त्री प्रभावित हुए और उन्होंने उक्त पश्चिमी कहानी-धारा में रूस और फ्रांस के कहानीकारों का यथासंभव अनुसरण किया। अतः विकास-युग के उद्‌गम-सूत्र की दिशा में पाश्चात्य कहानी साहित्य का संपर्क इसकी सबसे प्रमुख विशेषता है। पश्चिम से मुख्यतः रूसी और फ्रांसीसी में कहानी-शिल्पविधि की धारा से यह युग विशेष रूप से प्रभावित रहा। प्रेमचन्द इस सत्य के प्रतीक हैं। इनकी कहानी-कला में मानववाद, सुधार का उत्कट आग्रह, दलित-शोषित वर्ग के साथ सहानुभूति और विशुद्ध कथा-शिल्प की दृष्टि से घटना का प्राधान्य, इतिवृत्त का स्पष्ट आकार आदि विशेषताएँ टालस्टाय, मोपाँसा आदि की कला और

---

१. टैगोर की कहानियाँ; गल्पगुच्छ, पाँच भागों में—अनु० रूपनारायण पाण्डेय।

इनके दृष्टिकोण के प्रभाव से संबंधित हैं। विकास-युग, की दूसरी धारा के प्रतीक 'प्रसाद' की कहानी-धारा से इस पाश्चात्य कहानीधारा का संपर्क बिल्कुल नहीं था। यह सत्य उनकी भावमूलक परम्परा से स्पष्ट है। वस्तुतः उद्गम-सूत्र की दृष्टि से 'प्रसाद' की कहानी-कला का सम्बन्ध आंशिक रूप से प्राचीन प्रेमाख्यानों से जोड़ा जा सकता है, अन्य उद्गम-सूत्र से नहीं।

संक्रान्ति-युग

पश्चिमी कहानी-साहित्य से हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का जो संपर्क विकास युग में स्थापित हुआ, उसका पूर्ण प्रतिफलन इसके संक्रान्ति-युग में प्रकट हुआ। इस युग में अमेरिकी, फ्रांसीसी, अंग्रेजी और रूसी आदि समस्त प्रतिनिधि पश्चिमी कहानी-धाराओं से हिन्दी कहानीधारा का पूर्ण सान्निध्य स्पष्ट हुआ। एक प्रकार से संक्रान्ति-युग की हिन्दी कहानी-कला युगीन प्रवृत्तियों के धरातल से विकसित हुई। इसकी प्रेरणा में आधुनिक युग की वे प्रतिनिधि प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही हैं, जो इस युग के निर्माण में सफल हुई हैं; जैसे मनोविज्ञान और इसके अंतर्गत मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति, आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत स्थितियों के लिए साम्यवाद मार्क्सीय मत), यौनवाद (फायडियन मत) आदि। सम्यक् जीवन-दर्शन की खोज और उसका विवेचन भी इस युग की एक प्रधान प्रवृत्ति रही है। फलतः इन युगीन प्रवृत्तियों के धरातल पर कहानी-कला के निर्माण की प्ररणा ने इस युग के कहानीकारों को दो दिशाओं की ओर प्ररित किया। एक थी नयी शिल्पविधियों की दिशा और दूसरी थी उन प्रवृत्तियों की दिशा, जिनसे इस युग का कहानीकार प्रभावित होकर उन्हें अपनी कहानी-कला में अभिव्यक्त करना। इन दोनों दिशाओं के लिये उसका फ्रांस, अमेरिका, रूस और ब्रिटेन की ओर प्रेरित होना अत्यन्त स्वाभाविक था क्योंकि ये युगीन प्रवृत्तियाँ मुख्यतः पश्चिम से ही आई हैं और दूसरी ओर इन प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति के लिये अमेरिकी, फ्रांसीसी, रूसी और अंग्रेजी की कलाओं में उपयुक्त शिल्पविधियों की भी अवतारणा हो गई थी और इसके विकास भी नित्यप्रति होते जा रहे हैं। इस युग में हम पश्चिम से क्यों इतने निकट आये इसके कुछ और भी कारण उपस्थित किये जा सकते हैं। विकास-युग विशुद्ध राष्ट्रीयता का युग था, इसके विपरीत संक्रान्ति-युग अंतर्राष्ट्रीयता का युग है। हम अपने साहित्य को निरपेक्ष ढंग से न देख कर अब पश्चिमी साहित्य की सापेक्षता में देखने लगे, अतएव पश्चिमी कहानीधारा के विभिन्न कहानीकारों से इस युग के कहानीकार प्रभावित हुये, उनकी कहानी-कला के प्रभाव, उनके शिल्प-विधान, उनकी प्रवृत्तियाँ इस युग की हिन्दी कहानी-कला पर पूर्णतः स्पष्ट हैं।

रूसी कहानी-धारा

अध्ययन-क्रम की दृष्टि से रूसी कहानी-कला का प्रभाव संक्रांति-युग पर सबसे पहले पड़ा। इस प्रभाव के उद्गम-सूत्र में मुख्यत: तीन प्रतिनिधि रूसी कहानीकार-चेखव, टालस्टाय और गोर्की आते हैं। विकास-युग ही में टालस्टाय की कला का प्रभाव प्रेमचन्द पर पड़ चुका था। इस युग में आकर विशेषतया टालस्टाय की कला के संपर्क में केवल जैनेन्द्र आये, वह भी दार्शनिक धरातल की कहानियों से। चेखव की कला का सबसे स्पष्ट प्रभाव इलाचन्द्र जोशी की कला पर है। छोटी-छोटी नगण्य घटनाओं द्वारा[१] चरित्र का सूक्ष्म उद्घाटन करना; चेखव की कला की यह विशेषता जोशी की कहानियों में पूर्णत: स्पष्ट है। व्यापक रूप में चेखव की कहानी-कला में इतनी अपार शक्ति थी कि इसका प्रभाव पश्चिम के अन्य देशों पर पड़ा, ब्रिटेन की कैथराइन मैंस-फील्ड इसके उदाहरण में आती हैं। भारत में चेखव का प्रभाव उन समस्त कहानी-कारों पर पड़ा जिन्होंने कहानी-कला सीखने तथा अध्ययन करने के लिये रूसी कहानी-साहित्य का अनुशीलन किया। जैनेन्द्र, अज्ञेय की छोटी-छोटी कहानियों पर, चेखव की कला की चपलता और मँजाव स्पष्ट है। गोर्की की कला का प्रभाव मुख्यत: यहाँ की उन यथार्थवादी कहानियों पर पड़ा जो समाजशास्त्र के अंतर्गत आर्थिक प्रश्नों के धरातल से लिखी गईं। आधुनिक रूसी कहानी-कला में रिपोर्ताज की प्रेरणा से हिन्दी में सूचनिका का आविर्भाव यहाँ अति आधुनिक प्रयोग है।

फ्रांसीसी कहानी-धारा

फ्रांसीसी कहानी-धारा के अंतर्गत केवल, गाइ दा मोपाँसा (१८५०-६३) की कला का प्रभाव हिन्दी कहानी के संक्रान्ति-युग पर पड़ा है। इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानी-कला पर मोपाँसा की व्यंग-शैली नितान्त स्पष्ट है। मुख्यत: जोशी की कला में बौद्धिकता और सूक्ष्मविश्लेषण की प्रेरणा का उद्गम-सूत्र मोपाँसा का वह व्यक्तित्व है, जहाँ उसने अपनी कहानियों में इन तत्वों को आश्चर्यजनक सफलता से अभिव्यक्त किया है।[२] दूसरी ओर उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानी-कला में व्यंग-शैली की प्रेरणा का उद्गम-सूत्र मोपाँसा की वे कहानियाँ है जिनमें साधारण पात्र यथार्थ घटना के माध्यम से उच्चकोटि के व्यंग द्वारा प्रस्तुत किये गये।

---

१. The Lady with the Dog, My Life etc. —Selected Tales of Tchechov.

२. The Mad Woman, Toine, The Signal etc.—The Great Short-storis of Manpassant Pocket-book.

अमेरिकी कहानी-धारा

विकास की दृष्टि से अमेरिकी कहानी-कला का प्रभाव इस युग पर सबसे अधिक पड़ा। एडगर एलन पो से लेकर वर्तमान युग तक, फ्रांसिस ब्रेटहार्ट, ओ० हेनरी, स्टीनबेक, सरोयान, अर्नेस्ट हैमिग्वे, और जानडास पेसोज आदि के कला-विधानों का प्रभाव हिन्दी कहानी के संक्रान्ति-युग पर बराबर पड़ता चला आ रहा है। स्पष्ट शब्दों में इस युग में जितने भी कहानी-शिल्पविधियों की दिशा में नित्य नये-नये प्रयोग हो रहे हैं, अथवा हुए हैं उनके उद्गम-सूत्र में प्रायः अमेरिकी कहानी-कला की प्रेरणा सबसे अधिक है। ओ' हेनरी[1] की कला में इतिवृत्त का स्पष्ट होना, घटना का अप्रत्याशित घुमाव, एक विशेष प्रकार की वक्रता और चरमसीमा पर सबसे अधिक बल देना, आदि कलात्मक विशेषताओं का प्रभाव उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल और पहाड़ी की कहानी-कला पर पूर्णतः स्पष्ट है। अज्ञेय की कहानी-शिल्पविधि में वह विधानात्मक प्रयोग जो उनकी कुछ कहानियाँ; जैसे 'कविप्रिया', 'वसंत' आदि में आते हैं। उसकी प्रेरणा में स्टीनबेक[2] का व्यक्तित्व सर्वदा उल्लेखनीय है। अर्नेस्ट हैमिग्वे और जानडास पेसोज की शिल्पविधि की प्रेरणा में कुछ अति आधुनिक कहानीकार आते हैं।

अंग्रेजी कहानी-धारा

उन्नीसवीं शती के अन्तिम दिनों में जाकर इङ्गलैंड में कहानी-कला देश-समाज-प्रिय हुई। स्टीवेन्सन, कोनन डायल, किपलिंग और एच० जी० वेल्स प्रभृति लेखकों ने उसे पूर्ण रूप से अपनाया, लेकिन उस समय तक अमेरिकी, फ्रांसीसी और रूसी कहानी-धारा में इतना उत्कर्ष स्थापित हो चुका था कि अंग्रेजी कहानी-धारा उसके सामने नगण्य सिद्ध हुई। स्वभावतः उक्त अंग्रेजी कहानीकार हमारे संक्रान्ति-युग को किसी प्रकार की प्रेरणा न दे सके।

लेकिन अंग्रेजी कहानी-कला के विकास-काल में जैकाब्स, कैथराइन मैंसफील्ड, सोमरसेट माम, और डी० एच० लारेन्स के व्यक्तित्व से इस धारा में भी आश्चर्यजनक सजीवता और क्रियाशीलता उपस्थित हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि अंग्रेजी कहानी-धारा के ये विकास-कालीन कहानीकार रूसी, फ्रांसीसी और अमेरिकी कहानी-कला से प्रेरणा लेकर अपने व्यक्तित्व को उनके अनुरूप बनाने के लिये प्रयत्नशील हुए और इस प्रवृत्ति में इन्हें अपूर्व सफलता मिली। ब्रेटहार्ट का यथार्थवाद, कल्पनाशक्ति और नाटकीयता का प्रभाव जेकाब्स पर पड़ा; चेखव (रूस) की कला का प्रभाव कैथराइन मैंसफील्ड पर पड़ा; जी० बालजाक (फ्रांस) से डी० एच० लारेन्स प्रभावित

१. Best Short-stories of O' Henry [Modern-Library].

२. Of Mice & Men, Jon Steinbeck. [Modern Library].

हुआ और सोमेरसेट माम, की कला पर मोपाँसा (फ्रांस) की कला का इतना सशक्त प्रभाव पड़ा कि सोमरसेट अंग्रेजी-धारा का मोपाँसा प्रसिद्ध हुआ।[1]

हिन्दी के संक्रान्ति-युग पर सोमरसेट माम और डी० एच० लारेन्स की कला का प्रभाव पड़ा। अज्ञेय की वे कहानियाँ जो उनके विस्तृत देशाटन और युद्धकालीन अनुभवों के धरातल पर लिखी गई हैं, उनकी शिल्पविधि की प्रेरणा का उद्गम-सूत्र सोमरसेट माम की इस दिशा की कहानियाँ हैं। डी० एच० लारेन्स के शिल्पविधान से नाटकीयता के तत्व, स्थितियों की योजना में कटाव और दमक, जिससे कहानी का सम्पूर्ण वातावरण डरावना और रोमाञ्चकारी हो जाय, यह तत्व अज्ञेय ने अपनी कहानी-कला में डी० एच० लारेन्स से अपूर्व सफलता के साथ अपनाया है। डी० एच० लारेन्स की कहानियों की वर्ण्य वस्तु की प्रेरणा पहाड़ी की कहानियों में स्पष्ट है।

बँगला कहानियाँ

उद्गम-सूत्र की दृष्टि से इस युग की कहानी-कला पर टैगोर की कहानी-कला का भी प्रभाव स्पष्ट है। हिन्दी कहानियों के आविर्भाव और विकास-युग में टैगोर, प्रभातकुमार और शरत्चन्द्र की प्रारम्भिक कहानियों की प्रेरणा निश्चित रूप से इसके विकास में प्राणशक्ति दे रही थी। संक्रान्ति-युग में पहुंचकर मुख्यतः टैगोर की कहानी-कला का सम्यक् प्रभाव अज्ञेय, जैनेन्द्रकुमार और इलाचन्द्र जोशी के व्यक्तित्व पर पड़ा है। प्रभातकुमार, शरत्चन्द्र का प्रभाव इस युग की कहानी-कला पर पूर्णतः नगण्य है। वस्तुतः टैगोर की कला की नाटकीयता, स्थितियों की योजना में अपूर्व गत्यात्मकता और चरित्र-प्रतिष्ठा में उच्चकोटि की मानव-संवेदना और चरित्रनिष्ठा इनकी शिल्पविधि की प्रमुख विशेषताएं हैं। इन कलात्मक तत्वों का प्रभाव अज्ञेय, जैनेन्द्र की कहानी-कला पर कहीं-कहीं पूर्णतः स्पष्ट है। अज्ञेय की कुछ कहानियाँ; जैसे 'कोठरी की बात' 'सिगनेलर', 'पठार का धीरज', 'जयदोल' आदि पर टैगोर की कला की प्रेरणा नितान्त प्रकट है। टैगोर की कहानियाँ; जैसे 'सड़क की बात', 'घाट की बात,[2] की प्रेरणा के अन्तर्गत अज्ञेय की कहानी 'कोठरी की बात' आती है। इसी तरह टैगोर की अन्य कहानियाँ; जैसे 'प्यासा पत्थर'[3] और 'स्वर्ण मृग' की कला के उद्गम-सूत्र में अज्ञेय

१. Maugham has been called, "The English Maupassant specially, because he followed his french predecessor's tradition in developing stories where irony of fate plays its part and life becomes a tragic joke."—World's Great Short Stories—Introduction, p. 10

२. घाट की बात, रवीन्द्र साहित्य, भाग १, सड़क की बात, भाग ३।

३. प्यासा पत्थर; रवीन्द्र साहित्य, भाग २।

की कहानियाँ क्रमशः 'पठार; का धीरज', 'जयदोल' और 'सिगनेलर' आदि संबद्ध हैं। जैनेन्द्रकुमार की कुछ कहानियाँ जैसे 'एक रात', 'राजीव और भाभी', 'मास्टर साहब' आदि के विधान पर भी टैगोर की कला का प्रभाव पूर्णतः स्पष्ट है।

टैगोर के उपरान्त वर्तमान बङ्गला-साहित्य में अचितकुमार सेनगुप्ता, वनफूल, विभूतिभूषन बनर्जी, सुबोध घोष और ताराशंकर बनर्जी आदि अनेक प्रतिनिधि बङ्गला कहानीकार हुए हैं, लेकिन इनकी कहानी-कला में टैगोर की भाँति वह आकर्षण नहीं है, जिससे इस युग का हिन्दी कहानीकार उस रूप में प्रेरित होता। वस्तुतः हिन्दी कहानी-कला के संक्रान्ति-युग में हिन्दी कहानियाँ स्वयं अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गई हैं। यही कारण है कि अब इस युग की हिन्दी कहानी-कला बङ्गला आदि कहानीधारा से प्रेरणा की अपेक्षा बिल्कुल नहीं करती। इसका विकास स्वयं इतने वेग से हो रहा है कि इसका कहानी-साहित्य संसार के किसी कहानी-साहित्य की तुलना में रखा जा सकता है।

---

१. सड़क की बात; रवीन्द्र साहित्य, भाग ३, अनु० धन्यकुमार जैन।

कहानी-कला की समीक्षा

कला की दृष्टि से कहानी, गद्यसाहित्य के समस्त रूपों-प्रकारों में श्रेष्ठ है और इसकी यह कलात्मक श्रेष्ठता इसके रूप-विधान में है। अन्य रूपों की अपेक्षा इसमें जहाँ एक ओर भौतिक उपादानों की सबसे कम, सबसे साधारण स्तर की आवश्यकता पड़ती है, वहाँ दूसरी ओर इसका कार्य सबसे महान् और गुरुतर होता है, क्योंकि गद्य-साहित्य के अन्तर्गत कहानी-कला वह कला है जो मानव के बाह्य जीवन और उसके अन्तःस्थल में बनते-बिगड़ते हुए भाव-समूहों और समस्याओं को क्षणिक विद्युत्-प्रकाश की भाँति हमारे सामने ला छोड़ती है और पाठक का मन एवं मस्तिष्क उसके भावों से घनीभूत हो जाता है।

कहानी का विकासोन्मुख रूप

कहानी की संवेदना और इसकी प्रतिपाद्य सीमा बहुत विस्तृत है। इतिहास और अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों, संवेदनाओं से लेकर आधुनिक युग की समस्याएँ उसके वर्ण्य विषय में आती हैं। चम्पा नगरी के 'आकाशदीप' से लेकर मध्यकालीन मुगल हरम में 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' के आँसुओं में रोती हुई बेगमों से आधुनिक काल के कफन-चोर किसान, मजदूरों और वर्तमान युग के पुरुष का भाग्य तक की संवेदनाएँ इस कला की वर्ण्य वस्तु हैं। विकास की दृष्टि से कहानी अपने विषय की दिशा में स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ती आ रही है। आधुनिक कहानी की विषय-सीमा के अन्तर्गत आज का कहानीकार जो कुछ भी चाहता है, उसे अपनी कहानी का विषय बना लेता है। वह विषय कुछ भी हो सकता है—एक घोड़े की मौत से लेकर किसी जवान लड़की के प्रेम-व्यापार तक की घटनाएँ। वह भी विषय लिया जाता है, जिसमें कोई कथानक या कथा-सूत्र, स्थूल रूप से उत्पन्न ही नहीं हो सकता। दूसरी ओर वह भी विषय लिया जाता है, जिसमें घूमती हुई मशीन और कैमरा की परिधि में आने वाली अनेक कथाएँ, उपकथाएँ, चित्र और रंग घनीभूत रहते हैं। अतएव व्यापक विषय-सीमा के फलस्वरूप ही इसकी शिल्प-विधि में आश्चर्यजनक वैविध्य उपस्थित हो रहा है।[1]

---

१. The short story can be any thing-from the prose poem painted rather than written to the piece of straight reportas in

इसी वैविध्य के कारण आज तक कहानी-कला की कोई निश्चित परिभाषा नहीं हो सकी है। वस्तुतः यह कार्य कठिन भी है। वैसे इस कला को परिभाषा में बाँधने के लिए हमारे यहाँ और पश्चिम[१] दोनों जगह के विज्ञ आलोचकों और कहानीकारों ने प्रयत्न किये हैं, लेकिन कहीं भी कहानी की आत्मा परिभाषाओं में नहीं बँध सकी है। इसका मुख्य कारण यही है कि कहानी-कला की मान्यता और दृष्टिकोण में अनवरत विकास होता चल रहा है। एक तरह से हमारे जीवन की द्रुतगामिता की यही सच्ची परिभाषा है। कहानी-कला की वास्तविक परिभाषा समझने के लिये हमें इसकी मूल आत्मा से परिचय प्राप्त करना चाहिए जिसके धरातल से इसकी सृष्टि होती है। वस्तुतः कहानी-सृष्टि की दो प्रेरणाएँ होती हैं, या तो कोई संवेद्य घटना अथवा समस्या किसी भी संवेदनशील लेखक को कहानी लिखने को विवश करती है, या उसकी कोई मनोवैज्ञानिक गति अथवा आत्मानुभूति उसे कहानीबद्ध करने को प्रेरित करती है। इस तरह दोनों रूपों में एक भाव-प्रधान या अनुभूति के द्वारा लेखक अपने पाठक के ऊपर एकान्तिक प्रभाव डालना चाहता है। इसके लिए वह उसके ही अनुरूप कथानक तैयार करता है, कथानक में सजीव पात्रों को जोड़ता है, दोनों के सहारे वह

---

which style, colour and elaboration have no place, fro n the piece which catches like a cob-web the light subtle iridescence of emotions that can never be really captured or measured to the solid tale in which all emotions, all action, all reaction is measured, fixed, glazed and finished like a well build have with three coats of shinning and induring patint"—H. E. Bates [The Modern Short Stories, Page 16.]

१. Tchchov held that a story should have neither beginning nor end but reminded authors if they had described a gun hanging at the wall on page one, sooner or later that gun must go off—H. E. Bates. [The Modern Short Stories Page. 15-16]

× × ×

H. G. Wells defined short story as any piece of short fiction that could be read in half an hours.

× × ×

Mr. John Hadfield describes the short-story, a story that is not long.—John Hadfield, Editor, Modern Short Stories.

परिपार्श्व तथा उचित वातावरण प्रस्तुत करता है और उसमें शैली की क्रियाशीलता से वह पाठक को एक अत्यन्त सहज गति से अभिप्राय के चरमोत्कर्ष पर ला खड़ा कर देता है और स्वयं दूर हट जाता है। इस तरह लेखक के अपने मनोवांछित अभिप्राय तक पहुँचने के लिये उसे कला-निर्माण में जो प्रक्रिया करनी पड़ती है, वही प्रक्रिया उस कहानी की कला है, टेकनीक है और उसके प्रति उसे जिन उपकरणों को एकत्र करना पड़ा है, वे समस्त उपकरण उसके मूल तत्व हैं और इससे जो कलात्मक कृति प्रस्तुत हुई है, वह कहानी है।

कहानी के तत्व

इस प्रकार रचना की दृष्टि से कहानी के निम्नलिखित तत्व होते हैं :

(१) कथा-वस्तु (२) पात्र और चरित्र-चित्रण
(३) कथोपकथन (४) स्थिति अथवा वातावरण
(५) शैली (६) उद्देश्य

कहानी के उक्त तत्वों में से कहानीकार किसी एक या एकाधिक तत्वों पर बल दे सकता है, फिर भी समस्त तत्वों का सामूहिक प्रभाव कहानी-कला की मुख्य आत्मा है, क्योंकि प्रत्येक तत्व अपने-अपने स्थान पर विशिष्ट और मूल्यवान हैं। किसी न किसी रूप और स्तर में उन तत्वों का सहारा कहानीकार को अवश्य लेना पड़ता है।

कथा-वस्तु

कहानी में कथा-वस्तु का स्थान मुख्य है। यही कहानी का वह ढाँचा है; जिस पर कहानी निर्मित होती है। कहानी के आरम्भ-काल में कथा-वस्तु ही इसका सब कुछ हुआ करता था, लेकिन ज्यों-ज्यों कहानी-कला में विकास होता गया, त्यों-त्यों इसका स्थान गौण होता जा रहा है। विशेषकर जब से कहानी में मनोवैज्ञानिक अनुभूति और मनोविश्लेषण का प्रादुर्भाव हुआ है, तब से इसका रूप अत्यन्त सूक्ष्म होता जा रहा है। वस्तुतः कथा-वस्तु का जन्म कहानीकार की उन अनुभूतियों और लक्ष्यात्मक प्रवृत्ति से होता है जिसके धरातल अथवा मूल प्रेरणा से कहानीकार अपनी कहानी का निर्माण करने बैठता है। यदि अनुभूतियाँ घटनाओं अथवा कार्य-व्यापारों की शृंखला से निर्मित हुई हैं, तो उनके प्रकाश में कथावस्तु का रूप कहानी में मुख्य होगा और कथानक पूर्ण इतिवृत्तात्मक और स्थूल होगा, लेकिन जब अनुभूतियों का प्रादुर्भाव हमारी मनोवैज्ञानिक सत्यता अथवा अंतर्द्वन्द्व और मनोविश्लेषण के धरातल से हुआ है, तब कथानक का रूप कहानी में अत्यन्त सूक्ष्म और गौण होगा। आधुनिक कहानी-कला में कहीं-कहीं इस तत्व को बिल्कुल परोक्ष में डाल कर केवल पात्रों और परिस्थितियों के चित्रण से कहानी प्रस्तुत हो जाती है, किन्तु फिर भी व्यापक रूप में कथा-वस्तु का सहारा किसी-

न-किसी रूप में कहानीकार को अपनी कहानी में लेना ही पड़ता है। केवल इसके स्वरूप में वैविध्य अवश्य उपस्थित होता रहता है, यही कारण है कि स्वरूप की दृष्टि से कथा-वस्तु के तीन प्रकार मिलते हैं :

१. घटना-प्रधान २. चरित्र-प्रधान ३. भाव-प्रधान

घटना-प्रधान कथा-वस्तु में घटना अथवा कार्य-व्यापार की शृंखलाएँ ही इनके निर्माण में चरितार्थ होती हैं। इसमें कार्य-व्यापारों की सीमा स्वाभाविकता से बहुत आगे बढ़ जाती है—अर्थात् दैवी संयोग और अति मानवीय शक्तियाँ भी इसमें कार्यरत होती हैं। जासूसी कहानियों की कथा-वस्तु इसका सुन्दर उदाहरण है।

चरित्र-प्रधान कथा-वस्तु में घटना और संयोग गौण हो जाता है; चरित्र-चित्रण और विश्लेषण ही मुख्य हो जाता है। कथा-सूत्र किसी मुख्य पात्र की रेखाओं में अपना विकास पाता है। ऐसे कथानकों में जहाँ एक ओर संश्लिष्टात्मक शब्द मिलते हैं, वहाँ दूसरी ओर इनमें आरोह-अवरोह के क्रम बहुत कलात्मकता से स्पष्ट रहते हैं। एक तरह से ऐसे कथानकों से चरित्र-विश्लेषण अथवा चरित्र-अध्ययन के धरातल से कार्य-व्यापार लिये जाते हैं। अतएव इसका रूप अपेक्षाकृत सूक्ष्म और पूर्ण कलात्मक होता है, क्योंकि ऐसे कथानकों के निर्माण में बाह्य घटनाएँ; कार्य-व्यापार बिल्कुल नहीं प्रयुक्त होते, वरन् चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व, पात्रों के मानसिक ऊहापोह और विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्त होने वाली उनकी समस्त चरित्रगत विशेषताएँ उसके निर्माण में चरितार्थ होती हैं। अज्ञेय और जैनेन्द्रकुमार की मनोवैज्ञानिक धरातल की कहानियों[1] के कथानक इसके अत्यन्त सुन्दर उदाहरण हैं।

भाव-प्रधान कथा-वस्तु में स्थूल पात्र से भी आगे उनकी अनुभूति और भाव ही उसके मुख्य सूत्र के रूप में आते हैं। यहाँ कथा-वस्तु का रूप सबसे अधिक सूक्ष्म और अमूर्त हो जाता है। न इसमें वर्णनात्मकता रहती है, न इतिवृत्तात्मकता, वरन् कथा-सूत्र की स्थापना केवल व्यंजना और संकेतों द्वारा की जाती है। ऐसे कथानक मूलतः मनुष्य को किन्हीं शाश्वत भावों; जैसे प्रेम, घृणा, करुणा और निर्वेद आदि के धरातल से निर्मित होते हैं। लगता है कि पात्र की कोई विशेष भाव-दिशा अथवा मनोदशा स्वयं अपने समग्र विकास में कहानी का मेरुदण्ड बन गयी जिसे हम अध्ययन की दृष्टि से कथानक कह सकते हैं। ऐसे कथा-सूत्रों में चरित्र की मनोदशा और उसके व्यक्तित्व की समूची इकाइयाँ संकेतात्मक अथवा व्यंजनात्मक रूप में संगुंफित की जा सकती हैं। अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी 'कोठरी की बात' में कथा-सूत्र अथवा कथा-तत्व का स्वरूप पूर्णतः यही है और यह कहानी इस दिशा में पूर्णरूप से सफल है। वस्तु-विन्यास की

१. अज्ञेय—पुरुष का भाग्य, पुलिस की सीटी, छाया, और रोज। जैनेन्द्र कुमार—एक रात, मास्टर जी और क्या हो।

दृष्टि से दूसरी ओर कथा
चरमसीमा अथवा अन्त।

आरम्भ कहानी
कार का हस्तलाघव निर्भर
उसकी वास्तविक समस्या
अवश्य ही आ जाते हैं।
का परम आकर्षक रूप भी
का द्योतक है। उत्कृष्ट क
उसकी प्राथमिक आवश्यक
कहानी के पीछे आकर्षित
सामंजस्य इसकी दूसरी वि
उद्देश्य अवश्य सन्निहित ह
विशेषता वस्तु-विन्यास क

कथानक के मध्य
अवरोह पूर्णतः स्पष्ट हो
मुख्य अंग है। इसी अंग
कहानी के लक्ष्य की पूर्ण
विकास का मध्य-भाग ही
मूल शरीर है। कलात्मक
चाहिए जितना उसके पा
अधिक बिल्कुल न हो।
चाहिए क्योंकि विकास-
पाठक को वहाँ तक सह
है, लेकिन यहाँ कौतूहल
घटना-प्रधान कथानक में
इसकी अवतारणा पूर्ण
तक का आवेग बड़ा ती
उसका संतुलन परमावश
नष्ट हो जायगा।

चरित्र-प्रधान क
से हो सकती है। यहाँ

दृष्टि से दूसरी ओर कथानक के तीन अंग होते हैं—१. आरम्भ, २. मध्य और ३. चरमसीमा अथवा अन्त।

आरम्भ कहानी का आदि भाग है। उसी की कुशल अभिव्यक्ति पर कहानीकार का हस्तलाघव निर्भर करता है। इस अंश में कहानी के प्रायः समस्त बीज, उसकी वास्तविक समस्या का संकेत और मुख्य पात्रों के परिचय किसी-न-किसी रूप में अवश्य ही आ जाते हैं। दूसरी ओर कथानक के इसी भाग में कहानी की मुख्य जिज्ञासा का परम आकर्षक रूप भी अपने कलात्मक दृष्टि से कहानीकार की कुशलता की परीक्षा का द्योतक है। उत्कृष्ट कहानी के कथानक के आरम्भ अंश में आकर्षण की प्रतिष्ठा उसकी प्राथमिक आवश्यकता है। इसी की प्रेरणा से पाठक मन्त्रमुग्ध होकर सम्पूर्ण कहानी के पीछे आकर्षित होता है। कहानी की मुख्य संवेदना से इस भाग का पूर्ण सामंजस्य इसकी दूसरी विशेषता है। इस भाग में किसी-न-किसी रूप में कहानी का उद्देश्य अवश्य सन्निहित होता है। आकर्षण और लक्ष्य दोनों दृष्टियों से यह अन्तिम विशेषता वस्तु-विन्यास की सबसे बड़ी अपेक्षा है।

कथानक के मध्य भाग में समस्या का परम विस्तार तथा अन्तर्द्वन्द्व का आरोह-अवरोह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। कथानक के सम्पूर्ण अंग में विस्तार ही उसका मुख्य अंग है। इसी अंग में कहानी की वास्तविक आत्मा प्रस्फुटित होती है और कहानी के लक्ष्य की पूर्ण पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है, रचना-विधान की दृष्टि से वस्तु-विकास का मध्य-भाग ही कहानी का विकास-भाग है और विकास-भाग कहानी का मूल शरीर है। कलात्मक दृष्टि से कहानी-लेखक को विकास का उतना ही विस्तार करना चाहिए जितना उसके पात्रों और घटनाओं को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक हो, अधिक बिल्कुल न हो। इस भाग में कौतूहल की मात्रा को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए क्योंकि विकास-भाग से कहानी की चरमसीमा पूर्णरूप से सम्बद्ध रहती है और पाठक को वहाँ तक सहज गति से पहुंचाना कहानीकार का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व है, लेकिन यहाँ कौतूहल की सृष्टि किस रूप और स्तर से हो, यह भी एक प्रश्न है। घटना-प्रधान कथानक में भ्रम, विपत्ति और उत्तेजनाजनक परिस्थितियों की सृष्टि में इसकी अवतारणा पूर्ण कलात्मक हो सकती है। ऐसी स्थितियों में कभी-कभी कौतूहल तक का आवेग बड़ी तीव्रता से बढ़ने लगता है। ऐसे अवसर पर कहानीकार द्वारा उसका संतुलन परमावश्यक है, अन्यथा चरमसीमा पर कहानी का एकान्तिक प्रभाव नष्ट हो जायगा।

चरित्र-प्रधान कथा-वस्तुओं के विकास-भाग में कौतूहल की सृष्टि परम सरलता से हो सकती है। यहाँ पात्र ही सब कुछ होते हैं। उनके अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक घात-

प्रतिघात के फलस्वरूप अनेक अप्रत्याशित समस्याएँ खड़ी हो सकती हैं और कौतूहल का समावेश स्वयं अपने आप होता चलता है ।

सफल कहानियों में कौतूहल का आविर्भाव अनेक बार अनेक अंगों पर होता है, पर उसमें हर बार स्तर-विभेद होता चलता है अर्थात् कौतूहल में तीव्रता बढ़ती रहती है । पहला कौतूहल प्रारम्भ में उत्सुकता की सृष्टि करता हुआ कहानी को उसकी चरमसीमा की ओर प्रेरित करता है, लेकिन चरमसीमा तक पहुँचने के पूर्व इसकी गति में तीव्रता लाने के लिए दूसरी और तीसरे कौतूहल की सृष्टि करनी पड़ती है, जिसके फलस्वरूप समूची कहानी में भावों और अनुभूतियों की इतनी तीव्रता उत्पन्न हो जाती है कि छोटी-सी कहानी अपने एकान्तिक प्रभाव में परम व्यापक और विस्तृत सिद्ध होने लगती है और चरमसीमा तक पहुँचते-पहुँचते उसमें अप्रत्याशित आनन्द और सौन्दर्य उपस्थित हो जाता है । इस तरह चरमसीमा की ओर जाने वाली कौतूहल-जनक घटनाओं की सृष्टि का रूप प्रायः इस प्रकार का होगा :—

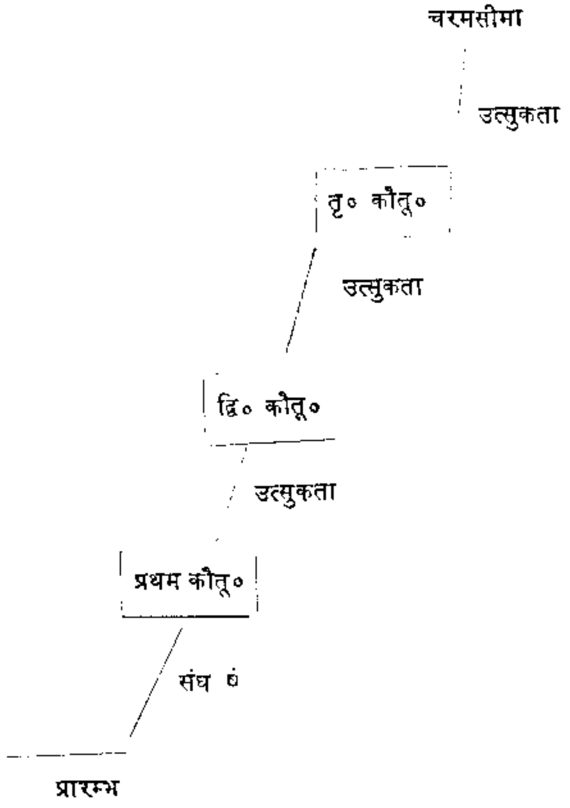

कौतूहल के अन्त में च
कहानी का समस्त कौतूहल अ
उसके आगे पाठक की गति सम
का कार्य सम्पूर्ण हो जाता है
होगी और उस पर संयोग अथ
रूप से होगी । प्रसिद्ध अमेरि
कहानियों की चरम-सीमाओं
और कौशिक की कहानियों में
अश्क की भी कहानी-कला में

अध्ययन की दृष्टि से
(अमेरिका) की 'अन्तिम पत्ती
'बाजी' और एच० जी० वेल्स
शित कार्य-व्यापार और घटन

लेकिन आधुनिक कह
सीमाएँ पूर्ण स्वाभाविक और
जाती है, जिसे बार-बार पढ़ने
एक ही बार पूर्ण तन्मयता के
जा सकता है क्योंकि कहानी
रहस्यात्मकता नहीं रह जात
पढ़ी जाय ।

आज की कहानी-कल
समूची मान्यताओं में परिवर्तन
उनकी प्रतिष्ठा की दशा में अ
कहानी के आरम्भ और अन्त
भागों पर घटना अथवा का
अन्तर्द्वन्द्व, उसकी समूची आन
बार-बार समूची कहानी को
पर स्वयं विचार करें । आज
पर सोचने के लिए बाध्य क

१. Mr. Ellery
horserace. It is the sta
[Sedgewich and

कौतूहल के अन्त में चरमसीमा की स्थिति आती है अर्थात् इस भाग पर आकर कहानी का समस्त कौतूहल और कहानी का सम्पूर्ण अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है तथा उसके आगे पाठक की गति समाप्त हो जाती है। एक तरह से यहाँ पहुँच कर कहानी का कार्य सम्पूर्ण हो जाता है। घटना-प्रधान कथा-वस्तु की चरमसीमा घटनात्मक होगी और उस पर संयोग अथवा अप्रत्याशित कार्य-व्यापार की अवतारणा निश्चित रूप से होगी। प्रसिद्ध अमेरिकन कहानीकार ओ० हेनरी ने इस प्रवृत्ति का अपनी कहानियों की चरम-सीमाओं पर बहुत निर्वाह किया है। हिन्दी में प्रेमचन्द, सुदर्शन और कौशिक की कहानियों में यह प्रवृत्ति पूर्ण सफलता से पायी जाती है। उपेन्द्रनाथ अश्क की भी कहानी-कला में चरमसीमा पर विशेष बल इसी रूप में दिया गया है।

अध्ययन की दृष्टि से संसार की समस्त प्रसिद्ध कहानियाँ; जैसे ओ० हेनरी (अमेरिका) की 'अन्तिम पत्ती', मोपाँसा (फ्रांस) का 'नेकलेस', चेखव (रूस) की 'बाज़ी' और एच० जी० वेल्स (इंग्लैण्ड) की 'कीटाणु' आदि की चरमसीमाएँ अप्रत्याशित कार्य-व्यापार और घटना की तीव्रता पर ही आधारित हैं।

लेकिन आधुनिक कहानीकला के अनुसार ये कहानियाँ और इनकी ऐसी चरम-सीमाएँ पूर्ण स्वाभाविक और उत्तम नहीं मानी जा सकतीं। उत्कृष्ट कहानी वह मानी जाती है, जिसे बार-बार पढ़ने और मनन करने की इच्छा हो, लेकिन उक्त कहानियाँ एक ही बार पूर्ण तन्मयता के साथ पढ़ी जा सकती हैं और उनसे पूर्ण आनन्द उठाया जा सकता है क्योंकि कहानी समाप्त करने के बाद कोई ऐसी समस्या, प्रश्न और रहस्यात्मकता नहीं रह जाती जिसे समझने या सुलझाने के लिए कहानी बार-बार पढ़ी जाय।

आज की कहानी-कला में चरमसीमा की ही मान्यता क्या, इसके विधान की समूची मान्यताओं में परिवर्तन हो गया है। यद्यपि कहानी के मूल तत्व वही हैं, लेकिन उनकी प्रतिष्ठा की दशा में आमूल परिवर्तन हुए हैं। आधुनिक कहानी-कला में भी कहानी के आरम्भ और अन्त-भाग पर विशेष बल दिया जाता है,[1] लेकिन अब इन भागों पर घटना अथवा कार्य-व्यापार के स्थान पर मानव-संघर्ष, उसके शाश्वत अन्तर्द्वन्द्व, उसकी समूची आन्तरिकता की व्यंजना उपस्थित की जाती है, जिससे पाठक बार-बार समूची कहानी को आदि से अन्त तक पढ़ता हुआ, उन प्रश्नों और समस्याओं पर स्वयं विचार करें। आज की कहानियाँ हमारे सामने समस्याएँ रखती हैं और उस पर सोचने के लिए बाध्य करती हैं। आज की कहानी-कला में भी कथा-वस्तु है,

१. Mr. Ellery Sedgewich held that. "A story is like a horserace. It is the start and finish that count most."

[Sedgewich and Dominovitch Editor : Novel and story]

घटनाएँ हैं, संघर्ष हैं, लेकिन अब इनका सम्बन्ध मन-मस्तिष्क से अधिक हो गया है। इसके भी विकास में कौतूहल और जिज्ञासा की तीव्रता है, लेकिन अब इसका स्तर भावुकता से हट कर बौद्धिक हो गया है। आज की कहानी-कला में आश्चर्य-वृत्ति भी मिलती है, लेकिन इसमें पूर्ण स्वाभाविकता लाने का आग्रह है। यहाँ चरमसीमा भी है, लेकिन आज की चरमसीमा इस घटना अथवा संयोग पर नहीं व्यक्त हुई है कि कोई स्त्री अपने खोए हुए आभूषणों को हैट-बाक्स से एकाएक पा जाती हैं, वरन् एक ऐसी स्त्री की मनोदशा की चरमसीमा है जो एकाएक अपनी स्मृति में अपने खोए हुए आनन्द और शान्ति को पा जाती है।[१]

इस तरह आधुनिक कहानी-कला के मूलतत्वों में परिवर्तन नहीं हुआ है, वरन् उन तत्वों के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तन उपस्थित हुआ है तथा उनके विन्यास में आश्चर्यजनक विकास हुआ है।

पात्र और चरित्र-चित्रण

पात्र कथा-वस्तु के सजीव संचालक हैं[२], जिनसे एक ओर कथा-वस्तु का आरम्भ, विकास और अन्त होता है और दूसरी ओर जिनसे हम कहानी में आत्मीयता प्राप्त करते हैं। कहानी में पात्र-निर्माण के लिए कहानीकार को तीन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। पात्र सर्वथा सजीव और स्वाभाविक हों और इनकी अवतारणा कल्पना के धरातल से न होकर कलाकार की आत्मानुभूति के धरातल से हो, जिससे पात्र और पाठक में पूर्ण सरलता से साधारणीकरण हो जाए। पात्रों की सृष्टि कहानी की मुख्य संवेदना के अनुकूल हो तथा पात्र ऐसे हों जो प्रायः सर्वसुलभ और सप्राण हों। जो

१. The modern story tellers have changed their nature. There is still adventure but it is now an adventure of the mind. There is sspense, but it is less a nervous suspense than an emotional or intellectual suspense. There is a climax, but it is not the climax of a woman who discovers her lost jewells in the hat-box, but the climax of the woman who discovers her lost happinesss in a memory.—Scon O, Faolain.

—The Short Story, P. 164.

२. One of the best definitions ever given of the techinique of fiction is that action reveals character and that character demonstrates itself in action and action is only another word for incidents.—Seon O' Faolain. The Short Story. P. 165.

कहानीकार अपने पात्रों को केवल घ
अपने पात्रों को कभी अमरत्व नहीं प्र
नहीं, तो उनसे हमारा साधारणीक
भविष्य तथा स्वदेश-विदेश जहाँ के
है, लेकिन सृष्टि में केवल एक शर्त
में हमें किसी प्रकार का संदेह न हो
पात्रों में व्यक्तित्व, भाव, संघर्ष और
चाहिए, अतः जो लेखक अपने पात्र
प्रश्नों को भरता है वह अपने पाठकों
है। वे पात्र न केवल घटनाओं के ज
प्रविष्ट होकर उनमें प्राणशक्ति का
में अधिक पात्रों का समावेश पूर्ण रू
पात्र का न तो चरित्र ही स्पष्ट हो
सकती है। अतएव सफल कहानियों
अगर अधिक की भी जाती है तो शे
अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए अ

व्यापक विभेद की दृष्टि से
पात्रता की परिधि में आते हैं। ऐसे
और पांडित्य की सबसे बड़ी परीक्ष
सबसे अधिक ध्यान देने की होती है
ऐसे पात्रों को हम उनकी रूपरेखा व
सकते हैं।

सामान्य पात्र हमारे समाज
पूरा साधारणीकरण यों भी संभव ह
पहचाने रहते हैं। आधुनिक कहानी
अवतारणा बिल्कुल नगण्य है। आज
विश्लेषण में अधिक आस्था है, अंध
आधुनिक कहानी-कला में सामान्य प
चेतना के प्रतीक होते हैं।

सामान्य पात्र दो प्रकार के

१. जो पात्र मिट्टी के ढूहे
पाठकों में रुचि नहीं उत्पन्न कर सक

-मस्तिष्क से अधिक हो गया है।
व्रता है, लेकिन अब इसका स्तर
कहानी-कला में आश्चर्य-वृत्ति भी
आग्रह है। यहाँ चरमसीमा भी
संयोग पर नहीं व्यक्त हुई है कि
एकाएक पा जाती हैं, वरन् एक
एक अपनी स्मृति में अपने खोए

वों में परिवर्तन नहीं हुआ है, वरन्
वर्तन उपस्थित हुआ है तथा उनके

नसे एक ओर कथा-वस्तु का आरम्भ,
से हम कहानी में आत्मीयता प्राप्त
कार को तीन बातों पर विशेष ध्यान
हों और इनकी अवतारणा कल्पना
के धरातल से हो, जिससे पात्र और
। पात्रों की सृष्टि कहानी की मुख्य
: सर्वसुलभ और सप्राण हों। जो

have changed their nature.
an adventure of the mind.
us suspense than an emotio-
a climax, but it is not the
lost jewells in the hat-box,
overs her lost happinesss in a

—The Short Story, P. 164.
ever given of the techini-
aracter and that character
on is only another word for
ort Story. P. 165.

कहानीकार अपने पात्रों को केवल घटनाओं के संचालक बना कर छोड़ देता है, वह अपने पात्रों को कभी अमरत्व नहीं प्रदान कर सकता और जब उनमें प्राणशक्ति ही नहीं, तो उनसे हमारा साधारणीकरण कैसे हो सकता है। पात्र अतीत, वर्तमान, भविष्य तथा स्वदेश-विदेश जहाँ के भी हों, उनकी सृष्टि कहानी के क्षेत्र में हो सकती है, लेकिन सृष्टि में केवल एक शर्त होनी चाहिए, उनकी पार्थिवता और स्वाभाविकता में हमें किसी प्रकार का संदेह न हो।[1] इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि पात्रों में व्यक्तित्व, भाव, संघर्ष और मानव के शाश्वत प्रश्नों की शृंखला गुँथी होनी चाहिए, अतः जो लेखक अपने पात्रों में जीवन की शक्तियाँ, अन्तर्द्वन्द्व और शाश्वत प्रश्नों को भरता है वह अपने पाठकों के हृदय में चिरस्थायी रूप से स्थान कर लेता है। वे पात्र न केवल घटनाओं के जाल में ही खेलते हैं, किन्तु पाठकों के अन्तर्मन में प्रविष्ट होकर उनमें प्राणशक्ति का संचार भी करते हैं। कहानी की विधानात्मक सीमा में अधिक पात्रों का समावेश पूर्ण रूप से अनुचित है क्योंकि ऐसी स्थिति में एक भी पात्र का न तो चरित्र ही स्पष्ट हो सकता है, न उसके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा ही हो सकती है। अतएव सफल कहानियों में तो अधिक पात्रों की अवतारणा नहीं की जाती, अगर अधिक की भी जाती है तो शेष सभी पात्र उन्हीं दो मुख्य पात्रों को अधिक स्पष्ट, अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए अवतारित होते हैं।

व्यापक विभेद की दृष्टि से कहानी के पात्र प्रथमतः ऐतिहासिक, पौराणिक पात्रता की परिधि में आते हैं। ऐसे पात्रों की सृष्टि में कहानीकार की कल्पना-शक्ति और पांडित्य की सबसे बड़ी परीक्षा होती है। इन पात्रों के आविर्भाव में जो बात सबसे अधिक ध्यान देने की होती है, वह है इनका विशिष्ट व्यक्तित्व-निर्माण, क्योंकि ऐसे पात्रों को हम उनकी रूपरेखा की अपेक्षा उनके विशिष्ट व्यक्तित्व से ही पहचान सकते हैं।

सामान्य पात्र हमारे समाज में बीच के होते हैं। फलतः इन पात्रों से हमारा पूरा साधारणीकरण यों भी संभव हो जाता है कि ये पात्र हमारे देखे-सुने और जाने-पहचाने रहते हैं। आधुनिक कहानी-कला की धारा में वस्तुतः लोकोत्तर पात्रों की अवतारणा बिल्कुल नगण्य है। आज का युग बुद्धिवादी युग है। इसे तर्क, विवेक और विश्लेषण में अधिक आस्था है, अंधविश्वास, कल्पना और निष्ठा में कम। अतएव आधुनिक कहानी-कला में सामान्य पात्र ही लिये जाते हैं, जो मानव-संघर्षों और युग-चेतना के प्रतीक होते हैं।

सामान्य पात्र दो प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार के पात्र वे हैं जो अपने

---

१. जो पात्र मिट्टी के ढूहे की भाँति अपना कोई व्यक्तित्व न रखते हों वे पाठकों में रुचि नहीं उत्पन्न कर सकते—गुलाबराय, काव्य के रूप, पृष्ठ २२०।

व्यक्तित्व में पूर्ण हैं। उनकी अपनी व्यक्तिगत सत्ता है और यह सत्ता हमारी सामाजिकता की एक अभिन्न इकाई है। वे पात्र सर्वसाधारण से लेकर उच्चवर्ग तक फैले हुए हैं। दूसरे प्रकार के पात्र वे हैं जिनका कोई व्यक्तिगत चरित्र न होकर, सर्वथा चरित्रों के प्रतिनिधि-स्वरूप होते हैं। ये प्रतिनिधि पात्र अपने में व्यक्ति नहीं होते, वे एक टाइप के प्रतिनिधि हुआ करते हैं। उन्हें अपने जातिगत व्यक्तित्व की इकाई समझना चाहिए, उनके व्यक्ति की इकाई नहीं। ऐसे पात्र सब जगह, सब नामों के नीचे एक ही मूल्य के द्योतक होते हैं। वे अपना निज का व्यक्तित्व बनाने के झंझट से पूर्णरूप से बचे रहते हैं और वे विश्वास स्वयं कभी नहीं गढ़ सकते।

कहानी में चरित्र-चित्रण का महत्व सबसे अधिक है, क्योंकि कलात्मक दृष्टि से एक ओर कहानी की संक्षिप्त सीमा के कारण चरित्र का विकास दिखाने का अवसर बहुत ही कम रहता है और दूसरी ओर चरित्र-चित्रण की संभावनाएँ उनमें इतनी सीमित रहती हैं कि उनसे चरित्रों को स्पष्ट करना परम हस्तलाघव की परीक्षा है। कहानी में इतनी सुविधा भी नहीं होती कि पात्रों का पूरा विवरण देकर उनकी अवस्था, रूप, रंग और अन्य स्थितियों को पूर्ण चित्रित किया जाय। यहाँ तो सीमाओं के अन्तर्गत गागर में सागर भरने जैसा होता है। व्यावहारिक दृष्टि से चरित्र-चित्रण के लिए चार साधनों का उपयोग किया जाता है। वर्णन, संकेत, कथोपकथन और घटना-कार्य-व्यापार। इन्हीं के माध्यम से पात्रों के चरित्र-चित्रण होते हैं। इनके विभिन्न उदाहरण निम्नलिखित हैं।

वर्णन द्वारा

रोगी का नाम सुन्दरलाल है। फर्स्ट डिवीजन में एम० ए० पास करके उसने पी० सी० एस० का इम्तहान दिया था और उसमें सर्वप्रथम आया था। एक साल किसी नगर में डिप्टी कलक्टर होकर रहा। उसकी स्त्री श्यामा भी इसी बीच उसके साथ रही। सुन्दरलाल सुशील और मधुर स्वभाव का आदमी था; बुद्धि का प्रखर, मिलनसार और ऐयाश तबियत। ऐयाशी की मात्रा अधिक होने से अथवा वंशगत दोष के कारण उसे यक्ष्मा रोग ने पकड़ लिया।

संकेत द्वारा

बीस-बाइस वर्ष की अवस्था में मनुष्य की आकांक्षाएँ स्वप्न होती हैं। उनको परिवरिश मिले तो वह पनपें, नहीं तो सूख कर मुरझा जाती हैं और यौवन बीतते-बीतते आदमी अपने को चुका हुआ अनुभव करता है। वे आकांक्षाएँ स्नेह माँगती हैं। स्नेह अनुकूल समय पर और यथानुपात मिले तो हरी-भरी होकर कैसे-कैसे फूल न खिल आएँ, कहा नहीं जा सकता; नहीं तो अपने को खाती-चुकाती हैं। मूल जिनके दृढ़ हों

ऐसी प्रकृतियाँ विरोध में से
रहती हैं, पर इस शक्ति को
विरल ही है। कहना कठिन
जब उसमें अतीव भूख थी।

—

कथनोपकथन द्वारा

मैंने सहसा कहा—
निरीह मर जाय।

हाँ क्यों मारना च
मैंने अपनी ही झों
काटने को मुड़ न
क्या जहरीला है
हो भी तो क्या, इ
सारा रूप लिए ज्यों-का-त्य

उसकी पहिले की
बेचारा कितना असहाय!

घटना-कार्य-व्यापार

धीरे-धीरे दरी प
पंजों के बल खड़ा हो गय
धीमे प्रकाश में वह आँखें
उसका शरीर गर्म होने ल
लगे थे और उसकी नसों
वह बाहर आया। धीरे से
हुआ। सामने जैकारेंड क
एक ही चोट से वह उस

—उपेन्द्र न

आधुनिक कहानी
कथोपकथन-द्वारा चरित्र-
है और आधुनिक युग के

ऐसी प्रकृतियाँ विरोध में से भी इसे खींचती हैं अवश्य, और वे मानो चुनौतीपूर्वक बढ़ती रहती हैं, पर इस शक्ति को प्रतिभा कहा जाता है, और प्रतिभा सरल नहीं है, वह तो विरल ही है। कहना कठिन है कि राजीव में प्रतिभा की शक्ति कितनी थी, किन्तु जब उसमें अतीव भूख थी कि कोई उसे पूछे तब वह अकेला अपने को पाता था।

—जैनेन्द्रकुमार—एक रात : 'राजीव और भाभी', पृ० ७३।

कथनोपकथन द्वारा

मैंने सहसा कहा—इस वक्त कैसा वेध्य है। अगर मैं मरना चाहूँ, तो यह निरीह मर जाय।

हाँ क्यों मारना चाहो, इतना सुन्दर···

मैंने अपनी ही झोंके में कहा—अभी ढीला मारूँ, तो वरन्····

काटने को मुड़ न सके।

क्या जहरीला है?

हो भी तो क्या, इस समय असहाय है! मौके की बात है, कुछ कर भी न सके, सारा रूप लिए ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाय विटुर-विटुर ताकता।

उसकी पहिले की मुग्ध गोल आँखें करुणा से और बड़ी-बड़ी हो आयीं, बोली—बेचारा कितना असहाय!

—अज्ञेय—जयदोल : 'साँप', पृ० २७।

घटना-कार्य-व्यापार द्वारा :

धीरे-धीरे दरी पर पाँव रखता हुआ चंदन बढ़ा और जाकर दरवाजे के साथ पंजों के बल खड़ा हो गया। अन्दर छत में लाल रंग का बल्ब जल रहा था। उसके धीमे प्रकाश में वह आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा, किन्तु दूसरे ही क्षण वापस मुड़ा। उसका शरीर गर्म होने लगा था, अंगों में तनाव आ गया था, कंठ और ओठ सूखने लगे थे और उसकी नसों में जैसे दूध उबलने लगा था। उसी तरह पंजों के बल भागता वह बाहर आया। धीरे से उसने दरवाजा लगाया और बाहर चाँदनी में आ खड़ा हुआ। सामने जैकारेंड का तना खड़ा था। उसके जी में आया कि अपने युवा वक्ष की एक ही चोट से वह उस तने को गिरा दे।

—उपेन्द्र नाथ अश्क—जुदाई की शाम का गीत : 'उबाल', पृ० १११।

आधुनिक कहानी-कला में चरित्र-चित्रण के उत्तम प्रसाधनों में से संकेत और कथोपकथन-द्वारा चरित्र-चित्रण की शैली सबसे अधिक कलात्मक स्वीकार की जाती है और आधुनिक युग के प्रतिनिधि कहानीकारों ने इन्हीं शैलियों को अपनाया है।

चरित्रों में व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा के लिए चरित्र-विश्लेषण की पद्धति आधुनिक कहानी-कला की सबसे बड़ी देन है। इससे एक ओर चरित्र का व्यक्तित्व निश्चित हो जाता है, और दूसरी ओर इस पद्धति से पात्र पूर्ण सजीव और अमर बन जाता है। वह पूर्ण रूप से मानव-मस्तिष्क के समस्त संघर्षों, प्रश्नों और निर्बलताओं का प्रतिनिधित्व करने लगता है। इसके लिए निम्नलिखित पद्धतियों का अनुसरण किया जाता है :

अ : निरपेक्ष विश्लेषण : अन्यपुरुष का विश्लेषण

आ : आत्म-विश्लेषण : स्वयं अपने विषय में अपना विश्लेषण

इ : मानसिक ऊहापोह-द्वारा विश्लेषण : चिंतन, मनन-द्वारा आत्म-विश्लेषण

निरपेक्ष विश्लेषण

हेमन्त का मन आत्मग्लानि से भर आया था। वह तो जानता है उसे क्यों भूल सका, भूल नहीं सका; क्यों उसकी अनदेखी करना चाह सका ? सुधा की आँखों में वह दूसरा है और स्वयं उसकी अपनी क्या उसकी आँखों में एक भी परछाईं नहीं है और जब तक है तब तक यह उलझन यह गूँथन उस ज्योति-शरीर का किरन-जाल नहीं है, केवल साँप की गुंजलक है जिसके दंश में केवल मरण है।

—अज्ञेय—जयदोल : 'वे दूसरे', पृ० ७६, ८०।

आत्म-विश्लेषण

मुझे वह समूची वस्तु कुछ मैली मालूम होती है—अपावन, अशुचि, असुन्दर। मैं उस ओर देखना नहीं चाहता हूँ। तो क्या ? जी फिर रोने को आता है। नहीं, मेरे भीतर अभी तक इसी फाँसी की बात को लेकर तनिक भी रोना नहीं आ सका है। मैंने कुछ किया, मैं जानता हूँ, मैंने वह किया। वह करते समय भी मैं जानता था कि उसके अंत में यही चीज हो सकती है, फाँसी, जिसको मैं अब भी ठीक नहीं जानता कि क्या है ? इस फाँसी के परिणाम के व्यापक भाव के इतने भाग को मैं जानता था कि जिनसे मैं बोलता हूँ, मिलता हूँ, जिनसे प्रेम लेता और जिनको प्रेम देता हूँ, जिनके भीतर अपने को फैला कर और जिन्हें अपने भीतर धारण करके मेरा जीवन संभव बना चलता है, वे सब मेरे लिए न रहेंगे, मैं उनके लिए न रहूँगा।

—जैनेन्द्रकुमार—एक रात : 'क्या हो', पृ० २०८।

मानसिक ऊहापोह

मुझे कभी-कभी खेद होता है कि क्यों यह मेरा मित्र विद्याधर वहाँ है, जहाँ है। क्यों मुझे, उसे समाज में उसके योग्य स्थान पर पहुँचाने नहीं देता। पर मैं उसे

इतनी-सी छोटी बात समझाने में असमर्थ हो जाता हूँ, कि गली का झम्मन भंगी सम्राट जार्ज से छोटा है। मैं बहुत कहता हूँ, तो वह तनिक हँस पड़ता है। वह कम-बख्त क्यों नहीं समझता दुनिया में छोटा-बड़ा है, फिर है एक से लाख बड़ा है और हमेशा रहेगा, और उसे बड़ा बनना ही चाहिए, छोटा नहीं रहना चाहिए और मुझे खीझ होती है कि मैं क्यों नहीं उसे बड़ा बनने को राजी कर सकता। जब वह छोटा है, तो मैं ही क्यों दुनियाँ में बड़ा बना खड़ा हूँ।

—जैनेन्द्रकुमार—एक रात : 'मित्र विद्याधर', पृ० १६६।

आधुनिक कहानी-कला में पात्र और चरित्र-चित्रण की महत्ता सर्वोपरि हो गई है। कारण, आधुनिक कहानी का मूलाधार मनोविज्ञान है और इस मनोविज्ञान का मूल केन्द्र चरित्र है। फलतः आज के पात्र कल्पना और चरित्र-विधान में कहानीकारों की व्यक्तिवादिता पूर्ण रूप से प्रतिफलित हो रही है। इस दिशा में आधुनिक कहानी-कार की प्रगति स्थूल से सूक्ष्म की ओर, चरित्र के वाह्य संघर्ष से आन्तरिक संघर्षों की ओर बढ़ना, इस युग की कला की सबसे बड़ी देन है।

कथोपकथन

कहानी-कला के मूल तत्वों में कथोपकथन एक नाटकीय तत्व है, अतएव उसमें नाटकीयता आना इसकी परम स्वाभाविकता है। कथोपकथन-तत्व कहानी-कला का सर्वोत्तम अंश है। इससे कहानी में आकर्षण, सजीवता और पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को प्रेरणा मिलती है। कहानी के विकास-क्रम में यह तत्व उस कलात्मक शृंखला का कार्य करता है जो एक घटना से कहानी की अन्य आगे आने वाली घटनाओं से हमारा तादात्म्य जोड़ती रहती है। इस तत्व से कहानी की मुख्य संवेदना और पात्रों में सीधा सम्बन्ध जुड़ा रहता है। इस तरह कहानी के अन्तर्गत कथोपकथन की तीन दिशाएँ होती हैं—कथा-वस्तु का विकास, पात्रों का चरित्र-चित्रण तथा समूची कहानी में कौतूहलता के सहारे प्रवाह और आकर्षण की सृष्टि।

केवल वर्णनों द्वारा सम्पूर्ण कहानी की सृष्टि में जो बात सबसे अधिक अकलात्मक सिद्ध होती है, वह है कहानी में पात्रों का अव्यक्त हो जाना। ऐसी स्थिति में कहानियों में प्रभविष्णुता और संवेदनशीलता दोनों विशेषताएँ प्रायः नष्ट हो जाती हैं, लेकिन सम्पूर्ण कहानी की सृष्टि भी कथोपकथनों के माध्यम से कर देना कहानी को कुंठित कर देना है, क्योंकि इस स्थिति में कहानी, कहानी न रहकर प्रायः एकांकी नाटक हो जाती है। वस्तुतः कथोपकथन और वर्णन-विवेचन में सुन्दर समन्वय और अनुपात होना चाहिए तभी कहानी का सम्यक् रूप अत्यन्त कलात्मक हो सकता है।

कहानी के अन्तर्गत कथोपकथन का सबसे बड़ा गुण जिज्ञासा और कौतूहल

उत्पन्न करना है। कथोपकथन का तारतम्य ऐसा हो जैसे नदी में लहरों की गति और उस पर वायु का सहज सङ्गीत, जिसके सहारे पाठक के हृदय में उत्तरोत्तर कहानी पढ़ने की आकांक्षा और जिज्ञासा दोनों बनी रहे। कथोपकथन सर्वथा देश-काल-पात्र-परिस्थिति और कहानी की गति के अनुकूल होना चाहिए। कहानीकार अपने व्यक्तित्व को दूर रख कर विभिन्न पात्रों के माध्यम से उसके कथोपकथनों में उसे पात्रों के व्यक्तित्व की रक्षा करनी होगी। हास्य, विनोद और व्यंग का समावेश कथोपकथन के स्तर को पूर्ण रूप से ऊँचे उठाता है। इसके लिए कथोपकथन की भाषा-शैली में लाक्षणिकता और व्यंजकता दोनों गुणों की अपेक्षा होती है। कथोपकथन छोटे, गठित और स्थिति-अनुकूल होने पर उनकी महत्ता कहानी के प्रवाह में सबसे अधिक हो जाती है। इस दिशा में सम्भाषण की मौलिकता, दृष्टिकोण की नवीनता ये दोनों तत्व इसकी परम विशेषताओं में आते हैं।

रूप-विधान की दृष्टि से कथोपकथन प्रायः तीन शैलियों में मिलते हैं—१. पूर्ण नाटकीयता के रूप में, अर्थात् केवल कथोपकथन हो, उसमें कहानी-कार्य, स्थिति के संकेत न हों, जैसे—

कौन, वजीरा सिंह ?

हाँ, क्यों लहना, क्या कयामत आ गई ? जरा तो आँख लगने दी होती।

होश में आओ—कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आयी है।

क्या ?

लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुख नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।

तो अब ?

[गुलेरी : 'उसने कहा था']

२. पात्रों की मुद्राओं के संकेत के साथ-साथ उनके कथोपकथन आगे बढ़ते हैं, अर्थात् कथोपकथन के बीच-बीच में कहानीकार पात्रों की मुद्रा और स्थितियों की ओर भी संकेत करता चलता है; जैसे—

"अनंत एकाएक चुप हो गया। फिर बोला, उफ कैसी कहानी है यह····ज्योति ने धीरे-धीरे अपना हाथ खींच लिया, दोनों फिर चुप हो गए। मिनट-भर बाद ज्योति ने फिर पूछा—अब क्या सोच रहे हो ? वह अनन्त की ओर देखती नहीं थी, अपलक दृष्टि से ताज की ओर देख रही थी, फिर भी जाने कैसे अनन्त का नाड़ी-स्पंदन निरंतर उसमें प्रतिध्वनित होता जा रहा था।

कुछ चुप रहकर अन
उतना कठोर लगता है, जित
ज्योति ने कुछ विस्म

३. पात्रों की मुद्राओं
व्यापारों और घटनाओं के उ
तार्थ होते रहते हैं; जैसे—
राजीव ऊपर आया
पीछे वाले कमरे में हैं। उ
आवाज क्या काफी
डाँट उनकी मुद्रा में थी—
राजीव ने कोठरी क
कुछ है भी····और
रङ्ग का लोटा है।

उपर्युक्त तीनों शै
कहानी-कला में बहुत है।
की मूल संवेदना से जोड़ने
हैं। इन दोनों शैलियों में
गति मिलती है। नाटक में
रहते हैं, जो अभिनेता की
रहते हैं, लेकिन कहानी तो
कथन में, पात्रों की मुद्राओं
व्यापारों की विवेचना करते

स्थिति अथवा वाता

कहानी-कला का
जीवन देश, काल और जी
अतएव इन तत्वों का एक
उपस्थित करना है। कहानी
उक्त स्थितियों से होता है,
किसी विशिष्ट स्थान अथव

कुछ चुप रहकर अनन्त बोला—बताओ, क्या दिन के प्रकाश में प्यार भी उतना कठोर लगता है, जितना कि पत्थर।

ज्योति ने कुछ विस्मय से कहा—क्यों, क्या मतलब ? मैं नहीं समझी।

[अज्ञेय : परम्परा, 'ताज की छाया में']

२. पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों के विवेचन के साथ-साथ उन कार्य-व्यापारों और घटनाओं के उल्लेख जो पात्रों के कथोपकथन, काल की स्थिति में चरितार्थ होते रहते हैं; जैसे—

राजीव ऊपर आया तब उसी छोटे-छोटे में इशारे से बताया कि भाभी हाँ, उस पीछे वाले कमरे में हैं। उधर को बढ़ना ही था कि ऊपर की आवाज आई—क्या है ?

आवाज क्या काफी न थी, उस पर स्वयं भाई साहब भी सामने आये। अजब डाँट उनकी मुद्रा में थी—बोल क्या है ?

राजीव ने कोठरी की ओर बढ़ते हुए कहा—कुछ नहीं।

कुछ है भी····और जोर से भाई साहब ने कहा।

रङ्ग का लोटा है। राजीव ने धीमे से कहा।

[जैनेन्द्रकुमार : राजीव और भाभी]

उपर्युक्त तीनों शैलियों में द्वितीय और अंतिम शैली का प्रचलन आधुनिक कहानी-कला में बहुत है। वस्तुतः पात्रों के चरित्र-चित्रण और उसका सम्बन्ध कहानी की मूल संवेदना से जोड़ने के लिए उपर्युक्त दोनों शैलियाँ पूर्ण कलात्मक और सशक्त हैं। इन दोनों शैलियों में आश्चर्यजनक गठन और सम्पूर्ण कहानी में प्रवाह-तत्व की गति मिलती है। नाटक में कथोपकथन के साथ उसके अभिनयात्मक तत्व उसमें दिये रहते हैं, जो अभिनेता की भावभंगिमा और उसके व्यापारों में अपनी अभिव्यक्ति पाते रहते हैं, लेकिन कहानी तो विशुद्ध रूप से पठन-पाठन की वस्तु है। अतएव इसके कथोपकथन में, पात्रों की मुद्राओं, स्थितियों की व्यंजना और इसके साथ-ही-साथ कार्य-व्यापारों की विवेचना करते रहना आधुनिक कहानी-कला की परम विशेषता है।

स्थिति अथवा वातावरण

कहानी-कला का मेरुदण्ड वास्तविक जीवन है, काल्पनिक लोक नहीं। वास्तविक जीवन देश, काल और जीवन की विभिन्न सत्-असत् परिस्थितियों से निर्मित होता है, अतएव इन तत्वों का एक स्थान पर संचयन और चित्रण करना कहानी में वातावरण उपस्थित करना है। कहानी की कथा-वस्तु और उनके संचालक पात्रों का सीधा संबंध उक्त स्थितियों से होता है, अर्थात् इनका उद्गम-सूत्र और संबंध किसी देश से होगा या किसी विशिष्ट स्थान अथवा प्रदेश से होगा। इनका भी सम्बन्ध किसी काल-विशेष से

होगा। वर्तमान, भूत अथवा भविष्य किसी काल-प्रकार से फिर इनमें भी विभेद हो सकते हैं। इसके उपरान्त इन दोनों का सापेक्षिक सम्बन्ध जीवन की किन्हीं परिस्थितियों से होगा। इन परिस्थितियों की सीमा में समस्त मानवीय राग, द्वेष, अनुभूतियाँ और हर प्रकार के संघर्ष आ सकते हैं। वस्तुतः इन सबके अलग-अलग चित्रण से कहानी में विभिन्न परिपार्श्व प्रस्तुत होते हैं और इन सबके सामूहिक संकलन और प्रभाव से कहानी के वातावरण की सृष्टि होती है।

नाट्य कला में नाटक की स्थिति और वातावरण के लिए रंगमंच, विशेष पर्दे, सजावट और अभिनेताओं के वेषभूषा आदि कार्य करते हैं, लेकिन कहानी-कला, पठन-पाठन की वस्तु होने के कारण इसमें स्थिति और वातावरण के लिए स्थान-स्थान पर यथोचित देश-काल-परिस्थिति के चित्रण प्रस्तुत करने होते हैं क्योंकि बिना तत्व के कहानी का पाठक कहानी की मूल संवेदना और भाव-क्षेत्र से अपना तादात्म्य ही नहीं स्थापित कर सकता। एक तरह से कहानी में यह तत्व सौन्दर्य और आकर्षण का वह तत्व है, जिससे केवल कहानी के विधान-सौन्दर्य में ही नहीं अभिवृद्धि होती, वरन् इससे पाठक कहानी में सतत् आकर्षित और प्रेरित रहता है। इससे कहानी में परिपार्श्व के साथ-साथ पाठक के संवेद्य जगत् अर्थात् मस्तिष्क में भी उसी के अनुरूप वातावरण की स्वयंसृष्टि हो जाती है और कहानी पढ़ते समय या कहानी समाप्त करने के बाद पाठक उसी कहानी के देश-काल और परिस्थिति-लोक में मग्न मिलता है। कहानी के एकांतिक प्रभाव में भी इस तत्व का बहुत बड़ा हाथ रहता है। इससे कहानी में सहज प्रभविष्णुता और शक्ति उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप कहानी का पाठक इस कला से अपना सम्बन्ध स्थापित किये फिरता है।

ऐतिहासिक कहानियों में स्थिति और वातावरण का निर्माण इस कला की प्रमुख विशेषता है। कार्य-वस्तु से सम्बन्धित देश-काल और परिस्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान और उसकी सहज अभिव्यक्ति ऐसी कहानियों की मूल आत्मा है। अगर इस दिशा में किसी प्रकार की अस्वाभाविकता और अज्ञानता उपस्थित हुई तो यह निश्चित है कि कहानी असफल हो जायगी और उसकी संवेदना से किसी भी प्रकार पाठक का साधारणीकरण न हो सकेगा। यही कारण है कि सफल ऐतिहासिक कहानियों में वातावरण उपस्थित करने के लिए देश-काल और परिस्थिति के विशद् वर्णन प्रस्तुत किये जाते हैं। आधुनिक कहानियों में इन तीनों के वर्णन और चित्रण एक साथ एक गति में किये जाते हैं और इस प्रवृत्ति का सामूहिक प्रभाव वातावरण प्रस्तुत करने में परम सफल सिद्ध हुआ है। प्रसाद ने अपनी ऐतिहासिक कहानियों में प्रायः देश-काल और परिस्थिति का चित्रण अलग-अलग अंशों में करने का प्रयास किया है, लेकिन आज की कला में इसी दिशा

में विकास हुआ है और इन
वरण की प्रतिष्ठा बहुत कल

"वह नहा रही थी
निश्चिन्तता के साथ नहा र
वन्द कर लिये थे, घर की
के साथ नहा रही थी। सुन्द
अठखेलियाँ कर रही थी।

पठान बादशाह सूर
उसी घर के सामने वाली
सुनहला-रूपहला हौदा, गह
चमकते हुए मोतियों की भ
वाली।"

उपर्युक्त अवतरण
कहानी में पूर्ण सफलता से
कहानी की मूल संवेदना से

आधुनिक सामाजि
तत्व के चित्रण में अपूर्व ब
जा रही है कि एक ओर
व्यंजनात्मक रूप में हो जा
सुगठित वातावरण प्रस्तुत
संवेदना, पात्रों की गति के
आधुनिक कहानी-कला के
वातावरण की अवतारणा
है कि आज की कहानी-क
स्वरूप में पूर्ण मनोवैज्ञानि
प्रस्तुत करने के लिए मुख्
काल की ओर बहुत ही
रूप में परिस्थिति-चित्रण

"हेमन्त कई क्षण
उसके मन में शून्य था,
थे, केवल यही कि बालू
माटी की तरह होती है,

में विकास हुआ है और इन तीनों तत्वों के सामूहिक प्रस्तुतीकरण से कहानी में वातावरण की प्रतिष्ठा बहुत कलात्मक ढंग से हुई है; उदाहरणस्वरूप —

"वह नहा रही थी। ऋतु न गरमी की, न सरदी की। इसलिए अपने आँगन में निश्चिन्तता के साथ नहा रही थी। छोटे-से घर की छोटी-सी पौर के किवाड़ भीतर से बन्द कर लिये थे, घर की दीवारें ऊँची न थीं, घर में कोई था नहीं, इसलिए वह मौज के साथ नहा रही थी। सुन्दरी थी, युवती, गोरी नारी। पानी के साथ हँसते-मुस्कराते अठखेलियाँ कर रही थी।

पठान बादशाह सूरी का शाहजादा इस्लाम शाह झूमते हुए हाथी पर सवार उसी घर के सामने वाली सड़क से चला आ रहा था। कारचोबी, जरीदार की अम्बरी, सुनहला-रुपहला हौदा, गहरे हरे रंग की चमकती हुई मखमल की चाँदनी, हौदे पर चमकते हुए मोतियों की झालरें, चांदनी के सुनहले बेल-बूटों से दमक में होड़ लगाने वाली।"

उपर्युक्त अवतरण में एक ही गति में देश-काल और परिस्थिति के चित्रण से कहानी में पूर्ण सफलता से वह वातावरण प्रस्तुत हो गया है, जिसका मुख्य सम्बन्ध कहानी की मूल संवेदना से है।

आधुनिक सामाजिक कहानियों में देश-काल-परिस्थिति के अन्तर्गत परिस्थिति-तत्व के चित्रण में अपूर्व बल दिया जाता है। इसके चित्रण में इतनी व्यापकता आती जा रही है कि एक ओर इसके अन्तर्गत देश-काल के वर्णन की अभिव्यक्ति अत्यन्त व्यंजनात्मक रूप में हो जाती है, और दूसरी ओर इसकी विशदता से कहानी में ऐसा सुगठित वातावरण प्रस्तुत होता है जिसके सफल परिपार्श्व में कहानी की समूची संवेदना, पात्रों की गति के साथ पाठक के सामने चित्रित हो जाती है। अतएव आधुनिक कहानी-कला के अन्तर्गत मुख्यतः परिस्थिति के चित्रण द्वारा कहानी के वातावरण की अवतारणा कर देना उसकी शैली की विशेषता है। इसका कारण यह है कि आज की कहानी-कला प्रायः व्यक्ति के धरातल से निर्मित होकर अपने वास्तविक स्वरूप में पूर्ण मनोवैज्ञानिकता की ओर विकसित हो रही है। अतएव इसमें वातावरण प्रस्तुत करने के लिए मुख्य परिस्थिति के चित्रण की ओर ध्यान दिया जाता है, देश-काल की ओर बहुत ही कम। वस्तुतः इन दोनों तत्वों के चित्रण अपने व्यंजनात्मक रूप में परिस्थिति-चित्रण में स्वयं ही हो जाते हैं; जैसे—

"हेमन्त कई क्षण तक चुपचाप बालू की ओर देखता रहा। यह नहीं कि उसके मन मे शून्य था, यह भी नहीं कि मन की बात कहने को शब्द बिल्कुल ही नहीं थे, केवल यह कि बालू पर अपने पैरों की जो छाप हुई थी, गीली बालू जो चिकनी माटी की तरह होती है, उसमें उसके लिए एक आकर्षण था जिसमें निरा कौतूहल

नहीं, जिज्ञासा की एक तीखी तात्कालिकता थी। छालियाँ उसके पास तक आकर लौट जाती थीं। क्या कोई बड़ी लहर आकर उस छाप को लील जायगी ? क्या एक लहर में वह छाप मिल जायगी ? मिटाने के लिये कई लहरों को आना होगा जिन लहरों को पैदा करने के लिए समुद्र की, पृथ्वी की आन्तरिक हलचल की, चन्द्र, सूर्य, तारा-गण के आकर्षण की एक विशेष अन्योन्य संबद्ध स्थिति को बार-बार आना होगा.... क्या उसका एक-एक अनैच्छिक पद-चिह्न मिटाने के लिए सारे विश्व-चक्र के एक विशेष आवर्तन की आवश्यकता है ?" (अज्ञेय : जयदोल, 'वे दूसरे', पृष्ठ ७३)

उपर्युक्त अवतरण में मुख्यतः परिस्थिति के माध्यम से कहानी के आरम्भ ही में कितने शक्तिशाली वातावरण की अवतारणा हो गई है। इस चित्रण में कहानी की मनोवैज्ञानिकता, पात्रों के आन्तरिक संघर्ष दोनों बातें स्पष्ट हैं। आधुनिक कहानी-कला में स्थिति अथवा धरातल के तत्व इसमें परम आवश्यक तत्वों में से हैं। इसके माध्यम से कहानी में एकांतिक प्रभाव लाने की स्थिति उत्पन्न होती है और समूची कहानी में वह आकर्षण और प्रेरणा आती है, जिससे मुक्त होकर कहानी का पाठक इसमें रत रहता है।

शैली

कथा-वस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, कथोपकथन और वातावरण आदि कहानी-कला के विभिन्न तत्व हैं, लेकिन शैली-तत्व कहानी-कला की वह रीति है जो इसके तत्वों को अपने विधान में उपयोग करती है। स्पष्ट शब्दों में शैली-तत्व, कहानी-कला के समस्त उपकरणों के उपयोग करने की रीति है। इसमें एक तरह से विधान की व्यंजना है। वस्तुतः कहानी-कला में रूप-विधान का चातुर्य और हस्तलाघव का सबसे बड़ा प्रमाण देना पड़ता है। एक तरह से इस कला में इसके भाव-पक्ष की सफलता और उत्कृष्टता इसके कला-पक्ष के अधीन है और कला-पक्ष के अन्तर्गत इसका शैली-तत्व सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि कहानी-कला में हस्तलाघव और विधानात्मक सफलता इसके दो मुख्य शर्तें हैं।

अध्ययन की दृष्टि से शैली-तत्व के अन्तर्गत इसके दो पक्ष आते हैं—प्रथम, भाषा-पक्ष, द्वितीय रूप-विधान-पक्ष। भाषा-शैली कहानीकार के मनोभावों की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन है। इसी के आधार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अमुक कहानी सरल और सुबोध शैली में है तथा अमुक कहानी गूढ़, अस्पष्ट और दुर्बोध शैली में है। अतएव कहानी की भाषा-शैली में गद्य का महत्व सबसे अधिक है। गद्य में शब्द और वाक्य-योजना की स्वाभाविकता और भावों के साथ इसका गठन और संयम इसकी परम विशेषता है। कहानी के गद्य में शब्द-चयन और वाक्य-योजना ही भाषा की वह कलात्मकता है जिसके विविध प्रयोग और रूपों से कहानीकार अपने

भाव-चित्र को मूर्त करता रहता है। शब्द-शक्ति का ज्ञान उसकी गम्भीरता और संयम तथा विषय और वस्तु के अनुकूल उसमें परिवर्तन, कहानी की भाषा-शैली की मुख्य विशेषता है।

भाषा-शैली

व्यापक रूप से प्रत्येक कहानीकार की अपनी अलग-अलग भाषा-शैली होती है। प्रत्येक के गद्य में अपना स्वतन्त्र संगीत, भाषा-सौन्दर्य और शब्द-संयम होता है, लेकिन प्रकार की दृष्टि से प्रायः तीन प्रकार की भाषा-शैलियाँ होती हैं :

१. बोल-चाल की भाषा-शैली,
२. गम्भीर और परिष्कृत भाषा-शैली,
३. अलंकृत, तत्सम भाषा-शैली

इसके उदाहरण प्रेमचन्द से लेकर आज की कहानी भाषा-शैली में से कहीं से भी दी जा सकती है, लेकिन निश्चित भाषा-शैलियों के दृष्टिकोण से प्रथम के अन्तर्गत प्रेमचन्द, अश्क और यशपाल आदि की भाषा-शैलियाँ आती हैं। द्वितीय के अंतर्गत अज्ञेय, जैनेन्द्रकुमार और तृतीय के अन्तर्गत ऐतिहासिक कहानीकार जयशंकर प्रसाद।

उदाहरण

१—"विरला ही भला कोई आदमी होगा जिसके सामने बुढ़िया ने दुःख के आँसू न बहाये हों। किसी ने यूँ ही ऊपरी मन से हूँ-हाँ करके टाल दिया, किसी ने उस अन्याय पर जमाने को गालियाँ दीं और कहा, कब्र में पाँव लटके हुए हैं, आज मरे कल दूसरा दिन हो, पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए, रोटी खाओ और अल्ला का नाम लो, तुम्हें खेती-बारी से क्या काम।

[प्रेमचन्द : 'पंच परमेश्वर']

"दूर कहीं मुसलमानों के मुहल्ले में मुर्ग ने अजान दी। चौंक कर शंकरी उठी। उसने अपने सब गहने उतार कर ट्रंक में बन्द किए, कपड़े बदल, फिर तह लगा कर रखे और दबे पाँव ऊपर पहुँची। चाँद तब दायीं ओर के ऊँचे मकान की ओट चला गया था और चारपाइयों पर हलका-सा अंधेरा छा गया था। चुपचाप शंकरी अपनी चारपाई पर जा लेटी।"

[उपेन्द्रनाथ 'अश्क' : 'अंकुर']

२—"अभिमान ? स्त्री का क्या अभिमान ? और अगर करे ही तो कनिष्ठा करे जो उत्तराधिकारिणी होती है। वह तो सबसे बड़ी थी, केवल उत्तरदायिनी। हीली के ओठ एक विद्रूप की हँसी से कुटिल हो गये। युद्ध की अशान्ति के इन तीन-चार

वर्षों में कितने ही अपरिचित चेहरे देखे थे, अनोखे रूप, उल्लसित-उच्छ्वसित, लोलुप, गर्वित, याचक, पाप-संकुचित, दर्प-स्फीत-मुद्राएँ, और वह जानती थी कि इन चेहरों और मुद्राओं के साथ उसके गाँव की कई स्त्रियों के सुख-दुःख, तृप्ति और अशान्ति, वासना और वेदना, आकांक्षा और सन्ताप उलझ गए। यहाँ तक कि वहाँ के वातावरण में एक पराया और दूषित तनाव आ गया।''

[अज्ञेय : 'हीली बोन की बत्तखें']

''इसके मन का सब संशय भाग गया। अभाव विलुप्त हो गया। अशेष प्रश्न, उसका जी मानो चारों दिशाओं को एक साथ अभिवादन देना चाहता है। सब ओर उसे प्रीति, सब ओर उसे मंगल है। इस प्रभातकालीन ऊषा के प्रकाश में अपने जयराज को देखा। कौन उसके लिए आज वर्जित है, कौन उसके लिए आज निषिद्ध है। किसके साथ पार्थक्य उसके लिए अनिवार्य है।''

[जैनेन्द्रकुमार : 'एक रात']

३—''उद्यान की शैलमाला के नीचे एक हराभरा छोटा-सा गाँव है। वसन्त का सुन्दर समीर उसे आलिंगन करके फूलों के सौरभ से उसके झोंपड़े को भर देता है। तलहटी के हिम शीतल करने उसको अपने बाहुपाश में जकड़े हुए हैं। उस रमणीय प्रदेश में एक स्निग्ध संगीत निरन्तर चला करता है, उत्पन्न करता है।''

[जयशङ्कर प्रसाद : 'बिसाती']

उक्त विविध शैलियों के प्रयोग से कथा-वस्तु के प्रवाह और पात्रों की स्वाभाविकता में अन्तर पड़ता है। स्थिति और पात्र के अनुकूल कहानी की भाषा का होना अत्यन्त आवश्यक है, यही कारण है कि बोलचाल की भाषा-शैली का महत्व कहानी में अत्यधिक है। गंभीर तत्सम भाषा-शैली में प्रायः कृत्रिमता आ जाती है।

रूप-विधान अथवा रचना-विधान-पक्ष

शैली के रूप-विधान-पक्ष के अन्तर्गत कहानी-निर्माण की विभिन्न प्रणालियाँ आती हैं; जैसे—

१—कथात्मक शैली	२—आत्मचरित्र शैली
३—पत्रात्मक शैली	४—डायरी शैली
५—नाटकीय शैली	६—मिश्रित शैली

कथात्मक शैली

इस शैली के अन्तर्गत कहानीकार एक कथावाचक की भाँति पूर्णतः तटस्थ होकर कहानी की सृष्टि करता है। यह सृष्टि पूर्ण वर्णनात्मक ढंग की होती है, अतः

समूची कहानी का सूत्रधा
'वह' अथवा किसी अन्यपु
पात्रों के वर्णन, घटना के
में समेट कर कहानी को
वर्णन और विश्लेषण आ
कथन के माध्यम से सुगी
में सबसे अधिक सरल,
आदि और प्रचलित शै
समूची गति-विधि, कार्य-

''वेदों गाँव में
में प्रातः से संध्या तक अ
ध्वनि सुनने के लोग इत
तो जान पड़ता था, को

और इस तरह
में वह कभी भी स्थिति-
और मानसिक अन्तर्द्वं
करता है। इसमें कहानी
यही कारण है कि इस
अधिक है।

आत्मचरित्र शैली

आत्मचरित्र श
से आत्मवर्णन और अ
कहानी केन्द्रित और
कि इस शैली को उ
इसके अन्तर्गत तीन शै

१—कहानी
है; जैसे इलाचंद्र जोशी
द्वितीया के बाद का त
दिन है। प्रातः काल
अपने कमरे में चारपा

समूची कहानी का सूत्रधार स्पष्ट रूप से कहानीकार होता है और इसका नायकत्व 'वह' अथवा किसी अन्यपुरुष को दिया जाता है। कथावाचक की भाँति कहानीकार पात्रों के वर्णन, घटना के चित्रण और कहानी के समस्त तत्वों को अपनी वर्णनात्मकता में समेट कर कहानी को पूरा करता है। स्थान-स्थान पर बौद्धिक विवेचन, भावात्मक वर्णन और विश्लेषण आदि को भी स्थान मिलता है। इस तरह समूची कहानी वर्णन कथन के माध्यम से सुगठित की जाती है। ऐतिहासिक शैली कहानी की समस्त शैलियों में सबसे अधिक सरल, सुगठित और बोधगम्य शैली है। यह कहानी कहने की सबसे आदि और प्रचलित शैली है। इसमें वर्णनात्मकता के माध्यम से कहानी की समूची गति-विधि, कार्य-व्यापार अन्य-पुरुष में अभिव्यक्त होते हैं; जैसे—

"बेंदों गाँव में महादेव सोनार एक सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायबान में प्रातः से संध्या तक अंगीठी के सामने बैठा हुआ खटखट किया करता था। लगातार ध्वनि सुनने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारण वह बन्द हो जाती, तो जान पड़ता था, कोई चीज गायब हो गयी है।"

[प्रेमचन्द : 'आत्माराम']

और इस तरह कहानीकार समूची कहानी को सुना जाता है। इसके विकास में वह कभी भी स्थिति-विवेचन और चरित्र-चित्रण करता रहता है। प्राकृतिक वर्णन और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व आदि की भी अभिव्यक्ति वह इन्हीं वर्णनों के माध्यम से करता है। इसमें कहानीकार को सबसे अधिक स्वतन्त्रता और सुगमता प्राप्त होती है, यही कारण है कि इस शैली का प्रचलन और प्रसार अन्य सब शैलियों की अपेक्षा अधिक है।

आत्मचरित्र शैली

आत्मचरित्र शैली में कहानीकार अथवा कहानी का कोई पात्र 'मैं' के धरातल से आत्मवर्णन और आत्मचित्रण के द्वारा पूरी कहानी कह डालता है। इस तरह समूची कहानी केन्द्रित और प्रेरित होकर इसी की सीमा में वर्णित होती है, यही कारण है कि इस शैली को उत्तम पुरुषात्मक शैली भी कहते हैं। रूप-विधान की दृष्टि से इसके अन्तर्गत तीन शैलियाँ हैं, यथा :

१—कहानी का मुख्य पात्र आरम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण कहानी स्वयं कहता है; जैसे इलाचंद्र जोशी की 'दीवाली और होली' शीर्षक कहानी—"आज प्रातः भ्रातृ-द्वितीया के बाद का तीज है। तीन दिन तक काम की भीड़ थी। आज अवकाश का दिन है। प्रातः काल के कामों से छुट्टी पाकर सबको खिला-पिलाकर, स्वयं खा-पीकर अपने कमरे में चारपाई पर बैठ कर खिड़की से बाहर का दृश्य देख रही हूँ।"

२—कहानी के विभिन्न पात्र क्रमशः आत्मवर्णन अथवा आपबीती कथा सुनाते हैं, और सबकी आत्मकथाओं के समन्वय से समूची कहानी, अपनी पूरी एकसूत्रता से निर्मित हो जाती है; जैसे सुदर्शन की 'कवि की स्त्री' और उपेन्द्रनाथ अश्क की 'चित्रकार की मौत' शीर्षक कहानी जिसमें लालचंद, जगत-किशोर और राधारानी अपनी-अपनी आत्मकथाओं द्वारा एक समूची संवेदना की सृष्टि करते हैं और कहानी अपने सम्यक् रूपों में सफल होती है।

३—कहानीकार स्वयं आत्म-भाषण के रूप में समूची कहानी पूरी करता है। कलात्मक दृष्टि से उसका 'मैं' कहानी का मुख्य पात्र बन जाता है और वह अपनी आत्मकथाओं में कहानी के अन्य पात्रों को भी समेट कर चलता है; जैसे अज्ञेय की 'मंसो' शीर्षक कहानी :

"जब उस दिन एक विचित्र विस्मय से भर कर अपने झोपड़े के द्वार पर आते ही मैंने अपने हाथों को हथकड़ियों में बँधे हुए पाया, तब उन अनहोनी, यद्यपि चिर-अपेक्षित घटना के दबाव के बीच में भी, मैंने यह सोचा था कि इस विघ्न द्वारा कुछ पूर्ण हो गया है···कुछ ऐसा जिसका और कोई अन्त मैं सोच नहीं पाता था।"

इस शैली के अन्तर्गत मैं चरित्र का आत्म-विश्लेषण उत्कृष्ट ढंग का होता है। उसके अन्तस्तल के अमूर्त्त से अमूर्त्त तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों, अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति स्वाभाविकता से हो जाती है। जिस कहानी में एक ही पात्र का विश्लेषण करना हो, उसके लिये यह शैली उत्कृष्ट है।[1] रूप-विधान की दृष्टि से इस शैली के अंतर्गत कहानीकार को आत्मकथा अथवा स्वगत-भाषण की सीमाओं में रह कर कहानी की पूरी संवेदना; उसके आरोह-अवरोह की पूर्ति करनी पड़ती है, फिर भी कहानी में सहज कौतूहल और पाठक के लिए आकर्षण को अक्षुण्ण रखना कहानीकार का प्राथमिक उत्तरदायित्व रहता है। आधुनिक कहानी-कला में इस शैली का अपूर्व प्रचलन और प्रसार है, क्योंकि आज की कहानी-कला का मुख्य धरातल मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान के अंतर्गत मनो-विश्लेषण की पद्धति ने आधुनिक कहानीकारों को असीम वर्ण्य वस्तु का क्षेत्र दिया है और वह आत्म-विश्लेषण के माध्यम-द्वारा उन्हें सहज गति से अपना रहा है। आधुनिक कहानी-शैलियों में यह शैली सब से अधिक सशक्त और प्रभावशाली है। मानव-अन्तःस्थल के गूढ़ विषय और संवेदनाएँ इस शैली के द्वारा कहानी के रूप में अभिव्यक्त हो रही हैं।

१. जिन कहानियों में एक ही प्रधान चरित्र होता है अन्य सभी चरित्र गौण होते हैं, उन कहानियों के लिये यह शैली अत्यन्त उपयुक्त है।—डॉ० श्रीकृष्णलाल : 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास', पृष्ठ ३४६।

पत्रात्मक शैली

इस शैली में कहानीकार
की दृष्टि से यह शैली अन्य शैलि
आडम्बर ही अधिक है, कहानि
कारण है कि इस शैली का प्रचल
रूप-विधानात्मक दो सीमाएँ उप
आ खड़ी होती है। प्रथम, विभि
कहानी की एकसूत्रता नष्ट हो ज
पाता, जिससे कहानी आकर्षण-श
में बँट जाने के कारण उसका स
शक्ति नष्ट हो जाती है। इस शै
यथा—

१—कई पत्रों के माध्य
विद्यालंकार का 'एक सप्ताह',
२—एक ही पत्र के मा
व्यास की 'अपराधी', इलाचन्द्र
३—आरम्भ और विक
है और कहानी का अन्तिम भा
होता है; जैसे अज्ञेय का 'सिगने
प्रभाव की दृष्टि से पत्र
की अपेक्षा उत्कृष्ट है। इसमें
आत्मानुभूति दोनों की यथासंभ

डायरी शैली

डायरी शैली वस्तुतः प
विभिन्न पृष्ठों द्वारा सम्पूर्ण कह
पूर्ण अनुभूति और भावुकता से
बहुत सामीप्य है। इसमें भी अ
मिलती हैं। इलाचन्द्र जोशी की
भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'अ

नाटकीय शैली

नाटकीय शैली के अन्त

पत्रात्मक शैली

इस शैली में कहानीकार पत्रों के माध्यम से कहानी की सृष्टि करता है। प्रभाव की दृष्टि से यह शैली अन्य शैलियों से असफल है। इसमें प्रयोगशीलता और कलात्मक आडम्बर ही अधिक है, कहानी की मूल आत्मा अप्रस्फुटित ही रह जाती है। यही कारण है कि इस शैली का प्रचलन और विकास बहुत ही कम हुआ है। इस शैली में रूप-विधानात्मक दो सीमाएं उपस्थित होती हैं जिनके फलस्वरूप कहानी में अस्पष्टता आ खड़ी होती है। प्रथम, विभिन्न पत्रों में कहानी की संवेदना बिखरी होने के कारण कहानी की एकसूत्रता नष्ट हो जाती है और कहानी में वातावरण का निर्माण नहीं हो पाता, जिससे कहानी आकर्षण-शून्य हो जाती है। द्वितीय, कहानी के विभिन्न इकाइयों में बँट जाने के कारण उसका सम्यक् विकास नहीं हो पाता, अतएव इसमें प्रभाव की शक्ति नष्ट हो जाती है। इस शैली के अन्तर्गत कहानी लिखने की तीन प्रणालियाँ हैं, यथा—

१—कई पत्रों के माध्यम से कहानी की सृष्टि की जाती है; जैसे चंद्रगुप्त विद्यालंकार का 'एक सप्ताह', उपेन्द्रनाथ अश्क का 'नरक का चुनाव।'

२—एक ही पत्र के माध्यम से समूची कहानी का निर्माण; जैसे विनोदशंकर व्यास की 'अपराधी', इलाचन्द्र जोशी की 'चौथे विवाह की पत्नी।'

३—आरम्भ और विकास-भाग की अभिव्यक्ति विभिन्न पत्रों के द्वारा की जाती है और कहानी का अन्तिम भाग स्वतंत्र विवेचन, विश्लेषण और वर्णनों-द्वारा सम्पन्न होता है; जैसे अज्ञेय का 'सिगनेलर' और उपेन्द्रनाथ अश्क की 'मरीचिका।'

प्रभाव की दृष्टि से पत्रात्मक शैली की उक्त तीसरी प्रणाली, प्रथम और द्वितीय की अपेक्षा उत्कृष्ट है। इसमें कहानी का एकान्तिक प्रभाव और कहानीकार की आत्मानुभूति दोनों की यथासंभव अभिव्यक्ति हो जाती है।

डायरी शैली

डायरी शैली वस्तुतः पत्रात्मक शैली का ही दूसरा रूप है। इसमें डायरी के विभिन्न पृष्ठों द्वारा सम्पूर्ण कहानी कही जाती है। इस शैली में अतीत का वर्णन पूर्ण अनुभूति और भावुकता से किया जाता है। आत्म-चरित्र शैली और इस शैली में बहुत सामीप्य है। इसमें भी आत्म-विश्लेषण और विवेचन की सारी स्थितियाँ उत्पन्न मिलती हैं। इलाचन्द्र जोशी की प्रसिद्ध कहानी 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' और भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'अन्ना' इस शैली के सुन्दर उदाहरण हैं।

नाटकीय शैली

नाटकीय शैली के अन्तर्गत दो मुख्य शैलियाँ आती हैं : प्रथम, संलाप शैली;

दूसरी, वह शैली जो एकांकी नाटक के विधान को लेकर चलती है। वस्तुतः इस दूसरी शैली का प्रचलन आधुनिक कहानी-कला की देन है।

संलाप-शैली

भोजन की थाली पर बैठे छोटे राजकुमार ने पूछा—माँ, वह महल लाल पन्नों का है न ?

रानी ने कहा—कौन-सा महल बेटा ? यह तुम कुछ खा नहीं रहे हो, खाओ।

राजकुमार ने कहा—माँ, सात समुन्दर पार जो नीलम देश की छोटी-सी रानी है। उसका महल लाल पन्नों का तो है न ?

माँ ने कहा—हाँ बेटा, लाल पन्ने का है और उसमें हीरे भी लगे हैं और उस महल का फर्श····पर वह तो कहानी रात को होगी। अब तुम खाना खाओ।

[जैनेन्द्र कुमार : एक रात, 'राजपथिक', पृष्ठ १२३]

एकांकी नाटक शैली

और ठीक उसी समय स्त्री का पति प्रवेश करता है। पति जैसा ही उसका स्वर है—साधारण, न रूखा न मीठा, जिसमें कुछ अपनापा भी है, कुछ उदासीनता भी, लेकिन क्या अपनापा और उदासीनता प्यार के परिचय के ही दो पहलू नहीं हैं ?

पति—मालती !

स्त्री—जी !

पति—(चिढ़ता हुआ) अगर मैं बाहर खड़ा रहता, तो सोचता कि न जाने कौन तुमसे बातें कर रहा है। यह क्या पता था कि आठ जूठे बरतनों से भी बातें कर सकती हैं।

स्त्री—नहीं····हाँ

पति—यानी इतनी तन्मय होकर बात कर रही थी कि तुझे मालूम ही नहीं। कौन था आखिर वह मनमोहन, सुधबिसरावन····कौन आया था ?

स्त्री—(अनमनी-सी) वसन्त !

पति—(न समझते हुए) कौन वसन्त ?

[अज्ञेय : जयदोल, 'वसन्त', पृ० ५१]

मिश्रित शैली

कहानी-निर्माण की एक शैली यह भी है, जिसमें अनेक शैलियों; जैसे ऐतिहासिक पत्रात्मक, डायरी, संलाप और आत्मचरित्र शैली आदि का सहारा लिया जाता है; जैसे अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी 'छाया' और 'कैसेन्ड्रा का अभिशाप', उपेन्द्रनाथ अश्क की 'पिंजरा', जैनेन्द्रकुमार की 'एक रात' आदि। रूप-विधान की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियाँ

मिश्रित शैली में ही लिखी जा सकती है
स्वतंत्रता रहती है कि वह अपनी कहा
विश्लेषण आदि के लिये उन समस्त क
अभिव्यक्ति के लिये पूर्ण सहज और श
कहानी में सम्यक् विकास और इसमें क्र
श्रेष्ठ कहानियाँ इसी शैली के अंतर्गत
शैली की चमक-दमक, वरन् समूची क
की शक्ति लिये हुए पाठक के सामने

उद्देश्य

कहानी-कला के अंतर्गत उद्देश
कहानी में इतने कलात्मक प्रयत्न, हस
देने होते हैं। स्पष्ट रूप से समूची क
जिसकी प्राप्ति के लिये कहानीकार अ
की नाना परिस्थितियों, समस्याओं के
उनके प्रति उसके निदान, उसके निए
उद्देश्य के भाव-विन्दु पर कहानी का
होती है। उन्हीं उद्देश्यों को पूर्ण रूप
कार को अपनी कहानियों को विभि
क्योंकि एक शैली में उद्देश्य की एक
है और उसकी कहानी के उद्देश्य-तत
निक कहानी की सबसे बड़ी विशेषत
इतनी चाल, इतने हस्तलाघव केवल
लक्ष्य से नहीं।[1] कहानी का यह व्य
इस सीमा में समस्त मानव-व्यापार,
रहते हैं। अतएव कहानी के चरम उ
और मानव-मूल्यों की व्याख्या हो

१. The purpose of
communicate personality wh

मिश्रित शैली में ही लिखी जा सकती हैं, क्योंकि इसमें कहानीकार को इतनी विधानात्मक स्वतंत्रता रहती है कि वह अपनी कहानी में प्रभाव लाने के लिये, चरित्र-चित्रण और विश्लेषण आदि के लिये उन समस्त कहानियों का सदुपयोग कर सकता है, जो उसकी अभिव्यक्ति के लिये पूर्ण सहज और शक्तिशाली सिद्ध होंगी। इस शैली के माध्यम से कहानी में सम्यक् विकास और इसमें व्यापकता उपस्थित होती है। हिन्दी की प्रायः सर्व-श्रेष्ठ कहानियाँ इसी शैली के अंतर्गत आती हैं। इसमें न प्रयोग का आग्रह होता है, न शैली की चमक-दमक, वरन् समूची कहानी पूर्ण संयम, गम्भीरता और अपूर्व प्रभाव की शक्ति लिये हुए पाठक के सामने आती है।

उद्देश्य

कहानी-कला के अंतर्गत उद्देश्य इसका वह तत्व है जिसकी मूल प्रेरणा से कहानी में इतने कलात्मक प्रयत्न, हस्तलाघव और विधानात्मक कुशलता के परिचय देने होते हैं। स्पष्ट रूप से समूची कहानी-कला का यह तत्व वह अन्तिम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति के लिये कहानीकार अपनी कहानी में विविध प्रयोग करता है। समाज की नाना परिस्थितियों, समस्याओं के प्रति कहानीकार का अपना दृष्टिकोण और उनके प्रति उसके निदान, उसके निर्णय आदि कहानी के उद्देश्य बनते हैं, तथा इसी उद्देश्य के भाव-बिन्दु पर कहानी का कथानक, चरित्र और शैली आदि की अवतारणा होती है। उन्हीं उद्देश्यों को पूर्ण रूप से व्यंजित और चरितार्थ करने के लिये कहानी-कार को अपनी कहानियों को विभिन्न शैलियों और रूप-विधानों में रखना पड़ता है क्योंकि एक शैली में उद्देश्य की एक ही दिशा सफलतापूर्वक चरितार्थ की जा सकती है और उसकी कहानी के उद्देश्य-तत्व, कहानीकार के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, आधु-निक कहानी की सबसे बड़ी विशेषता है। कहानी की शैली, कहानी के रूप-विधान में इतनी चाल, इतने हस्तलाघव केवल व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा के लिये ही किये जाते हैं, अन्य लक्ष्य से नहीं।[१] कहानी का यह व्यक्तित्व इतना व्यापक और महान है कि उसकी इस सीमा में समस्त मानव-व्यापार, उसकी समस्त समस्यायें, निदान और भाव स्वीकृत रहते हैं। अतएव कहानी के चरम उद्देश्य पर सत्य निश्चित है कि उसमें मानवता और मानव-मूल्यों की व्याख्या होगी, मनुष्य के शाश्वत भावों, अनुभूतियों और

---

१. The purpose of all these tricks or conventions is to communicate personality which appearing only to tell a story.

Seam O' Faolain.

समस्याओं पर प्रकाश डाला गया होगा। इन विशेषताओं से शून्य कहानी किसी भी तरह आधुनिक कहानी नहीं कही जा सकेगी।[1]

कहानीकार के अपने इसी व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा के अन्तर्गत कहानी में यथार्थवाद आदि इकाइयाँ आती हैं। कभी-कभी उद्देश्य के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही प्रधान रूप से मिलती है और इसी अनुभूति के धरातल पर पूरी कहानी प्रतिष्ठित होती है। ऐसी कहानियाँ अपने एकान्तिक प्रभाव में अत्यन्त शक्तिशाली और उत्कृष्ट होती हैं। उनके उद्देश्य-बिन्दु में जहाँ एक ओर मनोवैज्ञानिक अनुभूति मिलती है, वहाँ दूसरी ओर हमें एक ऐसे सत्य का दर्शन होता है जिसमें हमारे मनोविज्ञान, युग-चेतना और व्यक्तित्व-चेतना—तीनों का सामंजस्य उपस्थित होता है।

कलात्मक दृष्टि से ऐसे उद्देश्यों की अनुभूति अत्यन्त परोक्ष रूप से कहानी में करायी जाती है, तभी कहानी सफल हो पायेगी, अन्यथा कहानी न रह कर प्रवचन और वार्ता हो जायगी। वस्तुतः जिस कहानीकार की अनुभूति, संवेदना जितनी गहरी और महान होगी, उसकी कहानी उतनी शाश्वत होगी और जिस कहानीकार का उद्देश्य, उसका व्यक्तित्व जितना महान होगा, उसकी कहानी उतनी ही महान होगी।

कहानियों का वर्गीकरण

कहानी-कला के मूल तत्वों में कथानक, चरित्र, वातावरण ही इसके मुख्य तत्व हैं। इन्हीं के सम्यक् और आनुपातिक संयोग से कहानी की सृष्टि होती है, लेकिन कहानी-विधान की दृष्टि से संवेदना के अनुकूल कहानीकार कभी अपनी सृष्टि में कथानक और कार्य-व्यापार को मुख्यता देता है, कभी पात्र और चरित्र-चित्रण को, कभी वातावरण को। इस तरह एक तत्व की प्रमुखता से प्रत्येक कहानी अपने रूप और प्रकार में एक-दूसरे से भिन्न हो जाती है और सबमें अलग-अलग आकर्षण उत्पन्न हो जाते हैं। किसी में इतिवृत्त अथवा कार्य-व्यापार की सुन्दरता रहती है, किसी में चरित्र-चित्रण तथा उसके विश्लेषण और किसी में वातावरण के आकर्षण का सुख मिलता है। इस भाँति विभिन्न तत्व की प्रधानता के धरातल से कहानियों का निम्न-लिखित वर्गीकरण हो सकता है :

१. कथानक-प्रधान कहानी
२. चरित्र-प्रधान कहानी
३. वातावरण-प्रधान कहानी
४. विविध कहानियाँ

---

१. I think it is safe to say that unless a story makes this subtle coment on human nature, on the permanent relationship between people. Their variety, their expedness, it is not a story in modern sense. Seam O' Faolain. Short Stories, Page 154.

कथानक-प्रधान कहानी

मूल्य की दृष्टि से कथानक-प्रधान कहानी सबसे साधारण कोटि की होती है, लेकिन व्यापकता और प्रसार की दिशा में इस कहानी को सबसे अधिक महत्व मिला है। कहानी अपने आविर्भाव-युग में मुख्यतः इसी रूप में थी और इस रूप का विकास आज तक की कहानियों में मिलता आ रहा है। कथानक-प्रधान कहानियों के चरित्र-प्रधान, घटना-प्रधान और कार्य-प्रधान तीन रूप होते हैं और तीनों रूप इसके मुख्य धरातल हैं, जहाँ से कहानीकार अपनी संवेदनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति उपस्थित करता है। चरित्र-प्रधान कथानक में चरित्र ही वह मूल केन्द्र होता है, जहाँ पर कहानी की मुख्य संवेदना स्थिर होती है। चरित्र का विकास, उसकी सारी गति-विधि, कार्य-व्यापार ऐसी कहानी की मूल प्रेरणा होती है, जैसे कौशिक की 'पावन पतित'; प्रेमचन्द की 'आत्मा-राम' और यशपाल की 'उत्तराधिकारी' आदि कहानियाँ। 'उत्तराधिकारी' कहानी में हरीस वह चरित्र है, जिसके केन्द्र-बिन्दु से एक बहुत लम्बा और इतिवृत्तात्मक कथानक निर्मित होता है। हरीस गाँव छोड़कर लाम पर चला जाता है। बहुत वर्ष बीत जाते हैं, वह घर नहीं लौटता। इधर इसी बीच में उसकी पत्नी, मानी, को किसी अन्य से बच्चा पैदा होता है। हरीस कुछ वर्ष बाद घर लौटता है और मानी तथा उसके बच्चे का खून करना चाहता है, लेकिन मानी सदा के लिए भाग जाती है। हरीस पुनः एक अन्य स्त्री, कुशली अपने घर बैठाता है और उसके एक संतान की आकांक्षा में जीता है, परन्तु हरीस लड़ाई में जख्मी हो जाने के कारण शारीरिक रूप से असमर्थ था, फिर उत्तराधिकारी कैसे आए? कुशली मेले में जाती है, ईश्वर से संतान के लिए वरदान माँगती है। वहीं उससे और गनेर सिंह से सम्बन्ध हो जाता है। उसे गर्भ रह जाता है और वह गनेर सिंह की घरवाली बन जाती है। उसे बच्चा पैदा होता है। हरीस पंचायत करता है और बहुत प्रसन्नता-संतोष से कुशली और उसके बच्चे को अपने घर लाता है क्योंकि हरीस को एक उत्तराधिकारी की अमिट इच्छा थी।

घटना-प्रधान कथानक में घटनाएँ ही कथानक-निर्माण में मुख्य होती हैं। इन्हीं घटनाओं के माध्यम से समूचा कथानक निर्मित होता है, लेकिन ऐसे कथानक कलात्मक दृष्टि से बहुत निम्नकोटि के होते हैं क्योंकि इनका आधार मानव की शाश्वत समस्याएँ तथा मनोभाव होकर केवल जीवन की बाह्य घटनाएँ होती हैं। ऐसे कथानकों के विकास में दैवी घटना और संयोग का विशेष सहारा लिया जाता है। 'कौशिक' की 'ताई' कहानी इसके उदाहरण में सर्वश्रेष्ठ है। कार्य-प्रधान कथानक घटना-प्रधान कथानक का ही एक विकसित रूप होता है। इसमें भी घटनाएँ आती हैं, लेकिन कार्य-व्यापार की एकसूत्रता में आती हैं अर्थात् कथानक में कार्य-व्यापार की मुख्यता मिलती है और घटनाएँ उसमें साधन के रूप में आती हैं। इस तरह ऐसे कथानकों से निर्मित कार्य-

प्रधान कहानियों में सबसे अधिक मुख्यता कार्य-व्यापार को दिया जाता है और इसके अन्तर्गत जासूसी, रहस्यपूर्ण तथा अद्भुत कहानियाँ आती हैं। इस प्रकार की कहानियों के प्रतिनिधि कहानीकार गोपालराम गहमरी और दुर्गाप्रसाद खत्री सर्वथा उल्लेखनीय हैं।

कथानक-प्रधान कहानियों में वर्णन और इतिवृत्त इसके दो प्रधान अंग हैं। इसमें मानव की बाह्य उलझनों और कार्य-व्यापार पर बहुत बल दिया जाता है। चरित्रों को विविध परिस्थितियों में डाल कर, उससे कथावस्तु के निर्माण तथा आरोह-अवरोह से कहानी की सृष्टि होती है। ऐसी कहानियों में प्रवाह और कौतूहल तत्व की विशेष प्रधानता होती है, लेकिन कला की दृष्टि से कथानक-प्रधान कहानियाँ साधारण स्तर की समझी जाती हैं।

चरित्र-प्रधान कहानी

चरित्र-प्रधान कहानियों का मुख्य उद्देश्य चरित्र-चित्रण और चरित्र-विश्लेषण होता है। अतएव इन कहानियों का मुख्य धरातल मनोवैज्ञानिक होता है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी 'कफन' चरित्र-प्रधान कहानियों की दिशा में अमूल्य देन है। गरीब बाप-बेटे, जाड़े के दिनों में बाहर अलाव के किनारे बैठे हैं। भीतर बेटे की पत्नी प्रसव-पीड़ा से कराह रही है, लेकिन उसे देखने मात्र के लिए उन दोनों में से कोई भी भीतर नहीं जाता। क्यों? इसलिए कि वे दोनों भूखे थे और अलाव में कुछ आलू भुने जा रहे थे। उन्हें डर था कि अगर कोई भीतर जाता, तो दूसरा अलाव से आलू निकाल कर खा जायगा। इसलिए दोनों वहीं बैठे रहे और असीम पीड़ा से सुबह होते-होते औरत मर जाती है। गरीब, निकम्मे, कामचोर दोनों रोते हुए बैठे रहे। गाँव के लोगों ने कफन के लिए चन्दा करके उन्हें दिया और बाप-बेटे कफन खरीदने के लिए बाजार गये। भूखे, लालची और असन्तुष्ट—वे दोनों कफन के लिए कपड़ा देखते-देखते शराब की दूकान पर पहुँचे। गोश्त खाये, चटपटे लिये और रुपये की दोनों ने शराब पी डाली और मदमस्त होकर वहीं नाचने-गाने लगे। इस कहानी में उन दोनों भूखे, निकम्मे और नीच चरित्रों को स्पष्ट किया गया है। चरित्र के इतने सुन्दर और सत्य चित्रण के केन्द्र-बिन्दु से पूरी कहानी निर्मित हुई है। इस कहानी में कार्य-व्यापार, घटनाएँ और प्रसंग बिल्कुल नाममात्र के लिये हैं और जो कुछ हैं भी वे सब उन दो चरित्रों की छाया हैं, जिनसे वे चरित्र बिल्कुल स्पष्ट रूप में हमारे सामने खड़े हैं।

विकास-युग में चरित्र-प्रधान कहानियों के सर्वश्रेष्ठ लेखक प्रेमचन्द हैं। इनकी कहानियों में मनोविज्ञान अपने तात्विक रूप में अधिक प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी कहानियों के संक्रान्ति-युग में मनोविज्ञान की उन्नति और उससे पायी हुई मनोविश्लेषण कीप द्धति

से चरित्र-प्रधान कहानियाँ और भी सुदृढ़ तथा समुन्नत हुईं। जैनेन्द्रकुमार आधुनिक मनोविज्ञान के धरातल से चरित्र-प्रधान कहानियों की सृष्टि के जन्मदाता हैं। अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी और यशपाल इस प्रवृत्ति के उन्नायकों में से हैं।

चरित्र प्रधान कहानियों में चरित्र के बाह्य विश्लेषण की अपेक्षा अब चरित्र के आन्तरिक विश्लेषण की प्रतिष्ठा हुई; व्यक्ति की कर्म-प्रेरणाओं का विवेचन एक पैनी दृष्टि से हुआ। चरित्र-प्रधान कहानियाँ घटनाओं को छोड़कर स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हुईं। इनमें विशुद्ध व्यक्ति-विश्लेषण, आत्म-विश्लेषण और मानसिक ऊहापोह की प्रवृत्ति आई। जैनेन्द्रकुमार की 'एक रात', 'मास्टरजी', 'राजीव और भाभी', 'एक टाइप', 'मित्र विद्याधर', 'क्या हो'; अज्ञेय की 'छाया', 'साँप', 'मंसो', 'नम्बर दस', 'सिगनेलर', 'पुलिस की सीटी', 'पुरुष का भाग्य'; इलाचन्द्र जोशी की 'मैं', 'एकाकी', 'दुष्कर्मी'; यशपाल की 'एक राज', 'अगर हो जाता', 'कुल मर्यादा'; उपेन्द्रनाथ अश्क का 'उबाल', 'पिंजरा', 'बैंगन का पौदा' और 'नासूर' आदि कहानियाँ इस क्षेत्र की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

वातावरण-प्रधान कहानी

कहानी कल्पना-लोक की वस्तु न होकर जीवन की वस्तु है। जीवन स्वतः वातावरण-सापेक्ष्य है। हमारे जीवन के कार्य-व्यापारों में एक अलौकिक परिपार्श्व और वातावरण की प्रेरणा होती है। इसी प्रेरणा को कहानी की संवेदना के साथ-साथ पूर्ण रूप से चित्रित करने से कहानी वातावरण-प्रधान हो जाती है। वातावरण के निर्माण में प्रकृति, चित्रण तथा रूप-वर्णन इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं। सामाजिक कहानियों में वातावरण का निर्माण, उसमें एकान्तिक प्रभाव और स्वाभाविकता के साथ-साथ सौन्दर्य की अवतारणा करता है और कहानी के चरम उद्देश्य का प्रभाव पाठक पर अनन्य ढंग से पड़ता है, जैसे 'प्रसाद' की 'बिसाती', 'बनजारा', 'आंधी', 'प्रतिध्वनि' तथा प्रेमचन्द की 'अलग्योझा', 'पूस की रात' और 'गुलीडण्डा' आदि कहानियाँ इस दिशा की उत्कृष्ट देन हैं।

ऐतिहासिक कहानियों में वातावरण की अवतारणा परम आवश्यक तत्व है। बिना इसके कहानी में न तो ऐतिहासिकता ही आ सकती है और न कहानी का वह चरम उद्देश्य ही चरितार्थ हो सकता है, जिसके आधार पर कहानी लिखी गई है। प्रसाद की प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ; जैसे 'देवरथ' 'सालवती', 'स्वर्ग का खंडहर और 'आकाश-दीप' इस दृष्टिकोण से परम सफल कहानियाँ हैं। इनमें चित्र-फलक, परिपार्श्व और वातावरण का इतना आकर्षण और वेग है कि पाठक कभी भी इनसे दूर नहीं जा सकता तथा कहानियों से उसका सीधा साधारणीकरण होता जायगा। इन कहानियों में वातावरण प्रस्तुत करने में कहानीकार ने अपनी आश्चर्यजनक प्रतिभा

का उदाहरण दिया है। फलतः इन कहानियों में ऐतिहासिकता के साथ-साथ कलात्मक सौन्दर्य अपूर्व ढंग से प्रस्तुत हुआ। वस्तुतः वातावरण-प्रधान कहानियों में कवित्वपूर्ण भावना, उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति, नाटकीय स्थितियों की अवतारणा और उनमें चरित्रों के संघर्ष, इसकी मुख्य विशेषताएं हैं। विकास-युग में इस दिशा में 'प्रसाद' अद्वितीय हैं और संक्रान्ति-युग में अज्ञेय और जैनेन्द्रकुमार। संक्रान्तियुगीन कहानीकला के अनुसार कहानी में वातावरण प्रस्तुत करने के लिए नाटकीय स्थितियों को उत्पन्न करना और उनमें चरित्रों के संघर्ष की अभिव्यक्ति करना इसकी प्रधान कला है। विकास-युग में इसका सम्बन्ध आदर्शवाद से था, स्वच्छन्दतावाद से था, लेकिन संक्रान्ति-युग में इसका सम्बन्ध यथार्थवाद से है।

विविध कहानियाँ

उक्त तीन प्रकार की मुख्य कहानियों के अतिरिक्त हिन्दी कहानी-साहित्य में कुछ ऐसी भी विविध ढंग की कहानियाँ हैं, जो अपने में स्वतन्त्र हैं तथा वे उक्त किसी भी प्रकार में नहीं आ सकतीं; जैसे प्रकृतवादी, प्रतीकवादी और सांकेतिक कहानियाँ।

हिन्दी में प्रकृतवादी कहानियों के जन्मदाता बेचन शर्मा 'उग्र' हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक कुरीतियों, घृणास्पद और लज्जाप्रद वर्ण्य विषयों को लेकर समाज की तीखी, और व्यंग्यात्मक आलोचना की है। संक्रान्ति-युग में यशपाल और 'पहाड़ी' इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। यशपाल मुख्यतः समाजालोचन के कहानीकार हैं और अनेक स्थलों पर प्रकृतवादिता की प्रेरणा से उनकी कहानियों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर वर्णन हुए हैं। 'वो दुनियाँ' 'पिंजरे की उड़ान' और 'भस्मावृत्त चिनगारी' आदि कहानी-संग्रहों में कतिपय कहानियाँ इसके उदाहरण में रखी जा सकती हैं। यशपाल की इन प्रकृतवादी कहानियों में समाजालोचन के पीछे निर्वैयक्तिक सामाजिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से स्पष्ट हैं। पहाड़ी में यह प्रकृतवाद सबसे अधिक तीखे और वीभत्स रूप में व्यक्त हुआ है। इन्होंने मुख्यतः स्त्री-पुरुष के लैंगिक सम्बन्धों को लेकर काम-वासना की अधिक विकृतियों की अभिव्यक्ति अपनी कहानियों में दी है। इस दशा में 'पहाड़ी' की 'विश्राम', 'केवल प्रेम ही', 'चार विराम', 'यथार्थ-वादी रोमान्स', 'छिपकली', 'एस्पिरीन की टेबलेट' और 'राजरानी' आदि कहानियाँ उपयुक्त उदाहरण हैं। विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से अर्थात् कला कला के लिए प्रकृतवादी कहानियाँ अत्यन्त सशक्त चरित्र-चित्रण में पूर्ण सफल यथार्थवादी परम्परा की सजीव अभिव्यक्ति हैं। इनकी कला सर्वथा निर्दोष है, लेकिन प्रभाव और उद्देश्य दोनों दृष्टियों से ये कहानियाँ कुरुचिपूर्ण और अमंगलकारी हैं।

प्रतीकवादी कहानियों का आरम्भ राय कृष्णदास से हुआ, लेकिन उसका पूर्ण विकास संक्रान्ति-युग में जैनेन्द्रकुमार और 'अज्ञेय' की कहानी-कला द्वारा हुआ। जैनेन्द्र

ने अपनी 'लाल सरोवर', 'तत्सत्', 'वह साँप', 'कामनापूर्ति', 'राजपथिक', 'नीलम देश की राजकन्या' आदि कहानियों में विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से जीवन के अमृत तत्वों तथा सूक्ष्म संवेदनाओं को लिया है। अज्ञेय ने 'पैगोडा वृक्ष', 'पुरुष का भाग्य', 'चिड़ियाघर' और 'कोठरी की बात' आदि कहानियों में प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्षों के चित्र उपस्थित किये हैं। वस्तुतः प्रतीकवादी कहानियाँ अपने कलात्मक और भावात्मक दोनों रूपों में उत्कृष्ट हैं। अमूर्त विषयों और मनुष्य के अन्तःसौन्दर्य तथा मानसिक संघर्षों के चित्र इसमें प्रस्तुत हुए हैं।

सांकेतिक कहानियों के जन्मदाता जैनेन्द्रकुमार हैं। इन्होंने दृष्टांत, वार्ता, और कथा-शैलियों में जीवन की रहस्यवादी समस्याओं और दार्शनिक पक्ष को लेकर और उनसे कहानियों की सृष्टि कर उपदेश और प्रवचन का काम लिया है। 'कःपन्था', 'देवी-देवता', 'ऊर्ध्वबाहु', 'भद्रबाहु', 'गुरु कात्यायन' और 'नारद का अर्घ्य' आदि कहानियाँ इस दिशा की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। इन सांकेतिक कहानियों में वर्ण्य वस्तु की सूक्ष्मता, किन्तु उनकी व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति दोनों उल्लेखनीय हैं। सियारामशरण गुप्त की भी 'मानुषी' तथा 'कोटर और कुटीर' इस शैली की सफल कहानियाँ हैं।

कहानी-कला के मूल तत्वों और कहानियों के वर्गीकरण के निरूपण में जो सबसे विशेष बात है, वह है कहानी-कला का निरन्तर विकास और इसकी मान्यताओं में परिवर्तन और परिवर्द्धन।

उपसंहार

(क) कहानी-कला और साहित्य के अन्य प्रकार :

आधुनिक युग में कहानी-कला को जितनी प्रमुखता मिली है, उसकी तुलना में साहित्य के अन्य प्रकार; जैसे उपन्यास, एकांकी नाटक, निबन्ध, गद्यगीत, रेखा-चित्र, गीत और खंडकाव्य आदि नहीं आ सकते । यह युग गद्य का युग है, लेकिन गद्य-साहित्य के भी अन्य प्रकारों में जितना प्रचलन और व्यापकता इस कला को मिली है, वह अनन्य है । इसकी शिल्पगत सुगमता और सरलता के अतिरिक्त इसमें आनन्द और मनोरंजन की संभावनाएँ अपेक्षाकृत सबसे अधिक हैं । वस्तुत: इस सत्य का दर्शन हम कहानी-कला और साहित्य के उक्त अन्य प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से कर सकेंगे ।

कहानी और उपन्यास

कहानी और उपन्यास कथा-साहित्य की दो विशिष्ट शैलियाँ हैं और समूचे गद्य-साहित्य पर उनके प्रभाव अपूर्व हैं, लेकिन कहानी-कला का स्थान और इसकी व्यापकता तथा लोकप्रियता उपन्यास से भी अधिक है । कहानी और उपन्यास के मूल तत्वों में समानता है, लेकिन दोनों की शिल्पविधि और रूप-विधान में अपार भिन्नता है । यह भिन्नता और अन्तर दोनों के धरातल और भाव-परिधि में भी है । उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत है । इसमें हमारा सम्पूर्ण समाज, हमारा सम्पूर्ण जीवन, एक समूचा युग संगुंफित हो सकता है क्योंकि इसकी परिधि अपार है । इसके विस्तार और प्रसार की कोई विशेष सीमा नहीं । सौ पृष्ठों से लेकर हजार पृष्ठों तक में उपन्यास की संवेदना फैली मिलती है, लेकिन उसके विपरीत कहानी का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है । यह संपूर्ण जीवन के लिये किसी एक सत्य की ही दीप्ति दिखा सकती है ।

उपन्यास में जहाँ अनेक भाव, अनेक रसों की निष्पत्ति होती है, वहाँ कहानी में केवल एक ही विचार और एक ही भाव की अभिव्यक्ति हो सकती है । उपन्यास के निर्माण और विकास में एक से अधिक संवेदनाएँ और एक से अधिक इतिवृत्त तथा अनेक रूप की घटनाओं, कार्य-व्यापारों की अवतारणा होती है, लेकिन कहानी के निर्माण और विकास में केवल एक सूक्ष्म संवेदना, एक सूक्ष्म इतिवृत्त और एक ही मुख्य घटना की प्रेरणा होती है । इनके कलात्मक तादात्म्य तथा कौतूहल की उत्तेजना से कहानी कुछ ही क्षणों में आरम्भ से चलकर अधिक-से-अधिक तीन-चार घटनाओं के प्रवाह से

अपने लक्ष्य के चरमोत्कर्ष
होते हैं और पात्रों के चरि
अधिक घटनाओं की अवता
उपन्यास में जितने वर्णन,
इस दिशा में कठिन सीमा
भाव-विशेष और चरित्र-वि
है । इसमें न उतनी व्याख्
संकेतों और व्यंजनाओं से

कहानी का प्रत्येक
होता है और सबका सामू
अतएव कहानी में उपन्या
है, जिससे आकर्षित होक
आनंद और मनोरंजन प्र
सूक्ष्मता और व्यंजना का
स्थान कम होता जा रहा
बढ़ता जा रहा है । ये दो
इन प्रयोगों की तुलना में
जीवन में इतनी द्रुतगा
सम्पूर्ण उपन्यास पढ़ नहीं
अधिक आनन्द-मनोरंजन
वृहद् उपन्यास के स्थान
लिखने की शैली आरम्भ

कहानी और एकां

जिन सामाजिक
आगे कहानी की अवता
नाटक के आगे एकांकी
एकांकी नाटक दोनों क
अवकाश में हम अधिक
लक्ष्य-बिन्दु पर कहानी
और एकांकी नाटक-कल
दोनों कलावस्तुएँ अपने

एकांकी दृश्य-

प्रकार :

खता मिली है, उसकी तुलना में
, निबन्ध, गद्यगीत, रेखा-चित्र,
का युग है, लेकिन गद्य-साहित्य
स कला को मिली है, वह अनन्य
इसमें आनन्द और मनोरंजन की
का दर्शन हम कहानी-कला और
कर सकेंगे ।

विशिष्ट शैलियाँ हैं और समूचे
नी-कला का स्थान और इसकी
। कहानी और उपन्यास के मूल
र रूप-विधान में अपार भिन्नता
द-परिधि में भी है । उपन्यास का
सम्पूर्ण जीवन, एक समूचा युग
। इसके विस्तार और प्रसार की
ठों तक में उपन्यास की संवेदना
र अत्यन्त सीमित है । यह संपूर्ण
कती है ।
निष्पत्ति होती है, वहाँ कहानी में
क्ति हो सकती है । उपन्यास के
र एक से अधिक इतिवृत्त तथा
ोती है, लेकिन कहानी के निर्माण
तिवृत्त और एक ही मुख्य घटना
कौतूहल की उत्तेजना से कहानी
तीन-चार घटनाओं के प्रवाह से

अपने लक्ष्य के चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है । उपन्यास में पात्रों और घटनाओं के समूह होते हैं और पात्रों के चरित्र-चित्रण और विश्लेषण के लिये उपन्यासकार अधिक-से-अधिक घटनाओं की अवतारणा कर सकता है और इससे भी आगे बढ़कर वह अपने उपन्यास में जितने वर्णन, जितनी व्याख्या चाहे कर सकता है, लेकिन कहानी-कला की इस दिशा में कठिन सीमाएँ हैं, क्योंकि मूल रूप से कहानी में एक ही घटना-विशेष, भाव-विशेष और चरित्र-विशेष की अभिव्यक्ति सीमित पात्रों और वर्णन-चित्रणों में होती है । इसमें न उतनी व्याख्या की सम्भावना है, न वाद विवाद की । इसका कार्य तो संकेतों और व्यंजनाओं से होता है ।

कहानी का प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य उसके केन्द्रैक्य और लक्ष्य-बिंदु से संबंधित होता है और सबका सामूहिक प्रवाह कहानी के चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ता रहता है । अतएव कहानी में उपन्यास की अपेक्षा आश्चर्यजनक गति, उत्तेजना और प्रवाह रहता है, जिससे आकर्षित होकर पाठक थोड़े-से-थोड़े समय तथा परिश्रम में एक अद्भुत आनंद और मनोरंजन प्राप्त करता है । आधुनिक कहानी-कला में उत्तरोत्तर इतनी सूक्ष्मता और व्यंजना का प्रादुर्भाव होता जा रहा है कि अब व्याख्या, वर्णन आदि का स्थान कम होता जा रहा है तथा मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों और संवेदनाओं का अंश बढ़ता जा रहा है । ये दोनों कम-से-कम घटनाओं के अन्दर संगुम्फित किये जा रहे हैं । इन प्रयोगों की तुलना में उपन्यास-कला बहुत पीछे पड़ती जा रही है, क्योंकि आज के जीवन में इतनी द्रुतगामिता और तेजी आ गयी है कि आज का बुद्धिजीवी पाठक सम्पूर्ण उपन्यास पढ़ नहीं पाता । वह कम-से-कम अवकाश और परिश्रम में अधिक-से-अधिक आनन्द-मनोरंजन चाहता है । इसी माँग की पूर्ति के लिए आधुनिक समय में वृहद् उपन्यास के स्थान पर 'नावेलेट' लघु उपन्यास और 'लांग स्टोरी' लम्बी कहानी लिखने की शैली आरम्भ हुई है ।

कहानी और एकांकी नाटक

जिन सामाजिक शक्तियों और पाठक की मनोवृत्तियों के फलस्वरूप उपन्यास के आगे कहानी की अवतारणा और व्यापकता प्रस्फुटित हुई है, उन्हीं शक्तियों ने सम्पूर्ण नाटक के आगे एकांकी नाटक-कला को सर्वग्राह्य सिद्ध किया है । अतएव कहानी और एकांकी नाटक दोनों कलाओं का चरम लक्ष्य इस एक सन्धि-बिंदु पर समान है कि क्षणिक अवकाश में हम अधिक-से-अधिक आनंद और मनोरंजन प्राप्त कर सकें । वस्तुतः इस लक्ष्य-बिन्दु पर कहानी और एकांकी दोनों को समान रूप से सफलता मिली है । कहानी और एकांकी नाटक-कला में कथा-वस्तु, पात्र और संवाद आदि तमाम तत्वों के होते हुए दोनों कलावस्तुएँ अपने रूप-विधान में विभिन्न हैं ।

एकांकी दृश्य-काव्य के अन्तर्गत आता है । एकांकी से आनन्द और मनोरंजन के

लिये उन समस्त शिष्टाचारों को पूरा करना होगा जो एक संपूर्ण नाटक से आनंद लेने की दिशा में करना होता है अर्थात् इस कला का सम्पूर्ण प्रभाव और इसकी स्वयं की सम्पूर्णता रङ्गमंच की समस्त आवश्यकताओं की अपेक्षा करता है । इसमें से किसी भी अङ्ग के अभाव से एकांकी नाटक की आत्मा मारी जाती है और इसमें सम्पूर्ण प्रभाव की सृष्टि नहीं हो सकती, लेकिन कहानी-कला इन समस्त मान्यताओं से निरपेक्ष और स्वतन्त्र है । यह प्रत्येक रूप और दिशाओं से सर्वजन-सुलभ है । इसमें एकांकी नाटक की भाँति किसी भी बाह्य स्थिति का प्रतिबन्ध नहीं है, परन्तु मूल तत्वों की दिशा में एकांकी नाटक कहानी-कला के बिल्कुल समीप है । दोनों की तत्वगत मान्यताओं में पूर्ण समानता है ।

दोनों कलाएँ एक ही संवेदना के धरातल से चलती हैं । दोनों की कथा-वस्तुओं में एक भाव और उस भाव से सम्बन्धित अनेक अनुभूतियाँ घनीभूत रहती हैं । ये अनुभूतियाँ घटना और पात्रों द्वारा व्यक्त होती रहती हैं, लेकिन एकांकी-कला में अपेक्षाकृत घटना से अधिक शक्तिशाली पात्र होते हैं[1] क्योंकि पात्रों के ही माध्यम से उनकी गतिशीलता, कार्य-व्यापार से नाटक की घटनाएँ और घटनाओं से सम्बन्धित सारी अनुभूतियाँ व्यंजित होती हैं ।

संभाषण एकांकी-कला का मूल तत्व है । इसी से एकांकी की संवेदना और उसकी सारी गति निर्धारित होती है । कहानी-कला में एकांकी के वे सारे तत्व तो होते ही हैं, इनके अतिरिक्त इस कला में वर्णन, विवेचन और चित्रण के अन्य अधिकार भी प्राप्त हैं । एकांकी-कला अपनी शिल्पगत मान्यताओं में सीमित होकर अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचती है । कहानी-कला उसी धरातल से पूर्ण स्वतन्त्र और अधिक-से-अधिक शिल्पगत अधिकारों के साथ अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है । अतएव कहानी-कला में एकांकी-कला की अपेक्षा पूर्ण सुगमता और सरलता के साथ एकान्त-प्रभाव, मनोरंजन और आनन्द प्रस्तुत करने की क्षमता अधिक होती है । आधुनिक कहानी-कला और एकांकी-कला उत्तरोत्तर एक-दूसरे के समीप होती जा रही हैं । इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि रङ्गमच और अभिनय के अभाव से कहानी की भाँति एकांकी भी पढ़ने के लिये अधिक लिखे जा रहे हैं ।

कहानी और निबन्ध

किसी विषय अथवा समस्या को लेकर उस पर अपनी ओर से चिन्तन, व्याख्या

१. इसीलिये एकांकी में पात्र ही महारथी होता है, घटनाएँ रथ बनकर समस्या-संग्राम में उसे गति प्रदान करती हैं । मेरी दृष्टि में पात्र-प्रधान एकांकी कला की दृष्टि से अधिक शक्तिशाली हुआ करते हैं ।

—डॉ० रामकुमार वर्मा : ऋतुराज, भूमिका, पृ० १४ ।

और विश्लेषण करने की क्
समस्या मुख्य होती है और
शोभा है । इस तरह निबन्
के तत्व के समान है अर्थात्
लेकिन उसका प्रतिपादन अ
रूप से होती है ।

कहानी-कला उस
अनुरूप एक कथावस्तु ढूँढ़
नाओं के माध्यम से उसमें
जिज्ञासा-वृत्ति से समूचे
अंत में कहानी अपने सामू
हैं । इस प्रकार हमें सजीव
समस्या का हल, उस पर
कलागत तत्वों का अभाव
विश्लेषण, सूखे ज्ञान, तर्क

कहानी और गद्यगी

गद्यगीत और रे
धरातल से कलाकार की
सिक स्थिति या चरित्र के
का प्रयास होता है । कह
गद्य-रूप उसके अन्तर्गत
चित्र की अवतारणा सद
सहायता ली जाती है ।
चित्रण और वातावरण-
चित्र मिलते हैं । आधुनि
रही है, लेकिन तुलनात्म
में आती है ।

कहानी और गीत

कहानी गीत से
पर लिखा जाता है ।
उपस्थित किया जाता

और विश्लेषण करने की व्यवस्था को निबन्ध कहते हैं। इसमें एक भाव अथवा एक ही समस्या मुख्य होती है और उस पर व्यक्तिगत विचार प्रस्तुत करना निबंध-कला की शोभा है। इस तरह निबन्ध-कला व्यक्तित्व-प्रधान होती है। यह तत्व वस्तुतः कहानी के तत्व के समान है अर्थात् निबन्ध और कहानी का भाव-पक्ष प्रायः समान होता है, लेकिन उसका प्रतिपादन और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति दोनों कलाओं में विभिन्न रूप से होती है।

कहानी-कला उस भाव अथवा समस्या के चित्रण-विश्लेषण के लिये उसके अनुरूप एक कथावस्तु ढ़ूँढ़ेगी और उसे आकर्षक इतिवृत्त में बाँधेगी। पात्रों और घटनाओं के माध्यम से उसमें आश्चर्यजनक सजीवता और गति पैदा होती है। कौतूहल, जिज्ञासा-वृत्ति से समूचे कहानी के कार्य-व्यापार में आकर्षण उपस्थित होता है और अंत में कहानी अपने सामूहिक प्रभाव के साथ लक्ष्य के चरम उत्कर्ष पर पहुँच जाती हैं। इस प्रकार हमें सजीव और व्यावहारिक रूप से उदाहरणसहित किसी विषय और समस्या का हल, उस पर कलाकार का दृष्टिकोण ज्ञात हो जाता है। निबंध में इन कलागत तत्वों का अभाव रहता है। इसमें केवल विषय-समस्या से सम्बन्धित बौद्धिक विश्लेषण, सूखे ज्ञान, तर्क और व्याख्या के अंश होते हैं।

कहानी और गद्यगीत तथा रेखाचित्र

गद्यगीत और रेखाचित्र से भी कहानी भिन्न है। गद्यगीत में किसी भाव के धरातल से कलाकार की भावात्मक उड़ान होती है और रेखाचित्र में किसी एक मानसिक स्थिति या चरित्र के आन्तरिक व्यक्तित्व को वर्णन और चित्रण की रेखाओं में बाँधने का प्रयास होता है। कहानी-कला इन दोनों से महान् होती है, ये दोनों शैलियाँ और गद्य-रूप उसके अन्तर्गत आते हैं अर्थात् कहानी के रूप-निर्माण में गद्यगीत और रेखाचित्र की अवतारणा सदा होती रहती है और इन शैलियों से कहानी के रूप-निर्माण में सहायता ली जाती है। उत्कृष्ट कहानियों में सदैव उसकी कथा-वस्तु की पूर्ति चरित्र-चित्रण और वातावरण-निर्माण के लिये इन शैलियों से निर्मित भाव-चित्र और रेखाचित्र मिलते हैं। आधुनिक कहानी-कला में रेखाचित्र-शैली को कहीं-कहीं प्रमुखता मिल रही है, लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से अभी तक रेखाचित्र कहानी के समग्र सहायक तत्वों में आती है।

कहानी और गीत

कहानी गीत से भिन्न है। गीत मूलतः भाव-जगत् की अनुभूतियों के आधार पर लिखा जाता है। उसमें कल्पना-तत्व के साथ-साथ सङ्गीत-तत्व का तादात्म्य उपस्थित किया जाता है, लेकिन कहानी जीवन के धरातल से जीवन की आलोचना

और सत्य-दर्शन से लिखी जाती है। इसमें चिंतन, मनन और व्याख्या-विश्लेषण के तत्व होते हैं।

गीत मुक्तक काव्य के अंतर्गत है अतएव इसमें घटनाओं, कार्य-व्यापारों की असंबद्धता, अव्यवस्था आदि का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, लेकिन कहानी शिल्पविधि-प्रधान होती है और उसकी शिल्पगत मान्यताओं के अनुरूप उसमें घटना की क्रमबद्धता आवश्यक है, सत्य-दर्शन और जीवन की सजीव व्याख्या अपेक्षित है। गीत में मूल रूप से एक भाव ही मुख्य है, जिसमें किसी कथा-वस्तु और उसकी एक निश्चित संवेदना तथा लक्ष्य-बिन्दु परम आवश्यक तत्व हैं।

कहानी और खण्डकाव्य

गीत में कहानी-कला के अनुरूप जिन तत्वों का अभाव है, उनकी कुछ और पूर्ति खण्डकाव्य में हो जाती है अर्थात् इसमें एक निश्चित संवेदना और उससे निर्मित एक कथा-वस्तु होती है। कथा-वस्तु का धरातल जीवन की किसी विशिष्ट घटना को बनाया जाता है। इसमें पात्र होते हैं और पात्रों से घटनाओं की अवतारणा होती है और सबका सामूहिक प्रभाव उसके लक्ष्य पर स्पष्ट होता है, लेकिन खण्डकाव्य और कहानी की निर्माण-शैली और रूपविधान में बड़ा अन्तर है। कहानी में इतिवृत्त का जितना आकर्षण और कौतूहल के साथ वर्णन-चित्रण का जितना बल होता है, वह खण्डकाव्य में नहीं मिलता। यद्यपि प्रभाव और लक्ष्य की दृष्टि से खण्डकाव्य कहानी से कहीं अधिक महान और व्यापक है, फिर भी कहानी में आकर्षण और सुगमता अधिक है।

(ख) कहानी के शिल्पविकास की मान्यता :

पिछले पृष्ठों में कहानी-कला के इतने व्यापक और विस्तृत अध्ययन से हम जिन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं, वे ही निष्कर्ष कहानी-कला के उन समस्त मूल तत्वों से सम्बन्धित हैं, जो कहानी के शिल्प-विकास की विशिष्ट मान्यताएँ हैं।

मानव-जीवन में कहानी का आदि स्थान है। ज्योंही मनुष्य को बोलना आया होगा, उसी क्षण से किसी-न-किसी रूप में कथा-कहानी का आरम्भ हुआ होगा। कौतूहल और जिज्ञासा, अर्थात् क्यों, कैसे की स्वाभाविक प्रवृत्ति ने इसके जन्म में इतनी बलवती प्रेरणा दी होगी कि साहित्य के इस माध्यम ने बहुत ही शीघ्र मानव-समाज को अपने आकर्षण और अनिवार्यता की सीमा में बाँध लिया होगा। कौतूहल और जिज्ञासा से परिपूर्ण कथा-सूत्र जब अपने रूप-विधान में बहुत विस्तृत और अनेक कार्य-व्यापारों के साथ निर्मित हुआ, तब इससे कथा, आख्यान और लम्बी-लम्बी कहानियों की सृष्टि हुई। इसके आधार पर कहीं प्रबन्ध-काव्य रचे गए, कहीं इसके मेरुदंड पर

नाटक और नीति-ग्रन्थ प्रस्तुत हुए । इससे कहीं धर्मोपदेश दिए गए, कहीं दार्शनिक तत्वों के निरूपण और कहीं इसके माध्यम से विशुद्ध मनोरंजन उपस्थित हुए ।

ज्यों-ज्यों मनोरंजन की वृत्तियाँ बढ़ती गयीं और आधुनिक जीवन में द्रुत-गामिता आती गयी त्यों-त्यों कहानी में निश्चित शिल्पविधि का विकास होता गया । इसकी संवेदनात्मक सीमा, रूप और शिल्पविधान में उत्तरोत्तर पश्चिम की कहानी-कला के अनुरूप, गठन और मंजाव आता गया । इसकी संवेदना में पहले जीवन की एक लम्बी कथा आई, फिर धीरे-धीरे सीमा संकुचित हुई, और इसमें केवल जीवन की कुछ विशिष्ट घटनाएं आईं और उनके प्रकाश में मानव-जीवन की व्याख्या हुई । इसके उपरान्त नित्यप्रति के जीवन और उसकी अलग-अलग समस्याओं में से केवल एक समस्या, समस्या का भी एक अंग और मूल घटना के आधार पर कहानी का निर्माण होने लगा । फिर शीघ्र ही विकास-क्रम से इसमें मनोविज्ञान का प्रवेश हुआ और इसके संविधान में अनुभूतियों की प्रेरणा प्रधान हुई ।

अध्ययन की दृष्टि से कहानी-कला के उक्त समस्त विकास-क्रमों में, सौंदर्य और सत्य-दर्शन ही इस कला का चरम लक्ष्य रहा है । इस लक्ष्य की पूर्ति के साधन में एक ओर शिल्प-विधान में उत्तरोत्तर विकास होता चला आ रहा है, तथा दूसरी ओर कहानी-कला जीवन के अधिक-से-अधिक समीप आती जा रही है और अपनी संवेद-नात्मक सीमा में जीवन के विविध समस्याओं तथा अनेक दायित्वों को समेटती जा रही है । विशुद्ध भाव-पक्ष की दिशा में कहानी-कला का यह विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर जा रहा है । बाह्य समस्याओं से आन्तरिक समस्याओं के चित्रण और निदान प्रस्तुत करने में कहानी-कला अग्रसर होती जा रही है ।

विकास-युग में, अर्थात् प्रेमचन्द और 'प्रसाद' की कहानी-कला में अपेक्षाकृत जीवन, जगत, बाह्य परिस्थितियाँ, बाह्य समस्याएँ और व्यापक रूप से जीवन अपने बहिरङ्ग-रूप में प्रतिपादित हुआ और जीवन का व्यावहारिक संतुलन उनकी विषय-सीमा में प्रतिष्ठित हुआ और जीवन के विविध अंगों पर संवेदनात्मक दृष्टि डालना उनकी कहानी-कला का चरम लक्ष्य निश्चित हुआ । उस युग में समकालीन सामाजिक-राजनीतिक कुरीतियों के प्रति सुधार का उत्कट आग्रह तथा यथार्थ समस्याओं के सम्मुख आदर्श की प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय जागरण का जोश, कहानी-कला की विशिष्ट मान्यताएँ बनीं । कथा-शिल्प की दृष्टि से घटना का प्राधान्य, इतिवृत्त का स्पष्ट आकार और शिल्पविधान की स्पष्टता और सुगमता का प्राधान्य रहा ।

लेकिन इसके उपरान्त अर्थात् संक्रांति-युग में हिन्दी कहानी-कला अपूर्व गति से नया रूप ग्रहण करने लगी । वस्तु और विधान दोनों की दृष्टि से उसने नयी दिशाओं में फैलना आरम्भ किया । इसके मूलतः दो कारण थे—प्रथम, इसमें हिन्दी कहानी-

कला का अमरीकी, फ्रांसीसी, अंग्रेजी और रूसी कहानी-कला से सीधा संपर्क; द्वितीय, मनोविज्ञान की उन्नति और उससे पायी हुई विश्लेषण-पद्धति का अनुसरण। फलतः इस युग में आकर कहानी की मान्यताओं में आमूल परिवर्तन हुए। इस युग के प्रतिनिधि कहानी-लेखकों की कला में सुगठित घटनाक्रम, प्रभावोत्पादक स्थिति तथा सरल साधारण स्पष्ट चरित्र के लिए कोई विशेष आग्रह नहीं रह गया। जीवन की एक द्रुत झाँकी; स्वभाव, चरित्र या मनःस्थिति को एकाएक आलोकित कर देने वाली समस्या या घटना को ही आधुनिक कहानीकार अपनी कला का उपजीव्य बनाता है। स्पष्ट शब्दों में कहानी-कला का मेरुदण्ड व्यक्ति अथवा चरित्र हो गया है। मानव-मन कितना जटिल, उसके कर्म की अन्तःप्रेरणाएँ किस प्रकार चेतन-अवचेतन के सामंजस्य से दुर्बोध और रहस्यमय हो गयी हैं, इस संवेदना की व्यापकता कहानी-कला में होती जा रही है। इस प्रकार चरित्र के इन रूपों को पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए कहानी-कला में नये-नये रूपविधानों, शिल्पविधानों के विकास हुए। चरित्र की अन्तःप्रेरणाओं तथा मानव-मन की जटिलताओं को सामान्य शिल्पविधानों में न बाँध सकने के कारण, कहानी-कला में रेखाचित्र, सूचनिका, झाँकी, व्यंग चित्र, अध्ययन-चित्र, संस्मरण, स्केच आदि रूप-विधानों की अवतारणा हुई।

आधुनिक कहानी-कला में मनोविश्लेषण तथा समाजशास्त्र के अन्तर्गत मार्क्सीय मत, यौनवाद आदि की प्रेरणाओं ने इसके लक्ष्य तथा अनुभूति में महान् अन्तर उपस्थित किया। विकास-युग के कहानीकार का लक्ष्य, प्रतिपाद्य विषय और उसकी संवेदना स्पष्ट होती थी, क्योंकि उनकी नैतिक मान्यताएँ, आदर्श सुधार का दृष्टिकोण निश्चित होता था।

लेकिन आधुनिक कहानीकार की दृष्टि अनेक अर्थों में व्यापक हुई फलतः उसकी कहानी-कला में व्यक्ति, समाज तथा अन्य मानवीय सम्बन्धों पर निश्चित विचार, स्पष्ट सहानुभूति तथा निर्णय देने की दृष्टि उलझ गई, उसकी लक्ष्यात्मक दृष्टि में झिझक उत्पन्न हुई। इसके स्थान पर कहानी में आत्मविश्लेषण, आत्मचिन्तन और मानसिक ऊहापोह बढ़ा और कहानी अपने समग्र रूप में अस्पष्ट और अस्थायी अवस्था से पूर्ण होने लगी अर्थात् आधुनिक कहानी बौद्धिक हो गई। दूसरी ओर कहानियों में अनेक मतवादों, मूल्यों और पद्धतियों के आरोप होने लगे। इस तरह हिन्दी कहानी-कला प्रेमचन्द, 'प्रसाद' के विकास-युग से विकसित होकर आधुनिक युग में आश्चर्यजनक प्रगति-बिन्दु पर पहुँची।

परिशिष्ट—१

(क) कहानी-शिल्प में कथानक का ह्रास

प्राचीन काल में, नियमित समाज-व्यवस्थाओं में जब मनुष्य को सुख-शान्ति से अर्जित अवकाश मिला और उस अवकाश को जब वह मनोरंजक साहित्य के सहारे व्यतीत करने चला, तब उसे ऐसी सरल कथाएं अपेक्षित हुईं, जिनमें उसे न अपनी बुद्धि लगानी पड़ती थी, न विशेष स्मरण-शक्ति, बस सहज कौतूहल के सहारे वह दैवी-अदैवी, स्वाभाविक-अस्वाभाविक घटनाओं और कार्य-व्यापारों के इतिवृत्त के पंखों पर उड़ जाना चाहता था, लेकिन ज्यों-ज्यों मनुष्य के वही अवकाश के क्षण सीमित हो चले और जीवन संघर्षमय होने लगा, तब कलाकार ने कथा से आगे बढ़कर उसे कहानी-जैसी सुगठित कलात्मक वस्तु दी, जिसमें कथा को उसने बुद्धि-तत्व और शिल्प-चातुर्य से परिष्कृत करके कथानक बना दिया।

इस तरह मानव ज्यों-ज्यों विकास करता गया, कहानीकार उसके अनुरूप ही अपने कथानक निर्माण में उत्तरोत्तर प्रयोग करता गया और यह प्रयोग भावभूमि की दृष्टि से स्थूल से सूक्ष्म की ओर और शिल्प की दृष्टि से क्रमशः घटना-क्रम के ह्रास की ओर बढ़ता गया।

हिन्दी-कहानियों के विकास के प्रथम चरण से लेकर आज तक की कहानी प्रगति को देखने से कथा-तत्व में यह ह्रास स्पष्ट होता चला गया है, लेकिन वह ह्रास भौतिक तत्वों के आधार से कहा गया है, विधानात्मक आधार से नहीं। शिल्प-विधि की दृष्टि से कथानक का भौतिक ह्रास कहानी-कला का उत्थान है, जहाँ कहानी अपने कथानक तत्व में बाह्य उपकरणों से आगे बढ़कर आन्तरिक उपकरणों तथा स्थूल से सूक्ष्म तत्वों को क्रमशः अपना उपजीव्य बनाती चलती है।

हिन्दी-कहानियों में कथानक का यह ह्रास बहुत ही क्रमिक और कुछ निश्चित विधानात्मक अवस्थाओं और कारणों के फलस्वरूप हुआ है।

प्रेमचन्द और 'प्रसाद' के पूर्व हिन्दी की जितनी प्रारम्भिक कहानियाँ 'सरस्वती' के माध्यम से आईं, वे सब कथानक-प्रधान कहानियाँ हैं। इसका निश्चित कारण है। वस्तुतः इन कहानियों के कथानकों पर एक ओर प्रायः शेक्सपियर के सम्पूर्ण नाटकों के इतिवृत्त की छाया पड़ी थी और दूसरी ओर इनके निर्माण संस्कृत के नाटकों और लोक-

कथाओं की कथावस्तु के आधार पर हो रहे थे। इसके उदाहरण में क्रमशः किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती', गिरजादत्त वाजपेयी का 'पति का पवित्र प्रेम', केशवप्रसाद सिंह-कृत 'चन्द्र-लोक की यात्रा', लाला पार्वतीनन्दन-कृत 'प्रेम का फुआरा' आदि कहानियों के कथानक लिये जा सकते हैं। शैली, विस्तार और अपने सम्पूर्ण रूप-विधान में उक्त कहानियों के कथानक कथा के समीप चले गए हैं। रामचन्द्र शुक्ल-कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानी का कथानक, कथा-तत्व की इतिवृत्तात्मकता, विस्तार और सम्पूर्णता का सबसे सुन्दर उदाहरण है। दैवी संयोग, आकस्मिकता और आश्चर्यजनक भाग्य-व्यापारों के बीच से कथानक निर्मित हुआ है और इस निर्माण-सूत्र में तीन लम्बी-लम्बी कथाएं (प्रथम, स्वयं कहानीकार के मुख से; द्वितीय, कहानी के नायक के मुख से; तृतीय, कहानी की नायिका के मुख से) एक में गुँथकर आई हैं। देश-काल-परिस्थिति में इस लम्बे कथानक का विस्तार क्रमशः गाँव के खण्डहर से लेकर बनारस तक, फिर बनारस से कलकत्ता तक, ग्यारह वर्ष की अवधि तक घूमता हुआ एक दैवी-संयोग बिन्दु पर समाप्त होता है।

कथानक का यही रूप-विधान आगे 'सरस्वती' के १९०९ तक के अंकों में प्रकाशित कहानियों; जैसे बंग-महिला-कृत 'कुम्भ में छोटी बहू', चतुर्वेदी-कृत 'भूल-भुलैया', लक्ष्मीधर वाजपेयी-कृत 'तीक्ष्ण-छुरी', बंगमहिला-कृत 'दुलाईवाली', वृन्दावन लाल वर्मा-कृत 'राखीबन्द भाई' और 'तातार और एक राजपूत' आदि में मिलता रहता है।

उक्त समस्त कहानियों के कथानक कथा की सी इतिवृत्तात्मकता, विस्तार और रूप-विधान लेकर इसीलिए आये हैं, क्योंकि इस प्रारम्भिक विकास-काल में वर्णनात्मकता के पुट से घटनाओं का विस्तार, संयोग और अप्रत्याशित कार्य-व्यापारों की प्रतिष्ठा में निर्मित कथा-सूत्र ही में पाठक को आनन्द मिलता था। उसे कहीं से भी कथा-सूत्र के साथ चरित्र को देखने या आँकने की अपेक्षा नहीं थी। एक तरह से कथा-निर्माण की प्रक्रिया में चरित्र यों ही आ जाते थे, उनकी कोई भी व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा नहीं थी। अस्तु, इस काल की कहानियों में मुख्यता केवल कथानकों की थी, चरित्र की नहीं।

इसके उपरान्त कहानी-क्षेत्र में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प्रेमचन्द और 'प्रसाद' का आविर्भाव होता है।

यहाँ सर्वप्रथम कथानक और चरित्र की समान विशेषता मिलती है। यहाँ यह स्पष्ट हुआ कि बिना चरित्र-स्थापना के कथानक का सजीव निर्माण ही नहीं हो सकता। यहाँ यह भी पता चला कि कथा-सूत्र में घटने वाली समस्त घटनाएँ, कार्य-व्यापार; चाहे संयोग या अप्रत्याशित ढंग से ही क्यों न सही, यों अपने-आप वर्णनात्मकता के

रहे थे। इसके उदाहरण में क्रमशः किशोरीलाल
जपेयी का 'पति का पवित्र प्रेम', केशवप्रसाद
पार्वतीनन्दन-कृत 'प्रेम का फुआरा' आदि कहा-
शैली, विस्तार और अपने सम्पूर्ण रूप-विधान में
समीप चले गए हैं। रामचन्द्र शुक्ल-कृत 'ग्यारह
कथा-तत्व की इतिवृत्तात्मकता, विस्तार और
। दैवी संयोग, आकस्मिकता और आश्चर्यजनक
मित हुआ है और इस निर्माण-सूत्र में तीन लम्बी-
के मुख से; द्वितीय, कहानी के नायक के मुख
से) एक में गुँथकर आई हैं। देश-काल-परि-
तार क्रमशः गाँव के खण्डहर से लेकर बनारस
ारह वर्ष की अवधि तक घूमता हुआ एक दैवी-

आगे 'सरस्वती' के १९०९ तक के अंकों में
कृत 'कुम्भ में छोटी बहू', चतुर्वेदी-कृत 'भूल-
ण-छुरी', बंगमहिला-कृत 'दुलाईवाली', वृन्दावन
र 'तातार और एक राजपूत' आदि में मिलता

नक कथा की सी इतिवृत्तात्मकता, विस्तार और
क्योंकि इस प्रारम्भिक विकास-काल में वर्णना-
तार, संयोग और अप्रत्याशित कार्य-व्यापारों की
ाठक को आनन्द मिलता था। उसे कहीं से भी
आँकने की अपेक्षा नहीं थी। एक तरह से कथा-
आ जाते थे, उनकी कोई भी व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा
नियों में मुख्यता केवल कथानकों की थी, चरित्र

ं चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प्रेमचन्द और 'प्रसाद' का

चरित्र को समान विशेषता मिलती है। यहाँ यह
के कथानक का सजीव निर्माण ही नहीं हो सकता।
में घटने वाली समस्त घटनाएँ, कार्य-व्यापार;
ही क्यों न सही, वो अपने-आप वर्णनात्मकता के

माध्यम से नहीं होते चलते, वरन् चरित्र स्वयं सामने आते हैं, कार्य-सूत्र अपने हाथों लेते हैं तथा जीवन-संग्राम और काल-चक्रों से थपेड़े खाते हुए अपने अद्भुत किन्तु अत्यन्त मानवीय कथानक अपने-आप निर्मित कर जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि गुलेरी-कृत 'उसने कहा था', 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा' तथा 'प्रसाद' के प्रथम उत्थान की कहानियाँ, 'सिकन्दर की शपथ', 'जहानारा', 'अशोक', 'चित्तौर उद्धार' और प्रेमचंद के प्रथम उत्थान की कहानियाँ 'रानी सारन्धा', 'पाप का अग्निकुण्ड', 'नमक का दरोगा', 'पंच परमेश्वर' और 'बड़े घर की बेटी' आदि अपने कथा-विस्तार में पहले से कुछ कम हैं, बल्कि पहले की अपेक्षा इन कहानियों के कथानक अधिक लम्बे अधिक विस्तृत और अधिक देश-काल परिस्थिति के साथ आए हैं, लेकिन इन कथानकों में पूर्ववर्ती कथा के तत्व (दैवी संयोग, अस्वाभाविकता, केवल वर्णनात्मकता) नहीं हैं अर्थात् यहाँ कथानक कथा तत्व के लिए इतने विस्तृत नहीं हुए हैं, वरन् चरित्र-चित्रण के लिए कथानक को इतने विस्तार में जाना पड़ा है। 'उसने कहा था' के लहनासिंह और सूबेदारनी, जो बचपन में एक बार बम्बूकार्ट वालों के बीच में मिले थे, उनके सम्पूर्ण चरित्र-चित्रण के लिए कथानक को बम्बूकार्ट से फ्रांस तक खिंचना होता है, बचपन से युवावस्था के पच्चीस वर्षों के अन्तराल को लाँघना पड़ता है। इस तरह यहाँ चरित्र के सम्पूर्ण जीवन को बाँधने में तथा उसके चरित्र आँकने में कथानक को इतना विस्तृत होना पड़ा है, केवल कथा-सूत्र के मनोरंजक विस्तार के लिए नहीं।

प्रेमचंद के प्रथम उत्थान की कहानियाँ, जो क्रमशः 'सप्त सरोज', 'नवनिधि' और 'प्रेम पचीसी' में आई हैं, इनके कथानकों की लम्बाई और विस्तार पर तो आज आसानी से उपन्यास लिखे जा सकते हैं। एक-एक कथानक के निर्माण और विकास में बीसों मोड़ तैयार किये गए हैं, लेकिन फिर भी इन कथानकों की लम्बाई घटना और कार्य-व्यापारों का इतिवृत्त नहीं, बल्कि विस्तृत जीवन की भावभूमि के खाके अधिक हैं। यहाँ कथानकों का धरातल, विषय के एक प्रसंग के स्थान पर वह पूरा विषय होता था, जिसमें न जाने कितनी अन्य संवेदनाएँ और जीवन की इकाइयाँ आ जाती थीं। फलतः कथानक स्वभावतः लम्बे और विस्तृत हो जाते थे, क्योंकि इनकी लड़ी में प्रेमचंद एक समूचे परिवार एक वंश या व्यक्ति के जीवन का पूरा भाग गूँथते थे। यही कारण है कि प्रेमचंद को उक्त संग्रह की कहानियों के मूल कथानक के साथ सहायक कथानक भी कहीं-कहीं जोड़ना पड़ता था।

'प्रसाद' की 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की उन कहानियों में जो ऐतिहासिक इतिवृत्त से निर्मित हुई हैं, कथानक का रूप-विधान प्रायः प्रेमचंद-सा ही है, लेकिन 'प्रसाद' की इस चरण की वे कहानियाँ जो कल्पना, भावुकता की भावभूमि से निर्मित हुई हैं; जैसे 'प्रलय' 'प्रतिभा' 'दुःस्वप्न' और 'कलावती की शिक्षा' आदि, इनके कथा-

नक अत्यन्त छोटे और सूक्ष्मता की ओर बढ़े हैं। इन कथानकों में सम्पूर्ण जीवन न लेकर जीवन का एक प्रसंग लिया गया है और उन प्रसंगों में भी एक विशिष्ट भावना का ही प्राधान्य है, घटना या कार्य-व्यापार का नहीं।

प्रेमचंद के द्वितीय उत्थान-काल के 'प्रेम प्रसून' और 'प्रेम द्वादशी' आदि संग्रह की कहानियों के कथानक छोटे हुए हैं। अब कथानक में सम्पूर्ण जीवन के स्थान पर जीवन का एक अंश लिया जाने लगा है और उस अंश में भी अब अधिक ध्यान चरित्र पर दिया जाने लगा है। कथानक में अब उतने ही मोड़, उतने ही कार्य-व्यापार और घटनाएँ आने लगी हैं, जिनसे चरित्र के जीवन का एक विशिष्ट अंश प्रकाशित हो जाय।

और इस काल में आकर कथानक के छोटे होने के पीछे चरित्र पर मनोविज्ञान की सफल और जागरूक प्रतिष्ठा कारण-स्वरूप है, प्रेरणा-रूप है।

प्रेचचंद की 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'मैकू', 'वज्रपात', और 'डिक्री के रुपये' आदि कहानियों के कथानक उतनी ही सीमा में हैं, जितने से कहानी की मूल संवेदना और चरित्र का विशेष मनोविज्ञान सम्बन्धित है। अतएव यहाँ सहायक कथानक अपने-आप नष्ट हो गए हैं। कथानकों में कहीं भी द्विपक्षता नहीं, उसके स्थान पर यहाँ संकेतों, व्याख्याओं और कथोपकथनों से काम लिया गया है। यहाँ कथानकों में जीवन की एक इकाई, एक संवेदना और एक प्रसंग लिया गया है, अस्तु, कथानक छोटे हो गए हैं और उनके स्थान पर चरित्र उभर आए हैं। 'आत्माराम', 'बूढ़ी काकी', 'मैकू', 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि कहानियों के कथानक हमें भूलने लगे हैं, लेकिन सुनार आत्माराम, भूखी बूढ़ी काकी, और शतरंज मीर और मिर्जा साहब, हमें याद करने लगे हैं और इस याद के पीछे उनके जीवन के एक पक्ष का मनोविज्ञान हमें हरदम अभिभूत किये रहता है।

'प्रसाद' के द्वितीय उत्थान-काल की कहानियाँ 'आकाश दीप' की कहानियाँ है। 'आकाश दीप', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'चूड़ी वाली' और 'बिसाती' कहानियों के कथानक लम्बे अवश्य हैं, लेकिन नाटकीयता के साथ व्यंजना लिये हुए हैं। दूसरी ओर 'हिमालय के पथिक', 'प्रतिध्वनि', 'बैरागी', 'अपराधी' और 'रूप की छाया' आदि कहानियों के कथानक अत्यन्त छोटे और प्रासंगिक हुए हैं।

'आकाश दीप', 'चूड़ी वाली' और 'बिसाती' में मनोविज्ञान के आधार पर अन्तर्द्वन्द्व और मानवीय संघर्ष की प्रतिष्ठा हुई है और इन कहानियों के कथानक इसी मनोवैज्ञानिक संघर्ष के प्रतिरूप हैं, इन कथानकों का अपना कोई मूल रूप नहीं। यहाँ कथानकों में जीवन की लम्बी-लम्बी संवेदनाएँ और इतिवृत्त को एक छोटे-से कथानक-सूत्र में समेट लिया गया है और उनमें कौतूहल का चमत्कार पैदा कर दिया गया है।

'प्रसाद' ने यहाँ कथानक-निर्मा
इस तन्त्र-निर्माण में उन्होंने अ
सहायता ली है।

कथोपकथनों से कहानी
उपरान्त वस्तुस्थिति का वर्णन
करना; फिर कथोपकथनों द्वारा
से कथानक को चरमसीमा प
'प्रसाद' के तृतीय उत्थान-काल
'दासी', 'गुण्डा' और 'सालवती

तृतीय उत्थान-काल
कलात्मक हो गया है। इसके मु

१—किसी व्यक्ति के या समस्य
'गुल्ली डण्डा' और 'मिस
२—व्यक्ति के बाह्य संघर्ष और
लम्बे भाग को धरातल ब
आदि।
३—मनोविज्ञान की अनुभूति के
और 'पूस की रात' आदि

तीसरे धरातल के कथा
जैसे कोई मनोवैज्ञानिक बिन्दु ही
बनाता गया हो।

प्रेमचन्द और प्रसाद-युग
कुमार और अज्ञेय कला की दृ
आते हैं। इनके हाथों में कथान
हुए। यहाँ उनकी कला का मूल
इन्होंने कथानक के प्रयोगों में अ

क. मनोविज्ञान के विकास में उ
ख. व्यक्तिगत चरित्रों की उद्भा
अन्तर्मुखी होना।

जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द और
अपने विधान को स्थूल उपकरणों
से अन्तर लाने का आग्रह पूर्ण

'प्रसाद' ने यहाँ कथानक-निर्माण में एक नये कथानक-तन्त्र की सहायता ली है और इस तन्त्र-निर्माण में उन्होंने अपनी नाटकीयता, व्यंजना और सन्दर्भ की सामूहिक सहायता ली है।

कथोपकथनों से कहानी आरम्भ करके कथानक में द्वन्द्व पैदा करना, इसके उपरान्त वस्तुस्थिति को वर्णन या व्याख्या द्वारा स्पष्ट न करके संकेतों द्वारा स्पष्ट करना; फिर कथोपकथनों द्वारा अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति और अन्त में सांकेतिक वर्णनों से कथानक को चरमसीमा पर सहसा छोड़ देना—कथानक की यही वस्तुस्थिति 'प्रसाद' के तृतीय उत्थान-काल की कहानियों; जैसे 'पुरस्कार', 'आँधी', 'नीरा', 'दासी', 'गुण्डा' और 'सालवती' आदि में भी पाई जाती है।

तृतीय उत्थान-काल की कहानियों में कथानक का रूप-विधान और भी कलात्मक हो गया है। इसके मुख्यतः तीन धरातल हैं—

१—किसी व्यक्ति के या समस्या के केवल एक पक्ष को धरातल मानकर; जैसे 'कुसुम', 'गुल्ली डण्डा' और 'मिस पद्मा' आदि।

२—व्यक्ति के बाह्य संघर्ष और आन्तरिक मनोविज्ञान के प्रकाश में उसके जीवन के लम्बे भाग को धरातल बनाकर; जैसे कब्र', 'अलग्योझा' और 'नया विवाह' आदि।

३—मनोविज्ञान की अनुभूति के धरातल से निर्मित कथानक; जैसे 'कफन', 'मनोवृत्ति' और 'पूस की रात' आदि।

तीसरे धरातल के कथानक अत्यन्त छोटे और व्यंजनात्मक हैं। यहाँ लगता है, जैसे कोई मनोवैज्ञानिक बिन्दु ही कहानी-भर में कथानक के नाम पर सूक्ष्म-सी रेखा बनाता गया हो।

प्रेमचन्द और प्रसाद-युग के उपरान्त हिन्दी कहानियों के विकास-क्रम में जैनेन्द्र-कुमार और अज्ञेय कला की दृष्टि से दो महान् क्रान्तिकारी और सफल कहानीकार आते हैं। इनके हाथों मे कथानक के रूप-निर्माण और शैली में आश्चर्यजनक प्रयोग हुए। यहाँ उनकी कला का मूल केन्द्र चरित्र बना और इसी चरित्र के मेरुदण्ड से इन्होंने कथानक के प्रयोगों में अपूर्व उद्भावनाएँ कीं। मुख्यतः इसके दो कारण थे—

क. मनोविज्ञान के विकास से उपलब्ध मनोविश्लेषण की पद्धति का प्रयोग होना।

ख. व्यक्तिगत चरित्रों की उद्भावना और अपने व्यक्तित्व में उनका अधिक-से-अधिक अन्तर्मुखी होना।

जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द और प्रसाद के कथानक-विधान से बहुत ही आगे बढ़कर अपने विधान को स्थूल उपकरणों से सूक्ष्मता की ओर बढ़ाया। इसमें सर्वप्रथम बाह्य से अन्तर लाने का आग्रह पूर्ण सफलता से स्पष्ट है। यही कारण है कि जैनेन्द्र की

कहानी-कला में कथानक-विधान के नये-नये कौशल, नये-नये प्रयोग हुए हैं और इनमें उनके आश्चर्यजनक हस्तलाघव का परिचय मिला है।

जैनेन्द्र की समस्त कहानियों का मेरुदण्ड चरित्र है और उस चरित्र की प्रतिष्ठा उन्होंने मनोविज्ञान पर की है। इस दृष्टि से हम उनकी समस्त कहानियों को चार भागों में बाँट सकते हैं :

प्रथम : जो व्यक्ति के जीवन के एक लम्बे पक्ष को लेकर लिखी गई हैं; जैसे 'मास्टर जी'।

द्वितीय : जो एक रात या कुछ घण्टों के जीवन-चक्र के आधार पर निर्मित होकर चरित्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन उपस्थित करती हैं, जैसे 'एक रात'।

तृतीय : जो चरित्र के विशिष्ट क्षेत्रों के आधार पर लिखी गई हैं और वे उसके जीवन के किन्हीं विशिष्ट चित्रों की द्रुत झाँकी उपस्थित करती हैं; जैसे 'क्या हो'।

चतुर्थ : जो मात्र चरित्र-विश्लेषण और अध्ययन के आधार पर लिखी गई हैं; जैसे 'मित्र विद्याधर'।

प्रथम प्रकार में कथानक सुस्पष्ट तथा अपने निश्चित इतिवृत्त के साथ आया है। यहाँ कथानक का निर्माण चरित्र के विकास-क्रमों और घटना-चक्रों के माध्यम से हुआ है। दूसरे प्रकार में कथानक अत्यन्त बौद्धिक धरातल से निर्मित हुआ है। इसके विकास और निर्माण में बाह्य कार्यव्यापारों की अपेक्षा मानसिक सूत्रों का सहारा लिया गया है। अतएव ऐसे कथानक अत्यन्त सूक्ष्म हो गए हैं। इन्हें हृदयंगम करने के लिए पाठक को भी पूर्ण जागरूक, बौद्धिक और सशक्त रहना होगा। तीसरे प्रकार के कथानक अपेक्षाकृत और सूक्ष्म तत्वों से निर्मित हुए हैं। वे कुछ क्षेत्रों की मनःस्थिति की आधार-शिला से मनोद्वेगों, घात-प्रतिघातों के साधन से व्यक्त हुए हैं। ये नाम-मात्र के कथानक हैं। वस्तुतः ऐसी कहानियों में, जैसे, कोई भाव ही फैलकर स्वयं कहानी बन गया हो और उसमें कथातत्व, चरित्र आदि इस तरह संकुचित हो गए हों कि इन सब तत्वों की अपनी स्वतंत्र सत्ता ही एक-दूसरे में खो गई हो। 'क्या हो' में सब-कुछ स्मृति-चिन्तन द्वारा ही किया गया है, लेकिन फिर भी कथानक-तत्व इतने सूक्ष्म स्वरूप में होता हुआ भी अपने में इतना वेग रखता है कि सम्पूर्ण कहानी, जैसे, किसी अग्नि-शिखा-सी प्रतीत होती हो, जो किसी तूफान की गति में जलती-जलती सहसा टूट जाती है। चौथे प्रकार में एक तरह से कथानक का पूर्ण ह्रास हो गया है, क्योंकि ये कहानियाँ चरित्र की आन्तरिकता के रेखा-चित्र हैं, फलतः यहाँ सूक्ष्म भावों, मनोविकारों को स्थूल कथानक में समेटा ही न जा सका है।

कुछ अर्थों में अज्ञेय इस दिशा में जैनेन्द्र से भी आगे बढ़ गए हैं। यद्यपि यह सत्य है कि कथानक-विधान में सबसे पहले क्रान्ति जैनेन्द्र ने ही की है और इसमें प्रयोग

के अनेक मार्गों को सम्भावना उपस्थित की है; अज्ञेय ने मुख्यतः व्यक्तिगत पहलू को अपनी कला का केन्द्र बनाकर अपनी सब तरह की कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कहानियों की चार विभिन्न कोटियाँ हैं—पहली कोटि में, सामाजिक आलोचना-सम्बन्धी कहानियाँ हैं; दूसरी में राजनीतिक बन्दी जीवन-सम्बन्धी, तृतीय—चरित्र-विश्लेषण-सम्बन्धी, और चतुर्थ—प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्षों के अध्ययन-सम्बन्धी। अज्ञेय ने कथा-विधान में नूतन प्रयोग अपनी इन्हीं तृतीय और चतुर्थ कोटि की कहानियों में किया है।

अगर चरित्र संश्लिष्ट है, उसकी मनःस्थिति में गूढ़ ग्रंथियाँ हैं, तो कहानी में ऐसे चरित्रों को बाँधने के लिए उन कथानकों की रचना हुई है, जिनके विधान में उस चरित्र से सम्बन्धित अनेक कर्म-प्रेरणाओं के विवरण दिये गये हैं। 'पुरुष का भाग्य' में एक ऐसे चरित्र का विश्लेषण किया गया है जो राह चलते-चलते इस नगण्य संयोग से काँपकर गिरने लगी थी कि उसका पैर एक बच्चे के गीले पैर की छाप पर पड़ गया था।

प्रतीकों के सहारे मानसिक संघर्षों के चित्र प्रस्तुत करने वाली कहानियों में भी कथानक-विधान दो ढंग से प्रयुक्त हुये हैं :

प्रथम : व्यक्ति के आत्म-चिन्तन, तथा उससे सम्बन्धित भूत, वर्तमान और भविष्य की अनेक स्फुट संवेदनाओं के तादात्म्य से; जैसे 'पठार का धीरज', 'सिगनेलर' और 'नम्बर दस' के कथानक।

द्वितीय : चिन्तन और छोटी-छोटी घटनाओं के मेल से; जैसे 'साँप'', 'कोठरी की बात' और 'पुलिस की सीटी' आदि के कथानक।

कथानक-विधान का यही स्वरूप इलाचन्द्र जोशी की उन कहानियों में सफलता से मिलता है जो व्यक्ति के अहं-विश्लेषण और अहं की एकान्तिकता पर निर्मम प्रहार के लक्ष्य से लिखी गई हैं; जैसे 'मैं', 'मिस एल्किन्स', 'रात्रिचर', 'पागल की सफाई' और 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ'। इन कहानियों में कथानक अपने व्यंजनात्मक रूप में केवल भावों, मनोद्वेगों के विश्लेषण के बीच में चलता है। 'मैं' में तो कथानक ही नहीं है, बस केवल आत्म-विश्लेषण के आधार पर चिन्तन की एक स्फुट झाँकी है। इसे हम कहानी न कहकर निबन्ध भी कह सकते हैं।

इस काल में जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी के अतिरिक्त उपेन्द्रनाथ 'अश्क' और यशपाल की कुछ कहानियों के कथातत्व में यही सूक्ष्मता सफलता से आई है। 'अश्क' की दो कहानियाँ 'पिंजरा' और 'पत्नी-व्रत' में कथा-सूत्र अपनी इतिवृत्तात्मकता को एकदम से छोड़कर टुकड़ों में बँटा हुआ है; जिसे पाठक अपनी ओर से जोड़कर कथानक की एकसूत्रता को समझ सकता है, सीधे कहानी से नहीं।

युग ज्यों-ज्यों बौद्धिक होता जा रहा है, चरित्र ज्यों-ज्यों संश्लिष्ट, अन्तर्मुखी और दुरूह होते जा रहे हैं, हमारे चेतन और अवचेतन से अनुपात न होने के कारण ज्यों-ज्यों मानव-मन अज्ञेय होता जा रहा है, उसी के अनुरूप आज का कहानीकार कथानक को पीछे छोड़ता हुआ केवल चरित्र विश्लेषण, और अध्ययन के लिए दौड़ रहा है। इसके फलस्वरूप कथानक अपने मूल रूप में नष्ट होता हुआ निम्नलिखित रूपों में देखने को मिलता जा रहा है :

(१) बिखरे हुए टुकड़ों के रूप में कथा-सूत्र।

(२) सांकेतिक और व्यंजना के रूप में।

(३) कहानी जहाँ समाप्त होती है, वहाँ से कथानक आरम्भ होता है।

(४) कहानी की चरमसीमा पर कथा-सूत्र स्पष्ट होता है।

(५) कथानक कहानी में न रहकर पाठक को अपने मन में उसकी कल्पना करते चलना पड़ता है।

कथानक के उक्त पाँच रूपों में टूटकर बिखर जाने के पीछे प्रायः इतने ही कारण और स्थितियाँ भी गिनाई जा सकती हैं। आज कहानी-निर्माण का समूचा और एक-मात्र सूत्र चरित्र होने के नाते, कहानी की शिल्प-रेखायें अत्यन्त कोमल, पर अपेक्षाकृत अंतर्मुखी हो गयी हैं। इस विधान का सबसे बड़ा प्रभाव कहानी के चरित्र पर पड़ा है। चरित्र जैसे निष्क्रिय हो गये हैं, फलतः कहानियों के पात्र प्रायः स्थिर होने लगे हैं। वे कार्यरत न होकर चिन्तनरत हो गये हैं। कहानी में जैसे न कोई घटना ही घटती है, न कार्य-व्यापार ही होते हैं और जो कुछ इस दिशा में होते भी हैं, सर्वथा चरित्र के मन में होते-घटते हैं।

कथा-सूत्र की इसी विशृङ्खलता के फलस्वरूप कहानी के विधान में अत्यधिक नये-नये प्रयोग हुए। कहानियाँ इससे अपने दृष्टिकोण और चरम परिणति में अस्पष्ट और रहस्यात्मक हुईं। इनमें निश्चित इतिवृत्त तथा स्पष्ट सहानुभूति के इस तरह ह्रास के कारण साधारण पाठकों के लिये कहानियाँ कठिन और दुर्बोध हुईं।

दूसरी कथा-धारा : स्पष्ट, सुबोध और सुगम

हिन्दी कहानियों में (विशेषकर १९४० से ५० के बीच) कथातत्व के ह्रास और उसकी अस्पष्टता तथा सूक्ष्मता के पीछे रचना की दृष्टि से मुख्यतः दो कारण कार्य कर रहे थे। जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी की उक्त तथ्य की कहानियाँ वस्तुतः कथाशिल्प की दिशा में प्रेमचन्द्र-युग की इतिवृत्तात्मक और सीधे ढंग की पद्धति के विरुद्ध विद्रोह लेकर आयी थीं। जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी की मुख्यतः प्रथम चरण की कहानियाँ इस रचना-शिल्प के विद्रोह के रूप में बहुत ही स्पष्टता से देखी जा सकती हैं।

इसके अतिरिक्त इस का
भी इसमें कार्यरत थी। इस दृ
स्वभावतः सांकेतिकता, सूक्ष्म अ
निश्चय ही उसे वह संक्रान्ति क
पद्धति खोजने में लगी थी और
थे। परन्तु उस संक्रान्ति-काल
प्राप्त हो गया तब उसकी रचन
जोशी आदि की परिवर्ती कहा

इससे भी विशेष बात य
विश्लेषण की पद्धति, सांकेतिक
तत्व को ग्रहण करते हुए कहा
जिसने वर्तमान हिंदी कहानी क

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'नि
कला-चमत्कार के गुण नहीं हैं
साथ सरलता और सुबोधता प्र
'निर्गुण' की कहानियों में सह

'खोज' कहानी-संग्रह
'खोज' से लेकर 'जिन्दगी' औ
भूमि से स्पष्ट है कि 'निर्गुण'
व्यापक और मानवीय है। इ
आधारित जितनी कहानियाँ
ग्राम्य चित्रण, गृहस्थ-जीवन,
जो कहानियाँ लिखी हैं उनके
लिया गया है। 'जिंदगी', 'वि
निधि कहानियाँ इसके उदाह

बिना किसी भूमिका
प्रवेश—ऐसा कि जो पाठक
आकर्षित कर ले, 'निर्गुण'
जीवन का अभाव, करुणा
उभारती है और उसके प्रा
रूपी शरीर के भीतर होती

इसके अतिरिक्त इस काल में मनोविज्ञान से प्राप्त मनोविश्लेषण की नई दृष्टि भी इसमें कार्यरत थी। इस दृष्टि से जीवन की अभिव्यक्ति और उसका मूल्यांकन स्वभावतः सांकेतिकता, सूक्ष्म अस्पष्ट चित्रों तथा प्रतीकात्मकता के सहारे किया गया। निश्चय ही उसे वह संक्रान्ति काल समझना चाहिये, जब हिन्दी कहानी नयी रचना-पद्धति खोजने में लगी थी और उनका अनुकरण उस काल में अन्य कहानीकार कर रहे थे। परन्तु उस संक्रान्ति-काल के बाद जब हिन्दी कहानी को अपना निश्चित रूप-शिल्प प्राप्त हो गया तब उसकी रचना में निखार और सुबोधता आयी है। अज्ञेय, जैनेन्द्र, जोशी आदि की परिवर्ती कहानियां इसके उदाहरण में हैं।

इससे भी विशेष बात यह कि उसी से आगे जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि के शिल्प, मनो-विश्लेषण की पद्धति, सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता के व्यावहारिक और कलात्मक तत्व को ग्रहण करते हुए कहानी और कथातत्व की दूसरी धारा का विकास हुआ, जिसने वर्तमान हिंदी कहानी को अधिक स्पष्ट, सुबोध और सुगम बनाया।

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानियों में अनावश्यक शिल्प-कौशल और कला-चमत्कार के गुण नहीं हैं। जितनी तटस्थता, जितनी सूक्ष्म दृष्टि और साथ ही साथ सरलता और सुबोधता प्रेमचन्द की कहानियों में प्राप्त है, उसके विकास-सूत्र 'निर्गुण' की कहानियों में सहज ही प्राप्त हैं।

'खोज' कहानी-संग्रह की प्रतिनिधि कहानियों; जैसे 'अश्रु' 'अनुभव' और 'खोज' से लेकर 'जिन्दगी' और 'प्यार के भूखे' कहानी-संग्रहों की कहानियों के भाव-भूमि से स्पष्ट है कि 'निर्गुण' की संवेदना और भाव-क्षेत्र प्रेमचन्द की भांति कितना व्यापक और मानवीय है। इसमें भी मुख्यतः ग्रामीण जीवन तथा कसबे के जीवन पर आधारित जितनी कहानियां आयी हैं, वे वास्तव में सदा के लिये श्रेष्ठ बन पड़ी हैं। ग्राम्य चित्रण, गृहस्थ-जीवन, व्यक्ति और समाज इन सब जीवनस्तरों से 'निर्गुण' ने जो कहानियाँ लिखी हैं उनके केन्द्र बिन्दु में सर्वथा सामान्य मनुष्य के ही जीवन को लिया गया है। 'जिंदगी', 'तिवारी', 'छोटा डाक्टर' जैसी 'निर्गुण' की श्रेष्ठ और प्रति-निधि कहानियाँ इसके उदाहरण में हैं।

बिना किसी भूमिका, विश्लेषण तथा प्रस्तावना के कहानी में सीधा-स्पष्ट प्रवेश—ऐसा कि जो पाठक की सारी संवेदना और ध्यान को अपनी ओर बरबस आकर्षित कर ले, 'निर्गुण' की कहानी-शैली की परम विशेषता है। हमारे समस्त जीवन का अभाव, करुणा और व्यथा को 'निर्गुण' की लेखनी चरित्र के मूलाधार से उभारती है और उसके प्राणतत्व की प्रतिष्ठा निश्चित, स्पष्ट, हृदय-ग्राही कथानक-रूपी शरीर के भीतर होती है। सामाजिक स्थिति की बिडम्बना और भयंकरता

रित्र ज्यों-ज्यों संश्लिष्ट, अन्तर्मुखी
तन से अनुपात न होने के कारण
के अनुरूप आज का कहानीकार
ण, और अध्ययन के लिए दौड़ रहा
ट होता हुआ निम्नलिखित रूपों में

।

कथानक आरम्भ होता है।
स्पष्ट होता है।
ी अपने मन में उसकी कल्पना करते

र जाने के पीछे प्रायः इतने ही कारण
कहानी-निर्माण का समूचा और एक-
रेखायें अत्यन्त कोमल, पर अपेक्षाकृत
प्रभाव कहानी के चरित्र पर पड़ा है।
के पात्र प्रायः स्थिर होने लगे हैं। वे
में जैसे न कोई घटना ही घटती है,
दिशा में होते भी हैं, सर्वथा चरित्र के

स्वरूप कहानी के विधान में अत्यधिक
ष्टकोण और चरम परिणति में अस्पष्ट
था स्पष्ट सहानुभूति के इस तरह ह्रास
कठिन और दुर्बोध हुई।

ौर सुगम

से ५० के बीच) कथातत्व के ह्रास और
' की दृष्टि से मुख्यतः दो कारण कार्य
ी की उक्त तथ्य को कहानियाँ वस्तुतः
त्मक और सीधे ढंग की पद्धति के विरुद्ध
इलाचन्द्र जोशी की मुख्यतः प्रथम चरण
रूप में बहुत ही स्पष्टता से देखी जा

दिखाने में 'निर्गुण' की रचना-पद्धति अनेक कथा-सूत्रों, स्मृति-चित्रों और सांकेतिक भूमिकाओं को समेट कर चलती है. किन्तु कहानी के अन्त में बिल्कुल स्वाभाविक ढङ्ग से कथा और चरित्र को ऐसा मोड़ देते हैं कि सारा कलुष, सारी निर्धनता और भयानकता को मांगलिक जीवन-आधार मिल जाता है। 'तिवारी' और 'छोटा डाक्टर' का अंत अपनी स्वाभाविकता और चारित्रिक विशेषता के कारण सदा स्मरणीय रहेगा।

'निर्गुण' की कहानियों में शिल्पविधान की एकरूपता मन को कहीं भी नहीं उबाती, वरन् रचना-शिल्प की अकृत्रिमता और स्वाभाविकता से हमारे मन को मोह लेती है।

'निर्गुण' के कहानी-शिल्प से अलग विष्णुप्रभाकर की कहानियों का कुछ दूसरा ही ढङ्ग है। कहानी के प्रारम्भिक भाग अथवा अंश में प्रस्तावना अथवा भूमिका का संस्पर्श। कहानी के मध्य में कहीं-कहीं समस्या का विश्लेषण और चरित्रांकन की रेखाओं में जीवनगत मूल्य-स्तर का विवेचन। 'निर्गुण' की ही भाँति यह भी कहीं यथार्थ के प्रति निर्मम नहीं हो पाते। एक विशुद्ध मानवीय नैतिक सहानुभूति सदैव इनके पात्रों तथा जीवन-स्थितियों को इनसे मिलती रहती है।

'अगम अथाह', 'स्वप्नमयी', 'अभाव', 'गृहस्थी', 'जज का फैसला', 'संबल' आर 'डायन' आदि कहानियाँ विष्णुप्रभाकर की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं और उनके सुगम, सुबोध कथा-शिल्प के सुन्दर उदाहरण हैं।

विष्णुप्रभाकर की कहानियों की चरमसीमा अथवा अंत पर कहीं-कहीं उनकी आदर्शवादिता, सोद्देश्यता का आग्रह स्पष्ट हो उठा है और वहाँ कहानियों का एकान्त प्रभाव अथवा परिणाम निर्बल हो गया है, किन्तु इन्हें रचना-प्रक्रिया में जीवन के गहरे, अनुभूतिपूर्ण क्षणों और स्थितियों को पकड़ने और उन्हें कलात्मक अभिव्यक्ति देने में बड़ा कमाल हासिल है।

शिल्प की सरलता, प्रत्यक्ष प्रभाव डालने की क्षमता कमल जोशी की कहानी-कला की विशेषता है। कथा का सूत्र सहसा बीच में से पकड़कर उन्हें कहानी के रङ्गों में उभार देना—ऐसा कि पूर्व कथा अथवा पूर्व भूमिका अपने आप कहानी से व्यंजित हो जाय। सम्पूर्ण इतिवृत्त को न लेकर केवल वहाँ से कहानी को सहसा उठा देना कि पाठक की सारी संवेदना अपनी तीव्र अनुभूतियों से उसमें समादृत हो जाय—कमल जोशी के शिल्प की अपनी विशेषता है। 'लाश', 'कामरेड', 'चार के चार', 'कन्हैया की माँ' इस शिल्प के उदाहरण में आने वाली कहानियाँ हैं।

कथा-तत्व की इतनी सरलता, कहानी के सम्पूर्ण स्वर की इतनी सुबोधता के

बावजूद भी कमल जोशी क
नियाँ हैं। ये चरित्र प्रायः
लगते हैं, पर जोशी की क
गहरी मनोवैज्ञानिकता के
यह कहानी-धारा-
चन्द्रकिरन सौनरेक्सा आ
विशेषताओं से, आगे की
किसी विशेष वर्ग तथा वि
कहानियाँ अगम, दुबोध त
और प्रतीक-योजना तथा
तथा स्पष्ट सहानुभूति का

बावजूद भी कमल जोशी की प्रतिनिधि कहानियाँ विशुद्ध 'चरित्रों' पर आधारित कहानियाँ हैं। ये चरित्र प्रायः व्यक्ति के चरित्र हैं—कहीं-कहीं 'टाइप' जैसे भी दिखने लगते हैं, पर जोशी की कला की विशेषता यह है कि इनके चरित्रों की अभिव्यक्ति गहरी मनोवैज्ञानिकता के प्रकाश में होती है।

यह कहानी-धारा—जिसमें अन्य प्रतिनिधि नाम अमृतराय, भैरव प्रसाद गुप्त, चन्द्रकिरन सौनरेक्सा आदि के हैं, अपने पूर्ण संस्कारों से पुष्ट होकर अपनी उक्त विशेषताओं से, आगे की कहानी-धारा में उपलब्धिमय सिद्ध हुई है। यह कहानी-धारा किसी विशेष वर्ग तथा विशिष्ट पाठक-समुदाय के लिये नहीं लिखी गयी हैं। इस धारा की कहानियाँ अगम, दुर्बोध तथा अस्पष्ट नहीं हैं। मनोविज्ञान, प्रतीक-पद्धति, लाक्षणिकता और प्रतीक-योजना तथा सांकेतिक विधियों को अपना कर भी इनमें निश्चित इतिवृत्त तथा स्पष्ट सहानुभूति का ह्रास नहीं हुआ है।

परिशिष्ट–२

स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी कहानियाँ :
पृष्ठभूमि, नयी कहानी, साठोत्तरी कहानियाँ

सन् १९४७ में हमने जो राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त की थी, उसके फलस्वरूप कला और साहित्य सृजन के क्षेत्र में सांस्कृतिक विकास के प्रति हममें एक स्वतंत्र और सजग जातीय और उदार चेतना का उदय हुआ। राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद विकसित होने वाली इस स्वतंत्र सांस्कृतिक चेतना के साथ नये कवि, नये आलोचक और नये कहानीकार में स्वभावत: आत्म सजगता का विकास हुआ। सबसे अधिक नये कवि और नये कहानीकार में जिस आत्मसजगता का विकास हुआ वह परंपरा के विरोधी तत्व के रूप में नहीं, बल्कि परंपरा में श्रेष्ठ तत्व था, इसको अंगीकार करके नये भारत के नये भविष्य के प्रति वह आशावान भी हुआ तथा दिग्भ्रमित भी हुआ। आगे के आलोचकों ने इस दृष्टिकोण को रोमांटिक दृष्टिकोण कहा है। लेकिन यदि गहराई से देखा जाय तो इसके पीछे सच्चाई कुछ और थी। नयी कहानी के रचनाकार के अनुभव पहले से अधिक व्यापक परिवेश में प्रगट हुए और उसने अपनी समूची आर्थिक और सामाजिक परम्परा को, उसके विरोधाभास को अपनी दृष्टि में रखकर उसका अत्यन्त मानवीय धरातल पर पुनर्मूल्यांकन करना चाहा।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कहानी की व्यक्ति चेतना को नयी कहानी ने वृहत्तर और सामाजिक बनाया। नये कहानीकार ने मानवीय सम्बन्धों से और उसकी नियति से अपने को प्रतिबद्ध किया और इस तरह उसे नवीन जनतांत्रिक संस्कृति के विकास से बड़ा बल मिला। उससे पहले की कहानी, जिसमें मनुष्य और मनुष्य को विभाजित करके देखा था, ठीक उससे आगे स्वातन्त्र्योत्तर नये कहानीकार ने मानवीय यथार्थवाद को उसकी सम्पूर्णता में देखना चाहा। इस नयी चेतना की कथात्मक अभिव्यक्ति इतनी प्रौढ़ और महत्वपूर्ण हुई कि हिन्दी कथा-साहित्य में उत्तर शती का यह नया कहानी आन्दोलन निश्चय ही एक नये कहानी उत्थान के लिये सदैव याद रखा जाएगा।

कुछ तो इसके लिये कि आजादी के बाद एक दशक के अन्दर दर्जनों व्यावसायिक साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं, और उनके साथ नये कहानीकारों

को एक पूरी पीढ़ी खड़ी
याद रखा जाएगा कि हि

इसके पीछे इति
बहुत आवश्यक है।

आजादी के बाद
विकसित हुआ जो नये
संरक्षक है।

इससे पहले अब
जो अन्य साहित्यिक वि
की अपेक्षा जब कहानी
पत्रिका निकालनी एक
पत्रिका निकाली गई, जि
अपने अंचल, संस्कार की
लिखने लगे।

इस तरह आजा
बल्कि एक गतिरोध को
अज्ञेय, भगवतीचरण
जाती थीं और १९४५
इनमें यशपाल और अज्ञे
कारों में प्रेमचन्द के सा
हिन्दी कहानीकारों की
पड़ा। 'जिन्हें उर्दू' कह
कहानियाँ थीं कुछ बंधे
कहानियाँ।

नयी कहानी क्या

'नयी कहानी
त्मक निर्माण हैं, जो जी
किसी-न-किसी नये पह
दृष्टि से दिखाने में समर्थ
के अजीब से प्राणियों क
जीवन में वह कौन सा

की एक पूरी पीढ़ी खड़ी हो गयी। दूसरे इसके लिये भी नयी कहानी का यह दशक याद रखा जाएगा कि हिन्दी में कहानी सृजन की एक नयी सम्भावना दिखाई पड़ी।

इसके पीछे इतिहास के पूरे परिदृश्य में जो वस्तुस्थिति थी उसे जान लेना बहुत आवश्यक है।

आजादी के बाद यहाँ विशेषकर हिन्दी क्षेत्र में वह शिक्षित मध्यवर्ग तेजी से विकसित हुआ जो नये साहित्य, इतिहास में कहानी का वास्तविक जन्मदाता और संरक्षक है।

इससे पहले अब तक साहित्यिक पत्रिकाओं में कहानी का स्थान प्रायः वही था जो अन्य साहित्यिक विधाओं को दिया जाता था। लेकिन साहित्यिकी अन्य विधाओं की अपेक्षा जब कहानी की यह नयी विधा अत्यन्त प्रभावपूर्ण हुई तो कहानी की स्वतन्त्र पत्रिका निकालनी एक उल्लेखनीय घटना है। इसलिये इलाहाबाद से "कहानी" पत्रिका निकाली गई, जिसमें नये कहानीकारों की एक ऐसी जमात उठ खड़ी हुई जो अपने अंचल, संस्कार की विभिन्नता के बावजूद समान स्तर से तरह-तरह की कहानियाँ लिखने लगे।

इस तरह आजादी के बाद कहानी जगत में एक नयी पीढ़ी केवल आई ही नहीं बल्कि एक गतिरोध को तोड़कर आई। गतिरोध यह था कि "जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा आदि जो द्वितीय महायुद्ध पूर्व की बड़ी प्रतिभाएं मानी जाती थीं और १९४५ तक पहुँचते-पहुँचते इनकी रचना शक्ति को जैसे एक अंत मिला। इनमें यशपाल और अज्ञेय को सम्भवतः अपवाद कहा जा सकता है और नये कहानीकारों में प्रेमचन्द के साथ निश्संदेह इन दोनों कहानीकारों से प्रेरणा ली। उस समय हिन्दी कहानीकारों की इस नयी पीढ़ी को एक और तरह की कहानियों से मोर्चा लेना पड़ा। 'जिन्हें उर्दू कहानीकार कृश्नचन्दर की विकृति कहा जा सकता है'। ये कहानियाँ थी कुछ बंधे-बंधाये कहानी के फार्मूलों के मुताबिक क्रांतिकारी, रोमांटिक कहानियाँ।

नयी कहानी क्या है ?

'नयी कहानी से हमारा मतलब है उन कहानियों से, जो सच्चे अर्थों में कलात्मक निर्माण हैं, जो जीवन के लिए उपयोगी और महत्वपूर्ण होने के साथ ही, उसके किसी-न-किसी नये पहलू पर आधारित हैं, या जीवन के नये सत्यों को एकदम नयी दृष्टि से दिखाने में समर्थ हैं।'····'नवीनता इसमें नहीं है कि उसमें किसी अछूते भूभाग के अजीब से प्राणियों का वर्णन है, बल्कि इसमें (नयापन) है जो साधारण मानवीय जीवन में वह कौन सा विशेष नयापन है जो सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के

कारण पैदा हो गया है, या बिना किसी परिवर्तन के भी जीवन का कौन सा ऐसा पहलू है, जो साहित्य में अब तक अछूता है।'[1]

"आज कुछ लोग कहानी (नयी कहानी) का सम्बन्ध एक विशेष तरह के शिल्प या वस्तु के साथ जोड़कर उसका मूल्यांकन करना चाहते हैं।...हमारी रचना का क्षेत्र निःसीम है और रचना की वास्तविक सिद्धि उसके प्रभाव की व्यापकता में है। इसके लिए इतना ही आवश्यक है कि लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट हो और उसकी रचना उसके और पाठक के बीच एक घनिष्ठता की स्थापना कर सके। इसके लिये अभिव्यक्ति में जिस स्वाभाविकता की आवश्यकता है, वह जीवन की सहज अनुभूतियों से जन्म लेती है और वह स्वतः ही रचना को सहज संवेद्य बना देती है। ये अनुभूतियाँ हमें जीवन के हर पक्ष और हर पहलू से प्राप्त हो सकती है।"[2]

'...कहानियाँ केवल 'शिल्प' रंगीन दर्शन, 'कला' की कलाबाजी के बल पर खड़ी नहीं होतीं, उनका निर्माण जीवन्त वस्तु शिला पर होता है और इसीलिये वे पत्थर की तरह ठोस और कंक्रीट की तरह शक्ति-सम्पन्न होती हैं। उनमें आपको बड़े बोल नहीं मिलेंगे, घुमाव फिराव या बाल की खाल निकालने वाली बारीकी नहीं मिलेगी, मिलेगी एक सरलता, एक सहजता, एक सादगी और एक सीधापन...लक्ष्य भी सीधा और अचूक होता है।...कहानी की कोई एक बात या कोई एक विशेषता हमारे मन में नहीं बसती, बल्कि पूरी कहानी हमारे स्मृति पट पर चित्रित रहती है। इसका कारण यह है कि (कहानीकार) एक बात विशेष या एक चरित्र विशेष के इर्द-गिर्द कथानक के जाल नहीं बुनते, बल्कि जीवन का एक जिन्दा टुकड़ा ही उठाते हैं और उसे अपनी सहज कला से गढ़कर रख देते हैं।'

—भैरव प्रसाद गुप्त

'इसलिये कि बहुत सी कहानियाँ (आजकल) केवल स्थिति विशेष के प्रति एक गहरी उदासी और एक करुणा उत्पन्न करके रह जाती है। उसमें क्रियात्मकता नहीं रहती।' आज की कहानियों में परिवेश बोध की अनुपातता की विकसित चेतना बहुत महत्व की वस्तु है।'

—नित्यानंद तिवारी—'लहर' नयी कहानी विशेषांक

ऊपर के कथन, विचार नयी कहानी के विषय में दो प्रतिनिधि कहानीकारों के हैं, फिर 'कहानी' 'नयी कहानी' के उल्लेखनीय सम्पादक और विचारक भैरवप्रसाद गुप्त हैं, और अंतिम अंश एक सजग पाठक-आलोचक का है।

---

१. भूमिका—हंसा जाई अकला, मार्कण्डेय।

२. भूमिका—नये बादल, मोहन-राकेश।

इन स्थापनाओं
इसके स्वरूप के तीन पक्ष

(अ) सहज साम

(ब) अनुभूति,

(स) परिवेश-बो

यहाँ स्पष्ट रूप
उभरा कि इसने अपने
स्थितियों से अपना सीध
आजादी के बाद हमारे
चल आया उनसे यह न
की चुनौती को इसने स्व

नयी कहानी के वि

हिन्दी नयी कह
नैतिक परिस्थितियों का
क्या गाँव, क्या कस्बे
हुए बाजार-हाट-घर—
टकराई। उस दृष्टि में
धार्मिक, नैतिक—यहाँ
परिवर्तन केवल कहानी
वर्तन पाठक की भी रुचि
जीवन देखने की नयी
का ही यह फल हुआ कि
प्रकाशन क्षेत्र में अवतरि
पत्रिकाएँ आने लगीं—
रिका' और 'सारिका'
तथा उत्साहपूर्ण था कि
नया दल इस नये क्षिति
प्रसाद सिंह, कमलेश्वर
मन्नू भंडारी, फणीश्वर
इस नये चरण ने अपने
को (रचना प्रक्रिया और

इन स्थापनाओं और विचारों से नयी कहानी की प्रकृति की झलक मिलती है। इसके स्वरूप के तीन पक्ष—

(अ) सहज सामाजिकता,
(ब) अनुभूति,
(स) परिवेश-बोध की विकसित चेतना।

यहाँ स्पष्ट रूप से उल्लेखनीय है। इस नयी कहानी का सबसे बड़ा स्वर यह उभरा कि इसने अपने समय काल परिस्थिति के जीवन और समाज, संघर्षकालीन स्थितियों से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित किया। इसने अपना नया अर्थ दिया—आजादी के बाद हमारे समाज में नयी समस्याएँ उभरीं, जो अपूर्व कोलाहल और हलचल आया उनसे यह नया कहानीकार सीधे उलझना और उनके भीतर के नये प्रश्नों की चुनौती को इसने स्वीकार किया।

नयी कहानी के विकास का पहला चरण

हिन्दी नयी कहानी अपने विकास के पहले चरण में इसी बदली हुई सामाजिक नैतिक परिस्थितियों को जीवन की समग्रता के बीच नयी दृष्टि से देखने लगी। क्या गाँव, क्या कस्बे या शहर क्या गली क्या नयी बनती हुई बस्ती या उजड़े हुए बाजार-हाट-घर—इन सब क्षेत्रों में उसकी दृष्टि सीधे उनकी यथार्थता से टकराई। उस दृष्टि में उसने देखा कि पिछली कितनी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक—यहाँ तक कि वैयक्तिक मान्यताएँ झूठी दिखायी देने लगीं। यह परिवर्तन केवल कहानीकार की ही नयी दृष्टि के स्तर से नहीं हुआ, वरन यह परिवर्तन पाठक की भी रुचि में आया। वह कल्पना के स्थान पर अपना समसामयिक जीवन देखने की नयी माँग करने लगा। इस नयी माँग तथा लेखक की नयी दृष्टि का ही यह फल हुआ कि नयी कहानी के क्षेत्र में धड़ाधड़ नयी कहानी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशन क्षेत्र में अवतरित हुईं। और दिनों दिन नयी से नयी विशुद्ध कहानी मासिक पत्रिकाएँ आने लगीं—जैसे 'कहानी', 'नयी कहानियाँ' 'नयी सदी', 'विनोद', 'नीहारिका' और 'सारिका' आदि। विकास का यह पहला चरण इतना वेगमय, शक्तिमय तथा उत्साहपूर्ण था कि देखते ही देखते उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण कहानीकारों का एक नया दल इस नये क्षितिज पर छा गया—मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर राजेन्द्र यादव, अमरकांत, धर्मवीर भारती, उषा प्रियम्बदा, मन्नू भंडारी, फणीश्वरनाथ 'रेणु' शेखर जोशी और लक्ष्मीनारायण लाल आदि। इस नये चरण ने अपने आगमन के बीच बड़ी बुरी तरह से आये हुए उस गतिरोध को (रचना प्रक्रिया और विषय-वस्तु तथा दृष्टि स्तर से) इस तरह से अपनी धारा में

बहा लिया जैसे बढ़ी हुई गंगा और सरजू नदी देखते ही देखते अपने बाँधों को तोड़कर उन्हें अपनी सहज धारा में ले लेती हैं ।

फिर तो गढ़े-गढ़ाये, अति निर्मित, अति शिल्प प्रधान तथा कृत्रिम कथानकों तथा पात्रों के बाँध टूटे, और एक नयी वेगवती सहज धारा ऐसी फूटी कि हमारा सारा समाज, सारी प्रकृति, जहाँ तक कहानीकार की नजर दौड़ सकती है—वह सब कुछ नयी कहानी का विषय दिखा । वहाँ के सारे जीते-जागते प्राणी उसे उसकी नयी कहानी के चरित्र के रूप में मिले । अनन्त विषय, अनन्त समस्यायें और अनन्त चरित्र । ऐसा विस्तृत क्षेत्र, सहानुभूति की ऐसी उदारता, मनुष्य को सम्पूर्ण समाज के साथ बाँधकर देखने की ऐसी निर्वैक्तिक दृष्टि ! जहाँ हमारा जीवन और इस जीवन के अन्तस्तल में बैठा हुई, कार्यरत चेतना और संघर्षशील हृदय अपने उसी जीते-जागते स्पंदित रूप में अभिव्यक्ति पाने लगा । अपनी उसी महती परम्परा में—जिसमें प्रेमचन्द का 'कफन', 'बड़े भाई साहब', अज्ञेय की 'कस्बे का एक दिन' आदि कहानियाँ आती हैं । सभी मेरा विचार है कि नयी कहानियों के श्रेष्ठ उदाहरण में आने वाली ये कहानियाँ—अमरकांत की 'दोपहर का भोजन', 'मोहन राकेश की 'मिसपाल', 'आर्द्रा', मार्कण्डेय की 'उत्तराधिकारी', राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', भारती की 'गुलकी बन्नो', मन्नू भंडारी की 'यह भी सच है,' फणीश्वरनाथ रेणु की 'तीसरी कसम', उषा प्रियम्वदा की 'जिन्दगी और गुलाब', शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' आदि जहाँ एक ओर नयी हैं, वहाँ दूसरी ओर परम्परा अर्जित उपलब्धि भी हैं ।

'दृष्टि बदली, मानव और जीवन को देखने के ढंग बदले, तो कहानी का शिल्प भी बदला । पहले की सी कथानक प्रधान, झटका देने और मधुर टीस उत्पन्न करने वाली गठी-गठाई कहानियों के बदले जीवन की गहमागही, रंगारंगी, कटु यथार्थता, जटिलता, संश्लिष्टता का प्रतिबिम्ब लिये हुए ('जिंदगी और जोंक'—अमरकांत, 'जानवर और जानवर'—मोहन राकेश) सीधे-सादे स्केच की सी ('खेल'—रघुवीर सहाय, 'नंगा आदमी : नंगा जख्म'—अमृतराय, निबन्ध की-सी) संस्मरण ('अंकल'—रामकुमार, 'धरउआ'—भैरवप्रसाद गुप्त 'द्रौपदी' लक्ष्मीनारायण लाल) कुछ प्रभावों अथवा स्मृतियों का गुम्फन मात्र ('खुशबू'—राजेन्द्र यादव) वर्णनात्मक ('शिमले के क्लर्क की कहानी'—रामकुमार) चित्रात्मक ('निशाजी'—नरेश मेहता) डायरी के पन्नों अथवा पत्रों का रूप लिये हुए ('सईदा के खत'—अमृत राय) । एक ओर लोककथा और दूसरी ओर उपन्यास की हदों को छूती हुई तरह-तरह की कहानियाँ लिखी जाने लगीं । पहले कहानियों में उपमाओं का प्रयोग होता था, जिससे उनकी सरलता और सुगमता द्विगुणित हो जाती थी, अब उनमें स्पष्ट अथवा अस्पष्ट

बिम्बों और प्रतीकों का
बढ़ी । निर्मल वर्मा की '
आत्महत्या' अमृतराय की

इस नयी कहानी
प्रतिष्ठित, विकासोन्मुख
बदल दिया । उनकी दृष्टि
में आमूल परिवर्तन हुए
सकता है । उनका 'पलंग
रामकुमार, अमृतराय,
उल्लेखनीय हैं ।

नयी कहानी, अ
का अध्ययन अपने आप
विशेष दिशाओं में प्रतिफ
का अध्ययन है ।

विषय और संवे
आकर्षित करती है, वह
संवेदनाओं की ओर इसक
के पूरे विकास में यह दे
बहुत गहन और व्यापक
के भीतर जीवन और स
जीवन और समाज के अ
की कहानियाँ, क्या कस्ब
के नये सन्दर्भों और नयी
इस चित्रांकन में विशेष
प्रक्रिया के भीतर से उस
की कहानियाँ और कमले
यहाँ लेखक की अपार सं
तथा ह्रासोन्मुख अंधशक्ति
महत्वपूर्ण तत्व हैं । मार्क
कमलेश्वर की 'नीलीझील
आदमी' इस नये क्षेत्र की

बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग होने लगा, जिससे उनकी जटिलता और संश्लिष्टता बढ़ी। निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', मार्कण्डेय की 'धुन' राजेन्द्र यादव की 'अभिमन्यु की आत्महत्या' अमृतराय की 'मंगलचरण' ऐसी ही कहानियाँ हैं।'

—नयी कहानी : एक पर्यवेक्षण—'अश्क'

इस नयी कहानी का इतना वेग इतना प्रभाव कि पुरानी पीढ़ी के अनेक प्रतिष्ठित, विकासोन्मुख कहानीकारों ने इसको अपनाकर अपनी रचना प्रक्रिया को ही बदल दिया। उनकी दृष्टि बदली और स्वभावतः उसी के अनुसार उनकी शिल्पविधि में आमूल परिवर्तन हुए। इसके उदाहरण में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का नाम लिया जा सकता है। उनका 'पलंग' कहानी संग्रह इसका एक उदाहरण है। इनके अतिरिक्त रामकुमार, अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त, शरद जोशी, बलवन्त सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नयी कहानी, अपने प्रथम चरण से लेकर १९६० तक इसकी विकास दिशाओं का अध्ययन अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। ये नयी कहानियाँ किस रूप और किन विशेष दिशाओं में प्रतिफलित हुई हैं—इन तत्वों का मूल्यांकन करना इसकी उपलब्धि का अध्ययन है।

विषय और संवेदनाओं के अध्ययन क्रम में जो बात सबसे पहले हमारा ध्यान आकर्षित करती है, वह है जीवन की छोटी-छोटी अनुभूतियों में अपेक्षाकृत विराट संवेदनाओं की ओर इसका सहज संकेत। साथ ही यह भी सच है कि इसके आज तक के पूरे विकास में यह देखने को मिलता है कि अनुभूतियों और संवेदनाओं का क्षेत्र बहुत गहन और व्यापक हुआ है। नयी कहानियों के समर्थ लेखकों ने इतने कम समय के भीतर जीवन और समाज के अनेकानेक अपरिचित स्तरों को उभारा है। क्या ग्राम जीवन और समाज के अनेकानेक अपरिचित स्तरों को उभारा है। क्या ग्राम जीवन की कहानियाँ, क्या कस्बों या शहरी जीवन की कहानियाँ—इसकी नयी कला ने जीवन के नये सन्दर्भों और नयी वास्तविकता का बड़ी ईमानदारी से चित्रांकन किया है। इस चित्रांकन में विशेष बात है लेखकों की अपनी सांकेतिकता, जो सर्वथा रचना प्रक्रिया के भीतर से उसका अभिन्न अंग बनकर उभरती है। मार्कण्डेय की ग्राम जीवन की कहानियाँ और कमलेश्वर की अपनी बस्ती की कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। यहाँ लेखक की अपार संवेदनशीलता तथा बदलते हुए जीवन के भीतर असत्य पक्षों तथा ह्रासोन्मुख अंधशक्तियों के प्रति उनका कटुव्यंग तथा विद्रोह, इस प्रसंग के बड़े महत्वपूर्ण तत्व हैं। मार्कण्डेय का 'भू-दान', 'दाना भूसा', 'आदर्श कुक्कुट गृह'—कमलेश्वर की 'नीलीझील', 'बदनाम बस्ती', 'सलमा', फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'अच्छे आदमी' इस नये क्षेत्र की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। यहाँ एक और महत्वपूर्ण तत्व है इन

२२

बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग होने लगा, जिससे उनकी जटिलता और संश्लिष्टता बढ़ी। निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', मार्कण्डेय की 'धुन' राजेन्द्र यादव की 'अभिमन्यु की आत्महत्या' अमृतराय की 'मंगलचरण' ऐसी ही कहानियाँ हैं।'

—नयी कहानी : एक पर्यवेक्षण—'अश्क'

इस नयी कहानी का इतना वेग इतना प्रभाव कि पुरानी पीढ़ी के अनेक प्रतिष्ठित, विकासोन्मुख कहानीकारों ने इसको अपनाकर अपनी रचना प्रक्रिया को ही बदल दिया। उनकी दृष्टि बदली और स्वभावतः उसी के अनुसार उनकी शिल्पविधि में आमूल परिवर्तन हुए। इसके उदाहरण में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का नाम लिया जा सकता है। उनका 'पलग' कहानी संग्रह इसका एक उदाहरण है। इनके अतिरिक्त रामकुमार, अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त, शरद जोशी, बलवन्त सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नयी कहानी, अपने प्रथम चरण से लेकर १९६० तक इसकी विकास दिशाओं का अध्ययन अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। ये नयी कहानियाँ किस रूप और किन विशेष दिशाओं में प्रतिफलित हुई हैं—इन तत्वों का मूल्यांकन करना इसकी उपलब्धि का अध्ययन है।

विषय और संवेदनाओं के अध्ययन क्रम में जो बात सबसे पहले हमारा ध्यान आकर्षित करती है, वह है जीवन की छोटी-छोटी अनुभूतियों में अपेक्षाकृत विराट संवेदनाओं की ओर इसका सहज संकेत। साथ ही यह भी सच है कि इसके आज तक के पूरे विकास में यह देखने को मिलता है कि अनुभूतियों और संवेदनाओं का क्षेत्र बहुत गहन और व्यापक हुआ है। नयी कहानियों के समर्थ लेखकों ने इतने कम समय के भीतर जीवन और समाज के अनेकानेक अपरिचित स्तरों को उभारा है। क्या ग्राम जीवन और समाज के अनेकानेक अपरिचित स्तरों को उभारा है। क्या ग्राम जीवन की कहानियाँ, क्या कस्बों या शहरी जीवन की कहानियाँ—इसकी नयी कला ने जीवन के नये सन्दर्भों और नयी वास्तविकता का बड़ी ईमानदारी से चित्रांकन किया है। इस चित्रांकन में विशेष बात है लेखकों की अपनी सांकेतिकता, जो सर्वथा रचना प्रक्रिया के भीतर से उसका अभिन्न अंग बनकर उभरती है। मार्कण्डेय की ग्राम जीवन की कहानियाँ और कमलेश्वर की अपनी बस्ती की कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। यहाँ लेखक की अपार संवेदनशीलता तथा बदलते हुए जीवन के भीतर असत्य पक्षों तथा ह्रासोन्मुख अंधशक्तियों के प्रति उनका कटुव्यंग तथा विद्रोह, इस प्रसंग के बड़े महत्वपूर्ण तत्व हैं। मार्कण्डेय का 'भू-दान', 'दाना भूसा', 'आदर्श कुक्कुट गृह'—कमलेश्वर की 'नीलीझील', 'बदनाम बस्ती', 'सलमा', फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'अच्छे आदमी' इस नये क्षेत्र की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। यहाँ एक और महत्वपूर्ण तत्व है इन

२२

कहानियों का परम वैविध्य । कहीं भी, किसी भी स्तर से एकरसता और दुर्बोधता का नामोनिशान नहीं । कौशल और सहजता ही इनकी शक्ति है तथा एक निश्चित अभिप्राय है—संघर्षशील, बदलते हुए जीवन के भीतर युद्धरत शक्तियों से डटकर जूझने और सीधे चुनौती देने का उद्देश्य ।

नयी कहानी साहित्य को लेकर एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि अनुभूति की नवीनता ही क्या नयी कहानी की सीमा-सामर्थ्य है ? इसके उत्तर में सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त है कि नयी कहानी में यह नवीनता उसका साध्य नहीं है, सहज एक महत्वपूर्ण अंग है । मुख्य है इस अनुभूति की नवीनता के भीतर लेखकों की अपनी-अपनी दृष्टि, जिसका मूल्यांकन शायद हम अभी नहीं कर सकते—इसके सहज रूप को हम अगले दस वर्षों के बाद ज्यादा ईमानदारी से पहचान सकते हैं । क्योंकि जब दृष्टि-प्रवाह थम जाता है और उसके आगे जब एक नया प्रवाह, एक नया काल आता है, तभी उसका मूल्यांकन कर सकते हैं । पर इतना कहना अतिकथन न होगा कि नयी कहानी में जितनी विविध अनुभूतियाँ, विविध मानवीय दुख-सुख के स्वर उभरे हैं, सब के अर्थ एक स्तर के नहीं हैं । कहीं गहराई है तो कहीं केवल विस्तार ही है । कहीं उत्कृष्ट ईमानदारी है तो कहीं सिर्फ आग्रह ही है । कहीं अविच्छिन्न जीवन्तता के तत्व पूरी तरह से हाथ में आये हैं तो कहीं सिर्फ वही खंडित चित्र ही हैं—उदास और करुण—क्रियात्मकता हीन-जड़, स्पंदनरहित, तत्व । यहाँ अनायास ही 'परिन्दे', 'जिन्दगी और जोंक', 'मिसपाल', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'वापसी', 'सावित्र नम्बर दो', 'बदबू', आदि कहानियों की सुधि हो जाती है—ठीक उसी तरह जैसे अज्ञेय की 'रोज' कहानी की सुधि ।

पर स्थिति के प्रति सचेतनता और वर्तमान यथार्थ के प्रति सक्रियता की ओर नयी कहानी-धारा विकासोन्मुख और सजग है—यह इसकी परम मूल्यवान प्रकृति है । ज्यादा नहीं, पर एक वर्ष में दो एक ऐसी महत्वपूर्ण कहानियाँ अवश्य मिलती हैं जो अपने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सजग रहकर दृष्टि की नवीनता के साथ हमारे दुख-सुख को अविच्छिन्न जीवन्तता से जोड़ देती हैं ।

दिशा अध्ययन की दृष्टि से यदि हम आज तक के नयी कहानी साहित्य का मूल्यांकन करें तो अन्य अनेक बातें हमारे सामने आती हैं ।

(अ) प्रेमचंद के युग के प्रारंभ में यदि कहानी में मुख्य तत्व ढूँढ़ने पर जहाँ घटना मिलती थी, आगे जैनेन्द्र, यशपाल और अज्ञेय की कहानी में जहाँ मुख्यतः चरित्र पर आग्रह था, ठीक इसी प्रसंग में यदि इस नयी कहानी का हम कोई मुख्य तत्व ढूंढ़ने चलें तो हमें इन दोनों तत्वों से आगे वह नवीन तत्व मिलेगा—परिवेशबोध की विकसित चेतना ।

(ब) कहानी के प
और वह विचार पूरी कह
किसी अस्वाभाविक नाटक
की सुगंधि मिल सकती है
(म) विचार पूरी
दीप्ति रहती है । ऐसी द
(द) कहानी में व
हीन (?) उसमें केवल एव
भोगे हुए क्षणों को ही मु
है । यह नयी कहानी जी
के लिए सब कुछ वह पाठ
'स्टिफिन जिवग' की कहा
वस्तुतः सच्चे अथ
'द' प्रकार की दिशा ही
ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उ
आये थे, तब उनकी कहा
इस नयी पीढ़ी के कथाका
ढंग से उभारा है तब इसे
की भी कला का निकर्ष
इस संदर्भ में नयं
रखा जाय तो परिवेशबोध
समस्याओं से इसके जुड़ने

नयी कहानी का शि

वस्तु और शिल्प
अज्ञेय का । हमारी यह
कि इसके हाथों कहानी अ
और शिल्प सौष्ठव के अ
में अंगीकृत किया । इस

१. मेरा आग्रह
हैं, कोई सैद्धान्तिक प्रेरणा
साहित्यिक सिद्धि नहीं ।—

(ब) कहानी के पीछे एक विचार (आइडिया) मुख्य रूप से प्रेरकशक्ति है। और वह विचार पूरी कहानी में धर्मनिष्ठ रहता है। बिना किसी विस्तार के। बिना किसी अस्वाभाविक नाटकीय चरमसीमा के कहानी के किसी भी अंश से उस विचार की सुगंधि मिल सकती है।

(स) विचार पूरी कहानी में व्याप्त न रहकर केवल चरित्र के पीछे उसकी दीप्ति रहती है। ऐसी दीप्ति जो उस चरित्र को 'युनिवर्सलाइज' करती है।

(द) कहानी में कोई विचार नहीं है—'कहानी आदि से अंत तक विचार हीन (?) उसमें केवल एक जिया हुआ जीवन क्षण या अंश मात्र रहता है और उस भोगे हुए क्षणों को ही मुखरित करना उसे ही कुशाग्र बनाना कहानी का उद्देश्य रहता है। यह नयी कहानी जीवन के उन अनुभूत क्षणों की झाँकी देकर उसके प्रति विचार के लिए सब कुछ वह पाठक पर छोड़ देती है—किन्हीं अर्थों में जैसे 'सरोयान' और 'स्टिफिन ज़िवग' की कहानियाँ।

वस्तुतः सच्चे अर्थों में नयी कहानी या किसी भी नयी कला के अन्तर्गत यह 'द' प्रकार की दिशा ही 'नया' कहलाता है। पिछली पीढ़ी में यही तत्व अपने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में जब 'अज्ञेय' अपनी कहानियों के द्वारा लेकर अपने समय में आये थे, तब उनकी कहानियों को भी 'नयी' का विशेषण मिला था[1]। यही तत्व जब इस नयी पीढ़ी के कथाकारों ने अपने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और दाय के भीतर से अपने ढंग से उभारा है तब इसे भी 'नयी' का सहज विशेषण मिला है। और यही भविष्य की भी कला का निकर्ष होगा, ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

इस संदर्भ में नयी कहानियों का 'नया' तत्व—यदि एक रेखा में सहज ही रखा जाय तो परिवेशबोध की चेतना, अनुभूति का रमन तथा जीवन के नये संदर्भों समस्याओं से इसके जुड़ने की शक्ति सम्पन्नता के ही तत्व उल्लेखनीय होंगे।

नयी कहानी का शिल्प-सौंदर्य

वस्तु और शिल्प के नये प्रयोग का काल इससे पहले का था—जैनेन्द्र और अज्ञेय का। हमारी यह पिछली पीढ़ी इस संदर्भ में इतनी सशक्त और जागरूक थी कि इसके हाथों कहानी अपनी उच्चतम प्रयोगशीलता को प्राप्त हुई। इन सब प्रयोगों और शिल्प सौष्ठव के अन्तर्गत जो शिल्प प्रकार थे, उन्हीं को इस पीढ़ी ने अपने शिल्प में अंगीकृत किया। इस काल में मुख्य था तथ्य, संदर्भ नयी यथार्थता, जिसमें शिल्प

१. मेरा आग्रह रहा है कि लेखक अपनी अनुभूति ही लिखे, जो अनुभूति नहीं हैं, कोई सैद्धान्तिक प्रेरणा के वशीभूत होकर उसे लिखना ऋणशोध हो सकता है, साहित्यिक सिद्धि नहीं।—अज्ञेय, शरणार्थी : भूमिका, पृष्ठ २।

प्रयोग का प्रश्न ही एक अत्यन्त स्वाभाविक-सहज अंग था। जिसे कहानी की आत्मा और स्वरूप से अलग करके उस रूप में नहीं देखा जा सकता, जैसा कि प्रेमचंद और जैनेन्द्र-अज्ञेय के काल में देखा जा सकता था। वहाँ कहानी का एक निश्चित रूप था, उसका एक सीमित शास्त्र था। शायद तभी उसकी एक शास्त्रीय एकरूपता थी। अमुक कहानी आत्म कथनात्मक शैली में है। अमुक कहानी का शिल्प डायरी का है, अमुक का पत्रात्मक और अमुक का पूर्वदीप्ति प्रधान (फ्लैशबैक टेकनीक) तथा अमुक का शिल्प संभाषण प्रधान है, अमुक का शिल्प नाटकीय। इतना ही नहीं, अज्ञेय ने अपनी कहानियों में इतने गठे गठाये, पूर्ण परिष्कृत शिल्प का उदय दिया कि उन्हीं की कला में जैसे उसकी अपनी चरम सीमा तै हो गयी। उसके आगे का पथ था—बिम्बों और प्रतीकों का, अन्तर्मुखी रचना शिल्प का।

पर ऐसा नहीं हुआ आगे। बल्कि इस स्वाभाविक चरमसीमा के प्रतिकूल नयी कहानी का शिल्प पथ शुरू हुआ। शिल्प परिष्कार, शिल्प आग्रह से कहानीकार की दृष्टि हटकर सीधे कहानी के नये संदर्भ बोध जीवनबोध और परिवेश चेतना पर गयी। फल यह हुआ कि शिल्प कहानीकार की दृष्टि का सहज अनुवर्ती सत्य बन गया। और उसकी संचालिका कहानी की आत्मा स्वयं बन गयी। कहानी का विचार, उसकी अनुभूति, उसके अविच्छिन्न जीवन संदर्भ हो गये। जीवन के जीवित संघर्षमय स्थितियों से सीधे लोहा लेने का प्रण तैयार हुआ।

न कटे-छटे कथानक आदि मध्य अन्त की भावना से, न सजग, न तराशी हुई उस तरह की घटनायें, न उस तरह के बिम्ब न प्रतीक, न झटका देने वाले वे नाटकीय अंत, न लटके। शेखर जोशी, अमरकान्त, मार्कण्डेय की कहानियाँ इसके सुंदर उदाहरण हैं।

नयी कहानी के शिल्प सौन्दर्य में उसके तथ्य के अनुरूप जैसे कहानी का सारा शिल्प ही उदार से उदारतम हो गया। उसका बंधा बंधाया शास्त्रीय रूप अपने आप ही उदार और महिम हो गया। कथा, लोकतत्व, संस्मरण, यात्रा वर्णन की शैली, डायरी की कला, रमन पद्धति ये सब के सब तत्व मिल-जुल कर एक ही कहानी में उजागर हो गये। यह सर्वथा एक नया शिल्प ही बन गया।

कहानी का शिल्प कहानी की अन्तरात्मा में जैसे सराबोर हो गयी। शिल्प उसकी आत्मा में डूबकर एक हो गयी। और इस तरह कहानी-कला बड़ी नाजुक मर्म-स्पर्शिनी बन गयी। दूसरी ओर वह कहानी की उद्दाम शक्ति का वाहन हो उठी। इस सहज प्रक्रिया में शिल्प की अपनी बारीकी कहानी के स्वभाव और शक्ति के साथ एकाकार होकर अपने सही रूप में संवेदित हो उठी। इसके लिये उसे भाग्यवश पाठकों का

प्रबुद्ध वर्ग विरासत रूप में ह
की व्याख्या और सराहना व

अब सवाल उठता ह
विशेष नहीं है तो यह कि
शिल्प की नवीनता, नये ग
मूल रूप से आवश्यक तत्व
दृष्टि ही वह सारभूत तत्व
वान वस्तु है। यह नया अ
घट रहा है, सार्थक हो रह
नयी कला का चिरन्तन लक्ष
अभी उसकी उपलब्धि नहीं

यहीं हर नयी के प्रति
यह खतरा है—नवीनता के
जगह से डिगाकर उसे फार्म
जाती है। इधर नवीनता की
है और वे अनावश्यक रूप से
को उन्होंने अपनी उद्दाम
क्षेत्र, नया प्रसंग और नया
हैं। इसके पीछे निश्चित रू
प्रति नहीं।

जहाँ फार्म और कथ
इस चरण में अनेक हैं और
की स्वस्थ धारा मानी जाय,
इसमें किसी को कोई एतरा
ग्रामीण और शहरी जैसी
कहानी का फार्म ही कहानी
नहीं उपादेय हो सकता—उ
आखिरकार चरित्र ही है, व
विन्दु है। इसी के अनुरूप ह
विकसित करती रहती है।

प्रबुद्ध वर्ग विरासत रूप में ही मिला जो कहानी की प्रकाशित संवेदना तथा बारीकियों की व्याख्या और सराहना कर सके।

अब सवाल उठता है कि नयी कहानी में यदि शिल्प नया नहीं है। कुछ नया विशेष नहीं है तो यह किस तरह नयी कहानी है? मेरा विचार है कि इस स्तर से शिल्प की नवीनता, नये गठन से ही कोई कहानी नयी नहीं हो सकती। नये के लिये मूल रूप से आवश्यक तत्व है नया जीवनानुभव और नयी जीवन दृष्टि। क्योंकि जीवन दृष्टि ही वह सारभूत तत्व है जो चीजों का अर्थ बदलती है। यह नया अर्थ ही सार-वान वस्तु है। यह नया अर्थ, बदलते हुए जीवन तथा उसके मूल्य में किस तरह कैसे घट रहा है, सार्थक हो रहा है—इसके मर्म तक पहुँचना और उसे उद्घाटित करना नयी कला का चिरन्तन लक्ष्य है। वस्तुतः नयी कहानी की यही दिशा है। पर यह अभी उसकी उपलब्धि नहीं है—यह स्पष्ट है।

यहीं हर नयी के प्रति एक आशंका का भाव अथवा खतरा भी खड़ा रहता है। यह खतरा है—नवीनता के प्रति आसक्ति। यह आसक्ति लेखक को उसकी असली जगह से डिगाकर उसे फार्म की नवीनता अथवा शिल्प के चमत्कृत गह्वर में खींच ले जाती है। इधर नवीनता की यही आसक्ति अनेक कहानीकारों के माथे पर मँडरा रही है और वे अनावश्यक रूप से बिम्बों और प्रतीकों के जाल में फँस रहे हैं। जिस जाल को उन्होंने अपनी उद्दाम शक्ति से तोड़ फेंका था और कहानी की धारा को नया क्षेत्र, नया प्रसंग और नया उद्देश्य दिया था, वे ही स्वयं फिर उसी रास्ते पर मुड़ रहे हैं। इसके पीछे निश्चित रूप से वही नवीनता के प्रति आसक्ति है, उसकी दृष्टि के प्रति नहीं।

जहाँ फार्म और कथ्य दोनों एक हैं, अनुरूप हैं, अविच्छिन्न हैं—ऐसी कहानियाँ इस चरण में अनेक हैं और उन्हीं कहानियों की धारा नयी कहानी के शिल्प सौन्दर्य की स्वस्थ धारा मानी जाय, शेष सब 'नये' के प्रति 'फैशन का भाव' माना जाय—इसमें किसी को कोई एतराज नहीं है। नये के प्रति यही आसक्ति की भावना ही शायद ग्रामीण और शहरी जैसी कहानियों के अलगाव में सहायक सिद्ध हुई थी। क्योंकि कहानी का फार्म ही कहानी की आत्मा उसका आंतरिक स्वरूप बन जाय, ऐसा कभी नहीं उपादेय हो सकता—उपलब्धि तो कभी ही नहीं। कहानी की मौलिक अनिवार्यता आखिरकार चरित्र ही है, वह जीवन अंश ही है, जो कहानी के नये शिल्प का उत्स विन्दु है। इसी के अनुरूप ही कहानी अपने शिल्प को अपने आप ही बदलती और विकसित करती रहती है।

साठोत्तरी कहानी

सन् ६० के बाद की हिन्दी कहानियाँ जब हम कहते हैं तो हमारा आशय उन कहानियों से है जो हमारे व्यक्ति और समाज के नये यथार्थ को नये परिप्रेक्ष और संदर्भ में प्रकट करती हैं। डॉ० बच्चन सिंह ने एक बार धर्मयुग में प्रकाशित लेख के माध्यम से बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा था कि किस तरह साठोत्तरी कहानी पाँचवें दशक से भिन्न नहीं, बल्कि विच्छिन्न हो गई है।

'पहले कथाकार आदर्शों में विश्वास करता था। पाँचवें दशक के कुछ पहले से ही वह मूल्यों में विश्वास करने लगा। आदर्श बने बनाये और स्थिर होते हैं, मूल्य अन्वेष्य और परिवर्तनशील होते हैं। पाँचवें दशक के उत्तरार्द्ध में विघटनशील मूल्यों के दौरान वह नये मूल्यों की तलाश में भटकता रहा। छठे दशक में आदर्शों का मखौल उड़ाया जाने लगा और मूल्यों को अस्वीकार ही नहीं, तोड़ा जाने लगा, काटा जाने लगा।'[1]

साठोत्तरी कहानी के लेखक ने इस स्थिति की आने की प्रमुख जिम्मेदारी आज के खोखले लोकतंत्र को दी है। लोगों ने कहा है कि यह लोकतंत्र नहीं, बल्कि तन्त्र लोक है। इस तन्त्रलोक की शुरूआत उस समय से हो जाती है जिस समय से नेहरू की, गांधी की व्यक्ति पूजा शुरू हुई। इस व्यक्ति पूजा का फल यह हुआ कि लोग शक्तियों को एक व्यक्ति में केन्द्रित कर देते हैं और उनका अपना कुछ नहीं रह जाता।

'वे समर्पण द्वारा कुछ शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, वह शक्ति जो परायी है। किमी गम्भीर शहरों तक लोकतंत्र का जाल बिछ गया और लोक इस तंत्र में फँसता गया। अब भीड़ से होकर गुजरने के अलावा कोई चारा नहीं रहा। पुल, इमारत, और व्यक्ति को एक श्रेणी में बिठा दिया गया। उनकी प्रतिष्ठा रुपयों में आँकी जाने लगी। प्राणों की कीमत भी लाख रुपये लगा दी गयी। ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवी को कौन 'आइडेण्टिटी' देगा ? आज वह पूर्णतः अकेला है—सपने से भी पराया हो गया है। यह अकेलापन ही आज की नियति है और इस सन्दर्भ में '६० के बाद की कहानियाँ पहले की कहानियों से विच्छिन्न है। 'ज्ञानोदय' के कथा परिशिष्टांक को ही लें। उसमें मोहन राकेश और ज्ञानरंजन दोनों की कहानियाँ छपी हैं। दोनों की कहानियों की केन्द्रीय वस्तु 'अकेलापन' ही है। किन्तु दोनों के बोध, सन्दर्भ और परिप्रेक्ष्य में फर्क है।'[2]

---

१. धर्मयुग, ६ नवम्बर, १९६६।

२. वही।

म कहते हैं तो हमारा आशय उन
नये यथार्थ को नये परिप्रेक्ष और
बार धर्मयुग में प्रकाशित लेख के
स तरह साठोत्तरी कहानी पाँचवें

था। पाँचवें दशक के कुछ पहले से
ने बनाये और स्थिर होते हैं, मूल्य
के उत्तरार्द्ध में विघटनशील मूल्यों
हा। छठे दशक में आदर्शों का मखौल
नहीं, तोड़ा जाने लगा, काटा जाने

की आने की प्रमुख जिम्मेदारी आज
कि यह लोकतंत्र नहीं, बल्कि तन्त्र
से हो जाती है जिस समय से नेहरू
क्ति पूजा का फल यह हुआ कि लोग
र उनका अपना कुछ नहीं रह जाता।

चाहते हैं, वह शक्ति जो परायी है।
छ गया और लोक इस तंत्र में फंसता
कोई चारा नहीं रहा। पुल, इमारत,
उनकी प्रतिष्ठा रुपयों में आँकी जाने
गयी। ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवी को
केला है—सपने से भी पराया हो गया
और इस सन्दर्भ में '६० के बाद की
'ज्ञानोदय' के कथा परिशिष्टांक को ही
दोनों की कहानियाँ छपी हैं। दोनों की
है। किन्तु दोनों के बोध, सन्दर्भ और

"एक पति के नोट्स" नामक कहानी में (नयी कहानियाँ, सितम्बर, १९६४) में कहानीकार कहता है, कि "अगर वह मेरी पत्नी न होती, तो मैं उसे चूम लेता या चूमने की इच्छा को दबाता कड़वा मजा लेता"। नयी कहानी के अभ्यस्त पाठक इन पंक्तियों को पढ़कर और धक्के का अनुभव कर सकते हैं और सजग पाठक इन पंक्तियों को पढ़कर एक नये स्वर की पहचान पा सकता है। नयी कहानी का लेखक जहाँ सामान्य अनुभवों को इस तरह नया संदर्भ देता था कि पाठक को कहीं भी संस्कार का धक्का नहीं लगता, लेकिन '६० के बाद के कहानीकारों ने अपनी लेखनी से इसी संस्कारगत भावनाओं को धक्का दिया। लेकिन मात्र धक्का देना ही शायद उन कहानीकारों का उद्देश्य नहीं बल्कि जिस जीवन चित्र को ये लोग अभिव्यक्त करना चाहते हैं, उसमें विकसित यथार्थ का परिचय यहाँ हमें ज्यादा मिलता है। इन लेखकों की नजर आधुनिक जीवन की विडम्बना और नियति पर ज्यादा है।

'एक पति के नोट्स' को आप पारिवारिक कहानी कहें या प्रेम की अथवा फ्लर्टेशन की—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ता है इस बात से कि इस कहानी का यथार्थ अधिक गहरा और अधिक नया ही नहीं, अधिक निजी भी है। इस कहानी का संसार ही बदल गया है। पत्नी है। सुन्दर है। उससे प्रेम-विवाह किया है। विलासी गृहस्थी है। असन्तोष का प्रत्यक्ष कोई कारण नहीं; पर पति-पत्नी से ऊबा है, दोनों के मध्य का संप्रेषण कृत्रिम है। बल्कि यों कहें कि भावात्मक आदान-प्रदान में तार ही टूट गये हैं। छोटे-छोटे सहज प्रसंगों एवं टिप्पणियों में यह ऊब, यह अलगाव, यह अकेलापन व्यक्त होता है। अत्यन्त वैयक्तिक-से लगने वाले सम्बन्धों में आधुनिक जीवन की इस ट्रेजेडी को पूरी तौर से पहचाना जा सकता है। औरत के रूप में पत्नी उसे आज भी सुन्दर लगती है, पर ज्योंही याद आता है कि यह मेरी बीबी है, उसका चिपचिपाहट-भरा अपनापन अखरने लगता है तथा सुन्दर न होने के बावजूद पड़ोसी लड़की चन्दा को फ्लर्ट करने की कोशिश करता है और अपने को पड़ोसी किशोरीलाल से कहीं ऊँचा मानता हुआ सोचता है कि शायद उसकी बीबी को भी पा सकेगा। यही नहीं, अपनी पत्नी से यौन सम्बन्धों के समय मालिन मनरो आदि ऐक्ट्रेसों को ध्यान में रखना पड़ता है और सेक्स की विवशता न होती तो पत्नी को छोड़ देने को 'बेईमानी' भी उसके मन में थी।

स्वतन्त्रता के बाद नवलेखन के प्रारम्भ में जो एक आशावादी रोमांटिक काल आया था वह जैसे सन् '६० तक पहुँचते-पहुँचते गुजर जाता है। और अब एक अत्यन्त प्रबुद्ध जिज्ञासु मन सच्चाई में गहरे पैठता है तो वह निरन्तर निराशा, अनास्था, ऊब, अनैतिकता आदि महत्व को ज्यादा स्पष्ट करता है। साठोत्तरी कहानीकार इस बोध

को जब अपनाते हैं तो वे जैसे यह सीधे कहते हैं कि वे प्रामाणिक हैं, किन्हीं दूसरे के आधारों द्वारा नहीं दिये गये हैं।

इन कहानीकारों में सामाजिक अलगाव और अकेलेपन के बोध के आधार पर अधिकांश कहानियाँ रची गई हैं। सामाजिक अलगाव का सबसे प्रखर रूप विवाह की संस्था और तथाकथित प्रेम है या दोनों की अवमानना में व्यंजित है। इसलिए यह उल्लेखनीय है कि सन् '६० के बाद के कहानीकारों ने बुनियादी तौर पर पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, दफ्तर के अफसर-क्लर्क, उनके वैयक्तिक जीवन को ही अपनी कहानियों का आधार बनाया है। इसके अलावा संकट का बोध भी इन कहानियों का एक मुख्य स्वर है। '६० के बाद की लिखी मोहन राकेश की कहानी है—'एक ठहरा हुआ चाकू'। इसका नायक अपने को अकेला और अरक्षित महसूस करता है। वह गुंडे से अरक्षित है, उससे ज्यादा पुलिस से अरक्षित है। क्योंकि पुलिस उसे बार-बार सुरक्षा की गारंटी देती है। गुंडों से सब डरते हैं—थानेदार, डी० एस० पी०, चीफ क्राइम रिपोर्टर। थानेदार कहता है—इन गुंडों से मत्था लेने में यूँ थोड़ा-बहुत खतरा तो रहता ही है—और कुछ और न करें तो आप एक एसिड-वेसिड डालने की कोशिश कर सकते हैं—पर हम आपकी हिफाजत के लिए हैं। आपको डरना नहीं चाहिए। डी० एस० पी० और चीफ क्राइम रिपोर्टर भी दूसरी भाषा में यही कहते हैं, यानी उसे गुंडों से डरना चाहिए। लेखक ने इस परिस्थिति विशेष में डालकर उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओं की जाँच भी की है। उसके सिगरेट पीने, उँगलियों पर नाम लिखने, पैर खुजलाने को अर्थ दिया गया है।

इस संकट-बोध के समय भी मिन्नी के प्रति उसकी रोमांटिक दिलचस्पी कम दिलचस्प नहीं है—'मन होता है कि हाथ में कसने के लिए एक और हाथ उसके पास हो—मिन्नी की पतली और चुभती हुई उँगलियों वाला हाथ। कि हाथ के अलावा मिन्नी का पूरा शरीर वहीं पास में हो—इकहरा पर भरा हुआ शरीर—जिसके एक हिस्से से अपने सिर और होंठों को रगड़ता हुआ वह अपने नाक-कान गालों से उसकी साँसों का स्वर ही नहीं, उतार-चढ़ाव भी महसूस कर सके। वह रोमांटिक प्रेम से सम्बद्ध है, समाज से सम्बद्ध है। रिपोर्टर का कहना है कि उसके साथ कोई नहीं है—न जनता, न मंत्री, न अधिकारी'। स्वाभाविक है कि वह अपने को नंगा और अरक्षित महसूस करे। हाँ, अपने को नंगा करने के साथ-साथ वह समाज को भी नंगा कर देता है।'

ज्ञानरंजन की एक कहानी है—'दिलचस्पी'। इसमें उन्होंने अकेलेपन को अपना मूल विषय बनाया है। इस अकेलेपन को देखने का उनका अपना दृष्टिकोण भिन्न है। इसके मुख्य चरित्रों को कहानीकार किसी निश्चित स्थिति में नहीं रखता,

बल्कि वह अपने आप में एक हि
स्थिति '६० के बाद के समय के
वह इसलिए अकेला है कि समाज

इन कहानीकारों में प्राय:
कि '६० के बाद जिस मनुष्य की
चुका है, कहीं उनकी तलाश ये क
दूधनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल,
रामनारायण शुक्ल, प्रयाग शुक्ल,
आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इन कहानीकारों की कहा
कहानियों में जिस प्रेम, त्याग, संघ
आदर्शों में नहीं है। उनकी कहानि
नफरत। रवीन्द्र कालिया की कहान
कहीं इन कहानीकारों में ऐंटी-रोमां
कहानियों को पढ़कर प्राय: विरोध,
है कि तीनों भावनाएँ आज के परि
'नफरत' और 'ऊब' के बाद अथ
भावनाओं से कहानीकार अपने को
ऊपर लेता है तो उसकी रचना मान
विशेष उपलब्धि इन कहानियों से नह

आजकल ऐसा लगता है कि
क्योंकि जिस तेजी के साथ सारा परि
उससे अपने को जोड़ना आज के कहा
लगता है कि कहानी के स्वरूप में को
हिन्दी कहानी का सर्वथा कोई और

यह सीधे कहते हैं कि वे प्रामाणिक हैं, किन्हीं दूसरे के
हैं।

ामाजिक अलगाव और अकेलेपन के बोध के आधार पर
हैं। सामाजिक अलगाव का सबसे प्रखर रूप विवाह की
या दोनों की अवमानना में व्यंजित है। इसलिए यह
बाद के कहानीकारों ने बुनियादी तौर पर पति-पत्नी,
-क्लर्क, उनके वैयक्तिक जीवन को ही अपनी कहानियों का
वा संकट का बोध भी इन कहानियों का एक मुख्य स्वर
ोहन राकेश की कहानी है—'एक ठहरा हुआ चाकू'।
और अरक्षित महसूस करता है। वह गुंडे से अरक्षित
क्षित है। क्योंकि पुलिस उसे बार-बार सुरक्षा की गारंटी
—थानेदार, डी० एस० पी०, चीफ क्राइम रिपोर्टर।
ते मत्था लेने में यूं थोड़ा-बहुत खतरा तो रहता ही
आप एक एसिड-वेसिड डालने की कोशिश कर सकते
के लिए हैं। आपको डरना नहीं चाहिए। डी० एस०
भी दूसरी भाषा में यही कहते हैं, यानी उसे गुंडों से
परिस्थिति विशेष में डालकर उसकी मानसिक प्रति-
उसके सिगरेट पीने, उंगलियों पर नाम लिखने, पैर
।

भी मित्रों के प्रति उसकी रोमांटिक दिलचस्पी कम
है कि हाथ में कसने के लिए एक और हाथ उसके पास
भती हुई उंगलियों वाला हाथ। कि हाथ के अलावा
में हो—इकहरा पर भरा हुआ शरीर—जिसके एक
को रगड़ता हुआ वह अपने नाक-कान गालों से उसकी
-चढ़ाव भी महसूस कर सके। वह रोमांटिक प्रेम से
रिपोर्टर का कहना है कि उसके साथ कोई नहीं है—
'। स्वाभाविक है कि वह अपने को नंगा और अरक्षित
। करने के साथ-साथ वह समाज को भी नंगा कर

हानी है—'दिलचस्पी'। इसमें उन्होंने अकेलेपन को
स अकेलेपन को देखने का उनका अपना दृष्टिकोण
ो कहानीकार किसी निश्चित स्थिति में नहीं रखता,

बल्कि वह अपने आप में एक स्थिति है—उलझनपूर्ण और जटिल। दरअसल यह स्थिति '६० के बाद के समय के संदर्भ से कहीं जुड़ती है। वह अनुभव करता है कि वह इसलिए अकेला है कि समाज उसका साथ नहीं देता।

इन कहानीकारों में प्रायः चरित्रों की 'आइडेन्टटी' गायब है। प्रायः लगता है कि '६० के बाद जिस मनुष्य की इन्सानियत गायब हो चुकी है, या जो गुमशुदा हो चुका है, कहीं उनकी तलाश ये कहानीकार करते रहते हैं। इस तरह के लेखन में दूधनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल, मणिका मोहनी, काशीनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा, रामनारायण शुक्ल, प्रयाग शुक्ल, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, गिरिराज किशोर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इन कहानीकारों की कहानियाँ पढ़कर बार-बार लगता है कि ये लोग अपनी कहानियों में जिस प्रेम, त्याग, संघर्ष के विषय को उठाते हैं, उनका कोई सम्बन्ध कहीं आदर्शों से नहीं है। उनकी कहानियों के प्रायः तीन बिंदु होते हैं—मिलन, ऊब और नफरत। रवीन्द्र कालिया की कहानी 'डरी हुई औरत' एक ऐसी ही कहानी है। कहीं-कहीं इन कहानीकारों में ऐंटी-रोमांटिक और 'ऐब्सर्ड' की भी भावना मिलती है। इन कहानियों को पढ़कर प्रायः विरोध, नफरत और ऊब की भावना मिलती है। यह सच है कि तीनों भावनाएं आज के परिवेश की सबसे बड़ी सच्चाई है; पर सवाल है—'नफरत' और 'ऊब' के बाद अथवा इसके आगे की कहानी क्या होगी? यदि इन भावनाओं से कहानीकार अपने को जोड़कर चलता है और खुद इसका दायित्व अपने ऊपर लेता है तो उसकी रचना मानवीय संदर्भ के अनुसार जुड़ जाती है, अन्यथा कोई विशेष उपलब्धि इन कहानियों से नहीं मिलती।

आजकल ऐसा लगता है कि वास्तविक कहानियों का समय समाप्त हो गया है क्योंकि जिस तेजी के साथ सारा परिवेश बदल रहा है, उसे अभिव्यक्त कर पाना और उससे अपने को जोड़ना आज के कहानीकार के लिए बहुत मुश्किल हो गया है। ऐसा लगता है कि कहानी के स्वरूप में कोई परिवर्तन आनेवाला है और निकट भविष्य में हिन्दी कहानी का सर्वथा कोई और रूप और व्यक्तित्व सामने आने को है।

●

हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास